॥ ओरियण्टल कालेज मेगज़ीन ॥

भाग ९ संख्या १	नवम्बर १९३२	क्रमसंख्या ३१

प्रधान सम्पादक—

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप एम. ए., डी. फिल. (आक्सफोर्ड)

(संस्कृत हिन्दी तथा पञ्जाबी विभाग)

सूचना—

सम्पादक लेखकों के लेख का उत्तरदाता नहीं होगा।

प्रकाशक—बाबू एन. एन. मित्र।

(बाम्बे मेशीन प्रेस ने करीमी प्रेस लाहौर के लिये छापा)

विज्ञप्ति

उद्देश्यः—इस पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य यह है कि प्राच्यविद्यासम्
परिशीलन व तत्त्वानुसन्धान की प्रवृत्ति को यथासम्भव प्रोत्साहन दिया
और विशेषतः उन विद्यार्थियों में अनुसन्धान का शौक पैदा किया जाए
संस्कृत, हिन्दी और पञ्जाबी के अध्ययन में संलग्न हैं।

किस प्रकार के लेखों का प्रकाशित करना अभीष्ट हैः—

यत्न किया जाएगा कि इस पत्रिका में ऐसे लेख प्रकाशित हों जो लेख
अपने अनुसन्धान का फल हों। अन्य भाषाओं से उपयोगी लेखों का अनुवा
स्वीकार किया जाएगा और संक्षिप्त तथा उपयोगी प्राचीन हस्तलेख भी अ
प्रकाशित किये जाएंगे। ऐसे लेख जो विशेषतः इसी पत्रिका के लिये न लिखे
हों, प्रकाशित न होंगे।

प्रकाशन का समयः—

यह पत्रिका अभी साल में चार बार अर्थात् कालेज के पढ़ाई के सा
अनुसार नवम्बर, फरवरी, मई, और अगस्त में प्रकाशित होगी।

मूल्यः—

इसका वार्षिक चन्दा ३)रुपये होगा विद्यार्थियों से केवल १॥।) लिया ज

पत्रव्यवहार और चन्दा भेजनाः—

पत्रिका के खरीदने के विषय में पत्रव्यवहार और चन्दा भेजना प्रि
ओरियण्टल कालेज लाहौर के नाम होना चाहिये। लेखसम्बन्धी पत्र व
सम्पादक के नाम होना चाहिये।

प्राप्तिस्थानः—

यह पत्रिका ओरियण्टल कालेज लाहौर के दफ्तर से खरीदी जा सक

पंजाबी विभाग के सम्पादक सरदार बलदेवसिंह बी० ए० हैं वा
विभाग के उत्तरदायी हैं।

* ओ३म् *

अथ वेदार्थविमर्शः ।

अथर्व० ३।२७॥ पर वाक्यमीमांसात्मक विचार ।

(लेखक—श्री विश्वबन्धुशास्त्री, आचार्य्य, दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय, सम्पादक,
"वैदिकशब्दार्थपारिजात" वैदिकाश्रम, लाहौर)

१—मन्त्र पाठः ।

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो० । ० ॥ २ ॥ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो० । ० ॥ ३ ॥ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः तेभ्यो० । ० ॥ ४ ॥ ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो० । ० ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो० । ० ॥ ६ ॥

२—सामान्य स्वरूप ।

१—सब मन्त्रों की रचना एक ही प्रकार की है। प्रत्येक मे पहले एक दिशा का नाम आता है, तत्पश्चात् एक अधिपति का नाम, फिर एक रक्षक का नाम और अन्त में बाणो के रूप मे किसी एक पदार्थ का निरूपण पाया जाता है। जैसे, प्रथम मन्त्र में पूर्व दिशा, अग्नि अधिपति, असित रक्षक और आदित्य-बाणों का बखान है। इस के आगे सब मन्त्रों में 'तेभ्यो नमः' आदि चार नमस्कार-वाक्य रखे गये है और सर्वत्र 'एभ्यो अस्तु', इस वाक्य द्वारा इन चार वाक्यों मे नमस्कृत पदार्थों की ओर पुनः संकेत करके श्रद्धा की भावना को पक्का किया गया है । अन्त मे दो उद्देश्य वाक्यो द्वारा द्वेषी शत्रु की ओर संकेत करके, तीसरे विधेयवाक्य मे उस के दमन के लिये प्रार्थनात्मक भाव कह कर मन्त्र समाप्त हो जाता है।

२—इस विश्लेषण का यह अभिप्राय है कि एक मन्त्र की प्रक्रिया को

ठीक समझ कर शेष सब पर उसे झट चरितार्थ किया जा सकता है। वहां पर जिस पद को व्याकरणादि की दृष्टि से जिस प्रकार निर्णीत किया जावे, वाक्य-रचना की समता के आधार पर यह आवश्यक होगा, कि सर्वत्र उसे या उस के मुकाबिले के पदों को ठीक वैसे ही लगाया जावे । जैसे, यदि प्रथम मन्त्र में 'असित' को किसी लेखक द्वारा प्रथमा विभक्ति मे 'अग्नि' के साथ समानाधिकरण समझा गया है, तो उस के लिये यह अनिवार्य्य होना चाहिये कि वह दूसरे मन्त्रों में 'तिरश्चिराजिः' आदि शब्दों को भी इन्द्र आदि के साथ उसी सम्बन्ध से जोड़े। इन में से किसी को तो उक्त प्रकार से लेना और किसी को छान्दस व्यत्यय की परिभाषा द्वारा पंचमी आदि के अर्थ में सम्बन्धित करने की चेष्टा करना अयुक्त प्रतीत होता है।

वाक्य मीमांसा

१—'अग्नि' आदि शब्दों का वाच्य क्या है? क्या वे ऋग्वेदादि वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध, 'एकं सत्' पदो द्वारा संकेतित, जगदीश्वर के 'इन्द्रं मित्रं वरुणमाहुः' (ऋक्० १।१६४।४६) इस मन्त्रगत न्याय के अनुसार, प्रकाशवत्तादि के सूचक छः गौण नाम है, या इन के अनेक पृथक् २ पदार्थ अभिधेय है? यदि एक के ही वाचक है, तो आगे दरशायी जा रही अड़चनो का क्या समाधान होगा, और यदि अनेक भिन्न २ पदार्थ अभिप्रेत है, तो क्या उन पदार्थों का पूर्वादि दिशाओ से कोई विशेष सम्बन्ध है वा नहीं?

२—'असित' आदि पद 'अधिपति' की तरह (और इस कल्प मे 'रक्षिता' की भी तरह) 'अग्नि' आदि के विशेषणमात्र है या स्वयं स्वतन्त्र, धर्मिस्वरूप पदार्थों के वाचक हे और 'रक्षिता' इन का विशेषण है? दोनो कल्पों मे इन का क्या २ अर्थ होगा? कौनसा ठीक और कौनसा गलत जचता है?

३—'आदित्य' आदि बाणस्वरूप पदार्थ क्या है? वे किस आशय को लेकर बाण कहे गये है?

४—'तेभ्यो नमः', इस नमस्कार का लक्ष्य कौन है? क्या प्रत्येक दिशा के अधिपति अग्न्यादि पदवाच्य पदार्थ की ओर इशारा है? यह ठीक नही प्रतीत होता। यदि ऐसा होता तो 'तेभ्यः' की जगह "तस्मै", अर्थात् एकवचन का प्रयोग किया गया होता। यदि ऐसा कहा जावे कि आदरार्थ बहुवचन प्रयुक्त

हो सकता है, तो वैदिक प्रयोग में इस शैली का उदाहरण ढूंडना होगा। अर्थात् यह दरशाना होगा कि अमुक २ स्थल पर अग्नि, इन्द्रादि प्रसिद्ध पद एक-वचन में है और इन के लिये प्रयुक्त सर्वनाम को भाषा के "आप" की तरह बहुवचन मे बर्ता गया है। दूसरा विकल्प यह भी हो सकना है कि शेष मन्त्रों में आए हुए इन्द्रादि की मानसिक उपस्थिति के आधार पर, उन सब को ध्यान-गोचर करके 'तेभ्यः' इस बहुवचन का प्रयोग किया गया है। यहां पर फिर वही वक्तव्य होगा जो ऊपर (३।१॥) में कह आए हैं। अग्न्यादि द्वारा क्या कथित होता है, एक पदार्थ या अनेक पदार्थ ? यदि कहा जाय कि एक जगदीश्वर के ये अग्न्यादि भिन्न २ नाम हैं इन सब का वही एक अभिन्न तत्त्व वाच्य है, तो प्रथम प्रश्न तदवस्थ रहता है, अर्थात् एक पदार्थ की ओर सङ्केत करने वाला सर्वनाम वहुवचन मे क्यों पड़ा है ? अनन्त नामों का आधारभूत, परमेश्वर सदा एक ही रहता है। भिन्न २ नाम तो उस सर्वाधार के वाचनिक विशेषण-मात्र हो सकते हैं। अतः उसके सङ्केतार्थ सर्वनाम को एकवचन में ही रखते बनता है। भाषा में इसी भाव को ऐसे ही तो कहेंगे, "अग्न्यादि नामों वाले उस परमात्मा (न कि उन परमात्माओं) को नमस्कार हो।" विशेषणों की संख्यादि का विशेष्य की संख्यादि पर प्रभाव पड़ना किसी भी भाषा में व्याकरण में सम्मत नही प्रतीत होता। विशेष्य या धर्मिस्वरूप पदार्थ की संख्या सदा स्वगत एकत्व-अनेकत्व द्वारा निर्धारित होती है। विशेषण पदों तथा क्रियापदों के संख्याश्रित रूप भी विशेष्य की संख्या के ही आधीन होते हैं। जैसे:—

(क) रामो याति।

(ख) सुन्दरो रामो गच्छति च हसति च।

(ग) सुन्दरः शूरो दाशरथी रामो गच्छति च हसति च तुष्यति च।

अर्थात्,

(क) राम जाता है।

(ख) सुन्दर राम जाता है और हंसता है।

(ग) सुन्दर, शूर, दशरथसुत, राम जाता है, हंसता है और तुष्ट होता है।

इन तीनों वाक्यों में विशेष्य अर्थात् रामकी संख्या एकाकार रहती है, चाहे कोई एक या अनेक विशेषण हों या न हो। यदि हम उसके प्रति नमस्कार प्रकट करना चाहेंगे तो तीनों वाक्यों के साथ समान रूप से "तस्मै नमः" अर्थात् 'उसे

प्रणाम हो', यही कहना होगा। वेद में भी यही शैली है। जहां तत्त्व एक है और उस के विशेषण, अनेक, तो उस तत्त्व का वाचक तथा संकेतक पद एकवचन मे ही मिलता है जैसे उसी सर्वप्रसिद्ध मन्त्र "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋ० १।१६४।४६।) मे "एकं सद्" का प्रयोग स्पष्ट दृष्टान्त है। इस लिये जहां तक शब्दप्रयोग और वाक्यमीमांसा का सम्बन्ध है, यदि 'तेभ्यः', इस पद से अग्न्यादि की ओर इशारा मान लिया जावे, तो उन को परस्पर, भिन्न, स्वतन्त्र पदार्थ भी मानना पड़ेगा। वे पदार्थ जड़ अग्नि विद्युत आदि अभिप्रेत हैं या तत्त-त्पदवाच्य दैवत विभूतियों और चमत्कारी स्वरूपों की ओर इशारा है, यह दूसरा प्रश्न उत्तरणीय रह जावेगा।

५—'अधिपतिभ्यो नमः,' इस वाक्य का लक्ष्य क्या है ? प्रत्येक मन्त्र मे एक २ अधिपति का निरूपण होने से, केवल उस २ के लिये बहुवचन पूर्वोक्त प्रकार से असंगत सा जचता है। प्रथम तो आदरार्थ बहुवचन का वैदिक प्रयोग अभी सिद्ध ही नहीं, पर, यदि उस की ओर ध्यान भी हो, तो भी ठीक न होगा। यदि प्रथम प्रयोग मे 'अग्निरधिपतिः' यह एक वचन प्रयुक्त हुआ है, तो झट उस के लिये ही 'अधिपतयः' यह बहुवचन नहीं हो सकता। अवश्य यही मानना पड़ता है कि सब मन्त्रों में उपवर्णित अग्नि आदि अधिपतियों को एक साथ संकेतित करना ही वेद को अभीष्ट है। यहां पर पूर्व कण्डिका में उठाये हुए प्रश्न की ओर पुनः ध्यान करना पड़ता है। अर्थात्, यदि अग्न्यादि उसे एक सर्वाधि-पति के भिन्न २ दृष्टियों से गौण नाम मात्र है, तद्वाच्यो का आपस मे कोई तात्त्विक भेद नहीं, तो उस का विशेषण, 'अधिपतिभ्यः,' बहुवचन में कैसे संगत हो सकता है ? चाहे वे जड़ पदार्थ हों और चाहे चेतनावान् दैवत हो, इस नमस्कार की दृष्टि से उनके व्यावहारिक बहुत्व को माने विना मार्ग मिलना दुष्करसा प्रतीत होता है।

(६) 'रक्षितृभ्यो नमः', इस वाक्य मे भी बहुत्व-प्रयोग की वार्त्ता को पूर्व कथनानुसार ही जानना चाहिये। यह विशेषण पद किसी बहुत्व विशिष्ट विशेष्य पद की आकांक्षा करता है। वह क्या है ? इस के विवेचनार्थ प्रत्येक मन्त्र में 'दिक्' शब्द के आगे पढ़े जाने वाले चार पदों पर विशेष विचार करना पड़ता है। जैसे, अग्निरधिपतिरसितो रक्षिता' यहां पर 'अग्निः', 'अधिपतिः', 'असितः', और 'रक्षिता' का परस्पर सम्बन्ध क्या है ? यह स्पष्ट हो जाने से

'रक्षितृभ्यः' का लक्ष्य क्या है, यह सहज ही में समझा जा सकता है। अग्नि और अधिपति का सम्बन्ध तो स्पष्ट ही है। 'रक्षिता' का विशेष्य क्या है? क्या अग्नि या 'असित'। यदि अग्नि को माना जावे, तो इसी प्रकार शेष मन्त्रों में इन्द्रादि को रक्षिता पदों का विशेष्य निर्धारित कर, मानसिक उपस्थित के आधार पर प्रत्येक मन्त्र मे 'रक्षितृभ्यः', इस पद से आगे पीछे के सभी अग्न्यादि पदों की ओर समुचित-संकेत समझा जावेगा। यहां पर भी बहुत्व के प्रयोगवशात् अग्न्यादि द्वारा वाच्यपदार्थ के एकत्व को स्वीकार करने में पूर्ववत् अड़चन खड़ी होगी। दूसरे, अधिपति और रक्षिता दोनों विशेषणों के मध्य में 'असित' आदि शब्दों को भी अग्न्यादि का विशेषण ही मानना ठीक होगा। अन्यथा उन की कोई सार्थक संगति लगानी असम्भव हो जाती है। पर यदि 'असित' आदि भी विशेषणपद है, तो नमस्कार वाक्यों मे जैसे 'अधिपतिभ्यो नम' और 'रक्षितृभ्यो नम' पढ़े थे, वैसे ही 'असिताय नमः', 'तिरश्चिराजये नमः' या 'असितादिभ्यो नमः', या कुछ और इसी आशय को लिये हुए सामान्यनिर्देश समाविष्ट हुआ २ पाया जाता। इससे यही अनुमान होता है कि 'असित' आदि शब्द विशेषणस्वरूप नहीं होने चाहियें। इस बात की पुष्टि एक और प्रकार से भी होती है। मन्त्रों के पूर्व भाग मे पहले अग्न्यादि विशेष्य आते है। फिर उन का 'अधिपति' विशेषण। अन्त मे आदित्यादि विशेष्य कह कर उनका विशेषण 'इषवः' आता है। उपक्रमोपसंहारबल से मध्यस्थ दोनों शब्द भी विशेष्य-विशेषण विभाग से ही ग्रहण करने उचित होंगे। नमस्कार-वाक्यों की रचना भी यही सूचित करती है। सामान्यात्मक 'तेभ्यः' के आगे पूर्वोक्त प्रत्येक मन्त्र के पहले भाग का पहिला विशेषण 'अधिपतिभ्यः' पढ़ा गया है। अन्त की ओर से सामान्यात्मक 'एभ्यः' से पूर्व इसीप्रकार उसका अन्तिम विशेषण 'इषुभ्यः' इस पद से उद्धृत किया गया है। मध्यस्थ विशेषण 'रक्षितृभ्यः' मध्य में रखा है। इस से 'असितादि' पदों की विशेष्य-स्वरूपता सुस्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार वाक्य-मीमांसा के आधार पर दो बातें निखर आती है।

(क) सामन्यात्मक दो नमस्कार वाक्यों के मध्य में तीन समकक्ष, स्वतन्त्र नमस्कार वाक्य है, जिन विशेषणपदो द्वारा उनके पूर्वभागों में सूचित विशेष्य-पदों का ग्रहण करना अभीष्ट है। अर्थात्, जब 'अधिपतिभ्यः' पढ़ा जावे, तो अग्न्यादि का, जब 'रक्षितृभ्यः' पढ़ा जावे, तो असितादि का और जब 'इषुभ्य'

पढ़ा जावे, तो आदित्यादि छः २ पदार्थों की ओर संकेत समझना चाहिये। यही वर्गीकरण का स्वाभाविक प्रकार है। कुल तीन वर्ग है, अर्थात् अधिपति-वर्ग, रक्षितृवर्ग और इषु-वर्ग, जिनमें प्रत्येक मे छः २ अलग २ पदार्थ हैं।

(ख) यदि इस वर्गीकरण का प्रयोग न किया गया होता, तो मन्त्रो के पाठ में समता-चमत्कार अवश्य कम हो जाता। उस अवस्था में प्रत्येक मन्त्र मे बहुत सा पद भेद पाया जाता। जैसे, पहिला मन्त्र इस प्रकार होता, 'अग्नयेऽधिपतयेनमोऽसितिाय रक्षित्रे नम'। आदित्येभ्य इषुभ्यो नमः'। इसी प्रकार सब मन्त्र भिन्न २ शब्द लेकर चलते। इस कथन को स्पष्ट करने के लिये अब कुछ स्थलों का सापेक्षाध्यन पेश करते हैं।

(क) अथर्व० १२।३।५५-६०॥ के पाठ की यहां पर तुलना करने से इस उक्ति की सर्वथा पुष्टि हो सकती है। वह इस प्रकार से है:—

"प्राच्यै त्वा दिशे ३ग्नयेधिपतयेसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते। एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः।......॥५५॥ दक्षिणाय त्वा दिश इन्द्रायाधिपतय तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते। एतं० ।०॥५६॥ प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेन्नायेषुमते। एतं० ।०॥५७॥ उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेशन्या इषुमत्यै। एतं० ।०॥५८॥ ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः। एतं० ।०॥५९॥ ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते। एतं० ।०॥६०॥

यहां पर आपाततः पितृ-प्रकरण प्रतीत हो रहा है। स्वर्गामी के कल्याणार्थ इन मन्त्रों का पाठ किया गया है। हर एक मन्त्र में तीन भाग हैं जिन में से प्रथम दो का यहां सम्बन्ध होने से सर्वत्र उन्हें ही उद्धृत किया गया है। प्रत्येक के प्रथम भाग में मीमांस्यमान सूक्तस्थ मन्त्रों के प्रथम भाग की नाई मुकाबिले के शब्द पाये जाते हैं। भेद केवल इतना है कि एक तो 'त्वा' पद अधिक आता है और दूसरे प्राच्यादि पद प्रथमा के स्थान पर चतुर्थी विभक्ति में प्रयुक्त किये गये हैं। थोड़ा सा और साधारण भेद है। जैसे, प्रथम मन्त्र में 'आदित्याय' एकवचन में है। दूसरे में पितरः' के स्थान पर 'यमाय' का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार 'इषवः' के स्थान पर सर्वत्र 'इषुमत्' शब्द का प्रयोग हुआ २ है। सामान्य पर्या-

लोचन से यह प्रतीत हो जाता है कि प्रत्येक मन्त्र के प्रथम भाग का निम्न लिखित प्रकारानुसार विभाग हो सकता है:—

	विशेष्य	विशेषण
१—	प्राची	दिक्
२—	अग्निः	अधिपतिः
३—	आसितः	रक्षिता
४—	आदित्यः	इषुमान्

इसी प्रकार शेष पांच मन्त्रो में भी समझ लेना चाहिये। शायद यहा किसी को ऐसा प्रतीत हो कि 'अग्निः' के अनन्तर आने वाले सब पद उसी के साथ विशेषणभाव से समानाधिकरण मान लिये जावें। मीमांस्यमान सूक्त के (अथर्व० ३। २७। १॥) मे ऐसा करना कठिन था क्योंकि "आदित्या इषवः" बहुत्व-विशिष्टनिर्देश एक अड़चन सी थी। पर यहां तो कोई रुकावट नहीं। 'अग्नि' ही 'आदित्य' और वही 'इषुमान्' गौणभाव से कहा जा सकता है। यदि यह कहा जावे कि प्रत्येक मन्त्र के मध्यम भाग मे धृत 'गोपायत' पद में प्रयुक्त बहुत्व प्रथम भाग में बहुत्वविशिष्ट कर्तृ-पदों की आकांक्षा करता है, तो इस का उत्तर वही है जो मीमांस्यमान सूक्तस्थ "तेभ्योनमः" अथवा और भी अधिक विशेषता के साथ 'अधिपतिभ्यो नमः' आदि नमस्कारवाक्यों की व्याख्या मे सगरे छटों मन्त्रो में आए हुए पदार्थों की मानसिक उपस्थिति की परिभाषा के आधार पर दिया गया था। अर्थात्, यहां भी समग्र प्रकरणस्थ मन्त्रों में प्रयुक्त अग्नि, इन्द्र प्रभृति पदो के अनेकत्व के आधार पर उन के साथ अन्वित क्रियापद 'गोपायत' मे बहुत्व प्रयुक्त हुआ है। पर यह बात भी बनती दिखाई नहीं पड़ती। यहां भी यह प्रश्न उठेगा कि अग्नि-इन्द्रादि पदों का वाच्य एक पदार्थ है अथवा अनेक ? यदि जैसे अधिपति-,असित आदि विशेषणत्वेन अभीष्ट पदो के समान अग्न्यादि पद भी वस्तुतः एक परब्रह्म पदार्थ के तत्तद्गुणवाचकतया नाम मात्र है, तब तो 'गोपायत' का बहुवचन सर्वथा असङ्गत ही रहेगा। जब सब मन्त्रो में केवल एक ही विशेष्य है और वह भी विशेषण पदों से ही गम्य, तो प्रथम तो ऐसी अवस्था में न किसी क्रियापद का ही प्रयोग सम्भव है और न कोई व्यवस्थित वाक्य ही बन सकता है। और यदि क्रिया रखनी ही होगी, तो भी वास्तविक कर्तृभूत तत्त्व के एकत्व के कारण वह एक वचन मे ही रहेगी, न कि विशेषणों के अनेक होने से बहुवचन में।

और, यदि प्रत्येक मन्त्रस्थ अग्नि-,इन्द्र आदि को स्वतन्त्र देवता तथा विशेष्य मान कर 'गोपायत' के बहुत्व के साथ मानसिक उपस्थिति के द्वारा शृङ्खलित करना अभीष्ट हो, तो भी मीमांस्यमान सूक्त के मन्त्रस्थ इन्हीं मुक्ताबिले के पदो को स्वतन्त्र देवता वाचक स्वीकार करना अनिवार्य जंचता है। यह वादी को सर्वथा अनभीष्ट है। अतः उसे किसी और सरणि की खोज करना चाहिये जिस से दोनों स्थलो की समस्या सुलझ सके।

परन्तु हम सामान्याधिकरण्य-वादी के सम्मुख एक और आपत्ति भी रखते है ताकि सर्वांग-सम्पूर्ण विचार किया जा सके। (अथर्व० १२।३।५८,५९) के प्रथम भागों मे 'अशन्या इषुमत्यै' तथा 'ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः' का क्रम से प्रयोग पाया जाता है। स्पष्ट ही इन मे से कोई भी शब्द न तो अग्न्यादि-पूर्व मन्त्रो मे आये हुए और न इन मे प्रयुक्त सोम और विष्णु-पुल्लिंगी पदों का विशेषण बन सकता है। यह भी स्पष्ट है कि 'इषुमत्-' शब्द विशेषण है और केवल अपने से पूर्ववर्ती पद के साथ ही इस का योग है। यदि इन मे से दूसरे मन्त्र में आये हुए 'ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः' इन पदों पर विचार किया जावे, तो पूर्व-संकेतिक सामानाधिकरण्य का सारा संस्कार मन्द पड़ जाता है। और यदि 'ओषधीभ्य' 'विष्णु' से सर्वथा पृथक् पद का विशेषण है, तो इस के समकक्ष आदित्यादि शब्द क्यो पृथक् २ स्वतन्त्र पदार्थों के वाचक न माने जावेंगे ?

यदि वादी अब सब पदोंको समानाधिकरण मानने का आग्रह छोड़कर यह प्रस्ताव रखता है कि 'अग्नि—अधिपति—असित—रक्षिता' इन चार पदो तथा दूसरे मन्त्रों मे इन के तुल्यकक्ष चार २ पदों को तो सामानाधिकरण मान लिया जावे, तो भी ठीक नहीं प्रतीत होता। इस विषय मे कुछ तो उत्तर ऊपर आ चुका है। वाक्य—समता की दृष्टि से भी जब इन छः स्थलों पर आदि मे एक एक दिशा अलग पढ़ी गयी है और अन्त मे आदित्यादि अलग २ पदार्थो का संकेत है, तो मध्यवर्ती चार २ पद भी उन दो जोड़ो के सामान किन्ही उन से भिन्न दो जोड़ों को ही कहने से उपयुक्त हो सकते हैं। वे एक ही पदार्थ के वाचक न होने चाहियें।

(ख) परन्तु इस बात को वैयक्तिक सम्मतिमात्र की पदवी से ऊपर उठाने के लिये यह अपेक्षित है कि कोई और इसी विषय मे प्रबल साक्ष्य उप-

स्थित किया जावे। एतदर्थ अब तैत्तिरीय संहिता से एक पाठ उठा कर रखना आवश्यक होगा। "सर्पाहुति-प्रकरण' में वहां निम्न लिखित मन्त्र पढ़े हैं:—

"समीची नामासि प्राची दिक् तस्यास्तेऽग्निरधिपतिरसितो रक्षिता यश्चाधिपतिर्यश्च गोप्ता ताभ्यां नमस्तौ नो मृडयतां ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधामि ॥१॥ ओजस्विनी नामासि दक्षिणा दिक् तस्यास्त इन्द्रोऽधिपतिः पृदाकुः। ०॥२॥ प्राची नामासि प्रतीची दिक् तस्यास्ते सोमोऽधिपतिः स्वजः ०। ०॥३॥ अवस्थावा नामास्युदीची दिक् तस्यास्ते वरुणोधिपतिस्तिरश्चिराजिः ०। ०॥४॥ अधिपत्नी नामासि बृहती दिक् तस्यास्ते बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रः ०। ० ॥५॥ वशिनी नामासीयं दिक् तस्यास्ते यमोऽधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता ०। ०॥६॥ तै० सं० ५। ५। १० ॥

इस स्थल की हमारे मीमांस्यमान सूक्त से कितनी समीपता है, इस बात के द्योतनार्थ ही पूरा उद्धरण दे दिया है। अवश्य इस का विचार हमारे सामने उपस्थित प्रश्नों को सुलझाने मे सहायक होना चाहिये। यहां भी वही क्रम है। प्रत्येक मन्त्र मे पहिले एक दिशा का नाम है। फिर एक अधिपति का और फिर एक रक्षिता का। दिशाओ के क्रम मे केवल इतना अन्तर है कि 'ऊर्ध्वा' को यहां "बृहती" करके कहा है और "ध्रुवा" से पहिले वर्णन किया है। प्रत्येक दिशा का एक २ विशेषण उस से पूर्व से और बढ़ा हुआ है। जैसी, प्राची को समीची और दक्षिणा को ओजस्वनी बताया है। अधिपतियो की बांट मे भी अन्तर है। यहां पर प्रतीची दिशा के साथ सोम अधिपति है और उदीची के साथ वरुण। ध्रुवा दिशा के सन्नियोग मे विष्णु का स्थान यम ने ले लिया है। रक्षितृवर्ग मे दक्षिणा दिशा के साथ पृदाकु, प्रतीची के साथ स्वज और उदीची के साथ तिरश्चिराजि का योग आया है। इषु या इषुमान् के वर्ग का यहां सन्निवेश नहीं किया गया।

इस स्थल की विशेषता यह है कि यह इस बात मे निर्णायक बन सकता है कि अधिपति और रक्षिता भिन्न २ पदार्थो के विशेषण है, एक ही पदार्थ वर्ग के साथ समानाधिकरण नहीं। दिशाओ और इषुओ का पार्थक्य पूर्वगत विमर्श से स्थापित हो ही चुका है। अब निर्णायक शब्दो पर विचार करना चाहिये। वे ये है:—

"यश्चाधिपति र्यश्च गोप्ता ताभ्या नमस्तौ नो मृडयताम्"—

अर्थः—जो अधिपति है और जो रक्षक है, उन (दोनों) को नमस्कार हो। वे (दोनों) हमारा कल्याण करे। यदि यहां पर "अग्नि" के साथ शेष पदों का विशेषता-सम्बन्ध हो तो ऐसे कहते—

यश्चाधिपति र्यश्चासितो यश्च गोप्ता तस्मै नमः स नो मृडयतु. ...

अर्थात्, जो अधिपति, असित और रक्षक है, उस (अग्नि) को नमस्कार हो। वह हमारा कल्याण करे।

इसी प्रकार से प्रत्येक मन्त्र मे असित-के समकक्ष पदो को दुहरा कर, अधिपति और रक्षिता का साथ 'अग्नि' के मुकाबले के पदो के साथ विशेषण-भाव से युक्त किया होता।

अधिपति-भावविशिष्ट पदार्थ और रक्षितृ-भावविशिष्ट पदार्थ दो पृथक् २ पदार्थ है, इस में इसी स्थल से दूसरा ज्ञापक भी मिलता है—

"यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधामि"।

अर्थात्, जो हमें नहीं भाता और जो हम से द्वेष करता है, उसे मै तुम (दोनो) के दबाव मे रखता हूं। यदि जो 'अधिपति' है, वही 'असित' और 'रक्षिता' होता, तो ऐसे कहा होताः—

० त ते जम्भे दधामि—
अर्थात्, ० उसे तेरे दबाव मे रखता हूं।

(ग) इस बारे मे अन्तिम पुष्टि मैत्रायणी संहिता से मिलती है। उद्धरण देने की विशेष आवश्यकता इस कारण से नहीं है कि पूर्वोद्धृत तैत्तिरीय प्रकरण और यह मैत्रायणी प्रकरण (२।१३।२१॥) एक ही है। कहीं २ थोड़ा सा शाब्दिक अन्तर है और वह भी बहुत सा मैत्रायणी संहिता के ठीक सम्पादित न हुए होने के कारण ही प्रतीत होता है उसे प्रदर्शित कर देना ही पर्याप्त होगा।

(१) दिशाओं का क्रम तैत्तिरीय क्रम से भिन्न और अथर्व० ३। २७॥ से मिलता है।

(२) दिशाओं के विशेषण तैत्तिरीयवत् है। दक्षिणा को 'ओजस्वनी' के स्थान पर 'ओजस्या' कहा है। उदीची को 'अवस्थावा' की जगह 'सुषदा' कहा है। तै० की 'इयं' 'वशिनी' को 'अवाची' अवस्था कहा है।

(३) अधिपतिवर्ग में अवाची दिशा के साथ विष्णु (=अ० ३ २७॥) का योग है। शेष तै० के समान है।

(४) रक्षितृवर्ग में दक्षिणा के साथ तिरश्चीनराजि (तु० अ० ३ । २७) और उदीची के साथ 'स्वदाकु' (?=पृदाकु) का योग है । 'श्वित्रः'(?=श्वित्रः) ।

(५) मध्यम वाक्यों में, 'यश्च' और 'अधिपति' के बीच में 'ते' और पढा है । 'गोप्ता' के स्थान पर यहां भी 'रक्षिता' ही रखा है ।'मृडयताम्' की जगह 'मृडताम्' पाठ है । 'नमः' की जगह 'नमो अस्तु' पढ़ा है ।

(६) अन्तिम भाग में 'वां' की जगह 'एनयोः' पाठ आता है ।

इस संक्षिप्त विश्लेषण से पता लग सकता है कि यहां भी अधिपतिवर्ग और रक्षितृवर्ग मे पार्थक्य तद्वस्थ है। 'ताभ्यां', 'तौ', 'मृडताम्' और 'एनयोः' सभी द्विवचन के रूप है । वे जैसे 'अग्नि' और 'असित' को अलग कर रहे हैं, वैसे ही शेषमन्त्रस्थ मुकाबिले के पदो को पृथक् २ पदार्थों का वाचक निर्धारित कर रहे है । अग्न्यादि छः पदार्थों का वर्ग एक ओर है और असितादि का दूसरी ओर । दोनों से कल्याण की आशा की गयी है ।

इस प्रकार तीनों सकक्ष स्थलो के उद्धरण तथा विमर्श से ऊपर मूल मे प्रस्तावित पक्ष स्थापित हो जाता है कि मीमांस्यमान सूक्त के नमस्कारवाक्यो के लक्ष्यभूत पदार्थ एक दूसरे से अलग २ है । अतः प्रथम मन्त्र में अग्नि अधिपति असित रक्षिता और आदित्य इषुओं से पृथक् सिद्ध होता है । इसी लिये प्रत्येक नमस्कार-वाक्य की बहुत्वापेक्षा मानसिक उपस्थिति के द्वारा मन्त्रों मे पढ़े हुए पदार्थों को जोड़ कर पूरी की जा सकती है अर्थात् 'अधिपतिभ्यो नमः' का अर्थ होगा 'अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु और बृहस्पति' को नमस्कार हो ।' इसी प्रकार दूसरे दोनों वर्गों में करना होगा ।

इतना विस्तार वाक्य-मीमांसा के नियमो द्वारा इस विषय के प्रतिपादनार्थ करना पड़ा है । शब्द-मीमांसा द्वारा तो अन्तोदात्त असित— पद पृथक् पदार्थ (कृष्णसर्प) वाचक सिद्ध ही है। (इस के विस्तृत प्रतिपादन के लिये मेरा लेख फरवरी, १९३२ के ओ० का० मै० के पृष्ठ १-१९ पर देखें ।)

७—'एभ्यो अस्तु ।' 'एभ्य' द्वारा पूर्वोक्त तीनों वर्गस्थ पदार्थों का पुनः संकेत कर दिया गया है । 'तेभ्यः' से दूरस्थ पदार्थों का संकेत किया गया था । मानसिक उपस्थिति से उन्हें नमस्कार द्वारा समीपस्थ सा कर दिया गया है । इसी सन्निधि को प्रकट करने के लिये 'तेभ्यः'='उन को', की जगह 'एभ्यः'='इन को', ने ले ली है । जिधर 'तेभ्यः' का संकेत है, ठीक उधर ही 'एभ्यः' का

इशारा है। इस में इस का अनुदात्त होना प्रमाण है ! जब किसी पदार्थ का निरूपण कर पुनः 'इदम्'='यह' इस के द्वारा संकेत किया जावे, तो व्याकरण के नियमानुसार (पा० २ । ४ । ३२ ॥) उस अवस्था मे, जिस की पारिभाषिक संज्ञा 'अन्वादेश' होती है, 'इदम्' के स्थान पर अनुदात्त अश् का आदेश होता है। यहां पर 'एभ्यः' उसी का चतुर्थी मे रूप है। सामान्यात्मक 'तेभ्यः' और 'एभ्य.' पर विचार करते हुए पूर्वोक्त मानसिक उपस्थिति की परिभाषा के द्वारा समस्त सूक्त में वर्णित तीनो वर्गों मे सन्निविष्ट पदार्थों का योग समझना चाहिये। अर्थात्, जहां 'अधिपतिभ्यो नमः' आदि आन्तरिक नमस्कार-वाक्यो का लक्ष्य छः २ पदार्थ होते है, वहां इन दोनों बाह्य वाक्यों के लक्ष्य वह सभी समुच्चित होकर अठारह हो जाते हैं।

८—'तं वो जम्भे दध्मः', यहां पर दो तीन बाते विचारने योग्य है। "तं" "उस को", का लक्ष्य कौन है, यह पहला प्रश्न है। यह अतिसाधारण साहित्यिक नियम की बात है कि "तत्"="वह" यः "उस", का प्रयोग "यत्"="जो" और "जिस" के प्रयोग के पीछे चलता है। जिधर "यत्" इशारा करता है, वहां पर ही "तत्"का क्षेत्र होता है। संस्कृत भाषा मे यच्छिरस्क वाक्य को उद्देश्य तथा तच्छिरस्क वाक्य को विधेय कहते हैं। दोनों में परस्पर समानाधिकरणवृत्ति-सम्बन्ध होता है। जैसे, "जो चोरी करता है, वह दण्ड पाता है। अथवा, जिसे दण्ड मिला है, उस ने अवश्य कुछ बुरा काम किया होगा।" हरएक भाषा मे यही प्रचलित प्रयोग है। इसी प्रकार यहां यह अन्तिम वाक्य अपने से पूर्व के दो वाक्यो मे उठायी आकांक्षा को पूरा करता है:—(क) "योऽस्मान् द्वेष्टि"=जो हम से द्वेष करता है (ख) "यं वयं द्विष्मः"=जिस से हम द्वेष करते है। (ग) 'तं वो जम्भे दध्मः'=उसे तुम सब के दबाव मे रखते है।

(क) और (ख) द्वारा द्वेष करने वाले या द्वेष के पात्र व्यक्ति को उद्दिष्ट अर्थात् उपस्थित कर दिया गया है। जो भी कोई ऐसा हो, उस के सम्बन्ध में अपना भाव (ग) द्वारा कहा गया है। वह दण्ड के योग्य है, अतः इस विधेय-वाक्य में उचित दण्ड या दमन का ही विधान कहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'यं' द्वारा उसी का वर्णन समझना चाहिये जिस का निरूपण 'यः' और य,' ने पहिले कर रखा है। अतः वाक्य-मीमांसा की कसौटी पर "जो हम से

द्वेष करता है" और "जिस से हम द्वेष करते हैं," "उस (द्वेषभाव) को……",
ऐसी व्याख्या असमर्थ ठहरती है।

अब यह देखना चाहिये कि "वः"="तुम सब के" इस पद का वाच्य कौन हैं। क्या यहां पर यह कल्पना की जा सकती है कि यह बहुवचन आदरार्थ है? वस्तुतः एक जगदीश्वर की ओर ही संकेत करके, 'उसे तुम्हारे…" इत्यादि कहा गया है? हमें ऐसा स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है। कारण बड़ा सरल है। अभी 'एभ्यः' के सम्बन्ध मे अनुदात्त और अन्वादेश का वर्णन किया जा चुका है। "वः" भी अन्वादेश के विषय में "युष्मद्" के स्थान पर प्रयुक्त होता है। यहां पर यह "युष्माकं"="तुम सब के," इस अर्थ में आया है। अन्वादेश का भाव साथ मिलाने से यह आशय प्रकट होगा, 'आप या तुम, जिन का पहले प्रकरण चल रहा है, उन आप के या तुम्हारे… "इत्यादि"। प्रश्न घूम कर वहीं आ जाता है कि पहले किस का या किन का प्रकरण चल रहा है। यदि वह अग्न्यादि, आसितादि तथा आदित्यादि वर्गों द्वारा वाच्य अनेक पदार्थों का है, तो यहां भी "तुम्हारे" का उधर ही सम्बन्ध जुड़ेगा। और यदि उन सब के द्वारा वाच्य एक जगदीश्वर सिद्ध होता है, तो "तुम्हारे" मे "उसी" का सम्बन्ध समझना होगा। हम ऊपर देख आये हैं कि एकत्त्वपरक व्याख्या के मार्ग मे क्या २ अड़चन है।

९—यदि किसी प्रकार से यह मान लिया जावे कि अग्न्यादि अधिपति जगदीश्वर के ही नाम हैं और कि बुद्धि मे अच्छे प्रकारसे बिठाने के उद्देश से उनको अलग २ बनाकर वर्णन कर दिया है,तो इसका अर्थ यह हो जावेगा कि परमेश्वर के भिन्न २ स्वरूपो की स्वतन्त्र देवताओं की कोटि मे आराधना का उपदेश है। इस वाद का अनेकदेवतवाद से कोई तात्त्विक भेद नहीं होगा। शायद यह कहा जावे कि अनेक दैवतवाद मे प्रत्येक देवता का दूसरों से पार्थक्य जागृतरूप म मन में उपस्थित होता है, परन्तु यहां वह अभीष्ट नही है। यहां पर आराधक को यह विश्वास हो चुका है कि एक जगदीश्वर सब दिशाओ में समभाव से विद्यमान है। वह अग्न्यादि भिन्न २ देवताओं को नमस्कार नहीं करता प्रत्युत उन सब विभूतिमय स्वरूपों के आधारभूत, एक तत्त्व के आगे ही मस्तक झुकाता है। परन्तु जहां ऐसा वाद कथनमात्र और अप्रामाणिक होगा, वहां इसके उपस्थित होते ही वही अड़चनें वेग के साथ पुनः उपस्थित हो जावेंगी। जो एक प्रभु का

भाव समझ चुका है, उसे 'अधिपतिभ्यः' यह बहुत्वपरक प्रयोग करते नहीं बनता। वह तो जानता है कि अधिपति वस्तुतः एक ही है। अतः इस सूक्त मे आराधक किस कोटि का है और उसकी पूजा की कौनसी भूमिका है, यह विवेचनीय है। यहां वाक्य—मीमांसा की दृष्टि से इतना दरशा दिया गया है कि अन्तिम वाक्य के "व." = "तुम्हारे" का तथा नमस्कार-वाक्यो का लक्ष्य समान होना चाहिये। वह चाहे एकत्वविशिष्ट हो अथवा बहुत्वविशिष्ट, हो, जैसे भी निर्णय हो, उसमें भेद न होना चाहिये।

१०—पर "वः" केवल अग्न्यादि छः नामों वाले एक अधिपति की ओर ही इशारा नहीं करता। दूसरे दोनो वर्ग भी मौजूद हैं। हम कह चुके है, 'तेभ्यः' और 'एभ्यः' का अठारह पदार्थों के साथ मानसिक योग मानना पड़ता है। अन्वादिष्ट 'व.' स्वभावतः न उनसे बाहर जा सकता है और न उनको संकुचित कर सकता है। "वः" एक ईश्वर की ओर तब तक नहीं लग सकता, जब तक शेष दोनों वर्गस्थ बारह पदार्थों का अर्थ भी तत्परक नहीं दरशाया जाता। यह ऊपर निरूपण हो चुका है कि 'असितादि' अग्न्यादि के विशेषण नहीं हो सकते, क्योंकि वाक्य—रचना की यही अपेक्षा है कि उन्हे विशेष्यात्मक मान कर रक्षिता-पद को उनके साथ विशेषणरूप से जोड़ा जावे। वे जगदीश्वर के नाम नहीं हैं। वे उसके विशेषण नहीं हैं। वे उससे पृथग्भूत पदार्थ हैं। उनको भी नमस्कार किया गया है और "वः" उनकी ओर भी उसी प्रकार सङ्केत करता है जिस प्रकार अग्न्यादि की ओर। ऐसे ही, छः बाणस्वरूप पदार्थ भी है। यदि किसी क्लिष्टकल्पना द्वारा असितादि छः के छः (क्योकि सबको लेना अनिवार्य है) ईश्वरपरक नाम मात्र या विशेषणमात्र बना भी लिये जावें, तो भी बहुसंख्यायुक्त बाणों का वर्ग मौजूद है। उन बाणों की तरह बर्ताव करने वाले पदार्थों को तो किसी प्रकार भी ईश्वर के नाम मानना कठिन है। विशेषतः, जब आदित्यो तथा पितरों का स्वयं बहुवचन मे पाठ किया गया हो। भले ही, अन्त में किसी उपचार से ईश्वरपरक तात्पर्य सिद्ध किया जा सके, परन्तु जहां तक वाक्य—मीमांसा की साक्षी है, नमस्कार का योग साक्षात् एक ईश्वर से नहीं है, बल्कि भिन्न २ अधिपतियो, रक्षिताओ और इषुओ से है। और इसलिये उक्त व्याख्यानुसार, "व." शब्द भी इन सब की ओर सङ्केत करता है। यहां पर पूर्वोद्धृत तैत्तिरीय तथा मैत्रायणी का 'वां' शब्द तथा 'एनयोः' का सङ्केत बड़ा सहायक

हो सकता है। वहां पर इषुवर्ग का अभाव होने से प्रत्येक मन्त्रस्थ 'अधिपति' तथा 'रक्षिता' को अलग २ मान कर द्विवचन प्रयुक्त हुआ है।

११—इस वाक्य-मीमांसा का सार इस प्रकार रखा जा सकता हैः—

(क) प्रत्येक मन्त्र मे निम्नलिखित वाक्य हैः—

वाक्य	भाग
(१)…दिक् (अस्ति)।	प्रथम भाग
(२) अधिपतिः(अस्ति)।	
(३) रक्षिता („)।	
(४) इषवः (सन्ति)।	
(५) तेभ्यो नमो (अस्तु)।	मध्यम भाग
(६) अधिपतिभ्यो,, („)।	
(७) रक्षितृभ्यो „ („)।	
(८) इषुभ्यो „ („)।	
(९) एभ्यो (नमः) अस्तु।	
(१०) योऽस्मान् द्वेष्टि।	उत्तम भाग
(११) यं वयं द्विष्मः।	
(१२) तं वो जम्भे दध्मः।	

(ख) प्रत्येक मन्त्र का प्रथम भाग आराधनीयोल्लेख करता है, मध्यमभाग मे आराधना पायी जाती है और उत्तम भाग मे उसके द्वारा अभीष्ट फल का निर्देश है।

(ग) मध्यमभाग प्रथम भाग को खोलने की कुञ्जी है। उसपर विचार करने से प्रतीत होता है कि यहां आराधनीय एक जगदीश्वर नही, बल्कि तीन वर्गों मे विभक्त अठारह पदार्थ हैं। सब नमस्कार—वाक्यो में प्रयुक्त बहुवचन की अन्य कोई व्याख्या नहीं जॅचती।

(घ) असितादि मध्यम वर्ग के पद अग्न्यादि के विशेषण नहीं प्रतीत होते। ये स्वतन्त्र विशेष्य हे और रक्षितृपद उनका विशेषण है।

(ङ) अन्तिम वाक्य का "तं" द्वेष करने या किये जाने वाले, शत्रुरूप व्यक्ति का वाचक है।

(च) "वः" पद मध्यम भाग के समस्त वर्गों का पुनर्वचन करता है। एक ईश्वर का वाचक होने में यह असमर्थ है।

१२—इस सूक्त का तात्पर्य क्या है ? इस पर अभी अपनी ओर से कुछ लिखना सावसर नहीं। हां, विमर्शोपयोगी सामग्री का सङ्केत कर देना भावी विचार मे अवश्य सौकर्य पैदा करेगा। इस लिये उसका कुछ संकेत कर दिया जाता है।

(क) कर्मकाण्ड की प्रक्रियानुसार इस सूक्त के तीन प्रयोग बताये गये हैं

(१) कौशिक सूत्र १४। २५ ॥ "शत्रु-पराजय" मे इसे और इससे प लें सूक्त को लगाता है।

(२) कौ० सू० ५०। १३ ॥ "सौभाग्य" मे विनियुक्त करता है।

(३) कौ० सू० ५०। १७ ॥ कई और स्थलो के साथ 'सर्पहरण' में इसका प्रयोग बताता है।

(ख) का० सं० २२। ५ ॥ 'इष्टकोपधान' प्रकरण में भिन्न २ इष्टकाओ को रखते हुए दिशाओ, देवताओ, छन्दो और अधिपतियो का कीर्त्तन पाया जाता है। इस कीर्त्तन का मांगलिक अभिप्राय है। सक्षिप्त चित्र यह हैः—

(क) प्राचीदिक्, अग्निर्देवता, गायत्रं छन्द ।

(ख) दक्षिणा दिक्, इन्द्रो देवता, त्रैष्टुभं छन्द ।

(ग) प्रतीची दिक् सविता देवता, जागतं छन्दः ।

(घ) उदीची दिक्, मित्रावरुणौ (देवता), आनुष्टुभं छन्दः ।

(ङ) ऊर्ध्वादिक्, बृहस्पतिर्देवता, पांक्तं छन्दः ।

(क) अग्निः, सूर्य, सोमः— अधिपतयः ।

(ख) पितरः यमः, इन्द्रः ,,

(ग) सविता, मरुतः, वरुणः ,,

(घ) मित्रोवरुणौ, मित्रः धाता ,,

(ङ) वसवः, रुद्राः, आदित्याः ,,

(३) सब का अन्तिम भाग यही आता है—"ते य द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि।"

(यहां के "एषां" पद की पूर्वोद्धृत "वः", "वां", तथा "एनयोः" से तुलना करनी चाहिये।)

(ग) तै० सं० ४ । ४ । ११ ॥ ऋतव्येष्टकाप्रकरण में अधिपति-वर्ग का मागलिक अभिप्राय से कीर्त्तन किया गया है। ऊपर (ख, २) में उद्धृत काठकीय अधिपति-वर्ग से बिलकुल मिलता है। अतः दुहराना अनावश्यक है अन्तिम भाग में वहां के 'एषाम्' की जगह 'व.' पढ़ने से ३ । २७ के समीप हो गया है।

(घ) यः १४ वें तथा १५ वें अध्यायों मे इसी प्रकार इष्टकोपधान प्रकरण में दिशाओ, छन्दो, देवताओ, अधिपतियों तथा अन्य अनेक मांगलिक गणों का कीर्त्तन पाया जाता है। का० सं० २० । ११ ॥ में यही प्रकरण है।

(ङ) इन के साथ ही तै० सं० ४ । ३ । ६ ॥, ४ । ३ । ७ ॥, ४ । ३ । १०॥, ४ । ४ । २॥, ४ । ४ । ३ ॥, ५ । ३ । २ ॥, ५ । ३ । ७ ॥ तथा पू० मी० १ । ४ ॥ मिलाकर पढने से जहां भिन्न २ सञ्ज्ञावाली इष्टकाओं का ब्योरा खुल जाता है, वहां सामान्य अधिपत्यादि गणों के पाठ का मांगलिक प्रयोजन भी पुष्ट हो जाता है। तै० सं० ५ । ३ । ७॥ का पाठ तथा उस पर कल्प का 'द्वेष्यं मनसाध्यायन्' यह वचन विषय के अभिचारात्मक स्वरूप का संकेत करता हुआ हमारे 'तम' शब्द के लक्ष्य को निर्धारित करने मे सहायक बनता है।

(च) मै० सं० १ । ५ । ४ ॥=का० सं० ७ । २ ॥ प्राच्यादि दिशाओं और कुछ भेद के साथ अग्न्यादि देवताओ का वर्णन है । प्रकरण अग्न्युपस्थानमन्त्रों का है। "अहं तं निमृणामि योऽस्मान्" इत्यादि वचन पूर्वोक्त "तम्" के अर्थ-निर्णायक बन सकते हैं।

(छ) मै सं० १ । ५ । ११= का० सं० ७ । ९ ॥ पूर्वोक्त के साथ अभिसम्बन्ध है। उसे समझने में सहायता करता है। विशेषतः निम्नलिखित उद्धरण ध्यान में रखने योग्य है।

" अव तु गृह्णाति योऽस्य पश्चाद् भ्रातृव्यः ..य एनेत सहङ्...य...एनं पूर्वोऽतिक्रन्तो भ्रातृव्य .....प्रचीदिगग्निर्देवते त्येता एव स देवता ऋत्वा पराभवति य एनमेताभ्यो दिग्भ्योऽभिदासति...

(ज)का० ३९।७=मै० २ । ७ । २० ॥ अग्निचिति में अपानभृत्-इष्टका प्रकरण है। प्राच्यादि दिशाओं, ऋतुओं, छन्दों, स्तोमो का मांगलिक आशंसन मात्र है।

(झ) मै० सं० २ । ८ । ३ ॥=का० १७ । ३ ॥ स्वयमातृण्णा संज्ञक इष्टका-प्रकरण में उसी प्रकार का वर्णन है।

(ञ) तै० सं० ४ । ४ । २॥ = मै० सं० २ । ८ । ९ = का० सं० १७ । ८ ॥ नाकसद्नामक इष्टका के योग में दिशाओं, देवताओं और प्रतिहर्त्ताओं (=इषुओं) का संकेत है

(ट) शत० ८ । ६ । १ । १८ ॥=य० १५ । १७ ॥ नाकसद्—पञ्चचोड-प्रकरण में सर्पादि तथा नमस्कारादि के विषय मे गमक है।

(ठ) आप० श्रौत० सू० ६ । १८ । ३ ॥ मे दिगुपस्थान का, ० १७ । ३ । ६॥ में पञ्चचोड़ाप्रकरण का, ० १७ । २० । १४-१५ ॥ में सर्पाहुति के विशेष संकेत सहायक हो सकते है।

(ड) य० १० । १० तैः, शत० ५ । ४।१ । ३ ॥ तै० सं० १ । ८ । १३, १४ ॥ का० सं० १५ । ७ ॥ तथा का० श्रौ० ५ । १५ । २३ ॥ दिग्देवना-व्यवस्था तथा देवता की परिभाषा के समझने में सहायक हो सकते है।

(ढ) दिग्देवता के विषय मे अ० ६ । ९८ । ३ ॥, तै० २ । ४ । १४ । १ ॥, मै० ४ । १२ । २ ॥ का० ८ । १७ ॥ ऐ० ब्रा० ८ । १९ । १ ॥ तथा ऋक् वि० ४ । २२ । २ ॥ और अधिक सामग्री देते है।

(ण) का० ४१ । १—६ ॥ दिग्नमस्कार के योग में है ॥ इसी प्रकार स्वा-हावचनार्थ, य० २२ । २४ ॥, तै० ७ । १।१५ । १ ॥, मै० ३ । १२ । ७, ८ ॥ तथा का० ४१ । ६ प्रमाण हैं।

(त) मै० २ । ८ । १४ ॥ तथा का० ३९ । ३, ४ ॥ अधिपत्यादि के विषय में मिलता हुआ प्रकरण है।

(थ) इसी प्रकार य० १६ । ६४—६६ ॥ १७ । १ ॥, शत० ९ । १ । १। ३५—३९ ॥ अ० १४ । २ । ४६ ॥ तथा अ० ५ । २४ ॥ भीद्रष्टव्य है ॥

(१३) इन प्रकरणों का विशेष परिशीलन करने से अवश्य अ० ३।२७॥ की तात्पर्य—मीमांसा पर प्रकाश पड़ेगा। हमारा साधारण प्रयत्न हमें इस परि-णाम पर लाता है कि वाक्य-मीमासा के नियमो के अनुसार यह सूक्त एक, जगदीश्वरपरक नहीं। हा एक प्रकार से प्रभु के सब पदार्थों का आदि मूल होने से अन्य समस्त वैज्ञानिक तथा भौतिक संकेतों के समान यह सूक्त भी उसी की महिमा का व्यापक हो सकता है। परन्तु साक्षाद् वर्णन को स्वीकार करने मे प्रमाण की न्यूनता है। हमारी अपनी धारणा पूर्वोद्धृत प्रमाण-संग्रह के साथ सामान्यतः, तथा विशेषतः कौशिक सूत्र के अनुसार है। यह कहां तक युक्त है, इस में सदसद्विवेककुशल, सरलचेताः, विद्वन्मण्डली ही प्रमाण हो सकती है।

एवमीशप्रसादेन सत्यमात्रानुरोधतः।
सिद्ध एष प्रयत्नः स्यात् प्रीतये शेमुषीजुषाम् ॥ १ ॥

आक्सफोर्ड में ओरयणटलकालिज का चिंतन

श्री गौरी शङ्कर एम० ए०, स्टन्ले रोड़, आक्सफोर्ड

आक्सफोर्ड युनीवार्सिटी पर यदि पुस्तक सचय देखना हो तो बाडलिअन पुस्तकालय के सूचीपत्र पर्याप्त सहायता दे सकते हैं। कार्डिनल न्यूमैन (Cardinal Newman) ने यूनीवर्सिटी का वास्तविक रूप अपनी पुस्तकों में भली भांति निर्दिष्ट किया है। युनीवर्सिटी एक ऐसी संस्था को कहा जा सकता है जिस में मनुष्य के पूर्व ज्ञान के अनुसन्धान द्वारा नवीन ज्ञान का संयोजन किया जाता है और जिस में ज्ञान की धारा अनविच्छिन्न प्रवाह मे अखिल मनुष्य जाति के लिये बहती हो। ज्ञान से तात्पर्य परा और अपरा विद्या दोनो से है। भारतवर्ष की आध्यात्मिकता (Spiritualism) जगत्‌ख्यात है और हमें इस बात का अभिमान भी है पर हम ने शरीर को उतना ध्यान न दिया जितना कि आध्यात्मिक दरजे पर पहुंचने के लिये आवश्यक था। हमारी युनीवर्सिटी ने यदि कुछ किया है तो केवल मस्तिष्क के लिये कुछ (अपर्याप्त ?) भोजन सामग्री समुपस्थित की है शरीर और आत्मा की तो अभी बारी ही नहीं आई। बुद्धि को तेज कर लो। कुछ एक किताबें रटो। परीक्षक को सन्तुष्ट कर दो कि किताबें रट ली है। उपाधिधारी हुए। नौकरी ढूंढी और आयु बितादी। कभी तो नौकरी ढूंढने मे ही आयु व्यतीत हो जाती है। स्थिरता तो होने नहीं पाती। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे शास्त्री उपाधिधारी केवल स्कूलों में सस्कृत पढ़ाने के अतिरिक्त और किस जीवन शृंखला मे नियुक्त होते है। यह प्रश्न सुलझाना अत्यावश्यक है यदि हम ने संस्कृत साहित्य को जीवित रखना है या उस से अपने जीवन मे कुछ प्रातिभिक सहायता लेनी है। यह एक प्राकृतिक नियम है कि जो वस्तु जीवन मे सहायक होती है वह जीवित रहती है नहीं तो नष्ट हो जाती है। ग्रीक और लैटिन अभी तक पाश्चात्य सभ्यता का अङ्ग बनी हुई हैं। इस का क्या कारण है ? इस का कारण यही है कि पाश्चात्य सभ्यता का उद्गम ही ग्रीक और लैटिन साहित्य है। पञ्जाब मे कई सभ्यताओं का मेल है और चाहिये तो यह था कि इङ्गलैंड के सदृश पञ्जाब भी अपनी सभ्यता के झण्डे को देश देशांतरो मे फहराता पर कई एक कारण वश यह असम्भव ही प्रतीत होता

है। पञ्जाब में आर्य, ग्रीक, सीदिअन, मुसलिम, और इंग्लिश सभ्यता का मिलाप हुआ और उस का संमिश्रण हमें भेद रूप मे ही मिलता है न कि समष्टि मे।

संस्कृत साहित्य का हमारे जीवन से सम्बन्ध उपस्थित करने के लिये यह आवश्यक है कि हम अपनी पाठ्य पुस्तक क्रम (Syllabus) इस रीति से बनाएं कि हमारे विद्यार्थी लोग अनुभव करें कि संस्कृत साहित्य से भी जीवन मे उपयुक्त की जाने वाली सामग्री मिलती है। जिन्हों ने सस्कृत स्कूल मे पढ़ी होती है और टूटा फूटा उच्चारण करके श्लोक की दिल्लगी करते है और हंसी उड़ाते हैं हमे बड़ा आघात पहुंचता है। जिस साहित्य के लिये उस के पाठकों में मान नहीं वह साहित्य संसार में ठहर नहीं सकता। किसी साहित्य को जीवन का अङ्ग बनने के लिये आवश्यक है कि वह साहित्य जीवन के प्रत्येक भाग में उपदेष्टा, नियन्ता और रोचक का भाग ले। मनुष्य की प्राकृतिक वृत्तियों (Instincts) का पोषक हो। नाममात्र के लिये कुछ श्लोक रटा दिये कुछ शब्दों के उच्चारण याद करा दिये परीक्षा में अङ्क अधिक आ गए,इससे संस्कृत सभ्यता (Sanskrit culture) नही आसकती। कितने खेद का विषय है कि संस्कृत पढ़े हुओं को संकुचित दृष्टिकोण का समझा जाता है पर आक्सफोर्ड मे बिना ग्रीक और लैटिन जाने विस्तृत दृष्टिकोण का हो ही नही सकता। इसका कारण यह है कि हमे संस्कृत सभ्यता सीखने में केवल भाषा सिखाई जाती है भाव सिखाने का समय ही नहीं आता। भाषा के झमेले मे पड़ कर भाव खो बैठते हैं इसी लिये जीवन मे सामञ्जस्य उपस्थित नही कर सकते। हमने देखा कि यदि संस्कृत अध्यापक स्कूल मे विशेष प्रतिभावान् न हो तो उस की गिनती हैडमास्टर छुट्टियां नियत करने मे या इन्स्पैक्टर के लिये नग (White elephant) पूरे करने में करते हैं। इसका कारण क्या है? इसकी जड़ मे पहुंचना चाहिये। कहते हैं कि वर्तमान भूतकाल का उत्तराधिकारी और भविष्यत् का पथ सूचक होता है यदि संस्कृत के मान को स्थिर रखना है तो हमे चाहिये संस्कृत और आधुनिक जीवन में सामञ्जस्य स्थापित करें। यह केवल तटस्थ रहने से नही हो सकेगा। जीवन संग्राम में आदेय प्रदेय का नियम बड़ा कारी होता है इस लिये संस्कृत पाठ्य विधि अपने उत्तम से उत्तम भाव नवीन शिक्षिण विधि मे दे और पाश्चात्य शिक्षिण से नये भाव ले तभी काम चलेगा नहीं तो संस्कृत की उपादेयता केवल 'संस्कार विधि' के लिये और भाषा

तारतम्य 'Comparative philology' के लिये रह जायगी। हमारे जीवन पर इसका प्रभाव कम होता जायगा और चाहे संस्कृत होते हुए भी हम प्राकृत दशा में रहेंगे। संस्कृत का संस्कार पञ्जाब युनीवर्सिटी के कितने विद्यार्थियों पर पड़ता है इसका ब्योरा सुगमता से निरूपित किया जा सकता है।

इङ्गलैंड मे युनीवर्सिटीमैन की बड़ी उच्च पद्वी है समाज में बड़ा आदर होता है। क्यों? उनके आचार व्यवहार पर विद्यापीठ की मुहर लगी रहती है जिसे कि University Tradition कहते हैं अर्थात् 'गुरुकुल मर्यादा'। यह मर्यादा पुस्तकों से प्राप्त नही होती। यदि ऐसा हो सके तो सब बी० ए० उपाधिधारि 'युनीवर्सिटी मैन' कहलायें। यह मर्यादा स्थापित होने के लिये शताब्दियें लगती है। और हमारे 'गोत्र' और 'शाखा' 'सूत्र' और 'प्रवर' इसी के सूचक हैं। जब मै आक्सफोर्ड युनीवर्सिटी मे प्रविष्ट हुआ तो Matriculation ceremony हुई। Matriculate का अर्थ आक्सफोर्ड डिक्शनरी मे admit (student) to privileges of a university अर्थात् विद्यार्थी को विद्यापीठ के उपयोग का अधिकारी बनाना। इसे हम उपनयन संस्कार कह सकते है। भारतवर्ष में हमारा उपनयन संस्कार हुआ था अब उस संस्कार की पुनः स्मृति हुई। अहा! वास्तविक अनुभव हुआ। मर्य्यादा पूर्वक चैल परिहित होकर अपने कुलगुरु(Censor) के साथ कुलपति (Chancellor) के सामने उपस्थित हुए। कुलपति महोदय अपने अधिकारोचित आडम्बरयुक्त वेषभूषा से समन्वित व्यास पीठारूढ थे। हम एक पॅक्ति मे जा खडे हुए और कुलपति महोदय ने उठकर लातीनी भाषा में कहा कि मै तुम्हें शिष्यवर्ग में प्रविष्ट करता हूँ। हमे एक नियमावलि दी और हम बिदा हुए। मेरा इतना लिखने का तात्पर्य है कि आक्सफोर्ड मे शिक्षण मर्य्यादा विद्यापीठ के ढङ्ग से चली आती है। लातीनी भाषा यहां की संस्कृत भाषा है। जो स्थान भारत में संस्कृत को दिया जा सकता है वही यहां तालीनी भाषा को है या यूँ कहे भारतीयप्राच्य भाषाएं (Sanskrit, Persian and Arabic) इतने ही महत्व की है जितनी कि Greek ग्रीक और लेटिन यहां हैं। पर हमें इनका सम्बन्ध जीवन से जोड़ना होगा। संस्कृत आगे ही (Dead Language) मृतभाषा कही जाती है यदि अभी संस्कृतज्ञ सचेत न हुए तो यह Prehistoric fossil बन जायगी

ठीक! हिन्दु धर्मोपयुक्त संस्कृत अवश्य है पर B. D. (धार्मिक उपाधि) और D D तो संस्कृतज्ञ हमें कम ही दीख पड़े हैं।'ब्राह्ममहाविद्यालय' इस ओर

प्रयत्न कर रहा है पर एकाङ्गी होने से जीवन से सामञ्जस्य नहीं होगा। यहा धार्मिकोपाधीप्सु भी सब के साथ इकट्ठा पढ़ते हैं पर (Divinity) धार्मिक शिक्षा उनका विशेष विषय है।

संस्कृत का सामञ्जस्य आधुनिक जीवन से किन उपायो से किया जा सकता है इसका उत्तरदायित्व भारतीय संस्कृतज्ञों पर है नहीं तो और दशकों मे संस्कृत का सम्बन्ध हमारे जीवन से कम होता जायगा और हम प्राकृत प्रवाह मे बह जावेंगे। हमारे विचार मे जो युक्तिये आई हैं वह अङ्कित करते हैं:—

शिक्षाव्यवस्था तीन बातों पर निर्भर होती है। शिष्य, शिक्षक, और शिक्षा विषय। शिक्षण विधि पर हम ज़ोर नहीं देते क्योकि वह स्वयं आ जाती है उसके लिये थोड़ी सी प्रातिभिकता और अहंभाव तथा विषयज्ञता अध्यापक में होनी चाहिये। केवल 'शिक्षा'विषय' पर कुछ एक विचार लिखे जाते है—

१ धर्मशास्त्र--हमारे धर्मशास्त्र पढ़ने वाले मनुस्मृति या याज्ञवल्क्यस्मृति पढ़ कर ही धर्मशास्त्र की इति श्री कर बैठते हैं जब कि इन से केवल श्रीगणेश ही समझना चाहिये। धर्मशास्त्र से केवल हम 'कानून' का तात्पर्य समझते है। पर धर्म मे आजकल 'Religion' का समावेश भी होना चाहिये।

अर्थात् जो विद्यार्थी यह विषय ले उनकी दो कक्षाएं हों एक तो 'स्मृति' (Law) और दूसरी 'धर्म' (Religion) और Religion (धर्म) की कक्षा मे वैदिक काल से लेकर बौद्धकाल से होते हुए जितनी सामयिक उन्नति या अवनति आधुनिककाल तक हुई है उसका सिंहावलोकन कराया जाय जिससे कि अतीतकाल का सम्बन्ध आधुनिककाल से किया जा सके। नही तो केवल याज्ञवल्क्य पढ़ने से कोई लाभ न होगा जब कि उसका सम्बन्ध ताजीरात हिन्द से न जोड़ा जायगा। हमारे शास्त्री लोग याज्ञवल्क्य और मनु के समय में ही विचरते रहते है उन्हें इस बात का पता नही कि Indian Penal Code भी मानवधर्मशास्त्र से परिणत होकर हमें शासित कर रही है।

२ साहित्य--यही यात साहित्य के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। 'वैदिक' और 'संस्कृत' साहित्य का परिचय तो 'ऋग्वेदभाष्य' और 'सूक्त' और कतिपय महाकाव्य पढ़ने से दिलाया जा सकता है।

पर किन दशाओ से संस्कृत साहित्य गुज़रता हुआ आधुनिक दशा में पहुंचा और इसका जीवन से क्या सम्बन्ध है या उत्पादन किया जा

सकता है इसका परिचय विद्यार्थी को देना आवश्यक है। वैदिककाल, उत्तर वैदिक, बौद्धकाल, और माध्यमिक युग तथा आधुनिक समय मे संस्कृत साहित्य की क्या दशा थी ? इन कालों के प्रधान प्रधान लेखक कौन? इस साहित्य का भारतीय भाव और सभ्यता से क्या सम्बन्ध है ? इन सब प्रश्नों की गवेषणा हमारे शास्त्री लोगों को करनी चाहिये। केवल भाषा के जान लेने से कोई साहित्यज्ञ नहीं हो सकता। भाषा और भाव दोनों साथ होने चाहियें। सभ्यता का रथ भाव और भाषा के चक्र पर चलता है। बौद्ध भाषा भारतवर्ष से लुप्तप्राय है। पर बौद्धभाव भारतीय सभ्यता का अङ्ग बने हुए हैं।

३ पाश्चात्य धुरन्धर संस्कृतज्ञों ने बड़े महत्त्व का कार्य किया है। जितनी छानबीन इन लोगो ने की है उसके लिये साहस, पुरुषार्थ, रसिकता हमारे संस्कृतज्ञो मे आनी चाहिये। जो गवेषणा के उत्तम उत्तम सिद्धान्त निकल चुके हैं वे सब हमारी पाठ्यविधि में सम्मिलित होने चाहियें। आधुनिक 'पण्डित' लोग कहते हैं पाश्चात्य विद्वान् 'बहिरंगपरीक्षा' जानते हैं 'अन्तरंग परीक्षा ही सब कुछ है। हम कहेंगे कि बिना बहिरंग परीक्षा के अन्तरग परीक्षा का पूर्ण लाभ हो ही नहीं सकता। जब तक किसी साहित्य में बहिरंग परीक्षा होती रहती है उस साहित्य में नवीनता, रसिकता, उपादेयता आती रहती है। बहिरग परीक्षा समाप्त हुई कि साहित्य का स्रोत बंद हो जाता है इस परीक्षा को अंग्रेजी में समालोचना कहते है। 'निरुक्त' और 'पातञ्जलि' भाष्य में हमे इस समालोचना का भाव मिलता है। भाषा कितनी मधुर और सरल है। 'दर्शन' 'सूत्र' 'उपनिषद्' कितनी सरल भाषा में हैं। क्यो ? साहित्य उन्नति के प्रभाव में था। समालोचना का कुल्हाड़ा बड़े जोरों पर था। भाव का मान था। भाषा पर खींचतानी नहीं होती थी। भाषा जीवित थी। अभी मृत्यु के चिन्ह प्रकट नहीं हुए थे। आर्य लोगो की सभ्यता जैसी सरल थी वैसे ही भाषा। समझ नहीं आती कि वागाडम्बर की धुन कहां से हमारे पूर्वजों पर सवार हो गई। वह भी एक रंग था जिससे संस्कृत भाषा खूब रंगी गई। इन्द्र मूल विडौजा टीका 'पिष्टपेषण' 'टीका पर टीका' और'अवच्छेदिकाविच्छिन्न'भी खूब हुआ। भाव को तिलाञ्जलि देदी। लगे बाल की खाल उतारने लगे। साहित्य उत्पादक(creative) न रहा। मध्यकाल के संस्कृत साहित्य में हमे यह बात खूब दिखाई देती है। पाठक यह न समझें कि हम किसी चिढ़ से लिख रहे हैं नहीं ? जिस साहित्य

का सम्बन्ध जीवन से नहीं रहता वह मृत हो जाता है । हमें आश्चर्य होता है कि लोग मृतभाषा उसे कहते हैं जो बोली न जाये । हम कहेगे जिस भाषा का सम्बन्ध जीवन से रहे चाहे वह कहीं भी बोली न जाये मृत नहीं कही जा सकती । चीन के लोग पाली नही बोलते पर पाली भाषा मे अंकित सभ्यता का प्रभाव उनके आचरण पर है । इस लिये संस्कृत सभ्यता का मेल यदि जीवन से कराना है और इसे जीवित रखना है तो हमे जीवन और साहित्य सामञ्जस्य (coordination) स्थापित करना होगा ।

इतिहास ही भारत में एक विषय रहा है जिसको दर्शन रूप में नही लाया गया । यह वह दिव्यदृष्टि है जिसके न होने से अहम्मन्यता आ नही सकती। लोग कहेंगे कि इस से क्या प्रयोजन । शरीर क्षण भगुंर है जगत् नाशवान् है । परब्रह्म में लीन होना है । ब्रह्म मे लीन होने के लिये भी तो साहस की आवश्य- यता है । वह साहस बिना शारीरक बल के आ नही सकता । जब तक अहंभाव न होगा हमे अपनी सत्ता का अनुभव न होगा और सत्ता के ज्ञान के लिये अपने इतिहास का जानना आवश्यक है । इस त्रुटि को अभी तक हम पूरा हुआ नही देखते । यह ऐतिहासिक दृष्टि हम शास्त्री लोगो में कम देखते है ।

क्या हमारा संस्कृत साहित्य इस प्रकार से शृंखलाबद्ध नही किया जा सकता जिससे पढ़ने वाला भारत के इतिहास से भी परिचय प्राप्त कर सके ? बिना इतिहास के जाने समालोचना नहीं हो सकती और बिना समालोचना के उन्नति नहीं हो सकती ।

भाषा भी ऐतिहासिक दृष्टि से सिखाई जानी चाहिये अर्थात् वैदिक संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं मे क्या सम्बन्ध है और किन किन विपर्ययों में भाषा गुजरी है ।

व्याकरण—व्याकरण लोग इसलिये पढ़ते हैं कि किसी साहित्य में प्रवेश हो सके। पर संस्कृत व्याकरण केवल व्याकरणके लिये पढ़ा जाता है । यह बीमारी युरोप में भी थी। अभीतक इङ्गलैंड मे Grammar Schools हैं । मध्ययुग में पाठ- शाला में लातीनी व्याकरण बड़े जोर से पढ़ाया जाता था।'व्याकरण'से साहित्य नहीं आता उसके लिये 'समाकरण'की आवश्यकता है । Analysis और Synthesis दोनों साथ साथ चलने चाहियें । व्याकरण की उपादेयता वहां समाप्त हो जाती

है जब कि हम किसी साहित्य में दीक्षा प्राप्त कर लेते हैं। व्याकरण पर ही जीवन समाप्त कर देना कोई श्रेयस्कर नहीं। अब जीवन की गति तीव्र हो रही है। यहां तो ऐसा हो दिखाई देता है। भारत मे भी आर्थिक आन्दोलन (Economic Struggle) से इसकी गति अवश्य तीव्र होगी इस लिये 'साहित्य' और 'जीवन' का संग्राम भी जोरों पर होगा।

हमारा यह अरण्यरोदन (?) इस लिये है कि यदि हमने 'संस्कृत साहित्य' और संस्कृत सभ्यता' का आदर आधुनिक जीवन में स्थापित करना है तो आधुनिक जीवन और संस्कृत साहित्य से मेल करना चाहिये जैसा कि classic studies का (प्राच्य विज्ञान शिक्षा) युरोपीय जीवन से है नहीं तो संस्कृत ने जो सन्देश भारत युवकों को देना है उस के देने में सफल न हो सकेगी। अभी से हमे सचेत होना चाहिये अर्थात्

(१) भाषा को उपयुक्त प्रधानता देते हुए भाव पर भी दृष्टि डालनी चाहिये। कालिदास, भवभूति, दण्डी, बाण, हर्ष, भट्टी आदि की जीवन की ओर क्या दृष्टि थी? वे केवल भाषा ही में पण्डित न थे? यदि कविता जीवन की समालोचना है तो यह नियम सदा ही लागू होगा।

(२) सारे पाठ्य विषयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का समावेश होना चाहिये जिस से समालोचना का भाव जागे। इस के बिना 'उत्पादकता' (Originality) नहीं आ सकती।

(३) विषयो का पारस्परिक सामञ्जस्य और जीवन से सम्बन्ध ही किसी पाठ्य विषय को उपादेय बनाने मे सहायक हो सकते हैं।

विशेषज्ञो के लिगे तो भूमण्डल का साहित्य खुला है जिधर चाहे विचरण करे। यदि हमने अपने नवयुवकों को जो कि ओरयण्टल कालिज में पढ़ते है जीवन संग्राम में न केवल स्कूल में संस्कृत अध्यापक ही बनाना है तो संस्कृतज्ञों पर यह उत्तरदायित्व है कि वे उनके पाठ्य विषय में परिवर्तन करें जिससे वे आधुनिक जीवन संग्राम मे खरे उतर सकें।

अथ चरणव्यूहपरिशिष्टम्

प्राचीनहस्तलिखितपुस्तकानि पर्यालोच्य
वसिष्ठ एम० ए० इत्येतेन सम्पादितम्

प्रथमा शाखा

संशोधनाधारभूता आदर्शग्रन्थास्त्वेते—

१. पूनास्थश्री भाण्डारकारानुसन्धानपुस्तकालीया हस्तलिखितग्रन्थाः—B1, B 2, B 3, B 4
२. लवपुरस्थलालचन्दपुस्तकालीया हस्तलिखितग्रन्थाः—L 1, L 2, L 3, L4, L 5, L 6.
३. लवपुरस्थपञ्जाबविश्वविद्यालीया हस्तलिखितग्रन्थाः—P1, P2, P3, P4
४. तञ्जोरस्थराजकीयपुस्तकालीया हस्तलिखितग्रन्थाः—T 1, T 2, T3, T4, T 5, T 6, T 7, T 8, T 9, T 10.
५. वेबरसम्पादितं मुद्रितपुस्तकम्
६. काश्यां मुद्रितानि त्रीणि पुस्तकानि

प्रथमोऽध्यायः।

श्रीगणेशाय नमः[1]। ओ३म्[2]।

अथातश्चरणव्यूहं व्याख्यास्यामः[3]।

---

1. श्रीगणेशाय नमः is omitted by B7, L4, T6. ओ३म् नमः चतुर्वेदाय B1. श्रीगणपतये नमः T6. 'चतुर्वेदाय' is added by T 9. 'श्रीराम जय। श्रीजानिश्शरणं नमा हरि ऊ३म्' is added by T 10.

2 'ओ३म्' is omitted by B2, B3, B 7, L 1, L 2, L 3, L 5, T 1—5, T 7—10

3 ओ३म् नमः चतुर्वेदाय ओ३म् B1. अथ चरणव्यूह प्रारम्भः। हरि ओ३म् L 2.

तत्र यदुक्तं[1] चातुर्वैद्यं[2] चत्वारो[3] वेदा विज्ञाता[4] भवन्ति ॥
ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो[5]ऽथर्ववेद[6]श्चे[7]ति[8] ।
ऋग्वेदस्याष्टौ[9] स्थानानि[10] भवन्ति ।
चर्चा[11] श्रावकश्चर्चकः[12] श्रवणीयपारः[13] क्रमपार[14] क्रमपदः[15] क्रमजटः[16] क्रमदण्ड-

---

१. निरुक्तम् B 2, L 5, P 1, T 9. नियुक्तम् P 4. तदुक्तम् T 10. २. चातुर्विद्य B 2, B 6, B 7, L ५, P 1, P 2, T 10, W. ३ चतुरो B2, L 5, P 1, P 2, T 10 ४ व्याख्याता B1, B 3. विज्ञातानि B 2, L 5, P 1, T 9 अधीता L4 ज्ञाता P 3. ५ 'हि' is added by B3, L 1, L 2, L 4. ६. अथर्वण: T1, T3–5, T 8, T10. ७ 'वेद' is omitted by T 1, T3 ८ अग्निमीळे पुरोहितमिषे त्वोर्जे त्वाग्न आयाहि वीतये शन्नो देवीरभिष्टय इति added by T7. 'तत्र' added by B 6. ९. अष्ट B1, B2, L1, L3, T9 नव T10. १०. भेदा B 1, B 3, B 5, L 1,—3, P 3, T1—6, T 10 Mahidāsa gives अष्टभेदा and takes स्थानानि as a synonym of भेदाः "अत्राष्टभेदेन, स्थानेन वा विकृतिर्ग्राह्या । ११. चर्चा B 6, B 7, L 5 १२ Omitted by T 8, चर्चकः B 6, B 7, L 5 १३. श्रवणीपारः B 2, L 4, T9 १४ क्रमं is retained throughout the Sūtra
१५ क्रमषठः L1, T 15. क्रमपाठः L 2. क्रमशठः T 4, T 7, T 8, T10, P2, W.

The readings of the Mss in the 5th footnote are क्रमषठः, क्रमपाठः and क्रमशठः 1 According to these readings क्रमपदः in the original text should be replaced either by क्रमषठः, or क्रमपाठः, or क्रमशठः A. Weber has adopted क्रमशठः for क्रमपदः, but Weber is not justified in doing so, as Mahidāsa rightly remarks [क्रमपारः, क्रमपदः] इति द्वे प्रकृतिपारायणे Therefore to adopt any other reading for क्रमपदः is not justified १६. क्रमरथः T 1, T 2, T 3, T 4, T 5. According to readings of the Mss T1—5 (which have क्रमरथः in their text) there should be क्रमरथः for क्रमजटः. in the original text. But the reading adopted above is supported by Mahidāsa's commentary: [क्रमजटः, क्रमदण्ड] द्वे विकृतिरूपे. Two Vikṛtis out of eight are

श्चेति चतुःपारायणम् ।

एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति ।

शाकला बाष्कला आश्वलायना: शाङ्खायना माण्डूकायनाश्चेति ।

तेषामध्ययनम्—

अध्यायाश्चतुःषष्टिर्मण्डलानि दशैव तु ।

एकर्च एकवर्गस्यांदेकश्च नवकस्तथा ।

द्वौ वर्गौ तु द्व्यृचौ ज्ञेयौ त्र्यूनं तृचशतं स्मृतम् ॥

---

thus mentioned by Mahīdāsa: आसां (अष्टविकृतीनां) मध्ये जटादण्डयो: प्राधान्यम् । तत् कथम्—जटानुसारिणी शाखा । दण्डानुसारिणी माला, लेखा, ध्वजो, रथश्च । घनस्तूभयानुसारित्वात् । In view of this क्रमरथः in certain Mss cannot be the original reading.

१. पारणम्, B 1, B 2, L 1—6. P 1. P 2, T 1, T 2, T 4, T 8, T 10. पारयणम् T 3. २ तेषाम् B 2.

३. विधा is omitted by B 1, B 3, B 5, L 1, L 3, L 4, T 6, T 7, T 8, T 10. ४. आश्वलायनी B 1, B 3, B 5, L 1-5, T 1-8, T 10. ५ साख्यायनी B 1, B 3, L 1—5 T 1—8, T 10 शाङ्खायनी B 5.

६. माण्डूकाः B 1, B 3, P 1, T 6, माण्डव्यामाण्डूकेयाः L 3, T 7, T 8, T 10 माण्डुकेयाः T 1, T 2, T 3, T 4, T 5. माण्डुकायनाः T 9.

७. The second recension has a different order आश्वलायनी,साख्यायनी शाकला,बाष्कला (माण्डव्या) माण्डूकेयाश्चेति । Mahīdāsa also follows here the second rec, for he says, तेषामाश्वलायनीयादिशाखाना समानाध्यानं सूचयति । ८. तेषामध्ययनम् is omitted by B 7 ९. एकयर्चे B 2, P 1, T, 9. एकश्च B 6, B 7.

१०. श्च B 6, B 7, L 5, L 6, P 1, P 2, W

११ द्वृचौ B 7, P 3 द्वौ ऋचौ P 2, W.

१२. न्यूनम् B 6, B 7.

१३ त्रीणि B 2, L 5, P 1, T 9.

१४. शतस्मृतौ P 1, T 9 तचास्त्रिनवतिः स्मृताः P 2.

१५ P 2 and w add the following verses.

चतुर्ऋचं समाख्यातं शत (P 2, पट्) सप्त्युत्तरे शतम् । पञ्चर्चं द्वादश शतानि अष्टाविंशोत्तराणि (P 2 त्तर) च ॥ शतत्रयषड्ऋचं च सप्तपञ्चाशदुत्तरम् । सप्तर्चं एकान्मत्रिंशदुत्तर

वर्गाणां परिसङ्ख्यातं[1] द्वे सहस्रे षडुत्तरे[2] ।[3]
ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्चैतत्[4]पारायणमुच्यते[5] ॥[6]

—०—

द्वितीयोऽध्यायः ।

यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदा भवन्ति ।
तत्र चरका[7] नाम द्वादश भेदा भवन्ति ।
चरका[8] आह्वरका[9]: कठाः प्राच्यकठाः कपिष्ठलकठाश्चारायणीया वाराय णीया[10] वार्त्तान्तवीया[11]: श्वेताश्वतरा[12] औपमन्यवः पाताण्डनीया[13] मैत्राय-णीयाश्चेति ।

तत्र मैत्रायणीया नाम षड्भेदा भवन्ति ।
मानवा वाराहा दुन्दुभाश्छागलेया[14] हारिद्रवीया[15]: श्यामायनीयाश्चेति ।

शतमेककम् ॥ The corresponding verses in Anuvākānukramaṇī are चतुष्कं शतमेकं च चत्वारः सततिस्तथा । पञ्चकाना सहस्र तु द्वे च सप्तोत्तरे शते॥41॥ त्रीणि शतानि षट्काना चत्वारिंशत्षड्वर्गाः । शतमूनं विंशतिः सप्तकाना न्यूनाषष्टिरष्टकानाम ॥ 42 ॥ १ ०सख्यांन B 2, W.
२. चतुरुत्तरे B 2, P 1, T 9 द्विसहस्रोनसप्ततिम P 2 W Anuvākānukramaṇī gives a different reading: वर्गाणा तु सहस्रे द्वे सख्याने च षडुत्तरे ।
३ ॥१॥ is added by L 6, P 2, T9.
४. ० स्य B 2, L 5, P 1, T 9
५ पारणं B 2, L 5, P 1, T 9, W.
६. इति शौनकीये चरणव्यूहपरिशिष्टे प्रथमा कण्डिका समाप्ता is added by B6, B7.
७. चर्काः B 1
ब्रह्महत्यातुश्चीर्णाच्चिरणा चरका स्मृताः । वैशम्पायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः ॥ Vāyu Purāṇa 1. 61 5 pp. 525.
८. चिचाः B 1, L 5, L6, P 1, P 2, T9, W. ९. आह्वर्काः L 6, W.
१० Omitted by B 1, L 5, L 6, P 1, P 2, P 3
११. वार्त्तन्तवीयाः B2, L 5, P 1. वार्तन्तवीया P 4.
१२ श्वेता अश्वतरा. L5, T9. श्वेताऽश्वतराः P1 १३. ०ऐण्डिनीया P4. १४. छगलेया B 6 १५ हिरिद्रवीया B2. हारिदवेयाः P4.

तेषामध्ययनम्—

द्वे सहस्रे शते न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके।
ऋग्गणः परिसख्यात[1]स्ततोऽन्यानि यजूंषि च[2]॥

अष्टौ शतानि सहस्राणि चाष्टाविंशतिरन्याान्यधिकश्च पादम्। एतत्प्रमाणं यजुषां हि केवलं सवालखिल्य सशुक्रियम्[3]। ब्राह्मणं च चतुर्गुणम्।

तत्र तैत्तिरीयका[4] नाम द्विभेदा भवन्ति।

औखेयाः खाण्डिकेयाश्चेति।

तत्र खाण्डिकेया नाम पञ्चभेदा भवन्ति।

कालेता शाट्यायनी हिरण्यकेशी[5] भारद्वाज्यापस्तम्बी चेति।

तेषामध्ययनम्—

अष्टादश यजु सहस्राण्यधीत्य शाखापारो भवति। तान्येव द्विगुणान्यधीत्य पदपारो भवति। तान्येव त्रिगुणान्यधीत्य क्रमपारो भवति। षडङ्गान्यधीत्य षडङ्गविद्भवति।

त्रिगुणं पठ्यते यत्र मन्त्रब्राह्मणयो सह।
यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषाः शाखान्तराः स्मृताः।

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षडङ्गानि।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽस्य पठ्यते।
ज्योतिषमयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥

---

१. All the Mss, ॰ तं.
cf. Ṛgyajuḥpariśiṣṭa. ऋग्गणः परिसंख्यातःशेषमन्यदृचो यजुः।

२. द्वे सहस्रे शते न्यूने वेदे वाजसनेयके।
ऋग्गणः परिसख्यातो ब्राह्मणन्तु चतुर्गुणम्॥६६॥
Vāyu, P. 1. 61 5

३. अष्टौ सहस्राणि शतानि च चाष्टौ,
अशीतिरन्यान्यधिकश्च पादः।
एतत्प्रमाण यजुषामृचाञ्च,
सशुक्रियं साखिलयाज्ञवल्क्यम्।
Vayu P. 1. 61. 5.

४. यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाददुः।
तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन् सुपेशलाः॥
651 Bhāgavata Purāṇa

५. हैरण्यकेशी B 6.

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव[1] ब्रह्मलोके महीयते ॥

तथा प्रतिपदमनुपदं छन्दो भाषा धर्मो[2] मीमांसा[3] न्यायस्तर्क इत्युपाङ्गानि । तत्र परिशिष्टानि भवन्ति ।

यूपलक्षणं छागलक्षणं प्रतिज्ञाऽनुवाकसङ्ख्या चरणव्यूहश्राद्धकल्पशुल्बानि[4] पार्षदमृग्यजूंषीष्टकापूरणं प्रवराध्यायोक्थशास्त्रक्रतुसङ्ख्यानिगमा यज्ञपार्श्वं[5] हौत्रकं[6] प्रसवोत्थानं कूर्मलक्षणमित्यष्टादश परिशिष्टानि भवन्ति ।

तत्र कठानां योगा येन विशेषः[7] ।
तत्र प्राच्योदीच्यनैर्ऋत्याः[8] ।
वाजसनेया नाम पञ्चदशभेदा भवन्ति ।

जाबाला[9] बौधायनाः[10] काण्वा माध्यन्दिनाः[11] शाकेयाः[12]स्तापनीयाः कपोलाः[13] पौण्डरवत्सा[14] आवटिकाः परमावटिकाः[15] पाराशराः वैणेया वैधेया[16] अद्धा बौधेयाश्चेति ।
तेषामध्ययनं सौक्तिकं[17] प्रवचनीयाश्चेति[18] ।

मन्त्रब्राह्मणकल्पानामङ्गानां यजुषामृचाम् ।
षण्णां यः प्रविभागज्ञः सोऽध्वर्युः कृत्स्नमुच्यते[19] ॥

---

१. अधीत्येव L6 २. धर्म्मो L5
३ मिमासा B1
४. शुल्बकानि B 2, B 6, B 7. शुल्बीकानि L5 शुल्विकनिष् P 1, T 9
५ पार्श्वे B 2, B 7, L5, L6, P 1, P 2, P 4, T 9
६ हौत्रिक L 6, P 3
७. त्रिशेषाः B 1, L5, L 6, P 2, P 3
८ निर्हृत्य B 1 निरूर्त्य L5, P 7, T 9
९. जावाला B 7
१० Omitted by B2. बौद्धायनाः B 6, B 7 बौधेयाः L 5.
११. ०दिनीयाः B 1. ०दिनेयाः B 6, B 7.
१२ शाफला B 1, शाकेया P 3
१३ कपोताः T 9 १४ वश्या T 9.
१५. Omitted by B 2
१६ Omitted by B 6, B 7.
१७ शौक्तिकं P 3
१८ ०ति० B 2, L 5, T 9
१९ ॥ २ ॥ १८ added by B 6, B 7. This shows that the second Kandika ended here

तृतीयोऽध्यायः ।

सामवेदस्य[1] किल सहस्र[2]भेदा[3] आसन्[4] । *

तेष्वनध्यायेष्वधीयानास्ते शतक्रतु[5]वज्रेणा[6]भिहता[7]:

शेषान् व्याख्यास्याम[8]: ।

तत्र राणायनीया नाम सप्तभेदा भवन्ति । राणायनीयाः शाट्यमुग्रा[9]: कापोला[10] महाकापोला[11] लाङ्गलायना[12]: शार्दूला[13]: कौथुमा[14]श्चेति[15] ।

तत्र कौथुमा नाम सप्त[16]भेदा भवन्ति[17] ।

आसुरायणा वातायनाः प्राञ्जलि[18]द्वैनभृता. कौथुमाः प्राचीनयोग्या नैगेया[19]श्चेति ।

---

१. सामवेदः B 2,P 2 सामवेदं P 1,T9

२. सहस्र B 1, L 5, P 2, T 9

३. भेदं L 6, P 1, W

४ आसीत् B 1, L 5, L 6,P 1, P 2, W भवन्ति B 6, B 7.

५ शतक्रतुना P 2, W.

६. Omitted by P 2, W

७ प्रलीनाः P 2 ८ व्याख्यामः B 6, B7.

९ सात्यमुग्राः P 2, W

१०. कालोपाः B 1, B 7, L 5, L 6, p 1, p 2, T 9, W

११. कालोपा B7,L5-6,P1,P2,T9,W.

१२. लाङ्गलायनाः B 2 लाङ्गलाः P 2, W.

१३. Omitted by W. In P 2. शार्दूला. follows कौथुमाः

१४ कौथुमाः B 2

१६ Mahidasa cites another recension with the words अथ प्रकारान्तरेणाह राणायनीयाः । सामत्यमुग्राः । कालेयाः । महाकालेयाः । लाङ्गलायनाः । शार्दूलाः । कौथुमाश्चेति । १५ षट् L 6, P 1.

१७ तत्र ··· भवन्ति is omitted by B 6, B7.

१८ omitted by B1, B6, B7, P2

१९ तत्र—नैगेयाश्चेति omitted by P2 W has got a different reading कौथुमाः । शार्दूलाः । सुरायणीया । प्राज्वलना. द्वैतभृताः । प्राचीनयोग्याः । नैगेयाश्चेति ।

---

* ससहस्रमधीत्याशु सुकर्माथ्यथ संहिताः ।
प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः ॥ २८ ॥ Vayu. P 1 61 5

अनध्यायेष्वधीयानांस्तान् जघान शतक्रतुः ।
प्रायापवेशमकरोत्ततोऽसौ शिष्यकारणात् ॥ २९ ॥ Vayu P 1. 61 5

सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ।
सहस्रसहिताभेदं चक्रे साम्ना ततो द्विजः ॥ ७६ ॥ Bhagavata P. VII

तेषामध्ययनम् ।

अशीतिशतमाग्नेयं[1] पावमानं चतुःशतम्[2] ।
ऐन्द्रन्तु षड्विंशतिर्यानि[4] गायन्ति सामगाः ॥
तान्यधीत्य चण्डात्[5]प्रचण्डतरो[6] भवति। शिष्टान्यधीत्य शिष्टाविंशतिको भवति[8]।
तत्र केश्चित्पुनः[9] ऋक्तन्त्रं[10] सामतन्त्रं सञ्ज्ञासुधातुलक्षणमिति[11] विधीयन्ते[12] ।
अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश[13] ।
अष्टौ शतानि नवति[14] दशति[15] वालखिल्यकम्[16] ॥ *
सरहस्यं[17] ससुपर्णं प्रेक्ष्यं[18] तत्रं[19] सामदर्पणम्[20] ।
सारण्यकानि सौर्याण्येतत्[21]सामगण स्मृतम्[22] ॥

---

१. पावनान T 9 २ Omitted by P3
३. Omitted by P 3.
४. अशीति. B 2,L 5,L6. निंशतिक P2.
५. तण्डात् L 5, P 1, P 2, T9,w
६. प्रपतरो L 5, P 1, P 2, T 9, w
Mahidāsa's explanation is: शिष्टानि व्यतिरिक्तानि अधीत्य पठित्वा शिष्टाविंशको भवति । शिष्टान् प्रामाणिकान् आविंशति शिष्टेषु वा शिष्ट-भागाः प्रवेशयोग्याः शिष्टा अष्टाविंशति गणानां पूरकाः सर्वश्रेष्ठो भवतीत्यर्थः ॥
८. Omitted by P 2, w.
९. किञ्चित्पुनरौच्छिधम् P2,w All other mss केचित्पुनः ।
१०. च added by P2. चैतत् added by w. ११. सज्ञाधातुलक्षणम् B. 6. संज्ञा-लक्षणम् । धातुलक्षणम् । Mah.
१२. अधीयते B 1.
१३ चतुर्दश B 1, B 6, B 7, L 5,P1, P 2. १४. नवतिं P 2
१५. दशतिं B 1, L 5, L 6, P 1, T 9, w Omitted by P 3.
१६. सवालखिल्याः B 6,B 7, L 6, P1
१७. Omitted by B 1, L 5, L 6, T9. रहस्यम् B 6.
१८. प्रेक्षः B 1, P 1,T 9. प्रेक्षितः L6. प्रेंखः P3. १९ तत w. २०. सामदर्पणे B 6, B 7. २१. सौह्यानि (सौहराणि) P 2. सौह्याणि w.हि is added by B7.
२२. इति शौनकोक्तपरिशिष्टे तृतीयखण्डः समाप्तः is added by B6, B7. ॥ 3 ॥ is also given by L 6, and P 2. These show that the third kandikā ended here.

---

* अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ।
आरण्यकञ्च सहोमञ्च एतद्गायन्ति सामगाः ॥ 63 ॥ Vāyu P. 1.61.5.

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथर्ववेदस्य[1] नव भेदा भवन्ति ।

पिप्पलाः शौनका दामोदात्तो[2]त्तायना[3] जाबालाः[4] कुनखी[5] ब्रह्मपलाशा देवदर्शी[6] चारणविद्याश्चेति ।

तेषामध्ययनम्[7]—

द्वादशैव सहस्राणि[8] ।

पञ्चकल्पानि भवन्ति[9] ।

कल्पेकल्पे पञ्च शतानि[10] भवन्ति ।

नक्षत्रकल्पो वितानकल्पः[11] सहिताविधिर[12]भिचारकल्पः[13] शान्तिकल्पश्चेति[14] ।

तत्र[15] वेदानामुपवेदा[16] भवन्ति ।

ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेद. सामवेदस्य

---

१. In B 6, B 7. अथ चरणव्यूहपरिशिष्ट-सूत्रस्य चतुर्थखण्डः प्रारभ्यते precedes the text. २. तौ० B 2. तो० P 3.

३ According to Mahidasa, these names are दामोदाना औतायना

४. वा० B6, B 7 ल० P 2 य० W.

५. कनुखी W. ६ देवर्षे W. ७. Omitted by B 6, B 7. ८ P 2, and W read द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्मस्वं साभिचारिकम् । एतेद्वदरहस्यं स्यादथर्ववेदस्य विस्तर ॥

९. तेषा पञ्च कल्पा भवन्ति P 2, W.

१०. Thus B 2, B 7, L 5, L 6, P 1, P 2, T 9, W Other Mss. पञ्चपरिशिष्ठानि Cf. Mah. एतस्मिन कल्पे कल्पे पञ्चशतानि मन्त्राणाम् ।

११. Except P 2, W. all the mss read विधानकल्पः, I have adopted the reading supported by AV. car. १२ ०विधे L 5, T 9. ०कल्प P 2, W

१३. विधानकल्पः P 2, W. Cf. AV. car. अङ्गिरस कल्पः ।

१४. नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः सहिता विधि । चतुर्थोऽङ्गिरसःकल्पो शान्तिकल्पश्च पञ्चमः॥54॥ Vāyu.P.1.61.5.

१५. सर्वेषामेव is added by P2, W.

१६. चत्वारो is added by B6, B 7.

गान्धर्ववेदोऽथर्ववेदस्यार्थशास्त्रं[1] चेत्याह[2] भगवान् व्यासः स्कन्दो[3] वा[4]।[5]

य इमे वेदाश्चत्वारस्तेषामेकैकस्य[6][7] कीदृशं रूपं[8] वर्णविधोच्यते[9][10]।

ऋग्वेद[11]: पद्मपत्राक्षः[12] सुविभक्तग्रीवः कुञ्चितकेशश्मश्रुः[13] श्वेतवर्णो[14] वर्णेन तु[15]। कीर्तितं[16] प्रमाण तावच्चितिष्ठन्वितस्ती[17]: पञ्च[18][19]।

यजुर्वेद[20]: पिङ्गाक्षः कृशमध्य[21]: स्थूलगलेकपोलस्ताम्रवर्ण[22]: कृष्णवर्णो वा[23][24] प्रादेशमात्रः[25] षड्दीर्घत्वेन।

सामवेदो[25] नित्यं[26] स्रग्वी[27] सुप्रयतः[28] शुचिः[29] शुचिवासः[30] शमी[31] दान्तो बृहच्छरीरः[32]

---

१. शिल्प शास्त्र P 2, w. cf Mah: अथर्ववेदस्योपवेदो ऽर्थशास्त्रं नीतिशास्त्रम् । शस्त्रशास्त्रं विश्वकर्मादिप्रणीतशिल्पशास्त्रम् ॥

२. Omitted by W. ३ कात्यायनः W. स्कन्दः कुमारो B 1, Mahidasa.

४. चेत्याह·· वा is omitted by P2

५. आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः ।
अर्थशास्त्र चतुर्थन्तु विद्यात्वष्टादशैव तु ॥79॥
Vayu P. 1 61.5.

६. चत्वारः (in B 1.) precedes वेदा

७ तेषाम् (in B 1) follows उक्ताः

८. तत्तद्वर्ण B 1. Mah's ०कीदृशं रूपं तत्तद् वर्णविधश्चोच्यते is to be preferred. ९. प्रकारो B 1

१०. य इमे······विधोच्यते is omitted by P 2.

११. ऋग्वेदस्य B 1, B 2, P 1, T 9

१२. ०पत्रायताक्षः B1 १३ ०श्मश्रूणि B2

१४. रुक्म W.

१५. Omitted by all other mss except B 1, B 7.

१६. कीर्तिते B1,P1, T9 १७. वितस्त्यान् P1,T9. १८. द्व्यरत्निमात्रः B 1.

१९. P 2, W. give different version for "ऋग्वेद···पञ्च" ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षः सविप्रभक्त (P 2 सुविप्रभग्न) ग्रीवः प्रलम्बजठरः, कुञ्चितकेशश्मश्रूः गोरक्षिवर्णो (P 2. श्वेतवर्णप्रमाणेन) वितस्तीः पञ्च।

२०. यजुर्वेदस्य B 1, B 2, P 1, T 9

२१ कृष्ण T 9 ३ ग्रीव P2, W.

२२ ताम्रायत० L 5; P 1, P 2, W.

२३. कृष्णवर्णो वा is omitted by P 2 and W २४ प्रादेशानि P 2, W.

२५. सामवेदस्य B 1, B 2, P 1, T 9.

२६ नियतः P 2.

२७. स्वर्गी B 1, B 2, L 5, L 6, P1 स्वङ्गी P 3. स्वर्गीय T 9;

२८. Omitted by B 1.

२९ Omitted by L 6, P 2, W.

३० शुचीवासा B2 L5,P2,शुचिर्वासा T9,

३१. क्षमी P 2, W.

३२. Omitted by P 2, W.

शमी[1] दण्डी कातरनयन आदित्यवर्णो वर्णेन नवारत्निमात्रः[2]।

अथर्ववेदस्[3]तीक्ष्णः प्रचण्डः कामरूपी विश्वात्मा विश्वकर्मा[6] क्षुद्रकर्मा स्वशास्त्राध्यायी प्राज्ञश्च[7] महा[8]नीलोत्पलवर्णो वर्णेन दशारत्नि[9]मात्रः ।

ऋग्वेदस्या[10]त्रेयसगोत्रं सोमदै[11]वत्यं गायत्री[12] छन्दः ।

यजुर्वेदस्य[13] काश्यपसगोत्रमिन्द्र[14]दै[15]वत्यं त्रिष्टुप्[16] छन्दः ।

सामवेदस्य[17] भारद्वाजसगोत्रं रुद्र[18]दै[19]वत्यं जगती[20] छन्दः ।

अथर्ववेदस्य[21] वैतायन[22]सगोत्रं ब्रह्मदैवत्यम[23]नुष्टुप्[24] छन्दः ।

य[25] इदं वेदानां नामरूप गोत्रं प्रमाणं छन्दो दैवतं[26] वर्णं[27] वर्णयेत्[28]यविद्यो लभते विद्यां जातिस्मरोऽथ जायते, जन्मनि जन्मनि[29] वेदपारगो भवत्यव्रती व्रतो भवत्य[30]ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति ।

नमः[31] शौनकाय नमः शौनकाय[32] ।

---

१. चर्मी P 2, W. २ षड्रत्नि॰P 2, W
३.अथर्ववेदस्यB2,P2,W.४.प्रis omitted by P 2,W.५.Omitted by B6,B7
६. विश्वकर्ता B 2, L. 5, L 6. विश्वकर्त्ता B 6, B 7, T 9. विश्वसृक् P 2, W.
७. प्राज्ञश्च omitted by P 2, W
८. महा is omitted by P 2, W.
९. दशारत्नि॰ P 1. नवरत्नि॰ P 2, W.
१०. ऋग्वेदम् P 2, W.११. दे॰ B6,L6.
१२. गायत्रं L 6, P 2, W
१३. यजुर्वेद P 2, W. १४ रुद्र P2, W.
१५. दे॰ B 6, L 6. १६. त्रिष्टुभं W.
१७. सामवेदं P 2, W. १८. इन्द्र P2,W
१९ दे॰ B 6, L 6. २० जागतं w
२१.अथर्ववेदP2,W.२२.वैतानB 6,B7,L6
२३. देवत्यम् B 6, L6. २४ आनुष्टुभा W.
२५. (*a*) The gotras, deities and the metres of the Sāma V and AV. are omitted by B 2 (*b*) P 2. also omits the account of the AV. only. (*c*) In P 3 the account of the AV. follows the account of the Ṛgveda.
२६. इमम् B 1, W and Mah
२७. देवता P 2, W. २८. वर्णः B 1.
२८. वर्णयन्ति B 1, P 2. अविद्वान् विद्वान् भवति is added by P 2, W.
२९. जन्मे जन्मे B 1. B 2 L 5 जन्मजन्म B 6, B 7, L 6. जन्मजन्मनि P3, T9.
३०. अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति in W. precedes अव्रती व्रती भवति ।
३१. Omitted by P 3.
३२. नमः शौनकाय is mentioned once by P2.In P1.here ends the text.

य इदं चरणव्यूहं गर्भिणी श्रावयेत्स्त्रियम् ।
पुमांसं जनयेत्पुत्रमृषिभिर्वेदपारगम् ॥ १ ॥
य इदं चरणव्यूहं श्राद्धकाले पठेद्द्विजः ।
अक्षय्यं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄंश्चैवोपतिष्ठति ॥ २ ॥
य इदं चरणव्यूहं पठेत्पर्वसु पर्वसु ।
विधूतपाप्मा स स्वर्गी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३ ॥
य इदं चरणव्यूहं पठेत्स पंक्तिपावनः ।
तारयेदात्मनो वंश्यान्सप्तपूर्वांस्तथापरान् ॥ ४ ॥

इति चरणव्यूहपरिशिष्टं समाप्तम् ।

---

१. जायते B 2, B 6, B 7, L 5, P 2, T 9, W २ पुत्रान् L 5.
३. वेदपारगो भवति B 1, L 5. वेदपारगैः L 6 वेदपारगः T 9.
४. कल्पे W. ५. अक्षय्यम् B 6, B. 7.
६. लभते L 5, P 2, T 9, W.
७. उपतिष्ठते B 6, B 7.
८. धौतपाप्मा शुचिर्विप्रैः । B 1 स शुचि धौतपाप्मापि P 2, W विधूतपाप्मानं स्वर्गे P 3 विधूतपाप्माहते स्वर्गो T 9.
९. गच्छति B6, B 7, L 5, L6, T9. ब्रह्मभूयाय गच्छति is repeated by L 6. and T 9. ब्रह्मभूयाय कल्पते is repeated by P 2, and W.
१०. योऽधीते चरणव्यूहं स विप्रपङ्क्तिपावनः is given in mss P 2 and W
११. (*a*) तारयेत्प्रभृतीन् पुत्रान् पुरुषान्सप्त सप्त च । B 6, B 7, L 5.
(*b*) तारयेत्प्रभृतीन् पुत्रान् पुरुषः (T 9. पुरुषान्) सप्तसप्तिति । L 6, T 9.
(*c*) तारयेत्प्रभृतीन् पुत्रः पुरुषान् सप्तसप्ततिम् । P 2, W.
१२. (*a*) इतिचरणव्यूहपरिशिषम् P 2, W.
(*b*) रतिर्वृतिशिवश्यामाश्चत्वारो वेदपत्निकाः ।
ज्ञातव्या यज्ञकालेषु ईशानादि व्यवस्थिताः ॥
लक्षन्तु चतुरो वेदा लक्ष भारतमेव च ।
लक्षं व्याकरण प्रोक्त चतुर्लक्ष तु ज्योतिषम् ॥
These two verses are added by B 2, B 6, B 7, L 5.
(*c*) इति शौनकोक्त चरणव्यूहपरिशिष्टे चतुर्थ-पञ्चमखण्डः समाप्तः is added by B6 B7.
(*d*) L 5 has one more verse.
ऋग्वेदो देवत्यं यजुर्वेदस्तु मानवाः ।
साम्ना पितृदेवत्य शिशिराथर्वणं स्मृतम् ॥

अथ चरणव्यूहपरिशिष्टम्

द्वितीया शाखा

आदित आरभ्य ऋग्वेदस्य शाखाभेदपर्य्यन्तं मूलपाठस्य साधारणत्वान्नात्र पुनर्लिखितम् ।

संशोधनाधारभूता प्राचीनहस्तलिखितग्रन्थास्त्वेमे—

१ पूनास्थभाण्डारकरानुसन्धानपुस्तकालीया ग्रन्थाः (BI—4).

२. काश्यां मुद्रितं पुस्तकम् (B5)

३ लवपुरस्थलालचन्दपुस्तकालीया ग्रन्था· (LI—4).

४. पञ्जाबविश्वविद्यालयपुस्तकालीया ग्रन्थाः (P 3)

५ तञ्जोरस्थराजकीयपुस्तकालीया ग्रन्थाः (T I—8, T 10).

६. वेबरसम्पादितं पुस्तकम् द्वितीयाध्याये केवलम्

प्रथमोऽध्यायः

तेषामध्ययनम्—

अध्यायाश्चतुःषष्टिर्मण्डलानि[१] दशैव तु ।
वर्गाणां परिसंख्यातं[२] द्वे सहस्रे षडुत्तरे[३] ॥
सहस्रमेकं सूक्तानां निर्विशङ्कं[४] विकल्पितम्[५] ।
दश सप्त सुपठ्यन्ते संख्यातं वै पदक्रमम्[६] ॥

१. च is added by T 10.

२. योगसख्यातं B3. परिसंख्याङ्कं B4 परिसंख्यानं B5. L3, L4, P3, T1. परेसख्यातं T 10.

३. ०डुत्तरै B3 ०डुत्तरे T2. .5

४. निर्विशेषं L1. निर्विशङ्का L 2 निर्बिशताकं L3.

५. कल्पनाम् T1, T2, T3, T4, T5. कल्पिनाम् or कल्पितम् T6 कल्पितम् T7.

६ For the comparison of these verses with the verses in Anuvākānukramaṇī, see Introduction.

एकं[1] शतं[2]सहस्रं वा द्वि[3]पञ्चाशत्सहस्रार्धमेतानि[4] चतुर्दश वासिष्ठानाम्[5]। इतरेषां पञ्चाशीतिः । क्रमकाले तु[6] वेष्टव्यं चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि[7] । द्विखण्डानां[8] सहस्राणां द्वात्रिंशं[9]षोडशोत्तराः[10] । चत्वारिंशं[11]सहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि[12][13] ।

ऋचां दशसहस्राणि[14] ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः[15] पादश्च[16] पारायणं[17] प्रकीर्तितम्[18] ॥
एकर्च[19] एकवर्गश्च[20] नवकश्च तथा स्मृतः[21] ।
[22]द्वौ वर्गौ तु[23] द्व्यृचौ[24] ज्ञेयौ ऋक् त्रयस्य[25] शतं स्मृतम्[26] ॥

---

१. एक B1, B4, B 5, L 1—4, T 1, T8. २ शतं B3, P 3. T1—7

३. त्रि T1—6.

४. च is added by L 4.

५. ०शि० B3,T1—5. ६. ०षु L2.

७. द्वात्रिंशत्सहस्राणाम् is added by T1

८. द्वात्रिंशत्सहस्राणाम् is added by L1.

९. द्वित्रिंशति B4.

१०. चत्वारः ऋचः is added by B 3. च is added by L1.

११. चतुस्त्रिंशत् L2, T6. चत्वारिंशत् L3.

१२. The repeated phrase is omitted by B1, B3, B4, L1,L2, L4, T—8; T 10. ॥१॥ is added by L 3.

१३. For a comparison with Anuvākānukramaṇī see Introduction .

१४. दशसहस्र is add by T 8.

१५. नवतिः B 4.

१६. एतत् added by B 4, B 5, P3,

१७. पाराथण (हवनम्) B4 पारणं T1,P3.

१८. उच्यते B4, B5, L2, P3, T1-8, T 10. ॥१॥ is added by B 1.

१९. एकश्च added by B5, L 1, L2, L4, T 1—5, T 10.

२० Omitted by B5, L1,L2, L4, T 1—5, T 10.

२१. Omitted by B5, L1,L2, L4, T 1—5, T 10.

२२. द्वि T1—5.

२३. Omitted by L 1, L 2, L 4, T 1—7, T 10.

२४. द्वौ ऋचौ L 4.

२५. च is added by B 1, B 3.

२६ त्रीण्यष्टनवकं त्रयाणायथा B 4. त्रीणि त्रीणि शत तथा L1, L2. त्रीणि तृच शतस्तथा L 4, P 3, T 7. त्रयस्त्रिंशत्शतं-तथा T 1—5.

For a compaaison with Anuvākānukramaṇī, see introduction .

चतुर्ऋचा पञ्चसतत्यधिकं च शत तथा ।
पञ्च ऋचान्तु द्विशत सहस्रं रुद्रसंयुतम्[2] ॥
पञ्च चत्वार्यधिकन्तु षड्ऋचां च शतत्रयम् ।
सप्त ऋचां शतं ज्ञेयं विंशतिश्चाधिकास्मृताः[3] ॥
अष्टऋचान्तुपञ्चाशत पञ्चाधिकास्तथैव च ।

---

१. द्विशतकं Mahidāsa.

२. उच्यते B 3.

३. These verses are given by mss B 1. B 3. B 5. and L 3. which contain Mahidāsa's commentary. The different versions of other mss are given below.

(*a*) *B 4.* reads thas:

द्व्यशीत्यधिक एकशत चतुर्णां तथा ।
पञ्चाधिक द्वादशशतं पञ्चानाम् ।
त्रिचत्वारिंशाधिक त्रिशत षण्णाम् ।
विंशाधिक एक शत सप्तानाम् ।
चतुः पञ्चाशदष्टकानाम् ।

(*b*) *L 1—4 P 3. T 1—5. T 7. T 10.* give a disorderd text omitting the no. of vargas with four ṛks.

सहस्रमेकं पञ्चकाना शतमूनं विंशति सप्तकानाञ्च द्वे च सप्तोत्तरे शते चतुर्ऋचे त्रीणि शतानि षट्काना त्रीण्यष्टिरष्टकानाम् ॥१॥

(c) *T6.* gives the following text which with slight variation is identical with the text given in Anuvākānukramaṇī.

चतुष्क शतमेकं तु चत्वारः सप्ततिस्तथा ।
पञ्चकाना सहस्रं तु द्वे तु सप्तोत्तरे शते ।
त्रीणि शतानि च षट्कानां चत्वारिंशत्षट्वर्गाः ।
शतमूनं विंशतिः सप्तकाना त्रीण्यष्टिषष्टिरष्टकानाम् ॥

(d) The following additional verse which Mahidāsa gives in his commentary with the variation in the second line, is given by mss B 4. L 2. P 3 T 6

शाकल्य दृष्टं पदलक्षमेकं सार्द्धं तु वेदे त्रिसहस्रयुक्तम् । शतान्यष्टौ षड्विंशतिः पदसख्या प्रकीर्तिताः । Mah (second line).

शतानि सप्तैव तथाधिकानि चत्वारिंशच्च पदानि चर्चां ।

४. ० धिक B 5.

दशाधिका[1] द्विसहस्रा[2]ः पञ्चशाखासु निश्चिताः[3] ॥
वर्गाः संज्ञानसूक्तस्य चत्वारश्चात्रमीलिताः ।
एवं पारायणे प्रोक्ता ऋचां संख्येन न्यूनतः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

[4]यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदा भवन्ति । तत्र[5] चरका नाम[6] दश[7] भेदा भवन्ति । चरका आह्वरका[8]ः कठा[9]ः प्राच्यकठाः कपिष्ठलकठा[10]श्चारायणीया[11] वारायणीया[12] वार्त्तान्तरेया[13]ः श्वेताश्वतरा[14] मैत्रायणीयाश्चेति[15] ।

तेषामध्ययनम्[16]—अष्टौ[17]शत[18]यजुसहस्राण्यधीत्य शाखा[19]पारो भवति । तान्येव

---

१. ॰धिकं B 5. २. द्विसहस्र B 5.

३. For the vargas of eight rks.

(*a*) *B 4* gives

चतुः पञ्चाशदष्टकानाम् ।

(*b*) *L 1*, L 2, L 4, P 3, T—5, T 7, T 10 give· त्रीण्यष्टिरष्टकानाम.

(c) *T 6:* त्रीण्यष्टिषष्टिरष्टकानाम.

४. In B 3. अथ चरणव्यूहे द्वितियः खण्डः precedes the text

५. च is added by T 7.

६. चरकाणां B 3, L 3. चरकाना Mah. वर्गानां L 4, T 1—5 वर्गा नाम T 10.

७. द्वादश. B 3, B 5, L 1, T 1, T 4—8 and Mah.

८. ॰ ह्वरकाः L 1. अह्वरकाः P 3. ॰ ह्वारकाः T 10.

९. Omitted by T1. ककटा T2,—5.

१०. Omitted by T 10. कपिष्ठल॰ L 2. कभिष्टर॰. L 4. प्रतिष्ठल॰. P 3. कपिष्टलकटाः T 3—5. क्रपिष्ठलकठाः T7.

११. Omitted by P 3. श्यारायणीयाः T 6.

१२. Omitted by L1, T1—5, T8, T 10, P 2, W. वारणेयाः B 3.

१३. ॰ वेया. B 4, B 5. T 7, T 8. Mah वार्तत्तिवेया. T 6, T 10. वार्तन्तवीयाः P 2, W.

१४. श्वेततराः B 5. औपतन्यवः and पाताण्डनीयाः (P 2, W पाता ऐण्डिनेयाः) are added by B 3, B 5, L 1, P2, T 1, T4—8 and Mahidāsa.

१५. Omitted by T 7.

१६. आह is added by T 1.

१७. अष्टोत्तर B 3. अष्टौ B 5, T 8. अष्ट P 3, T 1—5.

१८. शत B 5, L 1, L 2, T 1—5, T 7, T 8, Mah.

१९. शाखा is omitted by T 1—5.

द्विगुणान्यधीत्य पदपारो[1] भवति । तान्येव त्रिगुणान्यधीत्य क्रमपारो[2] भवति । षडङ्गान्यधीत्य षडङ्गविद्भवति । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षडङ्गानि[3][4] । *

मैत्रायणीया नाम[5][6] सप्तभेदा भवन्ति । मानवा[7] दुन्दुभाश्चैकेया[8] वाराहा हारिद्रवेया[9] श्यामा[10]: श्यामायनीया[11]श्चेति[12] ।

तत्र[13] प्राच्योदीच्य[14]नैर्ऋत्या[15]: । तत्र वाजसनेया नाम पञ्चदश[16] भेदा भवन्ति[17] ।

---

१. ०पाठो T 10. २. ०पाठो T 10.

३ षट् is omitted by B 3, B 5, L 1, L 2, T 1—8, T 10,

४. "षडङ्गान्यधीत्य—षडङ्गानि" omitted by B 3 'तत्र षडङ्गानि भवन्ति" is added after षडङ्गानि by P 2, W P 2, T 1, T 2, T 3, T 4, T 5, W add the following :

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते (P 2, W उच्यते) । ज्योतिषमयन चक्षुर्निरुक्तश्रोत्रमुच्यते (P 2, W मेव च) ॥ शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य, मुखं व्याकरण स्मृतम् । तस्मात्सागमधीत्यैव, ब्रह्मलोके महीयते ॥

५ In B 5, L 1, P 2, T 4, T 6, T 8, W. तत्र precedes it.

६.मैत्रायणीयाना T8,T10. ७.माण्डूकाB 3.

८. छागेयाः B 3, छागलेयाः P 2, W.

९. हारिद्रवीयाः P 2 W. (In P 2, W this follows श्यामाः श्यामायनीयाः)

१० शमा L 1. Mahīdasa. मैत्रायणीयानाम् केचित्सप्तभेदा भवन्तीति वदन्ति श्यामा तदधिमेव । ११ शामायनीया B 5, L 2. श्यामायणीयाःT 3. श्यामाशनीयाः T 6.

१२ (*a*)"मैत्रायणीया··· 'चेति" omitted by T 5 and T 10 (*b*)T10 reads.

पञ्चभेदा भवन्ति—आपस्तम्बी, चैदायी सत्युपादी हिरण्यकेशी औखेयाश्चेति ।

(*c*) P 2, W add the following

तत्र हारिद्रवीयानाम पञ्चभेदा भवन्ति—हारिद्रवमासुरिं (W आसुरं) गार्ग्यं शर्कराक्षसमाग्रावसीय पञ्चममेते हारिद्रवसंग्रहाः ।

१३. In P 2,W "तत्र कठानान्तु बुकाध्ययनादि विशेषश्चत्वारिंशदुपग्रन्थास्तन्नास्ति यत्र काठके precedes तत्र । १४. प्रान्यामुदीच्या B 3 प्रान्युदीच्या B 4. प्राच्योदीन्या B 1, T 3—5, T 7। प्राच्योदीच्याना T 1

१५ निर्ऋत्याः Mah. निर्हृत्य B 3

१६ Omitted by T 3 T 5. सप्तदश B 4, L 1, L 2,L 4, P 3, T 4, T 6, T 8, T 10 १७. जाबालाः, बौधेयाः (P 3 बौद्धेयाः, T 4 बहुधेयाः) are added by B 4,B 5,L 1,L 2,L 4, P 3, T 4, T 6, T 8, T 10, W.

---

*. शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्तं छन्दो ज्योतिष षडङ्गानि भवन्त्येतानि Devī—Purāṇa, 1. 19. 11.

काण्वाः माध्यन्दिनाः[1] शाबीयास्तापायनीयाः[3] कापालाः[4] पौण्डरवत्सा[5] आवटिकाः[6] परमावटिकाः पाराशर्या[7] वैधेया वैनेया[8] गालवा[9] औधेया[10][11] बैजवा[12] कात्यायनीयाश्चेति[13]*। [14]प्रतिपदमनुपदं छन्दो भाषा धर्मो मीमांसान्यायस्तर्क इत्युपाङ्गानि ।

---

१. माध्यन्दिनेयाः T 1, T 2, T 4, T5
२ शाकीयाः B 3, शापेयाः B 4
शावीयाः B 5, शाफेयाः P 2, W
शाखेयाः Mah.
३. स्थापायनीयाः B 1, B 5, L 3, L 4.
स्थापनीयाः B 3, T 1—8 तापायनाः P 2, W ४. कपोलाः T 2, and Mah.
५. पौण्ड्र० B 5. सान्द्र० T 2
६ आवृष्टिका T 8 आवदिका T 10
७ पाराशरा P 2,W पाराशरेयाः T1—5.
८. In L 2 it follows वैनेयाः
९. औधेया by L 1, L 2, T 1—8 and औखेया by L 4, T 10 is added after it. P 2, w add औखीया and मननेया
१० Omitted by P 2,w and Mah
११. Omitted by B 3, B 5, L 1, L 2, T 1—3.
१२. Omitted by P 2,w and Mah
१३. Omitted by P2,w and Mah
१४. Further on P2 and w differ to a considerable extent from the text in the second recension in matter as well as in arrangement. The order of the text in P 2, w is the following:—
त्रिगुणं पठ्यते यत्र मन्त्रब्राह्मणयोः सह यजुर्वेद स विज्ञेयः शेषाः शाखान्तराः स्मृताः । (Not in this recension but in the first recension—
L. 7.—8) then तेषामध्ययनं–द्वे सहस्रे शते न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके । यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषः शाखान्तराः स्मृताः (The verse is found in this recension with variations P 88) अष्टौ शतानि सहस्राणि अथाष्टौ अशीतिरन्यान्यधिकश्च पादमेतत् प्रमाण यजुषा हि केवलं सशुक्रियं सखिले च सर्के । तत्र माध्यन्दिनामध्ययने विशेष— P. 269 Indische studien, Weber Volume 3 followed by तत्र परिशिष्टानि भवन्ति on the 95th. This is again followed by a new passage not found in any of the recensions

सर्वानुक्रमं पदज्योतिर्यजुषा च विधानकं ।
गलिनप्रदीपिकाश्च सर्वाणा व्यञ्जनिकन्तथा ॥
क्रतुशेषश्च सावित्र सूत्रमन्त्रप्रकाशकम् ।
मन्त्रभ्रान्तिहरश्चैव शिक्षाणां पञ्चकन्तथा ॥

---

*According to Mah पञ्चदशभेदा भवन्ति । He omits गालवा, बैजवाः and कात्यायनीयाः and mentions श्रद्धा and बौधेयाः ।

उपज्योतिषं* छागलक्षणं प्रतिज्ञानुवाकपरिसंख्यानश्चरणव्यूहः श्राद्धकल्पः शुल्बकानि पार्षदमृग्यजूषीष्टकापूरणं प्रवराध्यायश्च शाखाक्रतुसंख्या निगमं यज्ञपार्श्वानि हौत्रिकं प्रसवोत्थानं कूर्मलक्षणमित्यष्टादश परिशिष्टानि भवन्ति ।

द्वे सहस्रे शते न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके ।

इत्युक्तं परिसंख्यातमेतत्सकलं सशुक्रियम् ॥

मन्त्रज्योतिश्च विज्ञेया मन्त्राणा दीपकन्तथा ।
शेषमध्ययनमुत्सन्न कल्पग्रामेषु पठ्यते ॥
These verses are followed by तत्र तैत्तिरीयकाना द्विभेदा भवन्ति (P. 85) which is followed by तेषामध्ययनम् सौक्तिक प्रवचनीयाश्चेति—
मन्त्रब्राह्मणकल्पानामङ्गाना यजुषामृचाम् ।
षण्णा यः प्रतिभागज्ञ. सोऽध्वर्युः कृत्स्न उच्यते ।
(This verse is not found in the second recension but in the first recension— P2 and W present acurious text so far as the second chapter is concerned. Their beginning corresponds to the second recension and end to the first recension.

*Cf first recesion and Mahidasa यूपलक्षण

१. साग० in all the mss thus emended.

२. ०वाक्य: B 5, P3. ०वाक्यं T 1—5.

३ शुल्बकानि· ·पूरणं omitted by B 3, B 5, L 1, L3, L 5, T 1-8, T 10

४. T 1-5 add the following: ऋविधोदीक्षिताना विवाहादौ क्षय (T 1, क्षय, T 3 क्षये) त्रये महालये गयायात तथेव च । ऋधौ ऊर्ध्वान्तर (T 2, T 4, ऊर्ध्वान्तरे) सुतुको पूर्वसंकल्पितार्थे दोषो न लिप्यते याजुषाः सामगाः पूर्वमध्ये बह्वृचः । अथ (T 4 अथवा) श्राधिशेष पिण्डदानेस्वनुक्रमात ।

५. Cf the first recension and Mah उक्थशास्त्र । ६. ०नुगम B1, L 2, L4, T1—5 T7, T 8 ०नुगमन L3.

७. पार्श्वनु B 4, T 6. पार्श्वलग्नि L 1.

८ होतक B 4, L 4 होत्रकं B 5, L 1, P 3, T 6. हौत्रकं L 2.

९. पशवोक्थानि B 1, B 5, L 3, L 4, P 3, T 10 पशववत् L 2. पशवोक्तानि T 1—6. पशवोस्थानानि T 8.

१० वाजसनेयिके L. 3. वाजसनीयुगे L 4.

११. परिसङ्ख्याकम् B 4. Omitted by B 1, B 3, L 3, L 4, T 4, T 5.

१२. सर्वं T 1, T 10.

१३. सशुक्रियम् L 1. सशुक्रियाम् T 1—5. शुक्रयम् T 10. "ऋग्गणः परिसंख्यातमेतत्सर्वं सशुक्रियाम्" given by Mah. as the second line. P 2, W. यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषा शाखान्तराः स्मृताः

ग्रन्थाश्च परिसख्याताः[1] । ब्राह्मणश्च चतुर्गुणम्[2] ।
तत्र तैत्तिरीयका[3] नाम द्विर्भेदा[4] भवन्ति ।
औखेयाः[5] खाण्डिकेयाश्चेति[6] ।
खाण्डिकेयाः[7] नाम पञ्च भेदा भवन्ति[8] ।
आपस्तम्बी[9] बौधायनी[10] सत्याषाढी[11] ।
हिरण्येकशी औधेयी[12] चेति[13] ।
तत्र कठानान्तूपगा यजुर्विशेषाः[14] । चतुश्चत्वारिंशदुपग्रन्थाः[15][16] ।[17]
मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद[18] त्रिगुणं[19] यत्र पठ्यते ।
यजुर्वेदः[20] स विज्ञेयोऽन्ये शाखान्तराः स्मृता. ॥
तेषामध्ययन प्रवचनीयाश्चेति ।

---

१ "ग्रन्थाश्च परिसंख्याताः" is omitted by Mahidasa

२. L 1, T 10. add the follow-, ing: आदा (T 10. हा) वारभ्य वेदान्त ब्रह्मव्याहृतिपूर्वकम् । वेदमध्यापयेदे (T 10 दे) नं, होमान्तश्च समारभेत् ॥

३. तैत्तिरीयकानाम् L 3, T5, T 7, Mah.

४. द्वे T 2, T 4 T 7,

५. औख्याः excepting T 10 all other mss.

६. काण्डिकेयाः B 1, B 3, B 5, L 2, L 4, P 3, T 5, T 7, T 10

७. तत्र precedes it in mss T 7. खाण्डिकेयानाम् । Mah.

८. "औख्याः''' भवन्ति" omitted by T5.

९. स्तिम्बी T4, T5. स्तम्बा T 8. स्तम्ब T10.

१०. बहुधायनी B 1, L 1 बौद्धायनी P 3. बौधयानि T 8 बोधायी T 10

११. ०षाढि L 1. षाढा T 6

१२. औधेया: B 4, T 1—7 औधीय T8.

१३. Of Mahidasa: कालेता शाट्यायनीति द्वे मूलोक्त तयोः स्थाने बौधायनी, औधेया इति बोध्ये । Further Mah. तेषामध्ययनं— काण्डास्तु सप्तविज्ञेयाः प्रश्नाश्चाविंक्यकाश्चतुः । चत्वारिंशस्तु विज्ञेयाः अनुवाका. शतानि षट् ।

१४. Omitted by T 1—5 यजु B1, L2, L3, T6, T7

१५. Omitted by B3, L3. इति inserted before by T 1—5.

१६. उपग्रन्थानि B5. न्युप० L1-4, T1-6. ग्रन्थ T 7. Mah. explains उपग्रन्थाः by अध्यायाः ।

१७. P2 and, W give a different reading for "तत्र ' ग्रन्थाः" तत्र कठानान्तु बुकाध्ययनादि विशेषः। चत्वारिंशदुपग्रन्था स्तत्राहि यत्र काठके ॥

१८. वेदाः L 4, T10.

१९. त्रिगुणो T2-5 त्रैगुण्य T 10.

२० यजुर्वेदस्य T10, W.

तृतीयोऽध्यायः

सामवेदस्य[1] किल[2] सहस्रभेदा आसन्[3]।

अनध्यायेष्वधीयानास्ते शक्रेणा[4]भिहताः[5] प्रनष्टाः[6]। शेषान् प्रवक्ष्यामि।

आसुरायणीया[7] वासुरायणीया[8] वार्त्तान्तरेयाः[9] प्राञ्जलं[10] ऋग्वैनविधाः[11] प्राचीनयोग्या[12] राणायनीया[13]श्चेति[14]।

राणायनीया[15] नाम नव[16] भेदा भवन्ति।

राणायनीयाः शाट्यायनीयाः[17] सात्यमुद्गला[18] खल्वला[19] महाखल्वला[20] लाङ्गलाः[21] कौथुमा[22] गौतमा[23] जैमिनीयाश्चेति।

---

१ सामवेदः T 6.

२. अखिल B3-5, L 2, L 4, P 3, T 1-5, T 7, T 10.

३. आसीत B 3, B 4, L1, L 3, L 4, T 1—8. भवन्ति P 3

४ वज्रेण L 1 चक्रेण T 10.

५. अपिहताः L2, P3. हताः L4, T 10.

६. प्रलीनाः T 4

७. असुरायणीया B3,B4,L2, L4,T1-8.

८ Omitted by T 1. T 4, T 8.

९ Omitted by T 10 वार्त्तान्तवेया B 4, L 1, प्रान्तरेयाः L 2 वार्तान्तवेयं T. 6. वार्तान्तवेयाः T 8.

१०. प्राञ्जलि B1, B4, L 1, L 2, L 4, T 2, T 4, T 5, T10 प्राञ्जलयः B3

११. Omitted by B3. ऋग्वैनभिधा B 5, T 8. ऋग्वैनैवविधाः T 2-5 ऋक्पञ्चविधाः T 10.

१२. ०नयोग्या added by B3—5,L3, P3, T1, T5, T 8. ज्ञानयोग्या added by T4. सयोग्या added by T 10

१३ In T 6 it is given in the beginning.

१४ आसुरायणीया चेति omitted by T 3

१५. According to Mahidasa and B 3 तत्र precedes it

१६ दश P 3

१७ सत्ययनीयाः B1 साधनीयनीः B3 षाधायनीयाः L 1 शाठ्यान्तवेयाः L 2, P 3. शात्यायनीयाः L 4, T 10 सात्यायनीयाः T 1—5

१८. क्षास्वमुद्गला B 3 सत्यमुद्गला L 2, T 1—5. शाठ्यमुग्रा Mah शाठ्यमुद्गला P 3.

१९ Omitted by B 3 कल्पलाः T 1 खल्पलाः T 3

२० Omitted by B 4 महाखल्पला T3

२१. Omitted by T 7

२२ Omitted by L 4 कौथुमी Mah.

२३. गौतुमा L 1. गौतमी Mah

तेषामध्ययनम्[1]—

अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश[2]।

अष्टौ शतानि दशभि[3]र्दशै[4]सप्तं[5]सु[6]वालखिल्यः ससुपर्णैः[7] प्रेक्ष्यर्म्[8]। एत-त्सामगणं स्मृतम्[9][10]।

चतुर्थोऽध्यायः

अ[11]थर्ववेदस्य[12] नव भेदा भवन्ति। पैप्पला[13] दान्ताः प्रदान्ताः[14] स्तौता[15] औता[16] ब्रह्मदापलाशाः[17] शौनकी[18] वेददर्शी[19] चरण[20]विद्याश्चेति।

तेषामध्ययनम्।

---

१. Omitted by T 3.

२. अष्टौ…चतुर्दश omitted by B 5

३. दशति L1, T1, T8, T 10 दशानि L 2, T 4, T 6, T 7.

४ दशत्यः L 1. ५. सहस्र B 1

६. स० L 1, T 10.

७. सुपर्णः B 1, B 5, T 8. ससुवर्ण B 4, L 2, L 4, P 3, T 2—5 समिसुवर्ण T 7 समवर्ण T 10

८. प्रेष्यम् L 2

९. इति added before it by T 7

१०. In B 1. B 3 and B 5 the following text is added आसा षोडश शाखाना मध्ये तिस्रः शाखाः विद्यन्ते । ताश्च गुर्जरदेशे कौथुमी प्रसिद्धा कार्णाटके जैमिनी प्रसिद्धा। महाराष्ट्रे राणायनीया प्रसिद्धा । इत्येषामध्ययनम्—The first verse is only in the ms B5.

अष्टौ सामसहस्राणि छन्दोगार्चिकसंहिता।
गानानि तस्य वक्ष्यामि सहस्राणि चतुर्दश ॥
अष्टौ शतानि ज्ञेयानि दशोत्तरदेशव च।
ब्राह्मणश्चोपनिषदं सहस्र त्रितयं तथा ॥

११ In B 7, अथ चरणव्यूहपरिशिष्टसूत्रस्य चतुर्थखण्डः प्रारभ्यते। precedes the text.

१२. अथर्वणस्य B 4, L 1. अथर्वणवेदस्य T5—8, T 10

१३ पैः पला B1, B3, B4, L2, L4.

१४ Omitted by L2, L4

१५. स्ता औता L 3 तौता T. 6.

१६. औ०L2.Omitted L3. दौता T10

१७ ब्रह्मदापला B 4, L 2,L4. ब्रह्मदापाला L 1, T6. ब्रह्मदापश L3 ब्रह्मदावला P3. ब्रह्मदा बलदाः T 1–5. ब्रह्मदापदा T 7–8

१८. शानकी T 10.

१९. वेदर्शी B 1. देवद्रुम B4. वेददर्षि L 2. देवर्षि L 4. देवदत्त P 3 देवदर्शी T1–5, T7. उपदर्श T 10.

२०. चरणी० B 5, T1—5. तारण० L3. चरणव्यूहं T 8

पञ्चकल्पा[1] [2] भवन्ति। कल्पेकल्पे पञ्चशतैरपि[3] [4] नक्षत्रकल्पो विधानकल्पविधिविधानकल्पः संहिताकल्पः शान्तिकल्पश्चेति।

सर्वेषामेवं वेदानामुपवेदा भवन्ति। ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः सामवेदस्य गान्धर्ववेद उपवेदोऽथर्ववेदस्यं शस्त्रशास्त्राणि[11] भवन्ति।

ऋग्वेदस्यात्रि[12]गोत्रं[13] ब्रह्मदै[14]वत्यं गायत्रं[15] छन्दः।

यजुर्वेदस्य भारद्वाजगोत्रं विष्णुदै[16][17]वत्यं त्रैष्टुभं[18] छन्दः[19]।

सामवेदस्य काश्यपगोत्रं रुद्रदै[20][21]वत्यं जागतं[22] छन्दः[23]।

अथर्ववेदस्य वैतान[24]गोत्रमिन्द्रदैवत्यमानुष्टुभं[25] छन्दः।

---

१ च is added by T 7 दश is added by T 10.

२. कल्पानि B 3, B 5, L 1, L 2, L 4, T 6, T 7, T 8.

३. कल्पेकल्पे ·····शतैरपि omitted by B 4, L 2, P 3, T 1—6, T 10.

४. द्वादशैव सहस्राणि पञ्चकल्पानि।

कल्पे कल्पे पञ्चशतानि भवन्ति।

P 2 for पञ्चकल्पा···शतैरपि।

५. विविधानकल्पः L 3 विविधानकल्पः L 4, T 6.

७. कल्पसंहिता L 4. कल्पसंव्रतः T 10.

७. Omitted by T 3. प्रवराः is added by T 1, T 2, T 4, T 5.

८. तेषाम् L 2. ९. Omitted by T 8.

१०. अथर्वणवेदस्य B 4, T 8, T 10. अथर्वणस्य L 1, L 4.

११. शस्त्राणि B 3. सर्वशास्त्राणि B 4. शास्त्राणि T 7, T 8, T 10.

१२. आत्रेय L1, L 2, L 4, T1, T 2, T 4—6, T 8

१३. सगोत्रं T 10 १४. ०दे० T 10.

१५ गायत्री T 1—5.

१६. रुद्र L 1, L 2, T .—5, T7, T8.

१७. ०दे० T 10.

१८. Omitted by T 1—5.

१९. 'यजुर्वेदस्य ·····छन्दः' is omitted by B 3.

२०. विष्णु L1, L2, T 1–5, T7, T8.

२१ ०दे० T 10 २२. जगती T 1—5

२३. 'सामवेदस्य ·····छन्दः' is omitted by B 3. T 10.) attributes the gotra, diety and metre of the Sāmaveda to the Yv.

२४. वैजान B 4, L 1—3, T 1, T 6—8, T 10. पैतान B 5. वैजयन T 2, T 3, T 4, T 5.

२५. अनुष्टुप् T 1—5.

ऋग्वेदो रुक्मवर्णः[1] पद्मपत्रायताक्षः[2] सुविभक्तग्रीवः कुञ्चितकेशश्मश्रूः[3][4] प्रमाणेन[5] द्व्यरत्निमात्रः[6][7]।

यजुर्वेदः कृशो दीर्घकपालस्ताम्रवर्णः[8] काञ्चननयन आदित्यवर्ण[9][10] पञ्चारत्निमात्रः[11]।

सामवेदो नित्यं[12] स्रग्वी[13] शुचिः[14] शुचौ[15] वासी क्षामी[16] दान्ती[17] चर्मीदण्डी[18] काञ्चननयनः श्वेतवर्णो[19] वर्णेन षडरत्निमात्रः[20]।

अथर्ववेदस्तीक्ष्णश्चण्डः[21] कृष्णः[22] कामः कामरूपी क्षुद्रकर्मा[23] श्वेतसाध्यवशी[24] च सृजगलमूर्धनि[25] गालवैः[26] स्वदारतुष्टः[27] परस्त्रियान्यर्यश्च[28] नीलोत्पलवर्णो वर्णेन नवारत्निमात्रः[29]।

य इदं[30] दैवतं रूपं गोत्र प्रमाणं छन्दो वर्णं[31] वर्णयति[32] जन्मजन्मनि वेद-

१. रुधिर० L 2. अरुण० P 3. रुरु० T 6, T 10

२. ०क्षि L 2. ३. कुञ्चित् L 3.

४. ०श्मश्रुः L 1, L 2. पिङ्गाक्षः added by B 5.

५. प्रमाणं L 1. प्रमाणो T 6—8.

६. द्विरत्नि L 1, L 2, T 1—5.

७. संयुतः L 4, T 6, T 8, T 10 संयुतः is added by T 7.

८. Omitted by B5. स्थूला L4,T10.

९. श्वेत० B 5, L 1, L 4.

१०. वर्णेन B4, B5, L1—4, T3,T6.

११. 'यजुर्वेदः'''मात्रः omitted by T2, T 4, T 5. द्विरतननयनः वर्णतोऽदित्यवर्णः षडरत्निमात्रः is given by B7,T1,T7.

१२ नित्यः T 2, T 3, T 4, T 5.

१३. तु is added by T 3—5.

१४. Omitted L 2 शुचः T 8

१५. Omitted by B 5, L 1.Given twice by L 4. शुद्धौ T 10.

१६. शमी B 5, L 1, L 2, T 8.

१७. दान्तः B 5, L 1, L 2, T 8.

१८. शमी B 5. चर्म T 3, T 4, T 5.

१९. आदित्य T 1, T 3, T 5.

२० पञ्च T 1, T 3, T 5

२१. चण्डी B 3, L 1

२२. कृष्णः कृष्ण T6, T10

२३. क्षुद्ररूपी T1—5.२४.सविश्वःL2,L4.

२५. सजगल्लव L 2 सृगाल T 10.

२६. तु added by L 1.

२७. Omitted by L 1. स्वदारजुष्टः B 5. स्वदारदृष्टः P 3. दारचतुष्टयः T 1–5.

२८. Omitted by L1. स्त्रीणा वृतः L2 परदार एव श्रेयी T 8. २९. सप्ताठ T 7.

३० इमं T 5, T 6, T 8, T 10.

३१. वर्णं L 1.

३२ 'ते विद्या लभन्ते, ते विद्या लभन्ते' added by T 7.

पारो[1] भवति। जन्मजन्मनि वेदधारो[2] भवति । अप्रहितैः[3] प्रहितो[4] भवति[5] । अव्रतो व्रती भवति। अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी[6] भवति । जातिस्मरो जायते[7] । नमः शौनकाय नमः शौनकाय। परमर्षिभ्यो नमः परमर्षिभ्यः[8] ।

य इमं[9] चरणव्यूहं पर्वसु श्रावयेद् द्विजः ।
धौतपाप्मा शुचिर्विप्रो[10] ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१॥[11]
य इमं[12] चरणव्यूहं श्रद्धकाले[13] सदा पठेत् ।
अक्षयं[14] तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄंश्चैवोपतिष्ठति ॥ २ ॥[15]
य इमं चरणव्यूहं गर्भिण्यः[16] शृण्वते[17] स्त्रियः[18] ।
पुमांसं जनयेत्पुत्रं सर्वज्ञं वेदपारगम् ॥ ३ ॥
योऽधीते चरणव्यूहं स विप्रः पङ्क्तिपावनः ।
तारयेत्[19]यखिलान्[20] पूर्वान्[21] पुरुषान्[22] सप्त सप्त च[23] ॥४ ॥[24]

---

१. ०पारगो T 1—5. ०पाठो T 10.

२. ०धारको P 3, T 1—5.

३. अप्रतीतः T 10. ४. प्रतीतोः T 10.

५. अप्रहितः···भवति omitted by T1-5.

६. सु is added by L 1, L 2.

७. नमः सर्ववेदधाता भवति । सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति। added by L 1, L 2.

८. "जन्मजन्मनि वेदपारो······परमर्षिभ्य." is omitted by B 3, L 1 'नमः शौनकाय,परमऋषिभ्योनमः परमर्षिभ्य:'omitted by L4,T1—6, T8,T10, ९. इद B1, B3—5,L1, L3—4, T2,T 8.

१०. विनिर्मुक्तो L 2 for शुचिर्विप्रः।

११. This verse is omitted by L1.

१२. इदं B 1, B 3—5,L 1, L 3, 4, T 2, T 8.

१३. ०काले(L1, षु)तुL4,T7,T8,T10.

१४. अक्षय्य B 5, L 1, L 2, L 4. अक्षय्यममृतं T 8

१५. पितॄणा तृप्तिमक्षयम् L 1 पितॄणा दत्तमक्षयम् T 6. This verse is omitted by T 1, T 2.

१६. गर्भिण्या L 1, T 7, T 8. गर्भिणी L 2, P 3. गुर्विणी T 1—6.

१७. शृणुते L1, T 8. श्रावयेत् P 3, T1. T 4, T 5.

१८ सदा P 3. १९. तारयेत् L 3.

२०. सर्वान् L 1 २१. लोकान् B 3.

२२ The sense would require अपरान् । २३. तु T 10.

२४. This verse is omitted by P3. L 1 gives the additional verse

दिने दिने पठेद्विप्रश्चरणव्यूहलक्षणम् ।
रुद्रलोकमवाप्नोति पुत्रपौत्रधनेन च ॥

योो नामानि पुरा वेद अमृतत्वञ्च गच्छति ।[1]

लोकातीतं महाशान्तममृतत्वञ्च गच्छति ।[2]

ओं नमः इत्याह भगवान् व्यासः[3] पाराशर्यो व्यासः पाराशर्यः[4] ।

नमः परमर्षिभ्यः नमः परमर्षिभ्यः

तं वेदशास्त्रपरिनिश्चितशुद्धबुद्धिं,चर्माम्बरं सुरमुनीन्द्रतनुं[5]कवीन्द्रम् ।

कृष्णद्विपं[6] कनकपिङ्गजटाकलापं, व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥[8]

इति चरणव्यूहपरिशिष्टं समाप्तम् ।

---

१. स T 1, T 2, T 4.

२. Omitted the second line by L 1, T 6, T 7. B 5 repeats the second line.

३. T 7 ends here.

४. पाराशरः T 1, T 3, T 4. T 6, T 10, further text is omitted by L 1, L 2, T 1. ५. ०श्रि० T10.

६. तुतं L 4, T 6, T10. व्रतम् T1–5.

७. ०त्विज L 4. ०त्वचं P 3. ०त्विष T 2—6, T 10.

८. इति चरणव्यूहे चतुर्थखण्डः समाप्तः । B 5, L 4, T 1—6 give the additional verses:

व्यासं वशिष्ठनप्तार शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥
अचतुरवदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।
अमाल (L4 अफाल) लोचनः शम्भुर्भगवान्
बादरायणः ॥

P 3. has also given the second verse. T 1, T 2 T 3, T 4, T 5 give one more additional verse

मुनिस्निग्धं मुदा व्यास वेदव्यासमकल्मषम् ।
वेदव्यास सरस्वत्या व्यास व्यास नमाम्यहम् ॥

कुछ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण

लेखक—लक्ष्मण स्वरूप एम० ऐ०, डी० फिल० (ऑक्सन), आचर्य, सस्कृत साहित्य,
पञ्जाब विश्वविद्यालय

१—असम्पूर्ण पुरानी हस्तलिखित हिन्दी पुस्तक । नाम है 'योग-वासिष्ठसारभाषा' । रचयिता का नाम है सरस्वती ।

मूल पाठ को'प्रकरण'नामक अध्यायों मे विभक्त किया गया है । इस पुस्तक में पहले चार प्रकरण और पांचवे प्रकरण का कुछ भाग उपलब्ध हैं । प्रत्येक प्रकरण में छन्दोबद्ध पंक्तियां हैं जिन की संख्या इस प्रकार है-प्रथम प्रकरण में २७, दूसरे में २८, तीसरे में २५, चौथे में २६ और पांचवें के उपलब्ध भाग में १२ सपूर्ण और १३वीं के कुछ शब्द मिलते हैं । पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार है । हम ने ज्यों के त्यो पुस्तक के शब्द यहां लिख दिए है । जिस प्रकार से शब्द पुस्तक मे लिखे गए हैं उसी प्रकार से हम ने दिए हैं । उन के लिखने की विधि या उन के रूप में किञ्चित् मात्र भी अपनी ओर से परिवर्तन नहीं किया । इस से पाठकों को पुस्तक के असली रूप की झलक दिखाई दे जायगी ।

ओं श्री गणेशाय नमः……अथ वशिष्टसारभाषा लिष्यते दोहिरा—है अनंत व्यापक सकल……

जौ लौ नहि जगदीस कौ होइ क्रिया को लेसु
तउ लउ सतगुर नां मिलै ना विद्या उपदेसु ३
भवसागर के तरन को सत गुरु कहै उपाव
ज्यौं झीवर सो पाईये नदी तरन को नाव ४

प्रथम प्रकरण का अन्तिम वाक्य—

Sic. इति श्री सकलविद्यानिधानकवीद्राचारजसुरस्वतीविरचिते भाषाया योगवशिष्टसारे वैरागप्रकर्णे समातः १॥ श्री वशिष्टो वाच । दोहिरा—

दूसरे प्रकरण का अन्तिम वाक्य—

Sic. इति श्री योगवासिष्टे भाषायां जगमिथ्याजानबो नाम द्वितीयो पकरणं २ श्री वीसष्ट उवाच दोहिरा

तीसरे प्रकरण का अन्तिम वाक्य—

Sic. इति श्री योग वशिष्टे सारे भाषायां जीवनमुक्तकथनं नाम त्रितीयो प्रकर्णः ३ श्री वशिष्टोवाच दोहरा······

चौथे प्रकरण का अन्तिम वाक्य—

Sic. इति श्री योगवशिष्टे भाषायां मनोनिरूपनं नाम चतुर्थो प्रकर्णे समाप्तः ४ वसिष्टोवाच दोहिरा

'दोहिरे' का प्रचुर प्रयोग हुआ है पर जहां तहां 'कविंत्तु' (Sic) भी दृष्टिगोचर होता है। केवल एक ही उदाहरण यहां दिया जाता है—

Sic. दूर तै अंध सो बंधन छोड कै संग भुजंगम सो कर जानै।

लोक वियोग को सोग नही जग भोग न रोग समे पहिचानै।

कुल पत्र संख्या=३६। प्रत्येक पत्र पर पंक्ति संख्या=७। अक्षर=देवनागरी देसी कागज़ पर लिखा हुआ है। समय वा स्थान=अज्ञात।

२—श्री सुषदेवकृत अध्यातमप्रकास-कागज पर लिखी हुई प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक

पत्र १०७ के पृष्ठ भाग पर अन्तिम वाक्य यह है—

Sic. इति श्री सुषदेवकृत अध्यतम प्रकास समाप्तम् शुभम् ओं तत्स· त्परब्रह्मणे नमः

इस की भी रचना छन्दोबद्ध है। कुल छन्दों की संख्या २२७ है।

यह एक गुरु शिष्य सम्वाद है। छन्दों के बीच २ मे जहां तहां 'सिष्य उवाच दोहा' 'श्रीगुरुरुवाच' इत्यादि वचन पाए जाते हैं।

इस का आरम्भ इस प्रकार से है—ओं स्वति श्री गणेशाय नमः ओं परब्रह्मणे नमः सवैया—थावर जंगम जीव जिते जग भांतिनि भांतिनि वेष धरे है। ता महि सत्य चिदानंद एक सुआतम नित्य प्रकाश करे है।

(१) दोहिरा—व्यास मथन करु वेद सभ सूत्र जु काढे सार।

श्री गुरुशंकर देव जू कीन्हो बहु विस्तार॥

तिन ग्रंथन को समझु मत हियधर पर उपकारु।

भाषा कर सुषदेव कवि रच्यौ ग्रंथ अति चारु॥

जैसे रवि के तेज तै अंधकार मिटि जाय।

अध्यातम परकाश तै त्यौं अज्ञान नसाय॥ ४

गुरुसिष को संबाद है वेदवचन उपदेस ।
अध्यात्म परकाश यह भाषा सरस सुवेस ॥ ५

इस में मुमुच्छु लच्छनं श्रीगुरु लच्छनं वैराग्य लच्छनं विवेक लच्छन समदमादिषट् संपदालछनम् ततपद ईसवर्ननम् इत्यादि अनेक विषय पाये जाते हैं।

दोहारा छपै कुंडलिया सवैया दोला मरहठा चौपई पवंगम इत्यादि छन्दो का प्रयोग किया गया है। कतिपय उदाहरण यहां दिए जाते हैं।

Sic. कुडललिया—जैसे वरषा पाय कै जोतत षेत किसान
त्यै प्रारब्ध हि पाइ कै देह सुकर्म निजान
देह सुकर्म निजान षैचि ईद्रिय मन सोधै
बोय बीज उपदेस वेद वचनानि गुरु बोधै

सवैया—शुद्ध सतो गुन के गुन ते प्रतिबिंबन आप नो भूलन पायो। माया हि षैचि करी अपनै वसि ईश क्है सरबज्ञ कहायौ। चौदह लोक रचै छिन में अर मेटत है जब चाह मिटायो। शक्ति अनंत कहै सुषदेव वहै पुरुषोत्तम वेदन गायो।
Sic. चौपई—प्रथम देह कारन है माया। जां के बल सब जगत उपाया॥

२३ पत्र के अग्रभाग के ४५ वे छन्द के पीछे अन्तिम वाक्य इस प्रकार है–इति तत्पदार्थः अथ त्व पदजीववर्ननम् मरहटाछंदः—
ज्यै पहिलै उत्पत्ति ईश की वहै जीव की जानो।
वाके शुद्ध सतो गुन यांके तम गुन अधिक बषानो।

६७ पृष्ठ के अग्रभाग का अन्तिम वाक्य—इति त्वं पदार्थः २ अथ असि पदार्थ कथनम्।

Sic. on f. 71. प्रज्ञानमानन्दब्रह्म इति ऋग्वेदः।
अहं ब्रह्मास्मि इति यजुर्वेदः।
तत् त्वमसि इति सामवेदः। प्रज्ञान अयमात्मा ब्रह्म इति अर्वणवेदः। इति चतुर्वेदवाकेन ब्रह्माहमस्मि ज्ञेयं ध्रुवम्।

८५ V. पवंगमछंद

छहों दर्शनों के विषय पर संक्षिप्त रूप से व्याख्या सी की गई है। अन्त में संस्कृत के कुछ श्लोक है।

३—बृन्दाबनदासजी कृत छद्मषोडसी

यह भी कागज पर लिखी एक हस्तलिखित पुस्तक है।

आरम्भ—श्रीराधावल्लभो जयति । श्रीहरिवंशचंद्रो जयति । श्रीहितरूपगुरुभ्यो नमः । अथ श्रीव्रजकुमारप्रेम अधिक छद्मषोडसी लिष्यते

I. राग काफी—मेरी बात सुनौं री हौं नंद गांव तै आई ॥
वसिहौं एक राति कोऊ लायक मुहि राषौ विरमाई ॥१॥
ह्वै गई भेट सषी ललिता सौं वांह पकरि सो लाई ॥
प्यारी जू निकट राषियै याकौ यह किनि हूं जु रुठाई॥२॥

इस में ३७ छन्द हैं।

II. राग गौरी दोहा टेक वंधतामूल—यौं गुनवंती चतुर चितेरी चित्र लेहु करवाय के । यौं कहति देति है फेरि ॥ टेक ॥

इस में ५४ छन्द हैं।

III. राग गौरी इस में ६४ छन्द हैं।

IV राग परज—घनवरनी रूप गुमानी रगरेजनिनिपट सयानी ॥
श्रीवृषभानपौरि पै ठाडी कहति रगीली वानी ॥
टक १॥ कहीयौ री कोउ राजकुवरि सौं जाति जो रावर मांहि ॥
कै वुलाइयै पास आपु कै वेगि देहु करि नाही ॥२

इस में ५१ छन्द है।

5 राग परज—1—45

6. राग गौरी—मालिनियां पौरी आई ॥
फूलनि उलीया कांष मे याकी कहा कहौं रूप निकाई ॥ 1—45 6.

7. राग गौरी—1—41. 7.

8. राग सोरठि ॥ ताल आड ॥ नइनियां भरी जु रूप गुमान सौं तू वसति कौंन से नगर ॥ मेघ वरन नैना चपल फिरै झांकति सव ही वगर ॥ टेक ॥ 1—37. 7.

9. रागपरज—1—19. 8.

10. रागपरज—1—31. 10.

11. राग गौरी - 1—5I 11.

12. राग सोरठि—1—58. 12.

13. यथा—1—62. 13

14. राग गौरी—1—23. 14.

15. राग सोरठि—1—25. 16

16. राग गौरी—1- 67. 16 इति श्रीव्रजराजकुमार प्रेम अधिक छद्मशोडशी व्रदावनदासजीकृत्यसंपूर्णम् १॥०॥

अथ छद्म अष्टपदी लिष्यतेः —

1 राग परज—अति पंडित दूध अहारी इक आयो है ब्रह्मचारी ॥
मृगछाला ओढै सुभ लक्षन सुंदरता पै वारी ॥ 1—45.

2. राग सोरठि—1—24.

3. राग सोरठि—1—13.

4 राग काफी—1—18. 4.

5. राग गौरी—दोहा टेक वंधतामूल । I—34 5

6. राग गौरी—1—33 1.

7. राग गौरी—1—34. 1

8. राग सोरठि—1—21. 1. इति श्री छद्म अष्टपदी व्रंदावनदासजी कृत्य-सपूर्णम् । शुभमस्तु । मिति आसौज सुदि ११ संवत् १९०८ हस्ताक्षर तेजाराम के स्वस्ति ॥ मिहं पुस्तक तेजाराम जी की ॥

४—श्रीवदुनाथ कृत रास ? पंचाध्यायी । यह पुस्तक श्रीरसिकमुकटमणिनृपेन्द्र व्रजेन्द्र श्री बलवन्तसिंह नृपतिचक्रचूरामणे के लिये रची गई । उपलब्ध प्रति 'जालिमसिंह वैरि नग्रमध्ये' ला० स्यौलाल मौजपुर निवासी की आज्ञा से लिखी गई। मिति—माघ शुक्ल अष्टमो गुरुवासरे सवत् १९११ श्री सीतारामजी सहाय॥

जो उठि कै नित प्रात ही पाठ करै जन कोई ॥
च्यारि पदार्थ तासु कौं मिलै अगाऊ होई ॥

रचयिता कहता है—सज्जन श्रीबलवंतहित इह मै रची सुमोद ॥
सदा वसौ मन पांवनो रसिकन कै मनकोद ॥

छप्पै छन्दः—जब लगि कंचन मेरु गंग गोदावरि गिरजा ॥
सारद सागर अनिल अनल अवनी अस विरजा ॥
तारे ध्रुव उडराजदीपजमुना जब ताई ॥
पुष्कर और प्रयाग आदि जब लगि रहाई ॥

तब लगि श्री महाराजि नृप श्री बलबन्त ब्रजेन्द्रवर ॥
सुनौ सुनावौ याहि ह्वै ध्रुवसौं संतति सहित थिर ॥३९॥

दोहा—वसुदसषट श्री नंदहू संवत लेउ बिचारि ॥
ताकि आश्विनमास मैं पूरि करी निरधारि ॥
पावन की पावन इहै सुनि पावे गौलोक ॥
अप्रतिहत विचरचौ करै नारद लौं नहि रोक ॥४१॥

इस पुस्तक मे १ला, ३रा, ६टा, ८वां पृष्ठ नष्ट हो गए हैं—

इस मे नीचे लिखे छन्दों की रचना की गई है :—

छंद गीतिका, दोहा, अरिल्लछन्द, सवैया, काव्य छंद, कुण्डलिया, चौपई तोमर छंद, चर्चरी छंद, मधुभार छंद, नीसानी छंद, बड़ी चौपई, छन्द रोला, अष्टपदी, मुक्तादाम, रूपनागरी छन्द, काबि छंद, दंडक छन्द, अडिल्ल छंद ।

विशिष्ट छन्दों के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते है—

पत्र ११ r:—अरिल्लछंद:—बाहर के दल आठ बिराजत एक घनी ॥
कोटि सखिन के जूथ जूथपति जे भनी ॥
चतुर गान संगीत भेद बहु भांवहि ॥
पगी रहै दिन रैन जुगल के ध्यान ही ॥३०॥

पत्र १२ r:—काव्यछंद - रास क्रीडा करी काम जीव तन व्रंदावन ॥
नहि अनंग बस होई कछू हरि नै कीनौ मन ॥
छप्पै—नटवर बेस बनाइ त्रिभंगी ह्वै भए ठाडे ॥
कमल कर्णिका मद्धि परम छवि सौंहरि बाढे ॥

पत्र १६ r: —चर्चरिछंद—रुकी न तात मात भ्रात बंधु रोक हारियौ ॥
घनै उपाइ लाइ पीतमै हु ते निवारियौ ॥
नदी प्रवाह ज्यौं चली नराच चाप कै मुकै ॥
परी गुविंद मोह फंद बंधि मै किधौं रुकै ॥

पत्र १७ r:—नीसानीछंद—कही पहैलही तोहि भै नृपरसिक शिरोमनि ॥
बैर करत दिन राति ज्यौं ससिपाल पगैमन ॥
१७ v:— जोगेस्वरश्रीकृष्ण हू ईश्वर अविनासी ॥
गुनातीत भगवान अज ब्रजरूप प्रकासी ॥

पत्र २४ r:—छंद रोला—ब्रज जन आरति हरन आइ प्रगटे गहि टेवै ॥
आदि पुरष सुरलोक लोक रक्षन ज्यौं देवै ॥

पत्र ३१ v:-छंद मुक्तादाम—इहां पिय अग्र प्रिया बैठाइ ॥
लगे कच बांधन गूथि बनाई ॥

ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦਾ ਜੀਵਨ ਤੇ ਰਚਿਨਾਂਵਾ ॥

(ਸ੍ਰ: ਰਵੇਲ ਸਿੰਘ ਗੁਜਰਖਾਨੀ)

ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦਾ ਜਨਮ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਸ਼ਹਿਰ ਵਿਖੇ ਡਾਕਟਰ ਚਰਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਘਰ ੧੮੭੨ ਈਸਵੀ ਵਿੱਚ ਹੋਇਆ। ਆਪ ਜੀਦੇ ਪਿਤਾ ਵੀ ਬੜੇ ਵਿਦਵਾਨ ਸਨ। ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿੱਤ ਨੂੰ ਤ੍ਰੱਕੀ ਦੇਣ ਲਈ ਕਈ ਪੁਸਤਕਾਂ ਲਿਖੀਆਂ ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਮੋਟੀਆਂ ਮੋਟੀਆਂ ਇਹ ਹਨ 'ਹੀਰ', 'ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ', 'ਸਕੁੰਤਲਾ ਨਾਟਕ', 'ਜੰਗ ਮੜੋਲੀ', 'ਸਿਦਕੀ ਸਿਖ ਭਾਈ ਮਨੀ ਸਿੰਘ, 'ਸ਼ੀਲਾ', 'ਸਰਾਬ ਕੌਰ', ਅਟਲ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਆਦਿਕ। ਆਪ ਕਵੀ ਭੀ ਸਨ ਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸਭ ਤੋਂ ਚੰਗੀ ਕਵਿਤਾ 'ਕੇਸਰੀ-ਚਰਖਾ' ਵਿਚ ਹੈ ॥

ਹੁਣ ਅਸੀਂ ਭਾਈ ਸਾਹਿਬ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਦੀ
ਜਿੰਦਗੀ ਬਾਬਤ ਲਿਖਦੇ ਹਾਂ।

ਆਪ ਨੇ ਦਸਵੀਂ ਜਮਾਤ ੧੮੯੮ ਈਸਵੀ ਵਿਚ ਪਾਸ ਕੀਤੀ ਤੇ ਫਿਰ ਅਗੇ ਵਿਦਿਆ ਨਹੀਂ ਪੜ੍ਹੀ, ਸੋ ਪਤਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਆਪ ਜੀ ਦੀ ਤਾਲੀਮ ਬਹੁਤ ਵੱਡੀ ਨਹੀਂ। ਆਪ ਜੀ ਨੇ ਟ੍ਰੈਕਟ ਦਸਵੀਂ ਜਮਾਤ ਵਿੱਚ ਹੀ ਲਿਖਣੇ ਸੁਰੂ ਕੀਤੇ। ਆਪ ਨੇ ਸ੍ਰਦਾਰ ਮਹਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਤੇ ਸ੍ਰ: ਤ੍ਰਿਲਚਨ ਸਿੰਘ ਨਾਲ ਮਿਲਕੇ ਇਕ ਸੋਇਸਾਇਟੀ ਬਣਾਈ ਜਿਸਦਾ ਨਾਂ 'ਖਾ, ਟ੍ਰੈ, ਸੁ,' ਰਖਿਆ ਤੇ ਇਸਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵੀ ਚੰਗਾ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਆਪ ਜੀ ਦੀਆਂ ਜਿਤਨੀਆਂ ਵੀ ਪੁਸਤਕਾਂ ਹਨ (ਵਾਰਤਿਕ ਤੇ ਕਵਿਤਾ) ਸਭ ਇਸੇ ਰਾਹੀਂ ਛਪੀਆਂ ਨੇ। ਆਪ ਛਾਪਾ ਖਾਨਾ (ਵਜ਼ੀਰ ਹਿੰਦ ਪ੍ਰੈਸ) ਸ਼ੁਰੂ ਕਰਨ ਵੇਲੇ ਬਹੁਤ ਅਮੀਰ ਨਹੀਂ ਸਨ। ਪਰ ਰਬ ਨੇ ਭਾਗ ਲਾਏ ਤੇ

ਮਾਇਆ ਚੰਗੀ ਕਮਾਈ। ਸੋ ਜਦ ਆਪਣੇ ਗੁਜਾਰੇ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਚੰਗਾ ਹੋਗਿਆ ਤਾਂ ਵਿਹਲ ਵਿਚ ਆਪ ਨੇ ਕਵਿਤਾ ਲਿਖੀ। ਆਪ ਅਪਨੇ ਆਪਨੂੰ ਉੱਘਾ ਨਹੀਂ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਆਪ ਕਦੇ ਵੀ ਕਿਸੇ ਸੁਸਾਇਟੀ ਯਾ ਕਾਨਫ੍ਰੰਸ ਦੇ ਮੈਂਬਰ ਜਾਂ ਪ੍ਰਧਾਨ ਨਹੀਂ ਬਣੇ॥

ਆਪਨੇ ਸਭ ਤੋਂ ਉਘੀ ਤੇ ਪਹਿਲੀ ਕਵਿਤਾ 'ਰਾਣਾ ਸੂਰਤ ਸਿੰਘ' ਸਿਰਖੰਡੀ ਛੰਦ ਵਿਖੇ ਲਿਖੀ। ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਬੜੀ ਸੁਆਦੀ ਤੇ ਆਦੁਤੀ ਪੁਸਤਕ ਹੈ। ਇਸਦੇ ਪਿਛੋਂ ਛੋਟੀਆਂ ਛੋਟੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਇਕੱਠੀਆਂ ਕੀਤੀਆਂ ਯਥਾ 'ਬੁਲਬੁਲ ਤੇ ਰਾਹੀ' ਆਦਿ। ਆਪਨੇ ੧੯੧੬ ਵਿਚ "ਭਰਥਰੀ ਹਰੀ ਦੇ ਸ਼ਤਕ" ਦਾ ਤਰਜਮਾ ਕੀਤਾ॥

ਆਪਤੇ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ ਪੂਰਨ ਸਿੰਘ ਦਾ ਬਹੁਤ ਹੀ ਅਸਰ ਪਿਆ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਜੋਰ ਦੇਣ ਤੇ ਆਪਨੇ ੧੯੨੧ ਵਿਚ "ਲਹਿਰਾਂ ਦੇ ਹਾਰ" ੧੯੨੫ ਵਿਚ "ਮਟਕ ਹੁਲਾਰੇ" ਤੇ ੧੯੨੭ ਵਿਚ "ਬਿਜਲੀਆਂ ਦੇ ਹਾਰ" ਛਪਵਾਏ॥

ਟੈਕਸਟ ਬੁਕ ਕਮੇਟੀ ਵਲੋਂ ੧੦੦੦) ਇਨਾਮ "ਮਟਕ _ਲਾਰੇ" ਵੱਲੋਂ ਮਿਲਿਆ॥

ਆਪ ਨੇ ਵਾਰਤਿਕ ਵਿਚ ਵੀ ਬਹੁਤ ਕਿਤਾਬਾਂ ਤੇ ਟ੍ਰੈਕਟ ਲਿਖੇ। ਆਪਦਾ ਨਸਰ ਵਿੱਚ ਕੰਮ ਕਵਿਤਾ ਕੋਲੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਹੈ॥

ਕਈਆਂ ਦੀ ਇਹ ਰਾਏ ਹੈ ਕਿ ਆਪ ਨੇ ਇਕਲਿਆਂ ਇਤਨਾਂ ਕੰਮ ਕੀਤਾ ਹੈ ਜਿਤਨਾ ੨੦੦ ਆਦਮੀ ਰਲਕੇ ਕਰਦੇ ਹਨ॥

ਆਪਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿੱਚ ਨਾਵਲ "ਬਾਵਾ ਨੌਧ ਸਿੰਘ" ਲਿਖਿਆ ਜਿਸਦਾ ਪਹਿਲਾ ਹਿੱਸਾ ਬੜਾ ਸੁਆਦਲਾ ਹੈ॥

ਆਪਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਗੀਤ ਬਹੁਤ ਘਟ ਹਨ। ਆਪਦੇ ਖਿਆਲਾਂ ਦੀ ਡੂਘਆਈ ਦਰਿਆ ਏਮਜ਼ਨ ਤੇ ਕਾਂਗੋ ਵਾਕਰ ਹੈ। ਤੇ

ਖਿਆਲ ਠਹਿਰ ਠਹਿਰ ਕੇ ਚਲਦਾ ਹੈ। ਆਪਦੀ ਤਬੀਅਤ ਵਿਚ ਸਰਲਤਾ ਮੌਜੂਦ ਹੈ॥

ਜਿਸਤਰ੍ਹਾਂ ਗਰੇ 'Grey' ਅਰ ਮਿਲਟਨ Milton" ਨੇ ਥੋੜੀ ਵਿਦਿਆ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤੀ ਸੀ ਪ੍ਰੰਤੂ ਕਵਿਤਾ ਬਹੁਤ ਲਿਖ ਗਏ, ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਭਾਵੇਂ ਭਾਈ ਸਾਹਿਬ ਵਿੱਚ ਵਿਦਵਤਾ ਘਟ ਹੈ ਪਰ ਕਵਿਤਾ ਬਹੁਤ ਲਿਖੀ ਹੈ॥

ਆਪ ਜੀਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਹਾਸ ਰਸ ਬਹੁਤ ਹੀ ਘਟ ਹੈ। ਥੋੜਾ ਜਿਹਾ ਹਾਸ ਰਸ 'ਗੰਗਾ ਰਾਮ' ਨਾਮੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਆਪ ਜੀ ਦੇ ਰਾਣਾ ਸੂਰਤ ਸਿੰਘ ਵਿੱਚ ਤਾਂ ਪਹਿਲੇ ਸਫਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕਰੁਣਾ ਰਸ ਭਰਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ॥

ਆਪ ਜੀ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਦੀਆਂ ਖ਼ੂਬੀਆਂ ਇਹ ਹਨ:—

ਆਪ ਜੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਕਵਿਤਾ ਬਹੁਤੀ ਬੈਂਤਬਾਜੀ ਵਿੱਚ ਹੀ ਲਿਖੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ, ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਮਾਤ੍ਰਾਂ ੪੫ ਤਕ ਲੈ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਤੇ ਕਈ ਵਾਰੀ ਮਾਤ੍ਰਾਂ ਦਾ ਕੋਈ ਖਿਆਲ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਜਿਹੜਾ ਕਵੀ ਉਠਦਾ ਉਹ ਪਹਿਲੇ ਪੰਜਾ "ਹੀਰ" ਲਿਖਣ ਤੇ ਹੀ ਜਮਾਂਦਾ ਸੀ ਤੇ ਫਿਰ ਸੱਸੀ ਪੁੰਨੂੰ, ਸੋਹਣੀ ਮਹੀਵਾਲ, ਗੋਪੀਚੰਦ ਆਦਿ। ਭਾਈ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਪਹਿਲੇ ਕਵੀ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿੱਚ ਮਾਤ੍ਰਿਕ ਪੂਰਨਤਾ ਪਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਕਈਆਂ ਥਾਂਵਾਂ ਤੇ ਇਹ ਵੀ ਮਾਤ੍ਰਾਂ ਪੂਰੀਆਂ ਹੋਣ ਅਰ ਨਾ ਹੋਣ ਵਲ ਧਿਆਨ ਨਹੀਂ ਦੇਂਦੇ, ਸਗੋਂ ਖਿਆਲ ਨੂੰ ਪਾਠਕਾਂ ਅਗੇ ਰੱਖਨ ਦਾ ਖੁਲਮ ਖੁਲਾ ਯਤਨ ਕਰਦੇ ਹਨ॥

ਆਪਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ ਫਾਰਸੀ ਦੀ ਰੁਬਾਈ ਵਾਕਰ ਤੁਰਿਆਈ ਦੇ ਸੂਰਤ ਦੇ ਛੰਦ ਹਨ ਜਿਸ ਵਿਚ ੧-੨-੪ ਦਾ ਤੁਕਾਂਤ ਹੈ ਯਥਾ:—

"ਡਾਲੀ ਨਾਲੋਂ ਤੋੜਨਾ ਸਾਨੂੰ ਅਸਾ ਹਟ ਮਹਕ ਦੀ ਲਾਈ।
ਲਖ ਗਾਹਕ ਜੇ ਸੁੰਘੇ ਆਕੇ ਖਾਲੀ ਇਕ ਨਾਂ ਜਾਈ।
ਤੂੰ ਜੇ ਇਕ ਤੋੜ ਕੇ ਲੈਗਿਉਂ ਇਕ ਜੋਗਾ ਰਹਿ ਜਾਸਾਂ।

ਉਹ ਭੀ ਪਲਕ ਡਲਕ ਦਾ ਮੇਲਾ ਰੂਪ ਮਹਿਕ ਨਸ ਜਾਈ ॥

ਆਪ ਜੀ ਫੁਲ, ਪਹਾੜ, ਜਾਂ ਦਰਿਆ ਦੀ ਸੁੰਦ੍ਰਤਾ ਨਹੀਂ ਦਸਣਗੇ ਪਰ ਉਸਦੇ ਅਧਾਰ ਤੇ ਸਿਦਕ ਤੇ ਵੈਰਾਗ ਦਾ ਭਾਵ ਕਢਣਗੇ ॥

ਆਪਜੀ ਅਗੰਮੀ ਗਲਾਂ ਦਸਣ ਵਾਲੇ ਹਨ, ਖਿਆਲਾਂ ਦੀ ਦੂਰੀ ਮਿਲਟਨ (Milton) ਵਾਂਗ ਜਾਪਦੀ ਹੈ। ਮਜ਼ਮੂਨਾਂ ਦੇ ਤੌਰ ਤੇ Browing ਨਾਲ ਮਿਲਦੇ ਹਨ ਜਾਂ ਜਿਕਰ "He builds a dome of thoughts over small ideas', ਭਾਵ ਭਾਈ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਨਿੱਕੇ ਨਿੱਕੇ ਖਿਆਲਾਂ ਤੇ ਮਹਿਲ ਮਾੜੀਆਂ ਉਸਾਰਦੇ ਹਨ ॥

ਆਪਦੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ "ਜਿੰਦਗੀ ਅਰ ਪਿਆਰ" ਤੇ ਬਹੁਤ ਚਾਨਣਾ ਪਇਆ ਦਿਸਦਾ ਹੈ ॥

ਆਪਜੀ ਦੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਤੋਂ ਪਤਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਪਿਆਰ ਮਨ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਆਪ ਜੀ 'ਲਹਿਰਾਂ ਦੇ ਹਾਰ' ਵਿੱਚ 'ਤ੍ਰੇਲ ਤੁਪਕੇ'ਸਫਾ ੪ ਤੇ ਲਿਖਦੇ ਹਨ:–

"ਜੀ ਮੇਰੇ ਕੁਛ ਹੁੰਦਾ ਸਹੀਓ ਉਡਦਾ ਹੱਥ ਨ ਆਵੇ
ਕਤਣ ਤੁੰਮਣ, ਹਸਣ, ਖੇਡਣ, ਖਾਵਣ ਮੂਲ ਨਾ ਭਾਵੇ,
ਨੈਣ ਭਰਨ, ਖਿਚ ਚੜ੍ਹੇ ਕਾਲਜੇ ਬਉਰਾਨੀ ਹੋ ਜਾਵਾਂ.

ਤਿੰਵਣ ਦੇਸ ਬਿਗਾਨਾ ਦਿੱਸੇ, ਘਰ ਖਾਵਣ ਨੂੰ ਆਵੇ। "

ਇਹ ਪਹਿਲੀ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਪਉੜੀ ਹੈ। ਫਿਰ ਉਦਾਸੀ, ਚਾਟਤਾ ਤੇ ਵੈਰਾਗ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਖਿਚ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਅਰੂਪ ਦੇ ਦਿਦਾਰ ਦੀ।

ਆਪ ਜੀ ਸਫਾ ੨੯ ਬਿਜਲੀਆਂ ਦੇ ਹਾਰ ਵਿੱਚ ਲਿਖਦੇ ਹਨ:–

(ਸਾਈਂ ਲਈ ਤੜਪ):–

"ਤੜਪ ਗੋਪੀਆਂ ਕ੍ਰਿਸ਼ਨ ਮਗਰ ਜੋ ਲੋਕੀ ਪਏ ਸੁਣਾਂਵਨ,
ਲੁੱਛਣ ਸੱਚੀ, ਪੁਨੂੰ ਪਿਛੇ, ਜੋ ਥਲ ਤੜਫ ਦਿਖਾਵਨ,

ਫਿਰ ਇਸੇ ਵਿਚ ਅਗੇ ਜਾਕੇ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ:–

'ਰੇ ਅਰੂਪ ਇਹ ਤੜਪ ਉਹੋ ਨਹੀਂ, ਧੁਰੋ ਤੁਸਾਂ ਜੋ ਲਾਈ ?

ਕੀ, ਇਹ ਚਿਣਗ ਨਹੀਂ ਉਹ, ਜੇਹੜੀ ਤੁਸਾਂ ਸੀਨਿਆਂ ਪਾਈ ?'

ਸੂਫੀਆਂ ਨਾਲ ਇਹ ਖਿਆਲ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਕਿ ਦੁਨਿਆਵੀ ਪ੍ਰੇਮ ਵੀ ਉਸੇ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਝਲਕ ਹੈ, ਚਿਣਗ ਉਹੀ ਸੀ ।

ਪ੍ਰੇਮ ਦੀਆਂ ਔਕੜਾਂ ਦਸਦੇ ਹੋਏ ਆਪ 'ਤੂਲ ਤੁਪਕੇ' ਵਿਚ ਲਿਖਦੇ ਹਨਃ-

(ਲੱਗੀਆਂ ਨਿਭਣ)

"ਪੱਥਰ ਨਾਲ ਨੇਹੁੰ ਲਾ ਬੈਠੀ–ਨਾਂ ਹੱਸੇ ਨਾ ਬੋਲੇ,
ਸੋਹਣਾ ਲਗੇ ਮਨ ਨੂੰ ਮੋਹੇ, ਘੁੰਡੀ ਦਿਲੋਂ ਨਾ ਖੋਲ੍ਹੇ ।
ਛੱਡਯਾ ਛੱਡਿਆਂ ਜਾਂਦਾ ਨਾਹੀਂ, ਮਿਲਿਆਂ ਨਿੱਘ ਨ ਕੋਈ ।
ਹੱਛਾ ਜਿਵੇਂ ਰਜਾ ਹੈ ਤੇਰੀ, ਅੱਖੀਅਹੁੰ ਹੋਹਿ ਨ ਉਹਲੇ ॥"

ਇਹ ਉਤਲੀ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਦੂਜੀ ਪੌੜੀ ਹੈ । ਫਿਰ ਤੀਸਰਾ ਦਰਜਾ ਪਿਆਰ ਦਾ ਆਪ ਦਸਦੇ ਹਨ ।

"ਮਟਕ ਹੁਲਾਰੇ" ਵਿੱਚ 'ਸ਼ਹੁ ਖਿੱਚਾ ਵਾਲੇ' ਸਿਰ ਲੇਖ ਹੇਠਃ–

"ਅਸੀਂ ਸਿਕਦੇ, ਤੁਸੀਂ ਸਿਕਦੇ ਨਾਂਹੀ ?
ਅਸਾਂ ਇਹ ਗਲ ਸੀ ਸਹੀ ਕੀਤੀ,
ਇਕ ਦਿਨ ਸਿਕਦਯਾਂ ਲੜ ਤੇਰੇ ਦੀ,
ਅਸਾਂ ਛੁਹ ਜੋ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤੀ :
"ਸਿਕਣ ਸਾਡਾ ਸੀ ਖਿਚ ਤੁਸਾਡੀ,
ਸਾਨੂੰ ਇਹ ਗਲ ਨਜਰੀ ਆਈ
ਤੁਸੀਂ ਚੁੰਬਕ ਸ਼ਹੁ ਖਿਚਾਂ ਵਾਲੇ,
ਤੁਸਾਂ ਸਿਕ ਅਸਾਂ ਦਿਲ ਸੀਤੀ ॥"

'ਸਹੀ ਕੀਤੀ' ਪੋਠੋਹਾਰੀ ਸ਼ਬਦ ਹੈ । ਸੋ ਪਤਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਆਪਦਾ ਪੋਠੋਹਾਰੀਆਂ ਨਾਲ ਮੇਲ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਬਾਹਲਾ ਅਸਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਤੇ ਪਿਆ ਹੈ ॥

ਚੌਥਾ ਦਰਜਾ ਪਿਆਰ ਦਾ ਆਪ ਦਸਦੇ ਹਨ "ਤ੍ਰੇਲ ਤੁਪਕੇ" ਲਹਿਰਾ ਦੇ ਹਾਰ ਵਿਚੋਂ:–

(ਵਿਛੋੜਾ–ਵਸਲ)

"ਸਾਬਣ ਲਾ ਲਾ ਧੋਤਾ ਕੋਲਾ, ਦੁੱਧ ਦਹੀਂ ਵਿਚ ਪਾਇਆ,
ਖੁੰਭ ਚਾੜ੍ਹ, ਰੰਗਣ ਭੀ ਧਰਿਆ, ਰੰਗ ਨ ਏਸ ਵਟਾਇਆ, ਵਿੱਛੁੜ ਕੇ
ਕਾਲਕ ਸੀ ਆਈ, ਬਿਨ ਮਿਲਿਆਂ ਨਹੀਂ ਲੰਹਦੀ: ਅੰਗ ਅਗ
ਦੇ ਲਾਕੇ ਦੇਖੋ, ਚੜ੍ਹਦਾ ਰੂਪ ਸਵਾਇਆ"

ਇਸ ਕਵਿਤਾ ਦਾ ਭਾਵ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਅਸੀਂ ਅਸਲੇ ਨੂੰ ਭੁਲ ਗਏ ਸਾਂ ਇਸ ਕਰਕੇ "ਜਨਮ ਜਨਮ ਕੀ ਇਸ ਮਨ ਕੋ ਮਲ ਲਾਗੀ ਕਾਲਾ ਹੋਆ ਸਿਆਹ"

ਭਾਈ ਜੀ ਦੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਮਸਤੀ ਦੱਸੀ ਹੈ ਪਰ ਇਹ ਮਸਤੀ ਹੋਸ਼ਾ ਨੂੰ ਟਿਕਾ ਕੇ ਰਖਦੀ ਹੈ। ਮਸਤੀ ਅੰਨ੍ਹਾਂ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ॥

ਆਪਜੀ ਲਹਿਰਾਂ ਦੇ ਹਾਰ ਵਿੱਚ ਦਸਦੇ ਹਨ॥

(ਹੋਸ਼–ਮਸਤੀ)

"ਕਿਉਂ ਹੋਯਾ ? ਤੇ ਕੀਕੂੰ ਹੋਇਆ ?" ਖਪ ਖਪ ਮਰੇ ਸਿਆਣੇ,
ਓਸੇ ਰਾਹ ਪਵੇਂ ਕਿਉਂ ਜਿੰਦੇ, ਜਿਸ ਰਾਹ ਪੂਰ ਮੁਹਾਣੇ;
ਭਟਕਣ ਛੱਡ, ਲਟਕ ਲਾ ਇੱਕੋ, ਖੀਵੀ ਹੋ ਸੁਖ ਮਾਣੀਂ।
ਹੋਸ਼ਾ ਨਾਲੋਂ ਮਸਤੀ ਚੰਗੀ, ਰਖਦੀ ਸਦਾ ਟਿਕਾਣੇ।"

ਮਸਤੀ ਮਿਲਾਪ ਦੀ ਆ ਵੀ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਵੀ ਹੋਸ਼ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ।

ਆਪ ਕੁਦਰਤ ਦੇ ਕਵੀ ਕਿਸਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਹਨ, ਉਹ ਇਹ ਨਹੀਂ ਚਾਹੁੰਦੇ ਕਿ ਅਸੀਂ ਹੂਬਹੂ ਬਿਆਨ ਕਰੀਏ॥

ਆਪ ਜੀ ਇਨਸਾਨ ਦਾ ਪਰਭਾਵ ਕੁਦਰਤ ਤੇ ਪਾਉਂਦੇ ਹਨ ਕੁਦਰਤ ਆਪਣੇ ਆਪ ਅੰਦਰ ਖ਼ੂਬ ਸੂਰਤ ਨਹੀਂ, ਬੰਦੇ ਦਾ ਇਸਤੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੈ॥

ਸਿਖ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਵਾਧੇ ਲਈ ਆਪਨੇ "ਕਲਗੀਧਰ ਚਮਤਕਾਰ" "ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਚਮਤਕਾਰ" "ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਕੋਸ਼" "ਗੁਰ ਸਿਖ ਫੁਲਵਾੜੀ" ਤੇ ਹੋਰ ਅਨੇਕਾਂ ਹੀ ਪੁਸਤਕ ਰਚੇ ਹਨ ॥

ਕਹਾਣੀ ਬਾਬਾ ਨੌਧ ਸਿੰਘ

ਇੱਕ ਜਮਨਾਂ ਨਾਮੇ ਸੱਜ ਵਿਆਹੀ ਕੁੜੀ ਦਾ ਪਤੀ ਕਾਲ ਵੱਸ ਹੋ ਗਿਆ ਤਾਂ ਉਹ ਹਰ ਵੇਲੇ ਉਦਾਸ ਰਹਿਨ ਲੱਗੀ । ਮਰਨੇ ਦੇ ਦਿਨ ਤਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਆਵਾ ਜਾਈ ਕਰਕੇ ਲੰਘ ਗਏ ਪਰ ਪਿੱਛੋਂ ਵਿਚਾਰੀ ਲੱਗੀ ਗੋਤੇ ਖਾਣ। ਹਰ ਵੇਲੇ ਇਹੋ ਖਿਚ ਲੱਗੀ ਰਹੇ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਪਤੀ ਨੂੰ ਦੇਖਾਂ। ਇਕ ਦਿਨ ਸੁਪਨੇ ਵਿਚ ਦੇਖਿਆ ਕਿ ਪਤੀ ਦੋ ਜਮਦੂਤਾਂ ਨੇ ਪਕੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ ਤੇ ਉਸਦਾ ਹਿਸਾਬ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਹ ਦੇਖਕੇ ਦੁਨੀਆਂ ਵੱਲੋਂ ਦਿਲ ਉਪਰਾਮ ਹੋ ਗਇਆ ਤੇ ਇਹ ਚਾਹ ਹੋਈ ਜੋ ਕਿਵੇਂ ਪਰਮਾਰਥ ਦਾ ਕੁਝ ਪਤਾ ਲੱਗੇ ॥

ਇਕ ਦਿਨ ਆਪਣੇ ਮਨ ਦਾ ਖਿਆਲ ਇਸਨੇ ਇਕ ਬੁੱਢੀ ਨੂੰ ਜਿਹੜੀ ਸ਼ਰੀਕੇ ਵਿੱਚੋਂ ਇਸਦੀ ਦਾਦੀ ਲਗਦੀ ਸੀ, ਉਸ ਅਗੇ ਜ਼ਾਹਰ ਕੀਤਾ ਤਾਂ ਉਹ ਇਸਨੂੰ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੰਦੀ ਰਹੀ ਜਿਸ ਨਾਲ ਇਸਦਾ ਮਨ ਪਰਮਾਰਥ ਵੱਲ ਹੋਰ ਲੱਗ ਗਿਆ ॥

ਇੱਕ ਦਿਨ ਇਸਨੂੰ ਇੱਕ ਹੋਰ ਬੁੱਢੀ ਮਾਈ ਮਿਲ ਪਈ ਜਿਸਨੇ ਇਸ ਦੇ ਕੋਲੋਂ ਪੁੱਛਿਆ ਕਿ ਬੱਚੀ ਤੂੰ ਇੱਡੀ ਉਦਾਸ ਕਿਉਂ ਹੈਂ। ਇਸਨੇ ਆਪਨੇ ਮਨ ਦਾ ਭਾਂਡਾ ਫੋੜ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੈਨੂੰ ਪਤੀ ਮਿਲਨ ਦੀ ਬੜੀ ਚਾਹ ਹੈ॥

ਮਾਈ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੈਂ ਤੈਨੂੰ ਇਕ ਮਾਂਦ੍ਰੀ ਜੀ ਦੇ ਕੋਲ ਲੈ ਚਲਾਂਗੀ ਉਹ ਤੈਨੂੰ ਪਤੀ ਭੀ ਮਿਲਾ ਦੇਵੇਗਾ ਤੇ ਸੁਰਗ ਵਿਚ ਭੀ ਪੁਚਾ ਦੇਵੇਗਾ। ਅੰਤ ਇਕ ਦਿਨ ਉਹ ਮਾਈ ਜਮਨਾਂ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਗਈ ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਸੰਤਾਂ

ਨੂੰ ਮਿਲਾਇਆ। ਸੰਤਾਂ ਨੇ ਧੀਰਜ ਦਿੱਤੀ ਕਿ ਘਬਰਾ ਨਾ, ਤੈਨੂੰ ਤੇਰਾ ਪਤੀ ਮਿਲਾ ਦਿਆਂਗੇ ਅਤੇ ਸੁਰਗ ਭੀ ਦਿਖਾ ਦਿਆਂਗੇ । ਇੰਜ ਕਰੀਂ ਕਿ ਆਪਣਾ ਧਨ ਦੌਲਤ ਨਾਲ ਲੈ ਆਵੀਂ ਤਾਂ ਕਿ ਤੇਰੀ ਸੁਰਤ ਪਿੱਛੇ ਨਾ ਰਹੇ। ਉਸ ਪਤੀ ਦੇ ਮਿਲਾਪ ਦੀ ਚਾਹ ਵਾਲੀ ਜਮਨਾ ਨੇ ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੀ ਕੀਤਾ ਤੇ ਉਹ ਠੱਗ ਸਾਧੂ ਉਸਨੂੰ ਪਹਾੜੀ ਇਲਾਕੇ ਵਿਚ ਲੈ ਗਿਆ ਤੇ ਇਕ ਵਗਦੇ ਹੋਏ ਪਹਾੜੀ ਨਾਲੇ ਦੇ ਕਿਸੇ ਉੱਚੇ ਪੱਥਰ ਤੇ ਬਿਠਾ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਇਸ ਜਲ ਵਲ ਬਗ਼ੈਰ ਅੱਖ ਝਮਕੇ ਦੇ ਦੇਖਦੀ ਰਹੁ । ਇਸ ਵਿੱਚੋਂ ਤੈਨੂੰ ਇੱਕ ਦਰਵਾਜ਼ਾ ਦਿੱਸੇਗਾ ਤਾਂ ਝੱਟ ਛਾਲ ਮਾਰਕੇ ਦਰਵਾਜੇ ਵਿਚ ਵੜ ਜਾਂਵੀਂ। ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਦਰਵਾਜ਼ਾ ਬੰਦ ਹੋਜਾਵੇਗਾ ਤੇ ਤੈਨੂੰ ਪਤੀ ਦਾ ਮਿਲਾਪ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗਾ ॥

ਉੱਥੇ ਬਿਠਾਂਣ ਲਗਿਆਂ ਠੱਗ ਨੇ ਗੈਹਣਿਆਂ ਦਾ ਡੱਬਾ ਤਾਂ ਆਪ ਲੈ ਲੀਤਾ ਤੇ ਉਸਨੂੰ ਬਿਠਾਲ ਕੇ ਆਪ ਪਤੱਰਾ ਵਾਚ ਗਿਆ।

ਦੇਵਨੇਤ ਨਾਲ ਉੱਥੇ ਇਕ ਪਾਦਰੀ ਸਾਹਿਬ ਆ ਨਿਕਲੇ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਇਸਨੂੰ ਬੈਠੀ ਦੇਖਕੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਹੇ ਬੀਬੀ ਤੂ ਕਿਉਂ ਇੱਥੇ ਬੈਠਕੇ ਜਾਨ ਦੇਣ ਲੱਗੀ ਹੈਂ ਇੱਥੋਂ ਉੱਠ। ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਬੋਲਨਾ ਨਹੀਂ ਚਾਹੁੰਦੀ ਸੀ ਪਰ ਇਸਦੇ ਘੜੀ ਘੜੀ ਬੁਲਾਉਣ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲਗੀ ਕਿ ਮੈਂ ਮਰਨ ਲਈ ਨਹੀਂ ਬੈਠੀ ਮੈਂ ਤਾਂ ਪਤੀ ਨੂੰ ਮਿਲਨ ਲਈ ਬੈਠੀ ਹਾਂ ਅਤੇ ਆਪਣੀ ਸਾਰ੍ਹ ਵਿਥਿਆ ਸੁਨਾਈ। ਤੇ ਪਾਦਰੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਉਹ ਤਾਂ ਠੱਗ ਸੀ ਤੈਨੂੰ ਠੱਗ ਕੇ ਲੈ ਗਿਆ ਹੈ। ਜੇ ਤੂੰ ਸੱਚੇ ਰਸਤੇ ਚਲਨਾ ਹੈ ਤਾਂ ਆ ਮੈਂ ਤੈਨੂੰ ਮੁਕਤੀ ਦਵਾ ਕੇ ਪਤੀ ਵੀ ਮਿਲਾਵਾਂਗਾ। ਅਭਾਗਣ ਜਮਨਾ ਹੋਰ ਕੋਈ ਆਸਰਾ ਨਾ ਸਮਝਕੇ ਉਸਦੇ ਨਾਲ ਟੁਰ ਪਈ। ਉਸਨੇ ਗਿਰਜੇ ਵਿੱਚ ਲਿਜਾਕੇ ਇਸਨੂੰ ਈਸਾਈ ਬਨਾਇਆ ਤੇ ਇਸਦਾ ਨਾਂ "ਮਿਸ ਡੁਹੇਲੀ" ਰਖਿਆ ਗਿਆ। ਥੋੜੇ ਚਿਰ ਪਿੱਛੋਂ ਹੀ ਇਸਨੂੰ ਵਿਆਹ ਕਰਨ ਵਾਸਤੇ ਸੁਨੇਹੇ ਆਵਨ ਲੱਗ ਪਏ। ਇਹ ਪਤਿਬ੍ਰਤ ਧਰਮ ਵਿੱਚ ਜੰਮੀ ਪਲੀ ਸੀ ਇਸ ਕਰਕੇ ਬੜੀ ਦੁਖੀ ਹੋਈ

ਤੇ ਛੁਟਕਾਰੇ ਦੀਆਂ ਤਰਕੀਬਾਂ ਢੂੰਡਨ ਲੱਗੀ। ਆਖਰ ਇਕ ਮੁਸਲਮਾਨੀ ਨੇ ਜੋ ਇੱਥੇ ਆਇਆ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਦੀ ਸੀ ਇੱਥੋਂ ਕੱਢ ਕੇ ਲਾਹੌਰ ਆਪਣੇ ਕਿਸੇ ਰਿਸ਼ਤੇਦਾਰ ਦੇ ਘਰ ਭੇਜ ਦਿਤਾ। ਤੇ ਉੱਥੇ ਇਸਨੂੰ ਮਸੀਤੇ ਲਿਜਾ ਕੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਬਨਾਯਾ ਗਿਆ। ਇਕ ਮੌਲਵੀ ਸਾਹਿਬ ਇਸਨੂੰ ਇਸਲਾਮ ਦੀ ਵਿਦਿਆ ਦੇਣ ਤੇ ਲੱਗੇ। ਥੋੜੇ ਚਿਰ ਪਿੱਛੋਂ ਇੱਥੇ ਵੀ ਉਹੋ ਵਿਆਹ ਦਾ ਰਾਗ ਛਿੜ ਪਿਆ ਤੇ ਪਤੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਨਾ ਹੋਏ ਅਤੇ ਸ਼ਾਂਤਿ ਨਾ ਲੱਭੀ॥

ਬੜੀ ਉਦਾਸ ਤੇ ਜੀਵਨ ਤੋਂ ਨਿਰਾਸ ਹੋਗਈ। ਉਸੇ ਗਲੀ ਵਿਚ ਕੁਵਾਰੇ ਹੁੰਦਿਆਂ ਦੀ ਇਕ ਸਹੇਲੀ ਮਿਲ ਪਈ ਉਸ ਅਗੇ ਆਪਣੀ ਵਿਥਿਆ ਫੋਲੀ। ਉਸਨੇ ਇਕ ਪ੍ਰੇਮਣ ਸਿੰਘਣੀ ਨੂੰ ਮਿਲਾਇਆ ਜਿਸਨੇ ਧੀਰਜ ਦਿੱਤੀ। ਪਰ ਦੁੱਧ ਦਾ ਸੜਿਆ ਲੱਸੀ ਨੂੰ ਭੀ ਫੂਕਦਾ ਹੈ ਇਤਬਾਰ ਨਾ ਆਇਆ। ਉਧਰ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਘਰ ਰੈਂਹਦੀ ਸੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪਤਾ ਲਗ ਗਿਆ ਕਿ ਇਹ ਸਿਖਾਂ ਨੂੰ ਮਿਲਦੀ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਲਾਹ ਕੀਤੀ ਕਿ ਇਸਨੂੰ ਦਿੱਲੀ ਲੈ ਚੱਲੋ। ਇਹ ਦੇਖਕੇ ਇਸਨੇ ਜੀਵਨ ਤੋਂ ਨਿਰਾਸ ਹੋਕੇ ਦਰਿਆ ਵਿਚ ਛਾਲ ਮਾਰ ਦਿੱਤੀ॥

ਦਰਯਾ ਦੇ ਕੰਢੇ ਤੇ ਇਕ ਦੈਵੀ ਮੂਰਤ ਪਾਠ ਕਰ ਰਹੀ ਸੀ ਅਚਾਨਕ ਪਾਠ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਸਿੰਘ ਦੀ ਨਜ਼ਰ ਰੁੜ੍ਹੀ ਜਾਂਦੀ ਜਮਨਾਂ ਤੇ ਪਈ ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਝੱਟ ਛਾਲ ਮਾਰਕੇ ਇਸਨੂੰ ਕੱਢ ਲਿਆਂਦਾ। ਜਦੋਂ ਹੋਸ਼ ਆਈ ਤਾਂ ਇਹ ਫੇਰ ਛਾਲ ਮਾਰਨ ਲਈ ਤਿਆਰ ਹੋਗਈ। ਇਹ ਦੇਖ ਉਸ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਯਕੀਨ ਹੋਗਿਆ ਕਿ ਇਹ ਦੇਵਨੇਤ ਨਾਲ ਰੁੜ੍ਹੀ ਹੋਈ ਇਸਤ੍ਰੀ ਨਹੀਂ ਇਹ ਤਾਂ ਆਤਮ–ਘਾਤਨ ਹੈ। ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਪੁੱਛਿਆ ਜੋ ਹੇ ਬੀਬੀ, ਤੂੰ ਕਿਉਂ ਆਤਮ ਘਾਤ ਦਾ ਪਾਪ ਕਰਦੀ ਹੈ ? ਤੈਨੂੰ ਕੀਹ ਦੁਖ ਹੈ ?

ਅਭਾਗਣ ਜਮਨਾ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਹੇ ਪੁਰਸ਼ ਮੈਨੂੰ ਨਾ ਰੋਕ ਤੇ ਮੈਨੂੰ ਮਰਨ ਦੇਹ ਕਿਉਂ ਜੋ ਮੈਂ ਕਰਮਾਂ ਦੀ ਮਾਰੀ ਦੁਨੀਆਂ ਦੇ ਹਥੋਂ ਬੜੀ ਦੁਖੀ ਹੋਈ ਹੋਈ ਹਾਂ ਅਤੇ ਆਪਣੀ ਸਾਰੀ ਵਿਥਿਆ ਸੁਨਾਈ।

ਸਿੰਘ ਨੇ ਇਹ ਦੁਖਾਂ ਦੀ ਭਰੀ ਵਿਥਿਆ ਸੁਨਕੇ ਹੌਸਲਾ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਹੇ ਬੀਬੀ ਨਿਰਾਸ ਨਾ ਹੋ। ਜੇ ਤੈਨੂੰ ਅਜੇ ਤਕ ਸਾਰੇ ਠੱਗ ਤੇ ਅਪਸੁਆਰਥੀ ਹੀ ਮਿਲੇ ਹਨ ਤਾਂ ਇਹ ਨਾਂ ਸਮਝ ਲੈ ਕਿ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਸਾਧੂ ਨਹੀਂ, ਹੋਰ ਭਾਲ ਕਰ ॥

ਇਹ ਸੁਣ ਅਭਾਗਣ ਬੋਲੀ ਜੋ ਮੈਂ ਅਬਲਾ ਨਿਆਸਰੀ ਤੇ ਨਿਮਾਣੀ ਹਾਂ, ਕਿੱਥੇ ਢੂੰਡਾਂ। ਤੀਵੀਂ ਅਜਹੇ ਆਟੇ ਦੀ ਤੌਣ ਹੈ ਅੰਦਰ ਚੂਹੇ ਖਾਂਦੇ ਹਨਤੇ ਬਾਹਰ ਕਾਂ ਖਾਂਦੇ ਹਨ। ਮੈਂ ਇਕੱਲੀ ਹਾਂ ਮੇਰਾ ਕੋਈ ਨਹੀਂ ਮੈਨੂੰ ਮਰਨ ਹੀ ਦੇਹ। ਦੁਖੀਆ ਪਤਿਬ੍ਰਤਾ ਦੀਆਂ ਗਲਾਂ ਸੁਨ ਸਿੰਘ ਬੋਲਿਆ ਕਿ ਬੀਬੀ ਤੇਰੇ ਨਾਲ ਧਰਮ ਹੈ, ਜਿੱਥੇ ਧਰਮ ਹੈ ਉੱਥੇ ਨਿਰੰਕਾਰ ਹੈ, ਤੂੰ ਇਕੱਲੀ ਨਹੀਂ ਰੱਬ ਤੇ ਹੌਸਲਾ ਰਖ ਤੇ ਭਜਨ ਕਰ। ਗੁਰਬਾਣੀ ਦਾ ਪਾਠ ਕਰ ਮਨ ਦੇ ਸਾਂਤਿ ਹੋਨ ਨਾਲ ਨਾਮ ਜਪਨ ਨਾਲ ਤੇਰਾ ਮਨ ਟਿਕੇ ਗਾ, ਤੇ ਟਿਕਾਉ ਵਿਚ ਤੌਖਲਾ ਨਹੀਂ ਰਹੇਗਾ, ਜਦੋਂ ਤੌਖਲਾ ਮਿਟ ਗਇਆ ਤੈਨੂੰ ਕੋਈ ਡੁਲਾ ਨਹੀਂ ਸਕੇਗਾ, ਅਤੇ ਨਾਮ ਦੀ ਧੁਰ ਬਝ ਜਾਵੇਗੀ ਤਾਂ ਤੂੰ ਆਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਕੱਲੀ ਨਹੀਂ ਭਾਸੇਂਗੀ ਸਗੋਂ ਹਰ ਵੇਲੇ ਤੇਰੇ ਨਾਲ ਤੈਨੂੰ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਿੱਸੇਗਾ ॥

ਇਹ ਸੁਨਕੇ ਅਭਾਗਣ ਨੂੰ ਧੀਰਜ ਤੇ ਹੌਸਲਾ ਹੋ ਆਇਆ ਅਤੇ ਉਸ ਦੀਆਂ ਗਲਾਂ ਤੇ ਯਕੀਨ ਆਇਆ। ਧਰਮ ਤਾਂ ਅਗੇ ਹੀ ਅੰਦਰ ਸੀ। ਇਕ ਧਰਮ ਦੀ ਟੇਕ ਨਹੀਂ ਸੀ ਹੁਨ ਟੇਕ ਭੀ ਆਈ ਤੇ ਅਨੰਦ ਵਿਚ ਅੱਖਾਂ ਮਿਟ ਗਈਆਂ ਤਾਂ ਉਹ ਸਿੰਘ ਜੀ ਲੋਪ ਹੋਗਏ ਅਤੇ ਇਸ ਨੂੰ ਅਭਾਗਣ ਤੋਂ 'ਸੁਭਾਗ ਜੀ' ਕਰ ਗਏ॥

ਇਹ ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿਚ ਅੱਖਾਂ ਮੀਟੀ ਅਨੰਦ ਲੈ ਰਹੀ ਸੀ, ਕਿ ਇਕ ਸਿੰਘਣੀ ਹੱਥ ਵਿਚ ਕਟੋਰਾ ਦੁਧ ਦਾ ਲੈਕੇ ਆਈ ਅਤੇ ਸੁਭਾਗ ਜੀ ਨੂੰ ਛਕਾਯਾ ਅਤੇ ਉਸਤੋਂ ਇਸਦਾ ਹਾਲ ਪੁਛਿਆ।

ਇਸਨੇ ਆਪਣੀ ਵਿਥਿਆ ਸੁਣਾਈ ਅਤੇ ਉਹ ਸਿੰਘਣੀ ਇਸਨੂੰ ਆਪਣੀ ਬੱਚੀ ਬਣਾ ਕੇ ਘਰ ਲੈ ਗਈ। ਇਹ ਘਰ ਇਕ ਸਿੰਘ ਦਾ ਜਿਸ ਵਿਚ ਸਿਖੀ ਦੇ ਸਾਰੇ ਅਸੂਲ ਘਟਦੇ ਸਨ ਤੇ ਜੋ ਕਰਣੀ ਦਾ ਪੂਰਾ ਸਿੰਘ ਸੀ, ਉਸਦਾ ਸੀ। ਇਸ ਦਾ ਨਾਂ ਨੌਧ ਸਿੰਘ ਸੀ।

ਇਸ ਘਰ ਵਿਚ ਸੁਭਾਗ ਆਪਣਿਆਂ ਵਾਕਰ ਰਹਿਣ ਲਗੀ ਤੇ ਪਿਛਲੇ ਸਾਰੇ ਦੁਖ ਭੁਲ ਗਈ। ਕੀਹ ਦੇਖਦੀ ਹੈ ਕਿ ਇੱਥੇ ਕੋਈ ਇਸਦੇ ਧਰਮ ਦਾ ਲਾਗੂ ਨਹੀਂ ਸਾਰੇ ਨਾਮ ਜਪਦੇ ਹਨ, ਕਿਰਤ ਕਰਦੇ ਹਨ, ਤੇ ਆਏ ਗਏ ਦਾ ਆਦਰ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਸਾਰੇ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਨੌਧ ਸਿੰਘ ਦੀ ਇਜ਼ਤ ਹੈ ਤੇ ਛੋਟੇ ਵੱਡੇ ਇਸ ਨੂੰ ਪਿਆਰ ਕਰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਤਕ ਭੀ ਇਸਨੂੰ ਆਪਣਾਂ ਸਮਝਦੇ ਹਨ॥

ਇਕ ਦਿਨ ਸੰਗਤ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਬਾਬਾ ਜੀ ਕਥਾ ਸੁਣਾਵੇ। ਤਾਂ ਬਾਬਾ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਸਾਨੂੰ ਆਦਮੀ ਬਨਾਇਆ ਫੇਰ ਆਦਮੀਆਂ ਤੋਂ ਦੇਵਤੇ ਬਨਾ ਦਿੱਤਾ ਹੁਨ ਸਾਡਾ ਧਰਮ ਹੈ ਜੋ ਧਰਮ ਦੀ ਕਿਰਤ ਕਰੀਏ, ਵੰਡ ਛਕੀਏ, ਤੇ ਨਾਮ ਜਪੀਏ॥

ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਇਕ ਦਿਨ ਇਕ ਆਰੀਆ ਸਮਾਜੀ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਆ ਗਿਆ ਅਰ ਉਸਨੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਨਿੰਦਿਆ ਕੀਤੀ। ਲੋਕੀ ਡਾਂਗਾਂ ਲੈਕੇ ਮਗਰ ਪੈਗਏ ਬਾਬਾ ਭੀ ਉਧਰ ਦੀ ਆ ਲੰਘਿਆ ਤਾਂ ਰੌਲਾ ਵੇਖਕੇ ਪੁਛਿਆ ਕਿ ਭਾਈ ਕੀਹ ਗਲ ਹੈ। ਤਾਂ ਆਰੀਏ ਨੇ ਉੱਤਰ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਸਭਨਾਂ ਨੂੰ ਆਰੀਆ ਬਨਾਨ ਆਇਆ ਹਾਂ॥

ਬਾਬੇ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਵੀਰਾ ਅਸੀਂ ਸੁਖੀ ਵਸਦੇ ਹਾਂ ਸਾਨੂੰ ਕਿਉਂ ਦੁਬਧਾ ਵਿਚ ਪਾਉਨਾ ਹੈਂ। ਸਾਨੂੰ ਮੂਰਖਾਂ ਨੂੰ ਤ੍ਰੈ ਗੱਲਾਂ ਵਿਚ ਰਹਿਨ ਦੇਹ। ਕਿਰਤ ਕਰਨੀ, ਵੰਡ ਛਕਣਾ ਤੇ ਨਾਮ ਜਪਣਾ, ਅਸੀਂ ਮੂਰਖ ਲੋਕ

ਸੁਖਮਨੀਆਂ ਪੜ੍ਹ ਰਹੇ ਹਾਂ, ਪਰਮੇਸ਼ਰ ਦਾ ਜਸ ਕਰਦੇ ਹਾਂ, ਸੁਖੀ ਵਸਦੇ ਹਾਂ ਜਾਹ ਸਾਨੂੰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਝਮੇਲਿਆਂ ਵਿਚ ਨਾਹ ਪਾ॥

ਇਹ ਸੁਨ ਉਪਦੇਸ਼ਕ ਸ਼ਰਮਿੰਦਾ ਹੋ ਗਿਆ ਅਤੇ ਫੇਰ ਕਹਿਨ ਲਗੇ ਕਿ ਤੁਹਾਡਾ ਗੁਰੂ ਬੀ ਅਨਪੜ ਸੀ, ਇਸ ਲਈ ਤੁਸੀਂ ਭੀ ਅਨਪੜ੍ਹ ਹੀ ਰਹਿਣਾ ਹੈ। ਇਹ ਸੁਣ ਇਕ ਆਦਮੀ ਨੇ ਮੁੱਕਾ ਵਟਕੇ ਉਸਦੇ ਮੂੰਹ ਤੇ ਮਾਰਿਆ। ਬਾਬੇ ਨੇ ਉਪਦੇਸ਼ਕ ਨੂੰ ਗਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ ਤੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਭੀ ਠੰਡਿਆਂ ਕੀਤਾ॥

ਉਪਦੇਸ਼ਕ ਬਾਬੇ ਦੇ ਮਿੱਠੇ ਸੁਭਾਵ ਤੇ ਖਿਮਾਂ ਰੂਪ ਹੋਨ ਤੇ ਮੋਹਤ ਹੋਗਿਆ ਅਰ ਆਪਨੇ ਵਿਚ ਔਗੁਣ ਭਾਸਨ ਲੱਗੇ। ਆਖਰ ਬਾਬੇ ਦੇ ਪੈਰਾਂ ਤੇ ਡਿੱਗਾ ਅਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੈਨੂੰ ਆਪਨੇ ਵਿਚ ਰਲਾ ਲਵੇ॥

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਇਕ ਦਿਨ ਗੁਰਦੁਵਾਰੇ ਲੰਗਰ ਹੋਇਆ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਨੇ ਨਾ ਛਕਿਆ ਤਾਂ ਬਾਬੇ ਨੂੰ ਪਤਾ ਲਗਾ ਕਿ ਇਕ ਮੌਲਵੀ ਸਾਹਿਬ ਆਏ ਹਨ ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਮੁਸਲਮਾਨਾ ਨੂੰ ਪੱਟੀ ਪੜ੍ਹਾਈ ਹੈ, ਬਾਬੇ ਨੇ ਮੌਲਵੀ ਸਾਹਿਬ ਨੂੰ ਭੀ ਆਪਨੀਆਂ ਦਲੀਲਾਂ ਅਤੇ ਮਿੱਠੇ ਸੁਭਾ ਦੇ ਵਸ ਕਰਲਿਆ ਤੇ ਹਿੰਦੂ ਮੁਸਲਮਾਨਾ ਨੂੰ ਜਫੀਆਂ ਪਾਕੇ ਮਿਲਾ ਦਿੱਤਾ॥

ਇਕ ਦਿਨ ਇਕ ਵਾਹਜ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਨੇ ਰਸੂਲ ਨੂੰ ਗਾਲ੍ਹ ਕੱਢੀ ਤਾਂ ਇਕ ਮੁਸਲਮਾਨ ਨੇ ਉਸਦੇ ਈਸਾ ਨੂੰ ਬੁਰਾ ਭਲਾ ਕਹਿ ਦਿੱਤਾ ਇਸ ਤੇ ਝਗੜਾ ਹੋ ਪਿਆ। ਉਹ ਪੁਲਸ ਨੂੰ ਲੈ ਆਇਆ ਗਰੀਬ ਮੁਸਲਮਾਨ ਨੂੰ ਹਥਕੜੀ ਲਗ ਗਈ। ਬਾਬੇ ਨੂੰ ਖਬਰ ਹੋਈ ਤਾਂ ਬਾਬਾ ਝੱਟ ਪੱਟ ਉਸਦੀ ਮਦਦ ਨੂੰ ਪਹੁੰਚਿਆ ਅਤੇ ਵੱਡੇ ਪਾਦਰੀ ਕੋਲ ਜਾਕੇ ਆਪਨੇ ਮਿਠੇ ਸੁਭਾਵ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਾਕੇ ਅਤੇ ਅਸਲੀਅਤ ਤੇ ਇਨਸਾਫ਼ ਦਸਕੇ ਉਸ ਗਰੀਬ ਦੀ ਖਲਾਸੀ ਕਰਾਈ॥

ਇਹ ਗਲਾਂ ਵੇਖ ਵੇਖ ਕੇ ਸੁਭਾਗ ਹੈਰਾਨ ਹੋਰਹੀ ਸੀ ਕਿ ਕੁਦਰਤ ਨੇ ਕਿਹੋ ਜਹੇ ਪੁਰਸ ਪੈਦਾ ਕੀਤੇ ਹਨ ਸੱਚ ਮੁੱਚ ਮੇਰੀ ਭਾਲ ਹੀ ਥੋੜੀ ਸੀ

ਜੋ ਮੈਂ ਸਮਝਦੀ ਸਾਂ ਕਿ ਪਰਸੁਆਰਥੀ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਕੋਈ ਨਹੀਂ।

ਇੱਕ ਦਿਨ ਇੱਕ ਮੁੰਡਾ ਬਾਬੇ ਕੋਲ ਨੱਠਾ ਹੋਇਆ ਆਇਆ ਕਿ ਇਕ ਮੋਟਰ ਉਲਟ ਪਈ ਹੈ ਤੇ ਉਸਦੇ ਹੇਠਾਂ ਤਿੰਨ ਆਦਮੀ ਆਏ ਹੋਏ ਹਨ। ਬਾਬੇ ਹੋਰੀ ਝੱਟ ਪੱਟ ਉੱਥੇ ਪੁੱਜੇ। ਪੰਜਾਂ ਸੱਤਾਂ ਨੇ ਰਲਕੇ ਮੋਟਰ ਦੇ ਹੇਠੋਂ ਆਦਮੀਆਂ ਨੂੰ ਕਢਿਆ। ਇੰਨੇ ਚਿਰ ਨੂੰ ਪਿਛਲੇ ਪਾਸਿਓਂ ਡਾਗਾਂ ਲਈ ਲੋਕ ਆ ਪੁਜੇ ਜੋ ਇਹ ਸਾਡੇ ਬੱਚੇ ਮੋਟਰ ਹੇਠਾਂ ਦੇ ਕੇ ਮਾਰ ਆਏ ਹਨ ਅਸਾਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮਾਰ ਸੁੱਟਣਾ ਹੈ॥

ਬਾਬੇ ਨੇ ਸਭ ਨੂੰ ਸ਼ਾਂਤਿ ਕੀਤਾ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤਿੰਨਾਂ ਨੂੰ ਜਿਹੜਾ ਇਕ ਬੈਰਿਸਟਰ ਸੀ ਤੇ ਦੂਜੀ ਉਸਦੀ ਇਸਤ੍ਰੀ ਤੇ ਤੀਜਾ ਡਰਾਈਵਰ ਸੀ ਚੁਕਾ ਕੇ ਘਰ ਲੇ ਆਇਆ ਅਤੇ ਸੇਵਾ ਕੀਤੀ।

ਬੈਰਿਸਟਰ ਭਾਵੇਂ ਚੰਗਾ ਪੜ੍ਹਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ ਪਰ ਉਸਦਾ ਮਨ ਦੈਵੀ ਜਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਸੀ ਜਾਂਣਦਾ ਕਿ ਕਿਸੇ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰਨੀ ਤੇ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਭਰਾਵਾਂ ਵਾਲਾ ਪਿਆਰ ਕਰਨਾ ਅਰ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਨਾਮ ਜਪਣਾ ਭੀ ਕੋਈ ਚੀਜ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਸਿਰਫ਼ ਇਹੋ ਹੀ ਜਾਣਦਾ ਸੀ ਕਿ ਦੁਨੀਆਂ ਤੇ ਕੋਈ ਕਿਸੇ ਦੀ ਮਦਦ ਬਗੈਰ ਆਪਣੇ ਮਤਲਬ ਦੇ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ। ਜੋ ਕੁਝ ਹੈ ਖੁਦ ਗ਼ਰਜ਼ੀ ਹੀ ਹੈ।

ਇੱਥੇ ਭੀ ਇਹੋ ਸਮਝਣ ਲੱਗਾ ਕਿ ਸ਼ਾਇਦ ਬਾਬੇ ਨੂੰ ਕੋਈ ਮੇਰੇ ਗੋਚਰਾ ਕੰਮ ਹੋਵੇ ਯਾ ਇਹ ਕਹਿੰਦਾ ਹੋਵੇਗਾ ਕਿ ਇਹ ਬੈਰਿਸਟਰ ਹੈ। ਕਦੀ ਮੁਕਦਮੇ ਮੁਫ਼ਤ ਕਰਾਂਵਾਂਗੇ ਇਸ ਲਈ ਸੇਵਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਸ਼ੰਕਾ ਬੈਰਿਸਟਰ ਤੇ ਬੈਰਿਸਟਰਾਣੀ ਦੇ ਮਨ ਤੇ ਬਣਿਆ ਰਿਹਾ ਕਿ ਕੀਹ ਕਾਰਨ ਹੈ ਬਾਬਾ ਸਾਡੀ ਐਨੀ ਟਹਿਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਬਾਬੇ ਦਾ ਇਕ ਮਿਤ੍ਰ ਡਾਕਟਰ ਸੀ ਬਾਬਾ ਜੀ ਨੇ ਉਸਨੂੰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਇਲਾਜ ਕਰਨ ਤੇ ਲਾਇਆ

ਅਤੇ ਤਨ ਮਨ ਨਾਲ ਸੇਵਾ ਕੀਤੀ। ਇਕ ਦਿਨ ਡਾਕਟਰ ਦੇ ਨਾਲ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦਿਆਂ ਬੈਰਿਸਟਰ ਨੇ ਪੁੱਛ ਹੀ ਲਿਆ ਕਿ ਬਾਬਾ ਕਿਉਂ ਇਤਨੀ ਸੇਵਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਸੁਨਕੇ ਡਾਕਟਰ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਘ੍ਰਿਣਾ ਹੋਗਈ ਤੇ ਬਾਬਾ ਜੀ ਨੂੰ ਕਹਿਨ ਲਗਾ ਕਿ ਇਹੇ ਜਹੇ ਅਪਸੁਆਰਥੀਆਂ ਦੀ ਤੁਸੀਂ ਟਹਿਲ ਕਰਦੇ ਹੋ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਏਨੀ ਪਰਖ ਹੀ ਨਹੀਂ ਅਤੇ ਸਮਝਦੇ ਹੀ ਨਹੀਂ ਕਿ ਬਾਬਾ ਸਾਡੀ ਕਿਉਂ ਟਹਿਲ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਬੈਰਿਸਟਰ ਬਾਬੇ ਨੂੰ ਵਹਿਸ਼ੀ ਲੋਕ ਸਮਝਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਜਾਂਗਲੀ ਹਨ ॥

ਡਾਕਟਰ ਇਹੋ ਜਿਹਾਂ ਦੀ ਟਹਿਲ ਕਰਨੋਂ ਬਾਬੇ ਨੂੰ ਰੋਕਦਾ ਹੈ ਪਰ ਬਾਬਾ ਆਪਣੀਆਂ ਦਲੀਲਾਂ ਨਾਲ ਅਤੇ ਮਿੱਠੇ ਸੁਭਾ ਨਾਲ ਡਾਕਟਰ ਨੂੰ ਠੰਡਿਆਂ ਕਰਦਾ ਹੈ ॥

ਬੈਰਿਸਟਰ ਤੇ ਬੈਰਿਸਟਰਾਣੀ ਬਾਬੇ ਦੀ ਅਤੁੱਟ ਸੇਵਾ ਨਾਲ ਰਾਜ਼ੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਬਾਬੇ ਦੀ ਨਿਸ਼ਕਾਮ ਸੇਵਾ ਦਾ ਅਸਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਨ ਤੇ ਪੈਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਬਾਬਾ ਆਪਣੇ ਉਪਦੇਸ਼ ਨਾਲ ਬੈਰਿਸਟਰ ਦੇ ਮਨ ਦੀ ਮੈਲ ਧੋ ਸਿਟਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਦਸਦਾ ਹੈ ਜੋ ਮਨੁਸ ਦੀ ਅਸਲ ਜਿੰਦਗੀ ਕੀਹ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੇ ਮੇਹਰ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਰ ਬੈਰਿਸਟਰ ਤੇ ਬੈਰਿਸਟਰਾਨੀ ਨੂੰ ਨਾਮ ਦੀ ਦਾਤ ਬਖਸ਼ਦਾ ਹੈ॥

ਇਕ ਦਿਨ ਇਕ ਅਰੈਣ ਰੋਂਦੀ ਪਿੱਟਦੀ ਆ ਗਈ ਕਿ ਸਾਡੀ ਪੈਲੀ ਦਾ ਜਿਲੇਦਾਰ ਨੇ ਪਾਣੀ ਬੰਦ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਹ ਸੁਨ ਬਾਬਾ ਦੌੜਿਆ ਤੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਪਾਣੀ ਬੰਦ ਕਰਵਾਇਆ ਸੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਘਰ ਪੁਜਿਆ। ਆਪਣੀ ਕਰਣੀ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਨਾਲ ਤੇ ਦਲੀਲਾਂ ਨਾਲ ਅਰਾਈਆਂ ਦੀ ਪੈਲੀ ਨੂੰ ਪਾਣੀ ਭੀ ਲੁਵਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮੱਤ ਭੀ ਦਿੰਦਾ ਹੈ

ਕਿ ਪਰਾਇਆ ਹੱਕ ਕਦੀ ਨਹੀਂ ਖੋਹੀਦਾ। ਉਧਰ ਜ਼ਿਲੇਦਾਰ ਨਾਲ ਭੀ ਚਾਰ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਅਤ ਉਸਨੂੰ ਧਰਮ ਨਿਆਂ ਤੇ ਟੁਰਨ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਦੀ ਕ੍ਰਿਪਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਜ਼ਿਲੇਦਾਰ ਦੇ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਭੀ ਪਲਟਾ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ॥

ਉਹ ਸੁਭਾਗ ਜੇਹੜੀ ਹਰ ਵੇਲੇ ਤਪਦੀ ਸੀ ਤੇ ਤੌਖਲੇ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦੀ ਸੀ, ਉਹ ਹੁਨ ਹਰ ਵੇਲੇ ਬਾਣੀ ਪੜ੍ਹਦੀ ਪਾਠ ਕਰਦੀ ਤੇ ਚੜ੍ਹਦੀਯਾਂ ਕਲਾਂ ਵਿੱਚ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ। ਇਕ ਦਿਨ ਸੁਨੇਹਾ ਆਇਆ ਜੋ ਡਾਕਟਰਨੀ ਦਾ ਭਰਾ ਜੰਗ ਵਿੱਚ ਮਾਰਿਆ ਗਿਆ ਹੈ ਤਾਂ ਸਾਰਾ ਪ੍ਰਵਾਰ ਉਸ ਕੋਲ ਗਿਆ। ਡਾਕਟਰਨੀ ਵਿਚਾਰੀ ਦਾ ਭਰਾ ਦੇ ਵਿਛੋੜੇ ਵਿਚ ਬੁਰਾ ਹਾਲ ਸੀ, ਇਹ ਦੇਖਕੇ ਬਾਬਾ ਜੀ ਸੁਭਾਗ ਨੂੰ ਉਸਦੇ ਕੋਲ ਛੱਡ ਆਏ॥

ਸੁਭਾਗ ਜੀ ਨੇ ਡਾਕਟਰਾਨੀ ਨੂੰ ਮਾਤਾ ਜੀਤੋ ਜੀ ਦੀ ਮਾਤਾ ਜੀ ਦੀਆਂ ਦੁਖ ਦੀਆਂ ਭਰੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਸੱਤ ਰਾਤਾਂ ਸੁਣਾਕੇ ਸ਼ਾਂਤਿ ਤੇ ਹੌਸਲੇ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ॥

ਇਕ ਦਿਨ ਇਕ ਸਿਖ ਨੇ ਗੁਰਦੁਵਾਰੇ ਵਿੱਚ ਉਠਕੇ ਆਖਿਆ ਭਾਈ ਸਾਡੇ ਪਿੰਡ ਇਕ ਉਪੱਦ੍ਰ ਹੋਨ ਲਗਾ ਹੈ ਜੋ ਚੂਹੜਿਆਂ ਨੇ ਇਕ ਕੋਠਾ ਬਣਾ ਲਿਆ ਹੈ ਤੇ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਲੈ ਆਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਮੁੰਡਿਆਂ ਨੂੰ ਗੁਰਮੁਖੀ ਪੜ੍ਹਾਵਾਂਗੇ। ਇਹ ਸੁਣਕੇ ਬਾਬੇ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਵੀਰੋ ਇਹ ਤਾਂ ਭਲਾ ਹੈ ਇਹ ਕੋਈ ਉਪੱਦਰ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਕੋਈ ਨਿੱਤਰੋ ਜੋ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਾਇਆ ਕਰੋ ਤੇ ਚੰਦਾ ਕਰਕੇ ਕੋਠਾ ਵੀ ਪੱਕਾ ਪਾ ਦੇਵੋ। ਇਹ ਸੁਨਕੇ ਲੋਕ ਆਖਨ ਲਗੇ ਕਿ ਇਹ ਗਲ ਠੀਕ ਨਹੀਂ ਕੰਮੀ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਾਨਾ ਠੀਕ ਨਹੀਂ। ਤਾਂ ਬਾਬੇ ਨੇ ਆਪਨੀਆਂ ਦਲੀਲਾਂ ਤੇ ਗੁਰਬਾਨੀ ਨਾਲ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮਨਾਇਆ ਅਤੇ ਵਿਦਿਆ ਦਾ ਪਬੰਧ ਕੀਤਾ॥

ਇਕ ਦਿਨ ਸੁਭਾਗ ਬਾਹਰ ਖੂਹ ਤੇ ਗਈ ਤਾਂ ਉਥੇ ਓ` ਮਾਂਦ੍ਰੀ ਤੇ ਉਸਦੇ ਚੇਲੇ ਨੂੰ ਵੇਖਕੇ ਡਰੀ ਤੇ ਪਿਛਲੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਯਾਦ ਕਰਕੇ ਬੇਹੋਸ਼ ਹੋ ਗਈ। ਘਰ ਖਬਰ ਹੋਈ ਤਾਂ ਚੁਕਕੇ ਘਰ ਲਿਆਂਦੀ। ਹਕੀਮ ਆਇਆ ਤੀਜੇ ਚੌਥੇ ਦਿਨ ਸੁਰਤ ਆਈ ਤਾਂ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਜੋ ਇਹ ਤੌਖਲ ਤੇ ਡਰ ਵਿੱਚ ਆਕੇ ਬੇਸੁਰਤ ਹੋਗਈ ਸੀ। ਬਾਬੇ ਨੇ ਉਸਦੇ ਮਨ ਨੂੰ ਢੇਹਦੀਆਂ ਕਲਾਂ ਵਿੱਚ ਦੇਖਕੇ ਗੁਰਬਾਣੀ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ ਅਤੇ ਦੱਸਿਆ ਜੋ ਬਾਣੀ ਪੜ੍ਹਨ ਵਾਲਾ ਕਦੇ ਢੇਹਦੀਆਂ ਕਲਾਂ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ। ਬਾਣੀ ਦੀ ਵਿਚਾਰ ਕਰਿਆ ਕਰੋ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਨੂੰ ਅੰਗ ਸੰਗ ਸਮਝਿਆ ਕਰੋ ਤੇ ਭੂਤੋਂ ਪਰੇ ਰਹਿਆ ਕਰੋ। ਇਹੋ ਗੁਰਮੁਖਾਂ ਦਾ ਕੰਮ ਹੈ। ਇਹ ਸੁਨ ਸੁਭਾਗ ਜੀ ਦਾ ਮਨ ਚੜ੍ਹਦੀਆਂ ਕਲਾਂ ਵਿਚ ਹੋਗਿਆ ਤੇ ਉਹ ਭੈ ਤੋ ਰਹਿਤ ਹੋਗਈ।

ਥੋੜਾ ਹੀ ਚਿਰ ਲੰਘਿਆ ਸੀ ਕਿ ਇਕ ਆਦਮੀ ਕੁਝ ਦੁਵਾਇਆਂ ਲੈਕੇ ਆ ਗਿਆ ਅਰ ਇਕ ਦਿਨ ਬਾਬੇ ਨੂੰ ਕਹਿਣ ਲਗਾ ਕਿ ਮੈਂ ਪਰ-ਉਪਕਾਰ ਕਰਨ ਆਇਆ ਹਾਂ ਤੇ ਇੱਥੇ ਕੋਈ ਮੇਰੇ ਕੋਲੋਂ ਦੁਵਾ ਲੈਣ ਨਹੀਂ ਆਇਆ। ਤਾਂ ਬਾਬੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸੱਜਨਾਂ ਇੱਥੇ ਕੋਈ ਬੀਮਾਰ ਨਹੀਂ ਹੋਨਾ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਆਪੇ ਆ ਜਾਂਦਾ। ਇਹ ਸੁਨਕੇ ਮੁਸਾਫ਼ਰ ਹੈਰਾਨ ਹੋਗਿਆ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲਗਾ ਜੋ ਕੀਹ ਗਲ ਹੈ ਇੱਥੇ ਕੋਈ ਬੀਮਾਰ ਨਹੀਂ ॥

ਬਾਬੇ ਨੇ ਉਤ੍ਰ ਦਿੱਤਾ ਜੋ ਸੱਜਨਾ ਅਸੀਂ ਸੱਜਰੀ ਹਵਾ ਭਖਦੇ ਹਾਂ। ਜਿੱਨੀ ਭੁਖ ਹੋਵੇ ਉਸ ਨਾਲੋਂ ਕੁਝ ਘਟ ਖਾਂਦੇ ਹਾਂ। ਢੱਕੇ ਹੋਏ ਖੂਹਾਂ ਦਾ ਪਾਨੀ ਪੀਂਦੇ ਹਾਂ। ਸ਼ਰਾਬ ਦੀ ਹੱਟੀ ਸਾਡੇ ਪਿੰਡ ਕੋਈ ਨਹੀਂ। ਗਲੀਆਂ ਸਾਡੀਆਂ ਸੁਥਰੀਆਂ ਤੇ ਮੋਕਲੀਆਂ ਹਨ। ਪਿੰਡ ਸਾਡਾ ਉਚਾ ਹੈ ਰੂੜੀਆਂ ਪਿੰਡ ਤੋਂ ਦੂਰ ਹਨ। ਡੰਗਰਾਂ ਦੇ ਕੋਠੇ ਸਾਡੇ ਹਵਾ ਦਾਰ ਤੇ ਚੰਗੇ ਹਨ। ਕੰਮ ਸਾਡਾ ਸਖ਼ਤ ਹੈ ਮੁੜ੍ਹਕੋ ਮੁੜ੍ਹਕਾ ਹੋ ਜਾਈਦਾ ਹੈ। ਸਲਾਬਾ ਅਸਾਂ ਕਿਤੇ

ਰਹਿਨ ਨਹੀਂ ਦਿੱਤਾ। ਗੁਰੂ ਦੀ ਕਿਰਪਾ ਹੈ ਦਸ ਭਾਈ ਇੱਥੇ ਕੋਈ ਬਮਾਰੀ ਕਾਹਨੂੰ ਆਉਨੀ ਹੋਈ॥

ਇਹ ਸੁਨਕੇ ਉਹ ਹੈਰਾਨ ਹੋ ਗਿਆ ਅਤੇ ਕਹਿਨ ਲਗਾ ਕਿ ਮੈਂ ਉਪਦੇਸ਼ਕ ਭੀ ਹਾਂ। ਬ੍ਰਹਮ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹਾਂ। ਤਾਂ ਬਾਬੇ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਭਾਈ ਅਸੀਂ ਚੰਗੇ ਅਮਲ ਕਰਨ ਦੇ ਉਦਮ ਵਿੱਚ ਲੱਗੇ ਹੋਏ ਹਾਂ ਅਤੇ ਕਿਰਤ ਕਰਦੇ ਹਾਂ, ਵੰਡ ਛਕਦੇ ਹਾਂ, ਨਾਮ ਜਪਦੇ ਹਾਂ, ਦੱਸ ਹੋਰ ਤੂੰ ਕੀਹ ਆਖਨਾ ਹੈਂ ॥

ਉਪਦੇਸ਼ਕ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤੁਸੀਂ ਬੁਤ ਪੂਜਦੇ ਹੋ ਮੈਂ ਬੁਤ-ਪ੍ਰਸਤ ਨਹੀਂ, ਇਹ ਗਲ ਮੈਂ ਹਟਾਣੀ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹਾਂ। ਤਾਂ ਬਾਬੇ ਦਸਿਆ ਕਿ ਭਾਈ ਅਸੀਂ ਤਾਂ ਬੁਤ ਨਹੀਂ ਪੂਜਦੇ ਅਸੀਂ ਤਾਂ ਰਬਦੇ ਗਿਆਨ ਨੂੰ ਪਿਆਰ ਤੇ ਸਤਕਾਰ ਕਰਦੇ ਹਾਂ ਅਤੇ ਗੁਰਬਾਣੀ ਦੁਵਾਰਾ ਤੇ ਦਲੀਲਾਂ ਦੁਵਾਰਾ ਉਸ ਦੀਆਂ ਦਲੀਲਾਂ ਦਾ ਖੰਡਨ ਕੀਤਾ। ਬਾਬੇ ਦੀਆਂ ਦਲੀਲਾਂ ਸੁਨਕੇ ਉਹ ਹੈਰਾਨ ਰਹਿ ਗਿਆ ਤੇ ਮੰਨ ਗਿਆ ਕਿ ਮੇਰੇ ਅੰਦਰ ਘਾਟਾ ਹੈ। ਮੈਂ ਭੁਲ ਤੇ ਹਾਂ। ਮੇਰੇ ਅੰਦਰ ਨਾਮ ਨਹੀਂ ਤੇ ਮੈਂ ਪੇਟ ਦੇ ਮਾਰੇ ਝੂਠਿਆਂ ਧੰਦਿਆਂ ਵਿੱਚ ਤੇ ਬਾਦ ਬਿਬਾਦ ਵਿੱਚ ਫਸਿਆ ਹੋਇਆ ਹਾਂ। ਆਖਰ ਨੀਵਾਂ ਹੋਕੇ ਬਾਬੇ ਕੋਲੋਂ ਉਪਦੇਸ਼ ਲੈਣ ਦੀ ਚਾਹ ਕਰਨ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਬਾਬੇ ਕਿਹਾ ਭਾਈ ਮੈਂ ਤਾਂ ਪੜ੍ਹਿਆ ਹੋਇਆ ਨਹੀਂ ਮੈਨੂੰ ਮੋਟੇ ਤਰੀਕੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ ਤੈਨੂੰ ਇਕ ਸਤਿਗੁਰੂ ਦੇ ਸਵਾਰੇ ਦਾ ਜੀਵਨ _ਣਾ ਦਿੰਦੇ ਹਾਂ ਸਮਝ ਲਵੀਂ। ਅਤੇ ਸਾਂਈਦਾਸ ਜੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੀ ਕੱਥਾ ਰਖ ਦਿੱਤੀ॥

ਸੁਲਤਾਨ ਪੁਰ ਦੇ ਕੋਲ ਇੱਕ ਡੱਲਾ ਨਾਮੇਂ ਪਿੰਡ ਹੈ ਉਸ ਵਿਚ ਇੱਕ ਗੁਰੂ ਕਾ ਸਿਖ ਭਾਈ ਪਾਰਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਸ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਅਮਰਦੇਵ ਜੀ ਗੁਰਿਆਈ ਦੇਂਣੀ ਚਾਂਹੁੰਦੇ ਸਨ । ਪਰ ਇਸ ਨੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਸਿੱਖੀ ਦੇ ਜੋਗ ਹੀ ਸਮਝ ਕੇ ਨਿੰਮ੍ਰਤਾ ਨਾਲ ਗੁਰਾਂ ਕੋਲੋਂ ਸਿੱਖੀ ਦਾਨ ਹੀ

ਮੰਗਿਆ। ਫੇਰ ਭੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਇਹ ਵਰ ਦੇ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਤੇਰੀ ਕੁਲ ਵਿਚੋਂ ਗੁਰੂ ਘਰ ਵਿੱਚ ਰਿਸ਼ਤਾ ਹੋਵੇਗਾ।

ਇਸੇ ਗੁਰੂ ਸਿੱਖ ਦੀ ਕੁਲ ਵਿੱਚ ਨਰਾਇਨ ਦਾਸ ਨਾਮੇਂ ਗੁਰੂ ਕਾ ਸਿਖ ਹੋਇਆ। ਜਿਸ ਦੀਆਂ ਦੋ ਪੁਤ੍ਰੀਆਂ ਸਨ।

ਵੱਡੀ ਦਾ ਨਾਂ ਰਾਮੋਂ ਤੇ ਛੋਟੀ ਦਾ ਦਮੋਦਰੀ ਸੀ। ਇਹ ਭੀ ਗੁਰੂ ਘਰ ਦੇ ਪੇਮੀ ਸਿੱਖ ਦੀ ਉਲਾਦ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਬੜੀਆਂ ਸੀਲ ਸੁਭਾਉ ਤੇ ਪ੍ਰੇਮਾ ਭਗਤੀ ਵਾਲੀਆਂ ਸਨ।

ਬੀਬੀ ਰਾਮੋ ਦਾ ਸੰਜੋਗ ਗੁਰੂ ਘਰ ਦੇ ਪ੍ਰੇਮੀ ਡਰੋਲੀ ਪਿੰਡ ਦੇ ਭਾਈ ਸਾਂਈਂ ਦਾਸ ਜੀ ਨਾਲ ਹੋਇਆ। ਇਹ ਡੱਲੇ ਕੇ ਰਹਿਣ ਲੱਗ ਪਏ। ਇਸ ਪਿੰਡ ਵਿੱਚ ਗੁਰ ਸਿੱਖੀ ਦਾ ਬਹੁਤ ਚਰਚਾ ਸੀ। ਸਤਸੰਗ ਦਾ ਬੜਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਚਲਦਾ ਸੀ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜ਼ੀ ਉੱਤੇ ਪ੍ਰਮਾਰਥ ਦਾ ਬੜਾ ਅਸਰ ਹੋਣ ਲੱਗਾ।

ਇਕ ਵੇਰਾਂ ਇਹ ਸੰਗਤ ਨਾਲ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਨੂੰ ਗਏ ਤਾਂ ਆਤਮਾ ਨੂੰ ਠੰਡ ਪਈ ਅਤੇ ਸੱਤਨਾਮ ਦਾ ਜਾਪ ਦ੍ਰਿੜ੍ਹ ਕੀਤਾ॥

ਉਨ੍ਹਾਂ ਹੀ ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਹਰਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਸੰਗਤ ਦੇ ਕਹੇ ਅਨੁਸਾਰ ਸਤਿਗੁਰਾਂ ਨੇ ਚੰਦੂ ਦਾ ਘਰ ਛੱਡਕੇ ਇਕ ਗਰੀਬ ਸਿਖ ਦੇ ਘਰ ਕਰਨਾਂ ਪ੍ਰਵਾਨ ਕੀਤਾ ਸੀ। ਇਹ ਸੁਨ ਨਰਾਇਨ ਦਾਸ ਨੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨਾਲ ਗਲ ਕੀਤੀ, ਕਿ ਦਿਲ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਦਮੋਦਰੀ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਸਾਹਿਬ–ਜ਼ਾਦੇ ਦੀ ਦਾਸੀ ਬਨਾ ਦੇਵਾਂ। ਇਹ ਸੁਨ ਕੇ ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਬੜੇ ਪ੍ਰਸੰਨ ਹੋਏ ਅਤੇ ਕਹਿਣ ਲੱਗੇ ਕਿ ਪਿਤਾ ਜੀ ਦੇਰ ਨਾਹ ਕਰੋ।

ਇਹ ਸੁਣ ਭਾਈ ਨਰਾਇਨ ਦਾਸ ਤੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਗਲ ਪੱਲਾ ਪਾਕੇ ਗੁਰੂ ਅੱਗੇ ਸਾਕ ਲਈ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ, ਤਾਂ ਸਤਗੁਰਾਂ ਨੇ ਪ੍ਰਵਾਨ ਕਰ ਲਈ। ਵਿਦਾਇਗੀ ਲੈਕੇ ਘਰ ਨੂੰ ਗਏ ਵਿਆਹ ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਨ ਲੱਗੀ ਇਹ ਦੇਖ ਦੇਖ ਕੇ ਸਾਂਈਦਾਸ ਜੀ ਫੂਲੇ ਨਹੀਂ ਸਮਾਉਂਦੇ ॥ ਆਖਰ ਉਹ ਦਿਨ ਆਇਆ ਜਿਸ ਦਿਨ ਜੰਞ ਦਾ ਢੁਕਾ ਹੋਣਾ ਸੀ। ਗੁਰੂ ਦੀ ਸੰਗਤ ਨੇ ਥਾਂ ਥਾਂ ਤੇ ਦਿਵਾਨ ਸੱਜਾ ਕੇ ਕੀਰਤਨ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਚਲਾ ਦਿੱਤਾ। ਢੁਕਾ ਹੋਇਆ, ਵਿਆਹ ਹੋਇਆ, ਤਾਂ ਸੰਗਤਾਂ ਨੇ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਕਿ ਸੱਚੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਆਪਣੇ ਆਵਣ ਦੀ ਕੋਈ ਯਾਦਗਾਰ ਕਾਇਮ ਕਰ ਜਾਵੋ। ਤਾਂ ਗੁਰਾਂ ਨੇ ਬੇਨਤੀ ਪ੍ਰਵਾਨ ਕੀਤੀ।

ਦੂਸਰੇ ਦਿਨ ਸਤਗੁਰਾਂ ਨੇ ਚੰਗੀ ਥਾਂ ਦੇਖਕੇ ਬਾਵਲੀ ਬਣਾਨ ਲਈ ਆਪਣੇ ਹੱਥੀਂ ਟੱਕ ਲਾਇਆ ॥

ਗੁਰੂ ਹਰਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਜੀ ਸਾਹੁਰੇ ਘਰ ਦੇ ਅੰਦਰ ਗਏ। ਬੀਬੀ ਰਾਮੋ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਸਾਲੀ ਸੀ ਰਿਸ਼ਤੇ ਦਾਰੀ ਵਾਲਾ ਮੋਹ ਛੱਡ ਕੇ ਗੁਰੂ ਸਮਝ ਕੇ ਦਾਸੀ ਭਾਵ ਨਾਲ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਢੱਠੀ। ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਤਾਂ ਖੁਸ਼ੀ ਨਾਲ ਭਰਪੂਰ ਹੋਏ ਹੋਏ ਸਨ ਤੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਸਿਖੀ ਭਾਵ ਹੋਣ ਦੇ ਕਾਰਨ ਗੁਰਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਛੋਟੇ ਸਾਂਢੂ ਨਹੀਂ ਸਨ ਸਮਝਦੇ। ਸਗੋਂ ਮੁਕਤੀ ਦੇ ਦਾਤੇ ਤੇ ਜਗਤ ਪਿਤਾ ਸਮਝਦੇ ਸਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੋਹਾਂ ਨੇ ਸਤਗੁਰਾਂ ਨਾਲ ਬੇਅੰਤ ਪ੍ਰੇਮ ਕੀਤਾ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਭੀ ਇਹਨਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰੇਮ ਨੂੰ ਦੇਖਕੇ ਬੋਲੇ "ਸਾਂਈ ਦਾਸ ਰਾਮੋ ਪੂਰੇ ਸਿਖ, ਡੱਲੇ ਦੀ ਸਿੱਖੀ ਧੰਨ" ਨਰਾਇਨ ਦਾਸ ਨੇ ਭੀ ਬੜੇ ਪ੍ਰੇਮ ਨਾਲ ਯਥਾ ਸਕਤਿ ਸੇਵਾ ਕੀਤੀ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉਸਨੂੰ ਗੱਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ ਤੇ ਅਮ੍ਰਿਤਸਰ ਜੀ ਨੂੰ ਵਾਪਸ ਆ ਗਏ ॥

ਥੋੜੇ ਦਿਨਾਂ ਪਿੱਛੋਂ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਦ ਕਸ਼ਟਾਂ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ

ਪੁੱਜਾ ਤਾਂ ਵਾਹੋ ਦਾਹੀ ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਤੇ ਨਰਾਇਨ ਦਾਸ ਜੀ ਲਾਹੌਰ ਪੁੱਜੇ। ਤਾਂ ਮੀਆਂ ਮੀਰ ਜੀ ਤੋਂ ਸਾਰਾ ਬਿਰਤਾਂਤ ਸੁਣਿਆਂ। ਇਹ ਦਰਦਨਾਕ ਸਾਕਾ ਸੁਣਕੇ ਸਰੀਰ ਕੰਬਿਆ ਤੇ ਵਿਛੋੜੇ ਦੇ ਜਲ ਨਾਲ ਨੇਤ੍ਰ ਸਜਲ ਹੋਗਏ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿਚ ਮਗਨ ਹੋਗਏ ਤੇ ਧੰਨ ਗੁਰੂ ਧੰਨ ਗੁਰੂ ਦੀ ਅਵਾਜ਼ ਮੂੰਹੋਂ ਨਿਕਲਣ ਲੱਗੀ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਮਗਰੋਂ ਕੀਰਤਨ ਤੇ ਪਾਠ ਆਰੰਭ ਹੋ ਗਏ, ਤੇ ਦੁਸੈਹਿਰੇ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਹਰਗੋਬਿੰਦ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਨੂੰ ਗੁਰ ਗੱਦੀ ਤੇ ਬਿਠਾਯਾ ਗਿਆ। ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਅਕਾਲ ਬੂੰਗੇ ਸਾਹਿਬ ਤਖ਼ਤ ਰਚਕੇ ਦਰਬਾਰ ਲਾਉਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ ਤੇ ਬੀਰ ਰਸ ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਸੁਰੂ ਕੀਤੀ।

ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਦਿੱਲੀ ਦੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਵੱਲੋਂ ਸੱਦਾ ਆਇਆ। ਦਿੱਲੀ ਗਏ ਉੱਥੋਂ ਆਗਰੇ ਗਏ ਫੇਰ ਗੁਵਾਲੀਅਰ ਗਏ। ਇਸ ਗੁਵਾਲੀ-ਅਰ ਦੇ ਕਿਲੇ ਵਿੱਚ ਰਾਜੇ ਤੇ ਅਮੀਰ ਨਜ਼ਰਬੰਦ ਸਨ। ਸਤਿਗੁਰਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਚੋਗੇ ਦੀਆਂ ਕਲੀਆਂ ਪਕੜਾ ਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਛਪਿੰਜਾ ਰਾਜਿਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਆਪਣੇ ਨਾਲ ਬਾਹਰ ਲਿਆਂਦਾ ਤੇ ਬੰਦ ਖਲਾਸ ਕਰਾਈ। ਉੱਥੋਂ ਫੇਰ ਆਪ ਅਮ੍ਰਿਤਸਰ ਜੀ ਵਾਪਸ ਆਏ। ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਉੱਥ ਹੀ ਸਨ। ਦਰਬਾਰ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬੜੇ ਪ੍ਰੇਮ ਨਾਲ ਹੱਥੀਂ ਸੇਵਾ ਕਰਦੇ ਤੇ ਆਪਣੇ ਧੰਨ ਭਾਗ ਸਮਝਦੇ ਸਨ। ਇਕ ਦਿਨ ਰਾਤ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕੀਤਾ ਪਰ ਉਹ ਨਾਹ ਲੱਭੇ। ਪੁਛ ਗਿਛ ਤੋਂ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਜੋ ਦਰਬਾਰ ਸਾਹਿਬ ਝਾੜੂ ਦੇ ਰਹੇ ਸਨ। ਦੋ ਕੂ ਦਿਨ ਮਗਰੋਂ ਫੇਰ ਗੁਰਾਂ ਨੇ ਯਾਦ ਕੀਤਾ ਤਾਂ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਜੋ ਸਰੋਵਰ ਦੇ ਕੰਢੇ ਤੇ ਬੈਠੇ ਪ੍ਰੇਮ ਨਾਲ ਸ਼ਬਦ ਪੜ੍ਹ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਹਰ ਵੇਲੇ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੀ ਭਗਤੀ ਤੇ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿੱਚ ਮਗਨ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ। ਕੁਛ ਦਿਨ ਪਿੱਛੋਂ ਫੇਰ ਭਾਲ

ਹੋਈ ਤਾਂ ਪਤਾ ਲਗਾ ਕਿ ਸੁਲਤਾਨ ਪਿੰਡ ਵਿੱਚ ਇਕ ਸਿੱਖ ਅਤੀ ਬੀਮਾਰ ਸੀ, ਕੋਈ ਸੇਵਾ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਨਹੀਂ ਸੀ, ਉਸਦੇ ਕੋਲ ਪੁਜੇ ਹੋਏ ਹਨ। ਚੌਥੇ ਕੂ ਦਿਨ ਉਹ ਸਿੰਘ ਚੜ੍ਹਾਈ ਦੀਆਂ ਤਿਆਰੀਆਂ ਤੇ ਸੀ ਤਾਂ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਦੀ ਸਿਕ ਹੈ। ਜੇ ਤੁਸੀਂ ਕਰਾ ਦਿਓ ਤਾਂ। ਇਹ ਸੁਨ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਗੁਰੂ ਦੇ ਚਰਨਾ ਵਿੱਚ ਬੇਨਤੀ ਦੁਵਾਰਾ ਹਾਜ਼ਰ ਹੋਏ ਤੇ ਕਪੜੇ ਪਾਕੇ ਸਤਗੁਰਾਂ ਵਲ ਚਲੇ ਤਾਂ ਇਨੇਂ ਨੇ ਬੂਹਾ ਖੜਕਿਆ ਦੇਖਿਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਆ ਹਾਜ਼ਰ ਹੋਏ। ਦੇਖਕੇ ਬਿਹਬਲ ਹੋਕੇ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਢੱਠੇ ਗੁਰਾਂ ਨੇ ਗਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ ਤੇ ਕਿਹਾ ਧੰਨ ਸਿਖੀ। ਅੱਗੇ ਹੋਕੇ ਉਸ ਸਿਖ ਨੂੰ ਭੀ ਦਰਸ਼ਨ ਦਿੱਤੇ ਉਸਦਾ ਚਲਾਣਾ ਹੋਗਿਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਆਪ ਸਸਕਾਰ ਕਰਾ ਕੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਸਮੇਤ ਵਾਪਸ ਆਏ ॥

ਭਾਈ ਜੀ ਘਰ ਵਾਪਸ ਆ ਗਏ। ਕੁਝ ਦਿਨਾਂ ਪਿੱਛੋਂ ਸੁਣਿਆਂ ਜੋ ਮੀਰੀ ਪੀਰੀ ਦਾ ਤਖਤ ਬਣਨ ਲੱਗਾ ਹੈ, ਸੰਗਤਾਂ ਭਜੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ, ਇਸ ਸੁਭਾਗ ਜੋੜੀਦਾ ਜੀ ਭੀ ਕਰੇ ਕੇ ਇੱਟਾਂ ਢੋਈਏ ਤੇ ਸੇਵਾ ਕਰੀਏ ਪਰ ਗੁਰਾਂ ਦਾ ਹੁਕਮ ਨਾਂ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਨਾਂ ਗਏ ਪਰ ਮਨ ਉੱਥੇ ਹੀ ਟੋਕਰੀ ਢੋਂਦਾ ਤੇ ਸੇਵਾ ਕਰਦਾ ਰਿਹਾ ਇਧਰ ਰਾਮੋ ਨੇ ਦਰਯਾਈ ਨੂੰ ਤਿੱਲਾ ਲਾਣਾ ਅਰੰਭ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਜਿਸ ਦਿਨ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਉਸ ਮੰਦਰ ਵਿਚ ਚਰਨ ਰਖਣਗੇ ਤਾਂ ਇਹ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਹੇਠ ਵਿਛਾਵਾਂਗੇ ॥

ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਤਾਂ ਏਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਖਿੱਚਾਂ ਵਿਚ ਲੰਘਿਆ। ਇਨ੍ਹੇ ਨੂੰ ਖ਼ਬਰ ਪੁੱਜੀ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਿੱਲੀ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਸੁਨਕੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਵਾਸਤੇ ਬਿਹਬਲ ਹੋਗਏ ਪਰ ਕੋਈ ਆਗਿਆ ਮਿਲਨ ਲਈ ਨਾ ਹੋਈ ਅਰ ਨਾ ਕੋਈ ਮਿਲਨ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ ਆਇਆ। ਇਸ ਜੋੜੀ ਦੀ ਸੁਰਤ ਸਤਗੁਰਾਂ ਨਾਲ ਜੁੜ ਗਈ ਤੇ ਇਹ ਸੋਚਿਆ ਜੋ ਕੌਤਕ ਹਾਰ ਨੇ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕੀਹ ਖੇਲ

ਕਰਨਾ ਹੈ ! ਜੇ ਮਿਲਨਾ ਮੁਨਾਸਬ ਸਮਝਦੇ ਤਾਂ ਸਤਗੁਰਾਂ ਵਲੋਂ ਜ਼ਰੂਰ ਸੱਦਾ ਆਉਂਦਾ। ਇਹ ਸੋਚਦਿਆਂ ਸੋਚਦਿਆਂ ਅਜੇਹੀ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਖਿੱਚ ਪਈ ਜੋ ਸੁਰਤ ਉਚੇਰੀ ਹੋ ਪ੍ਰੀਤਮ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਨਾਲ ਜੁੜ ਗਈ। ਅਜੇਹੀ ਜੁੜੀ ਜੋ ਦਿਨ ਬੀ ਲਹ ਗਿਆ ਰਾਤ ਭੀ ਲੰਘ ਗਈ ਫੇਰ ਦਿਨ ਚੜ੍ਹਿਆ ਧੁੱਪ ਚੜ੍ਹੀ। ਧੁੱਪ ਹੀ ਸਮਾਧੀ ਜੁੜੀ ਰਹੀ।। ਇਨੇਂ ਨੂੰ ਇਕ ਸਿੱਖ ਸੁਨੇਹਾ ਲੈਕੇ ਪੁੱਜਾ ਜੋ ਸਤਗੁਰੂ ਦਿੱਲੀ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ ਤੇ ਗੋਇੰਦ ਵਾਲ ਡੇਰਾ ਕਰਨਗੇ, ਇੱਥੇ ਸਾਨੂੰ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਮਿਲਨ ॥

ਸੁਨੇਹਾ ਸੁਣਦਿਆਂ ਹੀ ਦੰਪਤੀ ਦੇ ਮੂੰਹੋਂ ਸ਼ੁਕਰ ਸੁਕਰ ਦੀ ਅਵਾਜ਼ ਨਿਕਲੀ। ਸੰਗਤਾਂ ਟੁਰੀਆਂ ਤੇ ਉੱਥੇ ਪੁਜੇ। ਸਤਗੁਰਾਂ ਨੇ ਦੇਖਿਆ ਕਿ ਸਾਡਾ ਪ੍ਰੇਮੀ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਲੈਣ ਲਈ ਦੌੜੇ। ਇਹ ਦੇਖ ਦੰਪਤੀ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਢੱਠੇ। ਸਤਗੁਰਾਂ ਨੇ ਚੁਕ ਕੇ ਗਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ ਤੇ ਕਿਹਾ ਇੰਜ ਨਾ ਕਰਿਆ ਕਰੋ। ਤੁਸੀਂ ਸਾਡੇ ਨਾਲੋਂ ਵੱਡੇ ਹੋ। ਇਹ ਸੁਨ ਰਾਮੋਂ ਨੇ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ, ਹੇ ਸਚੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਸਾਕਾਦਾਰੀ ਦੇ ਮਾਨ ਤੋਂ ਕੱਢਕੇ ਸਿਖੀ ਦਾਨ ਬਖ਼ਸ਼ ਤੇ ਚਰਨੀਂ ਲਾ ਲੈ।

ਚੌਥੇ ਦਿਨ ਸਤਗੁਰਾਂ ਨੇ ਵਿਦਾਇਗੀ ਮੰਗੀ ਤੇ ਕਿਹਾ ਡੋਲਨਾਂ ਨਹੀਂ ਅਸੀਂ ਜਰਾ ਚਿਰਾਕੇ ਮੁੜਾਂ ਗੇ ॥

ਸੰਗਤ ਮੁੜੀ ਤੇ ਸਾਈਦਾਸ ਜੀ ਭੀ ਮੁੜੇ। ਮਨ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਖਿੱਚ ਹੈ ਤੇ ਅਗੰਮੀ ਸੁਵਾਦ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਈਰਖਾ ਨਹੀ ਕੋਈ ਹੰਕਾਰ ਨਹੀਂ ਜੇ ਹੈ ਤਾਂ ਪ੍ਰੇਮ ਹੀ ਪ੍ਰੇਮ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਦੀ ਕ੍ਰਿਪਾ ਨਾਲ ਰਾਮੋ ਭੀ ਅਜਿਹੀ ਹੀ ਹੈ। ਇਕ ਦਿਨ ਰਾਮੋ ਦੀ ਇਕ ਸਹੇਲੀ ਨੇ ਪੁਛਿਆ, ਜੋ ਤੁਹਾਨੂੰ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਈਰਖਾ ਵੈਰ ਵਿਰੋਧ ਕੁਛ ਨਹੀਂ, ਹਰ ਵੇਲੇ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿਚ ਮਸਤ ਰਹਿੰਦੇ ਹੈ, ਇਹ ਦਾਤ ਤੇ ਇਹ ਜਾਚ ਤੁਸਾਂ ਕਿਸਤਰ੍ਹਾਂ ਪਾਈਹੈ॥

ਤਾਂ ਰਾਮੋ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸਤਗੁਰਾਂ ਤੇ ਭਰੋਸਾ ਹੋ ਜਾਵੇ ਤੇ, ਸਤਗੁਰੂ ਅੰਦਰ ਆ ਵੱਸਨ, ਤਾਂ ਸੁਤੇ ਹੀ ਆਦਮੀ ਦਾ ਸੁਭਾਉ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਤਾਂ ਭੁਲਨ ਹਾਰ ਹਾਂ ਸਤਿਗੁਰੂ ਆਪੇ ਮੇਹਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਸਤਗੁਰ ਤੇ ਭਰੋਸਾ ਹੋਵੇ ਬਾਣੀ ਦਾ ਪਾਠ ਕਰੇ। ਬਾਣੀ ਪੜ੍ਹਿਆਂ ਮਨ ਨਿਰਮਲ ਹੋ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਆਪੇ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਐਹ ਕੰਮ ਬੁਰਾ ਹੈ ਐਹ ਸਤਗੁਰਾਂ ਨੂੰ ਭਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਬੁਰੇ ਕੰਮ ਕੀਤਿਆਂ ਅੰਦਰ ਘਾਟ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਜੀਉੜਾ ਖੁੱਸਦਾ ਹੈ ਤੇ ਚੰਗੇ ਕੰਮ ਕੀਤਿਆਂ ਮਨ ਖਿੜਦਾ ਹੈ ਖੁਸ਼ੀ ੁੰਦੀ ਹੈ। ਅਤੇ ਭਰੋਸਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸਤਿਗੁਰ ਸਾਡੇ ਅੰਗ ਸੰਗ ਹੈ। ਇਹ ਭਰੋਸਾ ਹੋ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਤੌਖਲਾ ਮਿਟ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਤੌਖਲੇ ਦੇ ਮਿਟਿਆਂ ਮਨ ਸਾਂਤਿ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਹਰ ਜਗ੍ਹਾ ਪਿਆਰਾ ਦਿਸਦਾ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਹਰ ਜਗ੍ਹਾਂ ਪਿਆਰਾ ਦਸਿਆ ਤਾਂ ਈਰਖਾ ਕਿਸਦੇ ਨਾਲ ਹੋਨੀ ਹੋਈ। ਇਹ ਸੁਨ ਸਹੇਲੀ ਬੋਲੀ ਜੋ ਭੈਣ ਜੀ ਮੈਨੂੰ ਭੀ ਕ੍ਰਿਪਾ ਕਰੋ ਇਹੋ ਜਹੀ ਦਾਤ ਬਖਸ਼ੋ। ਤਾਂ ਰਾਮੋ ਕਹਿਨ ਲਗੀ ਕਿ ਸਤਗੁਰੂ ਦੇ ਪਿਆਰਿਆਂ ਦਾ ਸਤਸੰਗ ਕਰੋ ਤੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਸ਼ਰਨ ਜਾਵੋ ॥

ਇਹ ਸੁਨ ਸਹੇਲੀ ਬੋਲੀ ਜੋ ਭੈਣ ਜੀ ਸਤਗੁਰੂ ਤਾਂ ਦਿੱਲੀ ਹਨ। ਤੇ ਸਤਸੰਗ ਦਾ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਮੈਂ ਕੀਹ ਕਰਾਂ। ਰਾਮੋਂ ਬੋਲੀ ਕਿ ਬੀਬੀ ਸਤਗੁਰੂ ਸਰੀਰ ਕਰਕੇ ਦਿੱਲੀ ਹਨ, ਪਰ ਉਂਜ ਸਭ ਦੇ ਅੰਦਰ ਹਨ। ਸਤਗੁਰੂ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਨਾਲ ਲਿਵ ਲਾ ਤੇ ਆਪਣੇ ਅੰਦਰ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰ ਦੂਸਰਾ ਗੁਰੂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਗੁਰੂ ਰੂਪ ਹੈ ਬਾਣੀ ਦਾ ਪਾਠ ਕਰ ਤੇ ਸੱਚੇ ਦਿਲੋਂ ਅਰਦਾਸ ਕਰ ਜੋ ਹੇ ਸੱਚੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਸਤਸੰਗ ਦਾ ਮੇਲ ਦੇਹ। ਗੁਰੂ ਕਿਰਪਾ ਕਰੇਗਾ ॥

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਰਾਮੋਂ ਨੇ ਇਕ ਜੀਵ ਨੂੰ ਆਤਮ ਗਿਆਨ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੇ

ਸੁਰਜੀਵ ਕੀਤਾ। ਇਕ ਦਿਨ ਭਾਈ ਸਾਂਈਦਾਸ ਜੀ ਕਥਾ ਕਰਕੇ ਹਟੇ ਤਾਂ ਇਕ ਢੇਸਾ ਨਾਮੇ ਪੁਰਖ ਨੇ ਆ ਮੱਥਾ ਟੇਕਿਆ ਤੇ ਭਾਈ ਜੀ ਤੋਂ ਪੁਛਿਆ ਕਿ ਭਾਈ ਜੀ ਪਰਮੇਸੁਰ ਨੇ ਮੈਨੂੰ ਕਿੰਉ ਰਚਿਆ ? ਇਹ ਸੁਨ ਭਾਈ ਜੀ ਉਸ ਵਲ ਤੱਕਣ ਲਗੇ ਤਾਂ ਉਸਨੇ ਫੇਰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਦੱਸੋ ਮੈਂ ਬੜਾ ਦੁਖੀ ਹਾਂ ਪ੍ਰਮੇਸੁਰ ਨੇ ਮੈਨੂੰ ਕਿਉਂ ਰਚਿਆ ॥

ਜਦ ਤੀਕ ਮਨ ਵਸ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਤਦ ਤੀਕ ਏਕਤਾ ਨਹੀਂ ਆਉਂਦੀ ਤੇ ਜਿਨਾ ਚਿਰ ਏਕਤਾ ਨਾਹ ਆਈ ਤਾਂ ਉੱਨਾਂ ਚਿਰ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਸੱਚੇ ਪਿਤਾ ਦੀ ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਵਿੱਚ 'ਏਕ ਪਿਤਾ ਏਕਸ ਕੇ ਹਮ ਬਾਰਕ' ਵਾਲਾ ਪ੍ਰੇਮ ਨਹੀ। ਪੈਦਾ ਹੁੰਦਾ ਜੇ ਪ੍ਰੇਮ ਨਾਹ ਹੋਇਆ ਤਾਂ ਜ਼ਰੂਰ ਕਿਸੇ ਵੇਲੇ ਮਨ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ ਸਮਝਕੇ ਉਚਾਟ ਹੋ ਜਾਵੇਗਾ। ਇਸ ਲਈ ਜੋ ਨਾਮ ਜਪਦੇ ਹਨ ਤੇ ਫੇਰ ਸੇਵਾ ਸਹਜ ਸੁਭਾਉ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਸੁਤੇ ਸਿੱਧ ਹੀ ਪਈ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਤੇ ਓਪਰੀ ਨਹੀਂ ਲਗਦੀ। ਅਤੇ ਦ੍ਵੈਤ ਭਾਵ ਨਾਹ ਹੋਨ ਕਰਕੇ ਮਨ ਉਚਾਟ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ। ਸੋ ਤੁਸੀਂ ਨਾਮਦੇ ਰਸੀਏ ਬਣੋਂ। ਬਾਣੀਂ ਪੜ੍ਹੋ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਜਾਣੀ ਜਾਨ ਹਨ ਜਦੋਂ ਯੋਗ ਸਮਝਨ ਗੇ ਆਪੇ ਕ੍ਰਿਪਾ ਕਰਨਗੇ। ਇਹ ਸੁਨ ਸਿੰਧੀ ਕਿਸੇ ਅਗੰਮੀ ਸੁਵਾਦ ਵਿੱਚ ਆਗਿਆ ਤੇ ਆਪਣੀ ਊਣਤਾਈ ਭਾਸੀ।

ਕੁਝਕੂ ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਸਿੰਧੀ ਗੁਰਬਾਣੀ ਦਾ ਪ੍ਰੇਮੀ ਤੇ ਨਾਮ ਦਾ ਰਸੀਆ ਹੋਗਿਆ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਵਾਪਸ ਆਏ ਤਾਂ ਸਿੰਧੀ ਨੂੰ ਨਾਮ ਦਾ ਰਸੀਆ ਤੇ ਪ੍ਰੇਮ ਦਾ ਪੁਤਲਾ ਜਾਣਕੇ ਨਾਮ ਦਾਨ ਬਖ਼ਸ਼ਿਆ। ਤੇ ਕਿਹਾਃ–ਨਿਹਾਲ, ਨਿਹਾਲ, ਤੇ ਭਾਈ ਜੋਧਾ ਨਾਮ ਬਖ਼ਸ਼ਿਆ ਅਰ ਸਿੱਖੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਸਉਂਪੀ। ਅਤੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਿੰਧੀ ਤੇ ਕ੍ਰਿਪਾ ਕੀਤੀ ਜੇ ਭਾਈ ਢੇਸੇ ਤੇ ਭੀ ਕ੍ਰਿਪਾ ਕਰਨੀ। ਇਹ ਸੁਨ ਕੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਦੇ ਗੁਰੂ ਦੀ ਵਡਿਆਈ ਦੇਖ ਨੈਣ ਭਰ ਆਏ। ਤਾਂ ਸਤਿਗੁਰਾਂ ਨੇ ਉੱਠ ਕੇ ਸਾਂਈ

ਦਾਸ ਜੀ ਨੂੰ ਗਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ ਤੇ ਕਿਹਾ 'ਡੱਲੇ ਦੀ ਸਿੱਖੀ ਧੰਨ' 'ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨਿਹਾਲ'। ਥੋੜੇ ਦਿਨਾਂ ਪਿੱਛੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਤਾਂ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਦੇ ਬੇਨਤੀ ਕਰਨ ਤੇ ਉਸਦੇ ਨਾਲ ਕਸ਼ਮੀਰ ਚਲੇ ਗਏ ਤੇ ਸੰਗਤਾਂ ਨੂੰ ਵਿਦਾ ਕਰ ਗਏ। ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਤੇ ਰਾਮੋਂ ਫੇਰ ਡੱਲੇ ਆ ਗਏ॥

ਇੱਕ ਦਿਨ ਭਾਈ ਢੇਸਾ ਜੀ ਫੇਰ ਆ ਗਏ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲਗੇ ਜੋ ਮੈਂ ਸਤਗੁਰਾਂ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰਨ ਗਿਆ ਸਾਂ, ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਹੁਕਮ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਕਿ ਜੇ ਪੂਰਾ ਸੁਖੀ ਹੋਣਾ ਹਈ, ਤਾਂ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੂੰ ਮਿਲਿਆ ਕਰ। ਸੋ ਮੈਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਆਗਿਆ ਕਰਕੇ ਆਪ ਦੇ ਕੋਲ ਆਇਆ ਹਾਂ।

ਜਦ ਦਾ ਮੈਂ ਆਪ ਕੋਲੋਂ ਹੋ ਕੇ ਗਿਆ ਹਾਂ ਮੇਰ ਮਨ ਵਿੱਚ ਸੜਨਾ, ਕੁੜ੍ਹਨਾ, ਛਿੱਥੇ ਹੋਨਾ, ਲੜ ਪੈਣਾ ਭੀ ਹਟ ਗਿਆ ਹੈ। ਮੈਨੂੰ ਬਹੁਤ ਠੰਡ ਪੈ ਗਈ ਹੈ, ਪਰ ਜਿਸ ਵੇਲੇ ਮੈਂ ਵਿਹਲਾ ਹੁੰਦਾ ਹਾਂ ਮੇਰੇ ਅੰਦਰ ਸੱਖਣਾ-ਪਨ ਭਾਸਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਹ ਮੈਨੂੰ ਬੇਚੈਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਕ੍ਰਿਪਾ ਕਰਕੇ ਇਸਤੋਂ ਭੀ ਉਧਾਰ ਕਰੋ। ਸਾਂਈਂਦਾਸ—ਇਸ ਦਾ ਮਤਲਬ ਹੈ ਕਿ ਤੁਹਾਡੇ ਅੰਦਰ ਸੰਜਮ ਆ ਗਿਆ ਹੈ, ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਮਨ ਦੀਆਂ ਤਾਕਤਾਂ ਆਪਣੇ ਆਪਣੇ ਟਿਕਾਣੇ ਟਿਕ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਇਹ ਸਫ਼ਾਈ ਸਤਗੁਰਾਂ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਦਾ ਫਲ ਹੈ। ਪਰ ਮਨ ਨਾਮ ਤੋਂ ਸੱਖਣਾ ਹੈ। ਅਜੇ ਨਾਮ ਦੀ ਧੁਰ ਨਹੀਂ ਬੱਝੀ। ਜਿਨਾਂ ਚਿਰ ਨਾਮ ਦੀ ਧੁਰ ਨਹੀਂ ਬੱਝਦੀ ਮਨੁੱਖ ਬ੍ਰਹਮ ਗਿਆਨੀ ਦੀ ਪਦਵੀ ਤੇ ਨਹੀਂ ਪੁੱਜਦਾ॥

ਢੇਸਾ—ਮੈਂ ਇਕ ਦਿਨ ਪੰਡਤ ਕਲੋਂ ਕੱਥਾ ਵਿੱਚ ਸੁਨਿਆਂ ਸੀ ਕਿ ਜਿਸਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਭਾਵੇਂ ਕੁਝ ਪਿਆ ਹੋਵੇ ਪਰ ਉਹ ਅਫੁਰ ਰਹੇ ਉਹ ਬ੍ਰਹਮ ਗਿਆਨੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਤਾਂ ਭਾਈ ਜੀ ਕਹਿਨ ਲੱਗੇ ਕਿ ਸੁਦਾਈ ਅਤੇ ਮੂਰਖ ਅਤੇ ਦਰਖ਼ਤਾਂ ਵਗ਼ੈਰਾ ਦਾ ਇਹੋ ਹਾਲ ਹੈ ਤਾਂ ਇਹ ਸਾਰੇ ਬ੍ਰਹਮ ਗਿਆਨੀ ਹੋਏ। ਪਰ ਵੀਰਾ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਹੀਂ। ਬ੍ਰਹਮ ਗਿਆਨੀ ˜ਰਨਾਂ ਵਾਕੂੰ ਹਰਖ

ਤੇ ਸੋਗ ਵਿੱਚ ਰੁੜ੍ਹਦਾ ਨਹੀਂ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅਡੋਲ ਹੁੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਉਸ ਕੋਲੋਂ ਕਦੇ ਬੁਰਾ ਕੰਮ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ । ਉਹ ਨਿਰੋਲ ਆਤਮਾਂ ਦੇ ਸਹਿਜ ਸੁਭਾਉ ਵਿਚ ਖੇਡ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਆਤਮਾ ਨਿਰਮਲ ਹੈ ਤੇ ਆਤਮ ਗਿਆਨੀ ਤੋਂ ਕਦੇ ਬੁਰਾ ਕਰਮ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ। ਪਰ ਇਹ ਗਿਆਨ ਬਿਨਾ ਨਾਮ ਤੋਂ ਤੇ ਬਾਣੀ ਤੋਂ ਨਹੀਂ ਲੱਭਦਾ। ਬਾਣੀਂ ਨਾਲ ਮਨ ਚੜ੍ਹਦੀਆਂ ਕਲਾਂ ਵਿੱਚ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਚੜ੍ਹਦੀਆਂ ਕਲਾਂ ਵਿੱਚ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਨਾਮ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਉਪਦੇਸ਼ ਢੇਸੇ ਨੂੰ ਦੇਕੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਵਿਦਾ ਕੀਤਾ। ਹੁਣ ਤਾਂ ਢੇਸਾ ਬਦਲ ਹੀ ਗਿਆ। ਜੇ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਕੋਈ ਰੋਗੀ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਢੇਸਾ ਸੇਵਾ ਕਰੇ। ਜ ਕਿਤੇ ਸਤਸੰਗ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਢੇਸਾ ਮੂਹਰੇ। ਕੋਈ ਮੁਸਾਫ਼ਰ ਗਰੀਬ ਧਰਮਸਾਲ ਵਿੱਚ ਆਵੇ ਤਾਂ ਅੰਨ ਜਲ ਢੇਸੇ ਵੱਲੋਂ ਮਿਲੇ। ਰੋਜ਼ ਆਸਾ ਦੀ ਵਾਰ ਸੁਣਨੀ ਗੁਰਬਾਣੀ ਦੀ ਵਿਚਾਰ ਕਰਨੀ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਸੁਤੇ ਸਿਧ ਹੀ ਚੰਗੇ ਕਰਮ ਹੋਣ ਲੱਗ ਪਏ। ਇੱਕ ਦਿਨ ਢੇਸੇ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰ ਫੁਰੀ ਕੇ ਡੱਲੇ ਵਿਚ ਤਾਂ ਬੜੇ ਚੰਦਨ ਮੈਹਕਦੇ ਹਨ ਪਰ ਡਰੋਲੀ ਵਿੱਚ ਮਸੋਂ ਪੰਜੀਹ ਤੀਹ ਸੱਜਨ ਕੱਠੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਕਿਵੇਂ ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੂੰ ਇਥੇ ਲੈ ਆਵੀਏ ॥

ਇਹ ਸੋਚ ਕੇ ਢੇਸੇ ਨੇ ਸੰਗਤ ਵਿੱਚ ਮਤਾ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਤਾਂ ਸੰਗਤ ਨੇ ਸੋਚਕੇ ਇਹ ਫ਼ੈਸਲਾ ਕੀਤਾ ਕਿ ਡਰੋਲੀ ਵਿੱਚ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਦਾ ਆਵਣਾ ਬੜਾ ਲਾਭਦਾਇਕ ਹੋਵੇਗਾ। ਇਹ ਵਿਚਾਰ ਕੇ ਮੁਖੀਏ ਪੁਰਸ਼ ਡੱਲੇ ਗਏ ਤੇ ਜਾਕੇ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਕਿ ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਸਾਨੂੰ ਬਖ਼ਸ਼ੋ। ਸੰਗਤ ਨੇ ਪ੍ਰਵਾਨ ਕੀਤਾ। ਤਾਂ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਡਰੋਲੀ ਨੂੰ ਵਿਦਾ ਹੋਏ। ਇਸ ਧਰਤੀ ਤੇ ਭਾਈ ਜੀ ਦਾ ਜਨਮ ਸੀ, ਅੱਜ ਇਸਨੂੰ ਭਾਗ ਲੱਗਾ। ਧਰਮਸਾਲਾ ਵਿੱਚ ਉਤਾਰਾ ਕੀਤਾ। ਸਤਸੰਗ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਚਲਾਇਆ। ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਧਰਮਸਾਲਾ ਵਿੱਚ ਆਸਾ ਦੀ ਵਾਰ ਵੇਲੇ ਖੜੋਣ ਨੂੰ ਥਾਂ ਨਹੀਂ ਸੀ ਲਭਦਾ। ਇਹ ਦੇਖ ਭਾਈ ਜੀ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰ ਹੋਈ ਕਿ ਇੱਕ ਘਰ ਉਸਾ-

ਰਿਆ ਜਾਵੇ, ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਆਪਣਾ ਤੇ ਆਈ ਗਈ ਸੰਗਤ ਦਾ ਨਿਰਬਾਹ ਹੋ ਸੱਕੇ। ਇਹ ਸੋਚ ਕੇ ਭਾਈ ਜੀ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪੁਰਾਣੇਂ ਘਰ ਨੂੰ ਜੋ ਚਰੋਕਣਾਂ ਢਹਿ ਚੁੱਕਾ ਹੋਇਆ ਸੀ, ਹੋਰ ਭੋਂ ਨਾਲ ਰਲਾ ਕੇ ਉਸਾਰਨਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ। ਜਦੋਂ ਘਰ ਉਸਰ ਗਿਆ ਬੜਾ ਸੋਹਣਾ ਬਣਿਆ ਤਾਂ ਖਿਆਲ ਆਇਆ ਜੋ ਇਹ ਘਰ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਦੇ ਰਹਿਨ ਲਾਇਕ ਹੈ। ਇਸ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨ ਪੈਣ। ਇਹ ਸੋਚਕੇ ਜੰਦਰਾ ਲਾ ਦਿੱਤਾ। ਤੇ ਆਪ ਕੱਚਾ ਕੋਠਾ ਆਪਣੇ ਲਈ ਪੁਵਾ ਲਿਆ। ਤੇ ਉਸ ਘਰ ਦੀ ਸਜਾਵਟ ਕਰਨ ਲੱਗੇ। ਮਨ ਵਿੱਚ ਇਹ ਲਾਲਸਾ ਹੋਈ ਕਿ ਕਦੋਂ ਗੁਰੂ ਦੇ ਚਰਨ ਇੱਥੇ ਪੈਣ ਤੇ ਅਸੀਂ ਸੇਵਾ ਕਰੀਏ। ਇਸੇ ਸਿੱਕ ਵਿੱਚ ਦਿਨ ਲੰਘਣ ਲੱਗੇ। ਸਤਿਗੁਰਾਂ ਨੂੰ ਭੀ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਖਿਚ ਪਈ ਤੇ ਇੱਕ ਦਿਨ ਦਮੋਦਰੀ ਨੂੰ ਆਖਨ ਲੱਗੇ ਜੋ ਆਪ ਦੀ ਭੈਣ ਨੇ ਤੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਵੀਰਾ ਤੂੰ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਮੈਂ ਬੜਾ ਦੁਖੀ ਹਾਂ ਸੋ ਦੁੱਖ ਦਾ ਇਲਾਜ ਤਾਂ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ ਪਰ ਕਿਆਸਾਂ ਨਾਲ ਯਥਾਰਥ ਦੀ ਪਛਾਣ ਔਖੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਤੂੰ ਇਹ ਦਸ ਕਿ ਤੂੰ ਜਾਣਦਾ ਹੈਂ ਕਿ ਤੂ ਹੈਂ। ਢੇਸਾ ਬੋਲਿਆ ਹਾਂ ਚੰਗੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਜਾਣਦਾ ਹਾਂ ਕਿ ਮੈਂ ਹਾਂ॥

ਸਾਂਈਂਦਾਸ—ਤਾਂ ਫੇਰ ਇਹ ਜਾਂਣ ਦੇਹ ਕਿ ਮੈਂ ਕਿਉਂ ਹਾਂ ਤੇ ਕਿਸ ਕਰਕੇ ਹਾਂ। ਪਹਿਲਾਂ ਆਪਣੇ ਦੁਖ ਦਾ ਦਾਰੂ ਕਰ ਲੈ ਫੇਰ ਇਹ ਪਿਆ ਦੇਖੀਂ ਕਿ ਮੈਂ ਕਿਸ ਕਰਕੇ ਹਾਂ। ਪਹਿਲਾਂ ਰੋਗ ਦੀ ਦਵਾ ਕਰ ਜੇ ਰੋਗ ਹਟ ਗਿਆ ਤਾਂ ਇਸ ਗਲ ਦੀ ਕੀਹ ਲੋੜ ਹੈ ਕਿ ਰੋਗ ਕਿਕੂੰ ਲਗਾ ਤੇ ਕਿਉਂ ਲੱਗਾ। ਮੇਰੀ ਸਮਝ ਵਿੱਚ ਤਾਂ ਰੋਗ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਖਲਾਸੀ ਪਾ ਲੈਣੀ ਚਾਹੀਦੀ ਹੈ ਫੇਰ ਆਪੇ ਡਾਕਟਰੀ ਪੜ੍ਹਿਆਂ ਪਤਾ ਲੱਗ ਜਾਏਗਾ ਕਿ ਰੋਗ ਕਿਕੂੰ ਲਗਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਗਲ ਠੀਕ ਹੈ ਕਿ ਨਹੀਂ ?

ਢੇਸਾ ਇਹ ਸੁਨ ਕੇ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਠੀਕ ਹੈ ਪਰ ਮੈਂ ਸੁਖੀ ਹੋਣ ਦੀਆਂ ਬੜੀਆਂ ਵਾਹਵਾਂ ਲਾਈਆਂ ਪਰ ਸੁਖੀ ਨਾਹ ਹੋਇਆ॥

ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤੁਹਾਡੀਆਂ ਵਾਹਵਾਂ ਗ਼ਲਤ ਹਨ

ਯਾ ਵਾਹ ਲਾਉਨ ਦਾ ਤਰੀਕਾ ਗ਼ਲਤ ਹੈ। ਦੋਨਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇਕ ਗਲ ਜ਼ਰੂਰ ਹੈ। ਜਿਸਤਰ੍ਹਾਂ ਭੋਜਨ ਭੁੱਖ ਦੀ ਨਿਵਿਰਤੀ ਲਈ ਕਰੀਦਾ ਹੈ ਜੇ ਭੁਖ ਨੂੰ ਛੱਡ ਜੀਭ ਦੇ ਸਵਾਦ ਦੇ ਮਗਰ ਲੱਗ ਕੇ ਖਾਈਏ ਤੇ ਜ਼ਿਆਦਾ ਖਾ ਜਾਈਦਾ ਹੈ ਤੇ ਬੀਮਾਰ ਹੋ ਜਾਈਦਾ ਹੈ। ਇਸਦਾ ਇਹ ਮਤਲਬ ਹੈ ਕਿ ਸਾਡਾ ਭੁੱਖ ਨੂੰ ਮਿਟਾਣ ਦਾ ਤਰੀਕਾ ਗ਼ਲਤ ਹੈ । ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵਿਆਹ ਕਰੀਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸੁਖੀ ਹੋਈਏ ਤੇ ਖੁਸ਼ੀ ਵਿਚ ਖੇੜੇ ਵਿਚ ਦਿਨ ਬਿਤਾਈਏ ਤੇ ਇਕ ਦੂਜੇ ਦੇ ਸਹਾਇਕ ਹੋਕੇ ਪਰਮਾਰਥ ਵਿਚ ਲੱਗੀਏ । ਪਰ ਜੈ ਇਸ ਤੋਂ ਉਲਟ ਆਪਣੀਆਂ ਖਾਹਸਾਂ ਦੇ ਮਗਰ ਲੱਗਕੇ ਵਹੁਟੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰੇਮ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਉਹ ਖਾਹਸ਼ਾਂ ਹਟ ਜਾਵਨ ਦੇ ਮਗਰੋਂ ਬਿਨਾ ਪ੍ਰੇਮ ਤੋਂ ਦੋਨਾਂ ਦਾ ਸਾਥ ਦੁਖ ਰੂਪ ਹੋਵੇਗਾ ਤੇ ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੁਖਦਾ ਸਾਧਨ ਦੁਖ ਰੂਪ ਹੋ ਜਾਵੇਗਾ ॥

ਜੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਪੁੱਠੇ ਤਰੀਕਿਆਂ ਵਿੱਚ ਐਨਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਹੈ ਤੇ ਐਂਨੀ ਉਮਰ ਲੰਘਾਈ ਹੈ ਤਾਂ ਸੁਖ ਦੇ ਸਾਧਨ ਲਈ ਸੱਚੇ ਸੁਖੀ ਹੋਣ ਲਈ ਕੁਝ ਵਧੇਰੇ ਮੇਹਨਤ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇ। ਤਾਂ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਭਾਈ ਢੇਸੇ ਨੂੰ ਸਤਿਸੰਗ ਦਾ ਉਪਦੇਸ ਤੇ ਬਾਣੀ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ। ਢੇਸਾ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਦੇ ਚਰਨੀ ਢੱਠਾ ਤੇ ਘਰਨੂੰ ਗਿਆ ਪਰ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਉੱਥੇ ਹੀ ਸੌਂ ਗਏ। ਸੁਪਨੇ ਵਿੱਚ ਸਤਗੁਰਾਂ ਦੇ ਕੈਦ ੋਨ ਦਾ ਕੌਤਕ ਦੇਖਿਆ। ਘਰ ਆਏ ਪ੍ਰਸ਼ਾਦਿ ਨਾ ਛਕਣ ਹੋਵੇ। ਨਰੈਣਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਕਾਰਨ ਪੁਛਿਆ ਤਾਂ ਆਪਨੇ ਸਤਗੁਰਾਂ ਦੇ ਕੈਦ ਹੋਣ ਦਾ ਕੌਤਕ ਸੁਣਾਇਆ। ਇਹ ਸੁਣ ਸਾਰੇ ਕਹਿਨ ਲੱਗੇ, ਹੈ ਤਾਂ ਕੋਈ ਕੌਤਕ ਹੀ ਪਰ ਤੌਖਲਾ ਨਾ ਕਰੋ। ਰਾਮੇ ਨੇ ਕਿਹਾ ਪਿਤਾ ਜੀ ਅਮ੍ਰਤਸਰ ਆਦਮੀ ਭੇਜਕੇ ਖਬਰ ਮੰਗਾਈਏ ਤਾਂ ਪਿਤਾ ਨੇ ਆਦਮੀ ਭੇਜਿਆ ਜੋ ਖ਼ਬਰ ਲਿਆਇਆ ਕਿ ਮੁਖੀ ਮੁਖੀ ਸਿੱਖ ਸਾਰੇ ਦਿੱਲੀ ਪੁੱਜ ਗਏ ਹਨ। ਮਾਤਾ ਗੰਗਾ ਜੀ ਨੇ ਸਾਰੇ ਮੁਖੀ ਕਰਨੀ ਦੇ ਪੂਰੇ ਤੋਰ ਦਿੱਤੇ ਹਨ ਆਪ ਆਸਨ ਵਿਛਾ ਕੇ ਧਿਆਨ ਵਿੱਚ ਬੈਠ ਗਏ ਹਨ ਅਤੇ ਅੱਠੀਂ ਪਹਿਰੀ ਚਾਵਲਾਂ ਦੀ ਪਿੱਛ ਹੀ ਪੀਂਦੇ ਹਨ। ਸਾਡੀ ਬੀਬੀ ਭੀ ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ

ਪ੍ਰਾਰਥਨਾ ਵਿੱਚ ਬੈਠੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਸੁਨ ਜੀ ਡੋਲਿਆ ਕਿ ਫੇਰ ਕੋਈ ਕੌਤਕ ਅੱਗੇ ਵਾਕਰ ਨਾ ਵਰਤਦਾ ਹੋਵੇ। ਪਰ ਫੇਰ ਬਾਣੀ ਦੇ ਆਸਰੇ ਗੁਰੂ ਦੀ ਰਜ਼ਾ ਵਲ ਖਿਆਲ ਕਰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਚਰਨਾਂ ਨਾਲ ਲਿਵ ਜੋੜਦੇ ਹਨ। ਦੂਜੇ ਦਿਨ ਸਲਾਹ ਕਰਕੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਤੇ ਨਰਾਇਨ ਦਾਸ ਜੀ ਦਸਾਂ ਸਿੰਘਾਂ ਸਮੇਤ ਗਵਾਲੀਅਰ ਚਲੇ ਗਏ ਤੇ ਰਾਮੋਂ ਤੇ ਉਸਦੀ ਮਾਤਾ ਬੀਬੀ ਦਮੋਦਰੀ ਭੈਣ ਗੰਗਾ ਜੀ ਕੋਲ ਅਮ੍ਰਿਤਸਰ ਪੁਜੇ॥

ਕੁਝ ਦਿਨਾਂ ਮਗਰੋਂ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਤੇ ਨਰੈਣ ਦਾਸ ਜੀ ਮੁੜ ਆਏ ਤੇ ਆਕੇ ਸਤਿਗੁਰਾਂ ਦਾ ਸਾਰਾ ਕੌਤਕ ਰਾਜਿਆਂ ਨੂੰ ਛੁਡਾਵਨ ਦਾ ਸੁਨਾਇਆ ਇਕ ਦਿਨ ਭਾਈ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਇਸ ਤੁਕ ਦੀ ਕਥਾ ਕੀਤੀ ਕਿ "ਨਾਮ ਤੁਲ ਕੁਛ ਅਵਰ ਨਾ ਹੋਇ" ਇਹ ਸੁਨਕੇ ਇਕ ਸਿੰਧੀ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਦੇ ਕੋਲ ਆਕੇ ਬੇਨਤੀ ਕਰਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਮੈਨੂੰ ਪੰਜਵੇਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਨੇ ਕਿਹਾ ਸੀ ਕਿ ਜੇ ਤੂੰ ਸੁਖੀ ਹੋਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਆਪਣੇ ਧਨ ਤੋਂ ਸੁਖ ਲਿਆ ਨਾ ਕਰ ਸਗੋਂ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਸੁਖ ਦਿੱਤਾ ਕਰ। ਸੋ ਮੈਂ ਗੁਰੂ ਦੀ ਕਿਰਪਾ ਨਾਲ ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਰਦਾ ਹਾਂ। ਤੇ ਸੱਚ ਮੁੱਚ ਮੈਨੂੰ ਕਿਸੇ ਲੋੜ ਵੰਦ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰਕੇ ਸੁਖ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਅਜ ਇਹ ਤੁਕ ਸੁਣਕੇ ਸੰਸਾ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਸੁਖ ਤੋਂ ਭੀ ਅੱਗੇ ਕੁਛ ਹੈ। ਮੌਤ ਦਾ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕਦ ਆ ਜਾਵੇ ਜੇ ਮੈਂ ਉਸ ਉੱਚੇ ਕਰਮ ਤੋਂ ਵਾਂਜਿਆ ਰਿਹਾ ਤਦ ਠੀਕ ਨਹੀਂ। ਆਪ ਕ੍ਰਿਪਾ ਕਰੋ ਤੇ ਦੱਸੋ॥

ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸੱਜਣਾਂ ਜੋ ਕੁਝ ਤੁਸੀਂ ਭਾਲਦੇ ਹੋ ਉਹ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਹੀ ਦੱਸਨਗੇ ਪਰ ਮੇਰੇ ਕਰਕੇ ਜਿਹੜਾ ਆਪਨੂੰ ਖੇਦ ਹੋਇਆ ਹੈ ਉਸਦੀ ਬਾਬਤ ਮੈਂ ਕੁਝ ਕਹਿ ਦਿੰਦਾ ਹਾਂ। ਸੁਣੋਂ, ਸਤਗੁਰਾਂ ਨੇ ਜੋ ਆਪਨੂੰ ਨਿਸ਼ਕਾਮ ਕਰਮ ਦੱਸਿਆ ਸੀ ਸੋ ਆਪਨੇ ਕੀਤਾ। ਇਸ ਨਾਲ ਤੁਹਾਡੇ ਮਨ ਦੀ ਮੈਲ ਧੋਤੀ ਗਈ। ਨਿਸ਼ਕਾਮ ਕਰਮ ਕਰਦਿਆਂ ਮਨ ਨਿਰਮਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਮਿਲਨ ਦੀ ਚਾਹ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੁਨ ਤੁਹਾਨੂੰ

ਹਈ ਹੈ। ਨਿਸਕਾਮ ਕਰਮ ਤਾਂ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਮਿਲਨ ਦਾ ਸਾਧਨ ਹਨ। ਇਸਨੇ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਮੇਲ ਦੀ ਤੇ ਸੱਚੇ ਅਮ੍ਰਿਤ ਦੀ ਚਾਹ ਪੈਦਾ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਮੇਲ ਤਾਂ ਹੁਨ ਸਤਗੁਰੂ ਹੀ ਕਰਾਣਗੇ। ਸਿੰਧੀ ਬੋਲਿਆ ਜੋ ਭਾਈ ਜੀ ਹੁਨ ਫੇਰ ਮੈਨੂੰ ਕਰਮ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਈ ਲੋੜ ਨਹੀਂ। ਤਾਂ ਭਾਈ ਜੀ ਨੇ ਜੁਵਾਬ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਹੁਨ ਤਾਂ ਤੁਹਾਡੇ ਕੋਲੋਂ ਸੁਤੇ ਸਿੱਧ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਚਲਿਆ ਜਾਵੇਗਾ। ਇਹ ਤਾਂ ਸ਼ੁੱਧ ਮਨ ਦਾ ਸੁਭਾਉ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਅੱਗੇ ਲੰਘਕੇ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਨਾਮ ਹੈ। ਨਿਸ਼ਕਾਮ ਕਰਮ ਮਨ ਨੂੰ ਨਿਰਮਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਤੇ ਨਾਮ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਨਾਲ ਮੇਲ ਕਰਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਫੇਰ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਕਰਮ ਨਿਸ਼ਕਾਮਤਾ ਤੋਂ ਉੱਤੇ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਅਰਥਾਤ ਸੁਤੇ ਸਿੱਧ ਹੀ ਪਏ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਨਾਮ ਸੁਖ ਹੈ ਨਾਮ ਹੀ ਮੁਕਤੀ ਹੈ ਨਾਮ ਹੀ ਟਿਕਾਉ ਹੈ ਨਾਮ ਹੀ ਜੀਵਨ ਹੈ ਤੇ ਨਾਮ ਹੀ ਆਤਮਾ ਹੈ। ਨਾਮ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਨਾਲ ਮੇਲ ਲੈਂਦਾ ਹੈ। ਤੇ ਕਿਸੇ ਹਿਲਾਉ ਦੇ ਚੱਕਰ ਵਿੱਚ ਆਕੇ ਡੋਲਣ ਨਹੀ ਦਿੰਦਾ। ਇਸ ਲਈ ਨਾਮ ਸਭ ਤੋਂ ਉੱਚਾ ਹੈ। ਦੂਜੇ ਦਿਨ ਫੇਰ ਸਿੰਧੀ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਤੋਂ ਪੁਛਣ ਲੱਗਾ ਜੋ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਕਿਸੇ ਵੇਲੇ ਜੀ ਉਚਾਟ ` ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਇਹ ਕਿਉਂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਤਾਂ ਭਾਈ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਜੋ ਸੇਵਾ ਸਤਿਗੁਰੂ ਅਥਵਾ ਨਾਮ ਤੋਂ ਸੱਖਣੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਉਸ ਤੋਂ ਮਨ ਉਚਾਟ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਤਦੇ ਤਾਂ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਨਾਮ ਸਭ ਤੋਂ ਉੱਚਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਜਿਨਾ ਚਿਰ ਨਾਮ ਜੀ ਨੇ ਇਕ ਮੰਦਰ ਬਨਵਾਇਆ ਹੈ ਤੇ ਬਨਾ ਕੇ ਬੰਦ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਤੇ ਬਿਹਬਲ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ ਜੋ ਅਸੀਂ ਉਸ ਘਰ ਵਿਚ ਚੱਲ ਕੇ ਵੱਸੀਏ। ਤਾਂ ਦਮੋਦਰੀ ਜੀ ਬੋਲੇ ਕਿ ਉਹ ਆਪਦੇ ਚਰਨਾਂ ਦੇ ਭੌਰੇ ਹਨ ਆਪਨੂੰ ਜਰੂਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਨੋਰਥ ਪੂਰਨ ਕਰਨੇ ਚਾਹੀਦੇ ਹਨ॥

ਸਤਗੁਰਾਂ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤਿਆਰੀ ਕਰੋ। ਜਦੋਂ ਤਿਆਰੀ ਹੋ ਗਈ ਤਾਂ ਕਹਿਣ ਲੱਗੇ ਜੋ ਇੱਕ ਗੁਰਦੁਵਾਰਾ ਸਾਡੇ ਸਿਖ ਸਾਧੂ ਪਾਸੋਂ ਸਿਧਾਂ ਨੇ

ਖੋਹ ਲੀਤਾ ਹੈ ਅਤੇ ਬੇਅਦਬੀ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ। ਅਸਾਂ ਉੱਥੇ ਭੀ ਜਾਣਾ ਹੈ ਤੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਦੇ ਕੋਲ ਭੀ ਚਲਨਾ ਹੈ ॥

ਤਾਂ ਇਹ ਹੁਕਮ ਕੀਤਾ ਕਿ ਤੁਸੀਂ ਸਾਰਾ ਪ੍ਰਵਾਰ ਡਰੋਲੀ ਚੱਲ ਤੇ ਅਸੀਂ ਆਪਣੇ ਸਿੱਖ ਕੋਲੋਂ ਹੋਕੇ ਆਂਵਦੇ ਹਾਂ ॥

ਉੱਧਰ ਰਾਮੋਂ ਤੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਗੁਰੂ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿਚ ਮਸਤ ਹੋਏ ਹੋਏ ਹਨ ਤੇ ਉਡੀਕਾਂ ਕਰਦੇ ਹਨ ਕਿਗੁਰੂਜੀਦੀਕਦ ਮੇਹਰ ਹੋਵੇ। ਤਾਂ ਇੱਕ ਦਿਨ ਇੱਕ ਸਿਖ ਨੇ ਆਕੇ ਕਿਹਾ ਜੋ ਮਾਤਾ ਜੀ ਅਤੇ ਬੀਬੀ ਦਮੋਦਰੀ ਜੀ ਆ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਹ ਸੁਣ ਕੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿਚ ਗਦ ਗਦ ਹੋਗਏ ਅਤੇ ਬੇਸੁਰਤ ਜਹੇ ਹੋਗਏ। ਸਿਖ ਨੇ ਚਰਨ ਦਬਾਏ ਹਥ ਝੱਸੇ ਤਾਂ ਸੁਰਜੀਤ ਹੋਏ ਤਾਂ ਸੁਨੇਹਾ ਸੁਣਿਆਂ ॥

ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਅਤੇ ਬੀਬੀ ਰਾਮੋਂ ਬਾਹਰ ਆਏ ਸੰਗਤਾਂ ਕੱਠੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਤਾਂ ਰਾਮੋਂ ਅਗਵਾਈ ਵਾਸਤੇ ਗਈ ਤੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਮੰਦਰ ਖੋਹਲਿਆ ਤੇ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ਤਿਆਰ ਕਰਨ ਲਈ ਸੇਵਾਦਾਰ ਲਾਏ ! ਮਾਤਾ ਜੀ ਆਏ ਕੜਾਹ ਪ੍ਰਸ਼ਾਦਿ ਕਰਕੇ ਅਰਦਾਸਾ ਸੋਧਿਆ ਗਿਆ। ਰਾਮੋਂ ਤੇ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਸੇਵਾ ਵਿੱਚ ਮਗਨ ਰਹਿਣ ਲੱਗੇ। ਇੱਕ ਦਿਨ ਸੁਨੇਹਾ ਪੁੱਜਾ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਆ ਰਹੇ ਹਨ ਤਾਂ ਪ੍ਰੇਮ ਵਿੱਚ ਮਗਨ ਉੱਸੇ ਵੇਲੇ ਉੱਠ ਕੇ ਟੁਰਪਿਆ। ਰਸਤੇ ਵਿੱਚ ਮਿਲਾਪ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਵਿੱਚ ਬੇਸੁਰਤ ਜਿਹਾ ਹੋਕੇ ਸੜਕ ਦੇ ਉੱਤੇ ਬਹਿ ਗਿਆ ਤੇ ਐਸੀ ਲਿਵ ਜੁੜੀ ਕਿ ਬੇਸੁੱਧ ਹੋਗਿਆ। ਉੱਧਰ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀਆਂ ਖਿੱਚਾਂ ਵਾਲੇ ਸਤਗੁਰੂ ਨੇ ਘੋੜਾ ਦੁੜਾਇਆ ਤੇ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਮੂਰਤੀ ਕੋਲ ਆ ਗਏ ਤੇ ਆਵਾਜ ਦਿੱਤੀ ਕਿ 'ਉਠਹੋ' ਪਰ ਕੌਣ ਸੁਣੇ। ਸਤਿਗੁਰੂ ਨੇ ਗਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ। ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਤ੍ਰਬਕੇ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਆਪ ਹਨ। ਝਟ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਚੱਠੇ, ਗੁਰੂ ਨੇ ਫੇਰ ਗਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ, ਤਾਂ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਨੂੰ ਤਿਨਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੋਝੀ ਹੋਈ। ਸਤਿਗੁਰੂ ਨੇ

ਡਰੋਲੀ ਡੇਰੇ ਲਾ ਦਿੱਤੇ ਇੱਥੇ ਹੀ ਸਤਸੰਗ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਚਲ ਪਿਆ॥

ਇੱਥੇ ਹੀ ਦਮੋਦਰੀ ਜੀ ਦੇ ਬਾਲਕ ਉਤਪੰਨ ਹੋਇਆ ਜਿਸਦਾ ਨਾਂ 'ਗੁਰਦਿੱਤਾ' ਰਖਿਆ। ਜਦੋਂ ਸਤਿਗੁਰ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਦੇ ਵੱਡੇ ਪੁੱਤਰ ਸ੍ਰੀ ਚੰਦ ਨੇ ਆਪਣੀ ਗੱਦੀ ਵਾਸਤੇ ਸਾਰੇ ਢੂੰਡ ਕੀਤੀ ਤਾਂ ਕੋਈ ਮਹਾਂ ਪੁਰਖ ਨਾ ਲੱਭਿਆ। ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਗੁਰੂ ਘਰ ਵਲ ਹੀ ਨਿਗਾਹ ਕੀਤੀ ਅਤੇ ਗੁਰੂ ਹਰ ਗੋਬਿੰਦ ਜੀ ਪਾਸ ਆਏ। ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਆਪਨਾ ਵੱਡਾ ਪੁੱਤਰ ਗੁਰਦਿੱਤਾ ਹਾਜ਼ਰ ਕੀਤਾ। ਤਾਂ ਸ੍ਰੀਚੰਦ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੇਰੇ ਕੋਲ ਇਹ ਟੋਪੀ ਹੈ ਤੇ ਉਦਾਸ ਸੰਪਰਦਾ ਦੀ ਵਾਗ ਡੋਰ ਹੈ ਜੋ ਮੈਂ ਆਪਦੇ ਇਸ ਲਾਲ ਨੂੰ ਦਿੰਦਾ ਹਾਂ। ਉਦਾਸ ਸੰਪਰਦਾ ਇਸਦੇ ਅੱਗੇ ਨਿਵੇਂਗੀ॥

ਸਤਗੁਰੂ ਡਰੋਲੀ ਵਿੱਚ ਰਹਿਣ ਲੱਗ ਪਏ ਤਾਂ ਉਧਰ ਭਾਈ ਬੁੱਢਾ ਜੀ ਤੇ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਦਰਸ਼ਨਾ ਵਾਸਤੇ ਅਤੀ ਬਿਹਬਲ ਹੋਏ ਅਤੇ ਸੰਗਤਾਂ ਉਦਾਸ ਹੋਈਆਂ। ਤਾਂ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਅਰਦਾਸ ਕੀਤੀ ਕਿ ਸਾਰੀ ਸੰਗਤ ਰੋਜ਼ ਪ੍ਰਕਰਮਾ ਕਰਿਆ ਕਰੇ ਤੇ ਕੀਰਤਨ ਕਰਿਆ ਕਰੇ, ਤੇ ਇਸ ਭਾਵਨਾ ਨਾਲ ਕਰੇ ਕਿ ਸਤਗੁਰੂ ਸਾਨੂੰ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇਨ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਆਪੇ ਮੇਹਰ ਕਰਨਗੇ। ਉਧਰ ਸਤਗੁਰੂ ਜੀ ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਖਿੱਚ ਪੁੱਜਨ ਨਾਲ ਟੁਰਨ ਦੀਆਂ ਸਾਲਾਹਾਂ ਕਰਨ ਲੱਗ ਪਏ। ਇਹ ਦੇਖ ਸੰਗਤ ਉਦਾਸ ਹੋਨ ਲੱਗ ਪਈ। ਇੱਨੇ ਨੂੰ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਤੇ ਭਾਈ ਬੁੱਢੇ ਜੀ ਦੀ ਪਤ੍ਰਕਾ ਆਈ ਸਤਗੁਰੂ ਤਿਆਰ ਹੋਏ ਤਾਂ ਸਾਂਈਂਦਾਸ ਜੀ ਤੇ ਰਾਮੋ ਜੀ ਵਿਛੋੜੇ ਨੂੰ ਦੇਖਕੇ ਬਿਹਬਲ ਹੋਗਏ। ਸਤਿਗੁਰਾਂ ਧੀਰਜ ਦਿੱਤੀ ਤੇ ਕਿਹਾ ਫੇਰ ਆਵਾਂਗੇ॥

ਸਤਿਗੁਰੂ ਦੇ ਡਰੋਲੀ ਰਹਿਣ ਤੇ ਭਾਈ ਢੇਸੇ ਦੇ ਭਾਗ ਭੀ ਜਾਗੇ। ਇਕ ਦਿਨ ਸਤਗੁਰੂ ਕਿਸੇ ਸਿਕਾਰ ਤੋਂ ਆਏ ਖੂਹ ਤੇ ਬੈਠੇ ਸਨ।

वहमी रोगी

अनु० लक्ष्मण स्वरूप

पहला अङ्क

पहला दृश्य

आरगॉ—(सामने एक मेज़ लगा हुआ है, आरगॉ स्लेट पेन्सिल लेकर अपने वैद्य के बिल का हिसाब लगा रहा है) तीन और दो पॉच, और पॉच दस और दस बीस; तीन और दो पॉच। "ता० २४—ब्योरा—लघु कोष्ठ शोधक, मृदु तथा मन्द विरेचन श्रीमान् की अंतडिओ को मुलायम तर और ताज़ा बनाने के लिए"। जो बात मुझे अच्छी लगती है वह यह है कि वैद्य जी के बिल सदा बड़े विनम्र होते है। 'श्रीमान् की अंतड़िओं को" चार आने, किन्तु वैद्य जी महाराज, विनम्र होना ही पर्याप्त नहीं है, साथ ही उचित अनुचित का भी विचार होना चाहिए और रोगिओ को इस तरह न झँड़ना चाहिए। एक पुड़िया जुलाब के लिए चार आने ' फिर मै तो आप का दास हूं। मै आप को पहले ही बतला चुका हूं कि पिछले बिल मे आप ने 'केवल तीन आने लगाए हैं। सो भी वैद्यो की भाषा में तीन आने का अभिप्राय है डेढ़ आना। यह लीजिए डेढ़ आना। "ब्योरा, उक्त दिन का—एक बढ़िया शोधक विरेचन, श्रीमान् के उदर को साफ करने पखारने और सोधने के लिए, दुगनी हरड़, मधु, गुलाब के फूल आदि अनेक औषधो से विधि के अनुसार बना हुआ, चार आने"। क्षमा करे डेढ़ आना।"उक्त सायं काल का ब्योरा—श्रीमान् को सुलाने के लिए निद्राजनक, सुषुप्ति दायक मधुर रस, पॉच आने"। इस से मुझे कोई शिकायत नहीं, क्योंकि इस से मुझे नींद अच्छी आई थी। दस पन्द्रह सोलह और सतारह।' ता०२५---ब्योरा---एक बढ़िया पौष्टिक ओषधि, डाक्टर पूरगो के विधान के अनुसार अङ्गरेज़ी सनाय और अन्य जड़ी बूटिओ के साथ ताज़ा अमलतास डाल कर तय्यार की हुई, चार रुपये'। आह ! महाशय फ़ुरां, आप मेरे साथ मखौल कर रहे हैं। आप को रोगिओं के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए। डाक्टर पूरगों ने अपने विधान मे आप को यह तो नही कहा है कि आप ओषधि का मोल चार रुपये रक्खे। कृपा करके तीन रुपये रक्खें तीन। बीस और तीस। " ब्योरा उक्त दिन का--एक मात्रा शूलहर

पाचक ओषधि, श्रीमान् को विश्राम देने के लिए, चार आने"। चलो तीन आने।' ता० २६---ब्योरा---अग्निवर्द्धक विरेचन, श्रीमान् की बादी दूर करने के लिए, चार आने'। डेड आना म० लफेरां।"यही विरेचन श्रीमान् को संध्या समय फिर दिया गया—ब्योरा जैसे ऊपर, चार आने"। म० लफेरां डेड़ आना।"ता० २७—ब्योरा—एक बढ़िया ओषधि, श्रीमान् के त्रिदोषज विकारो को निकालने और निर्मूल कर देने के लिए, तीन रुपये"। ठीक, बीस और तीस। मुझे बडी प्रसन्नता है कि आप विचार से काम लेने लगे है।"ता० २८—ब्योरा—साफ किया हुआ और सोधा हुआ अरिष्ट, श्रीमान् के रक्त को स्निग्ध, शान्त, प्रकृतिस्थ और ताज़ा करने के लिए, तीन आने"। अच्छा दो आने।"ब्योरा—एक मात्रा द्रव और पाचक ओषधि, विधान के अनुसार छः रत्ती रोचना नीबू और अनार के रस तथा और अन्य पदार्थों से विधि के अनुसार तय्यार की हुई, पॉच रुपये"। धीरे, म० लफेरां कृपा कर धीरे। यदि आप रोगिओं के साथ ऐसी अंधाधुंधी से बर्तेंगे तो फिर कोई बीमार होना ही न चाहेगा। चार रुपये पर ही सन्तोष कीजिए बीस और चालीस। तीन और दो पॉच, और पॉच दस, और दस बीस रुपये एक आना छः पाई। अच्छा तो इस महीने मै ने एक, दो, तीन, चार, पॉच, छः, सात और आठ ओषधिआं सेवन की है और पिछले महीने बारह। अत एव आश्चर्य नही कि मै इस महीने मे इतना अच्छा नही रहा जितना पिछले महीने मे था। डा० पूरगों को इसकी सूचना देनी होगी, ताकि भविष्य मे यह त्रुटि न रहे। चलो, यह सब उठा ले जाओ। (किसी को आते न देख कर और कमरे में अपने नौकरो में से किसी को भी न पाकर) एक भी नही। मेरा कहना, न कहना एक जैसा ही है। वे सदा मुझे इसी तरह अकेला छोड़ कर चल देते है। उन्हें यहॉ बैठा रखने का कोई उपाय ही नहीं। (मेज़ पर रक्खी हुई घंटी बजा कर) कोई सुनता ही नहीं और मेरी घंटी भी तो पर्याप्त शोर नहीं करती। (फिर घंटी बजाता है टनन्, टनन्, टनन्. !) बिलकुल व्यर्थ (फिर बजाता है टनन्, टनन्, टनन्, !) सब बहरे हो गये है.... त्वानेत्त ! (फिर बजाता है टनन्, टनन्, टनन्, !) यह ऐसा है मानो मै ने घंटी बजाई ही नहीं। कुतिया ! चुडैल ! (फिर बजाता है टनन्, टनन्, टनन्) क्रोध से बदन में आग लगी जाती है ! (घंटी न बजाकर स्वयं चिल्लाने लगता है) टनन्, टनन्, टनन्, ! भूतनी, कहीं तुझे यम के दूत ले जायं। कैसी अनहोनी बात है कि एक निर्बल रोगी को इस प्रकार अकेला छोड दिया जाता है टनन्, टनन्, टनन्, ! कैसी दयनीय दशा है। टनन्, टनन्, टनन् ! हे प्रभो ! इस तरह तो किसी समय मेरे प्राण भी निकल जायँगे और किसी को पता भी न लगेगा। टनन्, टनन्, टनन् !

दूसरा दृश्य

आरगां और त्वानेत्त

त्वानेत—(प्रवेश करती हुई) आई जी !

आरगां—भूतनी !

त्वानेत्त—(सिर टकराने का अभिनय करती हुई) भाड़ में जाय आप की यह अधीरता ! मुझे इस प्रकार दौड़ाते हो कि खिडकी के पल्ले से मेरा सिर टकरा गया, बड़ी चोट लगी है।

आरगां—(क्रोधमें) तू बड़ी धूर्त है।

त्वानेत्त—(आरगां की बात काट कर) हाय !

आरगां—एक...

त्वानेत्त—हाय !

आरगां—एक घंटे से

त्वानेत्त—हाय !

आरगां—तू मुझे छोड़ कर

त्वानेत्त—हाय !

आरगां—चुप कर चुड़ैल ! मुझे डॉट-डपट कर लेने दे।

त्वानेत्त—हॉ जी, क्यो नही। सच है। मेरी भी यही राय है। नहीं तो, विना आप की डॉटडपट के, मेरे सिर पर जो अभी गहरी चोट लगी है, वह अधूरी ही न रह जायगी।

आरगां—चुडैल, तू ने मेरा गला बैठा दिया है।

त्वानेत्त—और आप ने। आप ने तो मेरा सिर ही तोडवा डाला। यह ऐसा ही बुरा है जसा वह। क्षमा कीजिए, हम दोनो बराबर हो गए।

आरगां—क्या कहा पिशाचनी

त्वानेत्त—आप डॉटेंगे तो मै रोऊँगी।

आरगां—नमकहराम, मुझे इस तरह छोड़ कर चल देना...

त्वानेत्त—(फिर आरगां की बात काट कर) हाय !

आरगां—तू चाहती है कि ...

त्वानेत्त—हाय !

आरगां—तो क्या मै डॉटडपट करने के आनन्द से भी वञ्चित रहूँगा ?

त्वानेत्त—नही जी, आप दिल खोल कर डॉटडपट करे। मुझे भी आप की यह डॉटडपट अच्छी लगती है।

आरगां— तू पग पग पर मेरी बात काट कर मुझे रोकती है।

त्वानेत्त—यदि आप को डॉटडपट करने मे आनन्द आता है तो निःसन्देह मुझे भी अधिकार है कि मै रोने का आनन्द उठाऊं। प्रत्येक अपनी २ रुचि के अनुसार, यही ठीक है--हाय !

आरगां—अच्छा, चलो, यह डॉटडपट भी छोड़नी ही पड़ेगी। यह उठा ले जा चुडैल ! यह उठा लेजा। (अपने आप उठा कर) मेरा आज काथ अच्छी तरह तय्यार हो गया है न।

त्वानेत्त—आप का काथ !

आरगां—हाँ, क्या मेरे पित्त का प्रकोप शान्त हो गया है ?

त्वानेत्त—राम राम ! मै अपने आप को इन झमेलो मे नहीं डालती। इस काम मे तो वैद्य जी ही हाथ डाले जिन को लाभ होता है।

आरगां—देखो, मुझे अभी जो काथ पीना है उस की जगह दूसरा होशयारी से तय्यार करना।

त्वानेत्त—इस महाशय फ़्लेरां और डाक्टर पूरगो ने आप के शरीर को मनोरञ्जन का साधन बना रक्खा है। आप इनके लिए कामधेनु गाय हैं। जी करता है कि इन्हे पूछूँ कि क्यो जी, हमारे बाबूजी को ऐसा कौन सा रोग लग गया है कि आप हर दम उन के भीतर औषधिआं ठूंसते चले जाते है।

आरगां—चुप कर मूर्ख, आयुर्वेद के विधान तेरे नियन्त्रण मे नहीं है। जा, बेटी आञ्जेलिक को बुला ला। मुझे उस से दो बाते करनी है।

त्वानेत्त—लो ! वह स्वयं ही आ रही है। मालूम होता है वह आपके दिल की बात को पहले ही जान गई है।

तीसरा दृश्य

आरगां, आञ्जेलिक, त्वानेत्त

आरगां—आओ बेटी आञ्जेलिक, आओ, अच्छी आई हो। मै ने तुम से दो एक बातें करनी है।

आञ्जेलिक— पिता जी, मै आप की बातो को सुनने के लिए तय्यार हूं। कहिए, क्या आज्ञा है ?

आरगां—ज़रा ठहरो। (त्वानेत्त से) लाना तो, मुझे मेरी लाठी देना। मै अभी आता हूं।

चौथा दृश्य

आञ्जेलिक, त्वानेत्त

आञ्जेलिक—त्वानेत्त

त्वानेत्त—क्या है ?

आञ्जेलिक—ज़रा मेरी तरफ़ तो देख।

त्वानेत्त—अच्छा जी यह लो देखती हूं।

आञ्जेलिक—त्वानेत्त

त्वानेत्त—हां, तो कहिए, त्वानेत्त के लिए क्या आज्ञा है?

आञ्जेलिक—क्या तू नहीं जानती कि मै क्या बात करना चाहती हूं?

त्वानेत्त—इस में भी कुछ सन्देह है? तुम अपने नवयुवक प्रेमी के विषय में बात करना चाहती हो। पिछले छ दिनों से हम दोनो की सारी बात चीत ही उन के विषय मे होती आ रही है। उन की चर्चा चलाए बिना तुम्हें एक घड़ी भी चैन नही आता।

आञ्जेलिक—जब तू इतना जानती है तो अपने आप पहले ही क्यों नही उन की बात छेड़ती? इस प्रसंग को लाने के कष्ट से मुझे क्यो नहीं बचा लेती?

त्वानेत्त—तुम मुझे बोलने का अवकाश ही नही देती। तुम इतनी उतावली हो तुम से पहले बोलना कठिन है।

आञ्जेलिक—मै मानती हूं कि उन के विषय मे तेरे साथ बाते करने से कभी मेरा जी नहीं भरता और जब पल भर भी समय मिलता है तो हृदय बड़ी उत्सुकता से अपने आप को खोल कर तेरे सामने रखने के लिए तत्पर हो जाता है। क़िन्तु, त्वानेत्त, यह तो बतला कि उन के प्रति मेरे जो भाव है क्या वे तेरी दृष्टि मे निन्दनीय है?

त्वानेत्त—राम राम! यह भी कोई कहने की बात है। ऐसा कभी हो सकता है?

आञ्जेलिक—क्या इन हृदयङ्गम भावो में लीन रहना मेरा लिए अनुचित है?

त्वानेत्त—मै कब कहती हूं कि अनुचित है।

अञ्जेलिक—क्या तू चाहती है कि जिस प्रकृष्ट प्रेम के प्रमाण वे मेरे प्रति प्रकट करते है उनके मधुर साक्ष्य मे मै अपने हृदय को उनके प्रति कठोर बना दूं?

त्वानेत्त—ईश्वर न करे कि ऐसा हो।

आञ्जेलिक—कुछ तो कह। क्या तू नही समझती, कि हमारे इस परस्पर के परिचय की आकास्मिक घटना मे दैव का हाथ है, विधि का कोई अदृष्ट विधान है? मै तो ऐसा ही समझती हूं।

त्वानेत्त—हां, ऐसा ही है।

आञ्जेलिक—क्या तू नही देखती कि बिना मुझे जाने इस प्रकार मेरी सहायता करना किसी महापुरुष का ही काम था?

त्वानेत्त—हां

आञ्जेलिक—इस से अधिक त्याग असम्भव है?

त्वानेत्त—ठीक है।

आञ्जेलिक—और वह सारा कार्य्य संसार के परम सौन्दर्य के साथ किया गया। क्यो ?

त्वानेत्त—और क्या !

आञ्जेलिक—त्वानेत्त, क्या तू उन के शरीर को दर्शनीय नहीं समझती ?

त्वानेत्त—परम दर्शनीय।

आञ्जेलिक—और शिष्टाचार मे संसार भर मे उन का कोई सपत्न नही है ?

त्वानेत्त—निस्सन्देह।

आञ्जेलिक—और उन के कथनों तथा उनके कार्य्यो मे सदा कुलीनता दिखाई पडती है।

त्वानेत्त—अवश्य

आञ्जेलिक—और वे जो कुछ मुझ से कहते है उस से अधिक मधुर बाते सुनना असम्भव है ?

त्वानेत्त—सच है।

आञ्जेलिक—और जिस दारुण बन्धनो में मैं रखी गई हूं उन से अधिक दु:खदायी और कुछ नही है ? ये बन्धन मधुर सम्मिलन और पारम्परिक प्रेम को रोकते हैं वह प्रेम जो परमात्मा ने हमारे हृदय मे पैदा किया है।

त्वानेत्त—तुम ठीक कहती हो।

आञ्जेलिक—किन्तु, मेरी भोली भाली त्वानेत्त, क्या तुझे विश्वास है कि वे मुझे इतना ही हृदय से प्यार करते है जितना वे बाहिर से बखान करते है ?

त्वानेत्त—ऊँ हूँ ! ऐसे विषय मे सदा ही सावधान रहना चाहिए। सत्य-प्रेम और उस का अभिनय बहुत ही समान है। मैं ने बड़े बड़े स्वांग भरने वालो को देखा है।

आञ्जेलिक—हाय ! त्वानेत्त, तू यह क्या कहती है ? मेरे प्रभो ! जिस रीति से वे बाते करते है क्या उस मे भी स्वांग भरने की सम्भावना हो सकती है ?

त्वानेत्त—खैर शीघ्र ही भेद खुल जायगा और तुम्हे स्पष्ट मालूम हो जायगा। अभी कल ही उन्हो ने लिख भेजा है कि उन्हो ने तुम्हारे पाणिग्रहण की याचना करने का दृढ निश्चय कर लिया है। सच झूठ का पता लगाने के लिए यह उत्तम साधन है। इस से अधिक अच्छा प्रमाण और क्या मिल सकता है ?

आञ्जेलिक—ओह ! त्वानेत्त! यदि उन्होंने मुझे धोखा दिया तो फिर मै जीवन भर किसी भी पुरुष का विश्वास न करूंगी।

त्वानेत्त—लो ! तुम्हारे पिता जी आगए हैं।

पाँचवां दृश्य

आरगां, आञ्जेलिक, त्वानेत्त

आरगां—सुनो, बेटी, मै तुम्हारे लिए एक समाचार लाया हूं जिस के सुनने की शायद तुम्हें कोई आशा नहीं। तुम्हारे ब्याह की बात चीत हो रही है। क्यो, क्या हुआ ? तुम क्यो हंसती हो ? यह है ही आनन्द की बात। ब्याह का शब्द ही हृदय को गद्‌गद कर देता है। युवतिओ के लिए इस से अधिक कौतुक की और कोई बात नहीं। वाह मानवी प्रकृति ! तो बेटी, जो कुछ मै देख सका हूं उस से तो यही प्रतीत होता है कि तुम्हारे ब्याह की बात चीत पक्की कर दी जाय। तुम सहमत हो न ? तुम्हे ब्याह करने मे कुछ आपत्ति तो नही ?

आञ्जेलिक—पिता जी जिस बात में आप की प्रसन्नता है और जो आप की आज्ञा है उस का पालन करना मेरा कर्तव्य है।

आरगां—वह पुरुष धन्य है जिस की ऐसी आज्ञाकारिणी पुत्री हो। मै आज सुखी हूं। बात पक्की हो चुकी है। तुम्हारा वाग्दान हो गया।

आञ्जेलिक—पिताजी आप के सारे आदेशो को वेदवाक्य जान कर आंखे मूंदकर मानना और उस पर चलना मेरा धर्म है।

आरगां—तुम्हारी सौतेली मां तो इस बात पर अड़ी हुई है कि तुम्हें और तुम्हारी छोटी बहन, लूइसो को सन्नयासिनी बना दिया जाय। हर समय वह इसी बात पर ज़ोर देती है।

त्वानेत्त—(आप ही आप) इस भली डायन को तो अपना उल्लू सीधा करने से मतलब है।

आरगां—वह इस ब्याह का होना चाहती ही न थी। किन्तु मै ने धीरे २ उस को मना लिया है और मै नें बचन दे दिया है।

आञ्जेलिक—पिताजी ! आप की इन सारी कृपाओ की मैं आभारी हूं।

त्वानेत्त(आरगां से) सचमुच इस बात से मुझे भी मालूम हो गया कि आप अच्छी प्रकृति के आदमी है। आप ने अपने जीवन मे जितने भी काम किए है यह उन सब से अधिक बुद्धिमत्ता का काम है।

आरगां—वर को तो मै ने अभी तक देखा नहीं है पर मुझे लोगो ने कहा है कि इस संम्बन्ध से तुम्हें भी उतना ही संतोष होगा जितना मुझे।

आञ्जेलिक—क्यो नही, पिताजी, अवश्य ही होगा !

आरगां—भला कैसे ? तुम ने उसे देखा है ?

आञ्जेलिक—आप अपना बचन दे चुके हैं, इस लिए अपने हृदय को खोल कर आप के सामने रखने मे मुझे अब कोई संकोच नही है। मै अब कोई बात आप से न छिपाऊंगी। छः दिन हुए हम दोनों का अकस्मात् ही

परस्पर परिचय हुआ। और आप से ब्याह के विषय में जो बात चीत की गई है वह उसी अनुराग का फल है जिस का प्रथम दर्शन से ही हम दोनो मे प्रादुर्भाव हुआ।

आरगां—उन्हो ने तो मुझ से यह बात नही कही, खैर यह भी अच्छा ही हुआ। संसार मे घटनाएं यदि इसी प्रकार हुआ करे तो कुछ हानि नहीं। मैं तो संतुष्ट हूं। लोग कहते है कि वर प्रौढ युवक और हृष्ट पुष्ट है।

आञ्जेलिक—हां, पिताजी।

आरगां नख सिख अच्छे है।

आञ्जेलिक—इस में कोई सन्देह नही।

आरगां—रङ्गरूप सुहावना है।

आञ्जेलिक—ठीक है।

आरगां—मुख की आकृति दर्शनीय है।

आञ्जेलिक—बहुत ही दर्शनीय।

आरगां—बुद्धिमान् और कुलीन है।

आञ्जेलिक—अत्यन्त।

आरगां—बहुत ही भलामानस है।

आञ्जेलिक—ऐसा भलामानस संसार मे ढूंढने से भी न मिलेगा।

आरगां—संस्कृत और प्राकृत अच्छी बोलता है।

आञ्जेलिक—यह मुझे मालूम नहीं।

आरगां—जिसे तीन दिन के अनन्तर वैद्यवाचस्पति की उपाधि मिलने वाली है।

आञ्जेलिक—उन्हें, पिताजी?

आरगां—हां! क्या यह बात उस ने तुम से नही कही?

आञ्जेलिक—नही, यह तो उन्हो ने मुझ से नहीं कहा। आप से किस ने कहा?

आरगां—डाक्टर पूरगो ने।

आञ्जेलिक—तो डाक्टर पूरगो उन्हे जानते है?

आरगां—क्या विलक्षण प्रश्न है। उन को जानना चाहिए क्योंकि वह उन का भतीजा है।

आञ्जेलिक—क्लेआन्त डाक्टर पूरगों के भतीजे?

आरगां—कौन क्लेआन्त? मै तो वर की बातें कर रहा हूं जिस के साथ तुम्हारा ब्याह होना है।

आञ्जेलिक—हां ठीक है।

आरगां—अच्छा तो वर डाक्टर पूरगो का भतीजा है। उन के साले डाक्टर दियाफवारस का लड़का है। उस का नाम क्लेआन्त नही किन्तु टोमस दियाफ-वारस है। और हम—डा० पूरगो महाशय फ्लेरां और मैं—तीनो ने आज ही

प्रातः ब्याह की बात पक्की कर ली है। कल हमारे भावी जामाता अपने पिता के साथ यहाँ पधारेंगे। क्यों, क्या हुआ ? तुम्हारे चेहरे का रङ्ग एकदम उड़ गया।

आँजेलिक—पिता जी, मैंने समझा था कि आप एक युवक विशेष की बातें कर रहे हैं पर अब सुनती हूं कि यह कोई दूसरा ही व्यक्ति है।

त्वानेत्त— बाबू जी ! क्या आप को ऐसा उपद्रव खड़ा करना शोभा देता है ? इतनी धन-सम्पत्ति के होते हुए भी आप अपनी लड़की का ब्याह एक डाक्टर के साथ करेंगे ?

आरंगा- हाँ, करूंगा क्यो नही ? तू बीच मे क्यों बोल उठती है, चुडैल ? तू बड़ी गुस्ताख है।

त्वानेत्त—हे प्रभु ! तनिक धीरे ! आप गालिओं से ही आरम्भ करते हैं। क्या क्रोध किए बिना हम एक साथ बैठ कर विचार नही कर सकते ? ज़रा शान्ति से बातें कीजिए। कृपा करके यह बतलाइए कि इस ब्याह के पक्ष में आप क्या युक्ति देते हैं ?

आरगां—युक्ति यह है कि मै सदा रोगी और निर्बल रहता हूं। मेरी इच्छा है कि मेरा जामाता और सम्बन्धी लोग डाक्टर हो ताकि मेरे इस रोग के विरुद्ध मेरी भले प्रकार से सहायता कर सकें और घर मे ही आवश्यक औषधिओ का स्रोत बन जाय और सेवन-विधि तथा निदान इत्यादि के उपदेश हर समय मिलते रहें।

त्वानेत्त—बहुत ठीक ! खैर कुछ बात तो हुई। परस्पर एक दूसरे की बातो का शान्ति से उत्तर देने में चित्त भी प्रसन्न होता है। किन्तु बाबू जी, हृदय पर हाथ रख कर कहिए कि आप सचमुच बीमार है।

आरगां--क्या कहा, नकटी ! क्या मैं बीमार हूं ! क्या मै सचमुच बीमार हूं ! निर्लज्ज।

त्वानेत्त—हाँ जी, बाबू जी, आप बीमार हैं। इस पर मुझे कुछ नही कहना है। हाँ, आप बहुत बीमार हैं, मै भी इस बात मे आप से सहमत हूं। जितना आप समझते हैं आप उस से भी अधिक बीमार है। अब इस मे तो विवाद की कोई बात न रही। किन्तु जामाता तो आप के लिए नही है वह तो आप की लड़की के लिए चाहिए और चूंकि आप की लड़की को कोई रोग नही है इसलिए उस का डाक्टर के साथ ब्याह करना आवश्यक नही है।

आरगां—उस का डाक्टर के साथ ब्याह मै अपने लिए कर रहा हूं। अच्छी प्रकृति की लड़की को ऐसे पुरुष के साथ ब्याह करने मे प्रसन्न होना चाहिए जो उसके पिता के स्वास्थ्य के लिये उपयोगी हो।

त्वानेत्त—शिव, शिव ! बाबू जी, क्या आप अपने एक शुभचिन्तक की बात भी सुनेंगे ?

त्वानेत्त—आप इस ब्याह का विचार ही छोड़ दीजिए।

आरगां—कारण ?

त्वानेत्त—इस का कारण यही कि आप की लड़की इस ब्याह के लिए कदापि सहमत न होगी।

आरगां—सहमत न होगी ?

त्वानेत्त—न।

आरगां—मेरी पुत्री ?

त्वानेत्त—जी हाँ आप की पुत्री। वह आप से कह देगी कि डाक्टर दियाफवारस, उस के पुत्र टोमस दियाफवारस और संसार के सारे के सारे दियाफवारसों से उस का कोई प्रयोजन नहीं

आरगां—किन्तु मेरा तो प्रयोजन है। इस के अलावा यह सम्बन्ध इतना लाभदायक है कि तुम समझ भी नहीं सकती। डाक्टर दियाफवारस के यही एक पुत्र है। वही उस का वारिस है और फिर पुर्गों के न स्त्री है न सन्तान। यदि यह सम्बन्ध हो जाय तो वह अपनी सारी सम्पत्ति दियाफवारस के नाम लिख देंगे और पुर्गों कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। आठ हजार साल की तो उस की किराये की आमदनी है।

त्वानेत्त—इतना धन संचय करते उसने बहुतों को यमलोक पहुंचाया होगा।

आरगां—आठ हजार साल की किराये की आमदनी भी कोई चीज है और फिर पिता की जायदाद अलग।

त्वानेत्त—बाबू जी, यह सब कुछ ठीक है, किन्तु फिर भी मैं यही बात कहती हूं। मेरी तो यही राय है कि आंजेलिक के लिए कोई और वर ढूंढें। वह श्रीमती दियाफवारस बनने के लिए नहीं पैदा हुई।

आरगां—मैं चाहता हूं कि वह श्रीमती दियाफवारस बने।

त्वानेत्त—छिः! ऐसी बात न कहो।

आरगां—क्यों! ऐसी बात क्यों न कहूँ।

त्वानेत्त—न

आरगां—क्यों न कहूं ? कारण ?

त्वानेत्त—लोग कहेंगे कि आप बिना सोचे विचारे कुछ का कुछ कह देते हैं।

आरगां—लोग चाहे जो कहें किन्तु मैं तुम्हें कहता हूं मेरी यही इच्छा है कि मैं ने जो बचन दिया है उसे पूरा करना पड़ेगा।

त्वानेत्त—नहीं। मुझे पूरा विश्वास है कि वह आप के इस बचन को पूरा करने में असमर्थ है।

आरगां—उस को विवश होकर पूरा करना होगा।

आरगां—उसे करना पड़ेगा। नहीं तो मैं उसे सन्न्यासिनिओं के संघ में छोड़ आऊंगा।

त्वानेत्त—आप!

आरगां—हां मैं।

त्वानेत्त—खूब!

आरगां—क्या मतलब?

त्वानेत्त—आप उसे सन्न्यासिनिओ के संघ में नही छोड़ सकते।

आरगां—मै उसे सन्न्यासिनिओं के संघ मे नहीं छोड़ सकता?

त्वानेत्त—नहीं।

आरगां—नहीं?

त्वानेत्त—नहीं।

आरगां—वाह! खूब कहा। यह अच्छा मज़ाक है। मै चाहूं तो अपनी कन्या को सन्न्यासिनिओ के विहार में नहीं छोड़ सकता?

त्वानेत्त—नही, मै जो आप से कहती हूं।

आरगां—मुझे कौन रोकेगा?

त्वानेत्त—आप स्वयं।

आरगां—मै स्वयं?

त्वानेत्त—हाँ, आप का ऐसा साहस न होगा।

आरगां—मुझ मे इतना साहस है।

त्वानेत्त—आप भूल कर रहे है।

आरगां—मैं भूल नही कर रहा।

त्वानेत्त—पितृ-स्नेह आप को विवश कर देगा।

आरगां—स्नेह मुझे विवश नहीं कर सकता।

त्वानेत्त—दो चार आंसू की नन्ही २ बूंदें गले लग कर मीठे मीठे स्वर मे उस का दो चार शब्दो का कहना "पिता जी, मेरे पूज्य पिता जी" आप के हृदय को पिघलाने के लिए पर्याप्त होगा।

आरगां—इन सब बातो का मेरे हृदय पर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा।

त्वानेत्त—जी जी।

आरगां—मैं कहता हूं कि मै तनिक भी न डिगूंगा।

त्वानेत्त—व्यर्थ।

आरगां—तुम्हें 'व्यर्थ' कहने का कोई हक नही।

त्वानेत्त—मेरे प्रभु! मैं आप को जानती हूं। आप प्रकृति के अच्छे हैं।

आरगां—(क्रोध से) मै अच्छा वच्छा कुछ नहीं हूं और जब चाहूं बुरा भी बन सकता हूँ।

त्वानेत्त—धीरे बाबू जी धीरे । आप को इस बात का ध्यान नही रहा कि आप बीमार है।

आरगां—बस, मेरी उस के लिए यह आज्ञा है कि जो वर मैं ने उस के लिए चुना है उस के साथ ब्याह करने को तैय्यार हो जाय ।

त्वानेत्त—और मै ऐसा कार्य्य करने का उसे एकदम निषेध करती हूं ।

आरगां—हैं, हमारी ऐसी दशा ! यह धृष्टता कि एक दासी-पुत्री नौकरानी अपने स्वामी के सामने इस तरह बढ़ बढ़ कर बातें करे ।

त्वानेत्त—जब स्वामी बिना सोचे विचारे काम करने लगे उस समय एक समझदार स्वामीभक्त नौकर का कर्तव्य है कि उसे ठीक मार्ग पर चलावे ।

आरगां—(त्वानेत्त के पीछे दौड़ते हुए) ठहर, नकटी ! तेरी मार खाने की जी मे आई है ।

त्वानेत्त—(आरगां से अपने आप को बचा कर अपने और उस के बीच कुर्सी रख कर) जिस बात से हमारी मान मर्यादा घटती हो उस का विरोध करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ ।

आरगां—(छड़ी ले कर कुर्सी के चारो ओर त्वानेत्त के पीछे दौड़ते हुए) आ, इधर आ, ज़रा तुझे बोलना सिखाऊँ ।

त्वानेत्त—(कुर्सी की दूसरी तरफ़ भाग कर) आप के कामों मे हस्ताक्षेप करना मेरा कर्तव्य है ताकि मै आप को मूर्खता के काम करने से बचा सकूँ ।

आरगां—(पहले जैसे दौडते हुए) निर्लज्ज !

त्वानेत्त—(पहले जैसे भागती हुई) नही, मै ब्याह के लिये कदापि सहमत नही हो सकती ।

आरगां—(उसी तरह दौड़ते हुए) डायन !

त्वानेत्त—(उसी तरह कुर्सी का चक्कर लगाती हुई) मैं नही चाहती कि नन्हीं आप के टोमस दियाफवारस से ब्याह करे ।

आरगां—(पूर्ववत्) भूतनी !

त्वानेत्त—(पूर्ववत्) और वह आप की अपेक्षा मेरी आज्ञा का अधिक पालन करेगी ।

आरगां—(रुक कर) आँजेलिक, इस चुड़ैल को पकड़ कर मेरे पास ले आ ।

आँजेलिक—पिता जी आप अपने स्वास्थ्य को क्यो ख़राब कर रहे हैं ?

आरगां—(आँजेलिक से) जो तू इसे पकड़ कर मेरे पास न लायगी तो मैं तुझे शाप दूँगा ।

त्वानेत्त—(वहाँ से जाती हुई) यदि उस ने आप का कहा माना तो मै उसे पैतृक सम्पत्ति से लावारिस कर दूँगी ।

आरगां—(कुर्सी पर धड़ाम से गिर कर) ओह ! बस ! मै गया । मुझे मारने के लिए यही पर्याप्त है ।

छटा दृश्य

बेलीन और आरगां

आरगां—आह ! प्राण प्यारी, हृदयेश्वरी, आओ, मेरे निकट आओ ।

बेलीन—मेरे दयनीय नाथ ! तुम्हें यह क्या हो गया ?

आरगां—आओ, आओ, मुझे बचाओ ।

बेलीन—मेरे कलेजे के प्यारे टुकड़े ! बोलो, तुम्हें क्या दुःख है ?

आरगां—प्रिये !

बेलीन—प्राणनाथ !

आरगां—इन्हों ने मेरे तन बदन में आग लगा दी है ।

बेलीन—हैं ! खेद ! मेरे तपस्वी नाथ ! कैसे, प्यारे ?

आरगां—यह तुम्हारी नकटी दासी दिन पर दिन अधिक से अधिक धृष्ट होती जाती है ।

बेलीन—अपने मन को क्षुब्ध न करो ।

आरगां—प्रिये, उस ने मुझे बहुत दिक्क किया है ।

बेलीन—धीरे, मेरे प्राणाधार ।

आरगां—जो कुछ मै करना चाहता हूँ एक घण्टे से वह उस में रोड़े अटकाती रही है ।

बेलीन—अच्छा, यह बात । धीरे प्यारे !

आरगां—और इतनी धृष्ट कि मुझ से कहने लगी कि मुझे कोई रोग नहीं ।

बेलीन—यह दासी बड़ी ढीठ है ।

आरगां—प्रिये, तुम तो जानती ही हो कि मुझे क्या रोग है ।

बेलीन—जी हाँ, मेरे हृदय ! उस का कहना असत्य है ।

आरगां—प्रिये, यह डायन तो मुझे मार कर छोड़ेगी ।

बेलीन—हाय !

आरगां—मेरे सारे पित्त का कारण भी यही है ।

बेलीन—आप इतना क्रोध न करें ।

आरगां—तुम से मै ने कितनी बार कहा है कि इस को यहाँ से निकाल दो ।

बेलीन—प्रभु ! प्राण प्यारे, कोई भी दास या दासी ऐसे नहीं जिन में कुछ न कुछ अवगुण न हो । उन के भले गुणो के लिए कभी कभी उन के दोषों को सहना

पड़ता है। यह छोकरी चतुर है, सावधान है, परिश्रमशीला है, और सब से बड़ी बात तो यह है कि स्वामिभक्त है। आप जानते ही हैं कि आज कल घरो मे नौकरो को रखते समय बहुत ही सावधानता से काम लेना आवश्यक है। री ! त्वानेत्त

———

सातवाँ दृश्य

आरगां, बेलीन और त्वानेत्त

त्वानेत्त—हाँ, बीबी जी !

बेलीन—तू ने बाबू जी को क्यो दिक किया है ?

त्वानेत्त—(धीमे स्वर में) मैं ने बीबी जी ? खेद ! मेरी समझ मे नही आता कि आप के कहने का क्या अभिप्राय है। मेरा ध्यान ही सदा इस बात पर रहता है कि जैसे भी बन पड़े स्वामी की सारी आज्ञाओ का तत्काल ही पालन करूँ।

आरगां—आः ! धूर्त !

त्वानेत्त—इन्हों ने कहा कि बाई जी का ब्याह श्रीमान् दियाफवारस के पुत्र के साथ करने का निश्चय किया है, मै ने उत्तर दिया कि हाँ जोड़ी तो ठीक है। वर बधू के योग्य है। पर मेरी राय में तो अच्छा यह होगा कि आप बाई जी को सन्यासिनिओ के विहार में छोड दें।

बेलीन—इस मे तो कोई ऐसी हानि नही और मेरी समझ में तो त्वानेत्त ठीक कहती है।

आरगां—प्रिये ! तुम इस का विश्वास न करो। यह तो चण्डाली है, इस ने तो मुझे सौ सौ सुनाई हैं।

बेलीन—अच्छा, प्यारे ! मुझे तुम्हारी बातों पर पूरा विश्वास है। लो ! शान्ति करो सुन री ! त्वानेत्त, जो तै ने फिर कभी बाबू जी को दिक किया तो मैं तुझे उसी दम घर से निकाल दूँगी। सुना ! जा, उन का पशमीने का कढ़ा हुआ दोशाला और दो चार गद्दी और तकिये ले आ ताकि मै उन को कुर्सी पर आराम से लिटा दूँ। [आरगां से] तुम ही तो मेरे सर्वस्व हो। अपनी कनटोपी को नीचे कानो तक अच्छी तरह खींच लो। कानो के द्वारा जाने वाली वायु से जैसा जुकाम लगता है वैसा और किसी तरह नहीं लगता।

आरगां प्रिये ! तुम्हारी इस प्रेममय सेवा का बदला मैं इस जन्म में कभी न दे सकूँगा।

बेलीन—[आरगां के चारो तरफ गद्दी तकियो को ठीक करती हुई] तनिक उठो न, यह गद्दी तुम्हारे नीचे रख दूँ। यह तुम्हें सहारा देने के लिए रखती हू, और यह दूसरी तरफ रखती हूं। इस को पीठ के पीछे और इस दूसरी को तुम्हारे सिर के नीचे रखती हूं।

त्वानेत्त—(जान बूझ कर एक तकिया आरगां के सिर पर फेंक कर) और यह आप को ओस पाले से बचाने के लिए।

आरगां—(क्रोध में उठ कर गद्दी और तकियों को त्वानेत्त के ऊपर देकर मारता है। वह वहाँ से भाग जाती है) आः! दुष्टे, तू मेरा गला घोटना चाहती है!

आठवाँ दृश्य

आरगां और बेलीन

बेलीन—हैं! है! यह फिर क्या हो गया?

आरगां—(कुर्सी पर लेट कर) हाय! बस! मैं चला!

बेलीन—आप एकदम इतने क्यों आवेश मे आगए। उस ने तो सेवा के विचार से एक और तकिया रख दिया था।

आरगां—प्रिये, तुम इस डायन के द्वेषभाव को नहीं जानती हो। ओह! इस ने तो मुझे पागल ही बना दिया है। इस संक्षोभ को दूर करने के लिए कम से कम आठ औषधियां और एक दर्जन विरेचन सेवन करने पड़ेंगे।

बेलीन—शान्ति, शान्ति! मेरे हृदय के प्राण! अपने चित्त को इतना उद्विग्न न करो।

आरगां—प्रिये, तुम्हीं मेरे जीवन का एकमात्र आश्वासन हो।

बेलीन—मेरे दयनीय प्राणधन।

आरगां—प्रिये! तुम्हारे इस अनन्य प्रेम का मै बहुत ही आभारी हूं। इस प्रेम का बदला मैं क्या दे सकता हूं, किन्तु फिर भी जैसा मै ने तुम से पहले भी कहा था मैं तुम्हारे नाम वसीयतनामा लिखना चाहता हूं।

बेलीन—हृदय के स्वामी! मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं ऐसी बात न कहो। मै तो इस बात के विचार को भी सहन नहीं कर सकती। "वसीयतनामे" के शब्द को सुनने मात्र से ही मेरा हृदय सन्ताप से विह्वल हो जाता है।

आरगां—मै ने तुम से कहा था कि इस विषय मे वकील साहिब से बातचीत कर लेना।

बेलीन—वकील साहिब तो नीचे यहीं बैठे है। मै उन्हें यहां अपने साथ ले आई थी।

आरगां—प्रिये! तो उन्हें यहाँ ही बुला लो।

बेलीन—हाय! प्यारे, पति पर न्यौछावर होने वाली सती साध्वी स्त्री के लिए ऐसी बातो को मन मे लाना भी असम्भव सा है।

नवां दृश्य

श्रीमान् बौन्नफवा (श्रद्धाराम), बेलीन और आरगां

आरगां—आईए, श्रीमान् बोन्नफवा, आईए। कृपा कर आसन ग्रहण कीजिए। मुझे मेरी धर्मपत्नी ने बतलाया है कि आप बड़े भद्र पुरुष है और उस के शुभचिन्तक मित्र है। मैं एक वसीयतनामा कराना चाहता हूं। उसे इस सम्बन्ध मे मैं ने आप से परामर्श लेने को कहा था।

बेलीन—हाय! मेरे लिए ऐसी बातें करना असम्भव है।

बोन्नफवा—श्रीमान् जी, आप की धर्मपत्नी ने आप के सकल्प और आप उन के लिए जो कुछ करना चाहते है इन सब बातो को मुझे अच्छी तरह खोल कर बता दिया है। किन्तु इस विषय में मुझे आप से केवल इतना ही कहना है कि कानून के अनुसार आप वसीयतनामे द्वारा अपनी धर्मपत्नी को कुछ भी नहीं दे सकते।

आरगां—यह क्यों?

बोन्नफवा—यह धर्ममर्यादा के विरुद्ध है। प्रथा ही ऐसी चली आती है। यदि आप ऐसे देश में होते जहां स्मृतिविहित कानून या धर्मशास्त्र का प्रचार है तो ऐसा हो सकता था, किन्तु यहां पारी नगर में, और प्रायः उन सभी देशों मे, जहां स्थानोय सदाचार को अधिक महत्त्व दिया जाता है ऐसा नहीं हो सकता। आप का वसीयतनामा जैसा हुआ वैसा न हुआ। जो स्त्री पुरुष विवाह से परस्पर बन्ध चुके है यदि एक दूसरे को लाभ पहुंचाना चाहे तो अपने जीवन काल में ही उपहार द्वारा कर सकते है किन्तु यह भी तब जब कोई सन्तान न हो। सन्तान न तो उन दोनो की हो और न ही उन मे से किसी एक की पहले ब्याह द्वारा हो, जब कि पहले ब्याह का पति वा पत्नी मर चुकी हो।

आरगां—कैसा बुरा रिवाज है। पति जिस पत्नी को हृदय से प्रेम करता है, जिस को वह प्राणो से भी प्यारा है और जो तन मन से उस की सेवा शुश्रूषा करती है उस पत्नी के लिए वह कुछ भी नहीं छोड़ सकता। नही जी, मुझे क्या करना चाहिए इस विषय में मुझे अपने बैरिस्टर से परामर्श लेना होगा।

बोन्नफवा—इस में किसी बैरिस्टर की राय लेना अनावश्यक है। साधारण तौर पर ये लोग बड़े हठीले होते है। नियम उल्लंघन करके कोई काम करना घोर पाप समझते हैं। ये लोग तो कार्य्य को अधिक कठिन बना देते है और कानून और धर्म को पार करने के पथ से अनभिज्ञ होते है। पर धर्मशास्त्र मे पारङ्गत दूसरे बहुत से ऐसे पुरुष है जो किसी न किसी प्रकार कार्य्य करने के लिए उद्यत हैं और जो सुख से कानून से पार उतरने की विधिओ को जानते है और जिस बात को कानून आज्ञा नहीं देता उस को भी नियम-सिद्ध करने मे कुशल है। ये पुरुष किसी भी कार्य्य की कठि-

नाईओं को दूर करने मे सिद्धहस्त हैं। कुछ परोक्ष लाभ के कारण नियमों से बच निकलने के उपायो में चतुर हैं। यदि ऐसा न होता तो हमारी क्या दशा होती। हमारे जीवन का निर्वाह कैसे होता। बस जो असली बात है वह यह कि हम लोग कठिन काम को भी सहल बना दते हैं, नही तो हम कुछ भी न कर सकते और हमारे काम के लिए एक फूटी कौडी भी न मिलती।

आरगां—साहिब, मेरी स्त्री ने ठीक ही कहा था कि आप बहत ही योग्य और विश्वास के पात्र है। कृपा करके मुझे कोई युक्ति ऐसी बतलाईए कि जिस से मै अपनी सारी सम्पति अपनी स्त्रो को दे सकूं और अपने लड़के बालो के हाथ न लगने दूं।

बोन्नफवा—युक्ति यह है कि आप चुपके से अपनी धर्मपत्नी के किसी निकट के सम्बन्धी को चुन लें। जो कुछ भी आप अपनी धर्मपत्नी को देना चाहते हैं वह सारी सम्पत्ति नियम पूर्वक वसीयतनामे द्वारा उस सम्बन्धी के नाम लिख दें। फिर वह सम्बन्धी उस सारी सम्पत्ति को आप की धर्मपत्नी को सौंप दे। चाहें तो ऐसा भी कर सकते हैं कि इस कार्य के लिये कुछ विश्वस्त साहूकारों को सहमत कर लिया जाय और बहुत सी हुण्डिआँ ले ली जायँ। साथ ही उन से यह भी लिखवा लिया जाय कि यह सारी कार्यवाही धर्मपत्नी श्री आरगां को सन्तुष्ट करने के लिए की गई है। एक और युक्ति यह है कि आप अपने जीते जी नक़द रुपया इन को सौप दें और बहुत सी दर्शनी हुण्डी लिख कर उन को दे दें।

बेलीन—हे प्रभु! आप इतना कष्ट न उठाएँ? मेरे प्राण! यदि दैव ने आप को मुझ से छीन लिया तो फिर संसार में मैं एक क्षण भर भी न रहूंगी।

आरगां—प्यारी!

बेलीन—हाँ, जीवनधन! यदि मेरा भाग सचमुच इतना खोटा हो कि मैं आप को खो बैठूं.........।

आरगां—मेरी प्यारी जीवन सहचरी!

बेलीन—तो मै जीवित नही रह सकती।

आरगां—मेरे प्राण!

बेलीन—यह दासी भी आप के चरणो के साथ ही चलेगी, फिर आप जान जायँगे कि आप के लिए मेरा प्रेम कितना प्रगाढ़ और भक्ति कितनी अनन्य है।

आरगां—ना, प्यारी! मुझे न रुलाओ। मेरा हृदय फटा जाता है। इतनी अधीर न होओ। अपने दिल को ढाढस दो।

बोन्नफवा—(बेलीन से) आप के ये आँसू नितान्त असामयिक है। दशा कोई ऐसी बिगड़ी हुई नही है।

बेलीन—श्रीमान् जी! आप नही जान सकते कि जिस को हृदय दे कर प्रेम किया जाता है वह पति स्त्री के लिये क्या नही होता?

आरगां—प्रिये! जिस तरह श्रीमान् जी ने कहा है उसी तरह से वसीयतनामा

करना ठीक होगा। किन्तु कौन जाने क्षण भर में ही क्या हो जाय, इस लिए मैं बीस हज़ार अशर्फिआँ तुम्हें सौंपता हूं। ये अशर्फी मेरे कमरे की अलमारी मे रक्खी हुई है। साथ ही दो दर्शनी हुडी भी तुम्हें देता हूं जो लाला धामासिह और लाला जैराम दास से वसूल करनी है।

बेलीन—ना, ना, मेरा इन सब बातो से कुछ प्रयोजन नही। हाँ, आप ने अलमारी मे कितनी अशर्फी बताई ?

आरगां—बीस हजार, प्राणबल्लभे !

बेलीन—ना जी, मैं हाथ जोड़ती हूं आप इन बातो की मुझ से चर्चा ही न करें। हाँ ...तो दर्शनी हुडिआँ कितने की हैं ?

आरगां—प्रिये, एक चार हजार की है और दूसरी छः हज़ार की।

बेलीन—प्रियतम ! मेरे लिए संसार की सारी सम्पत्ति आप के जोवन की अपेक्षा तुच्छ है।

बोन्नफवा—(आरगां से) तो आप चाहते है कि वसीयतनामा तैय्यार किया जाय ?

आरगां—जी हाँ। किन्तु यह काम मेरी बैटक में ठीक हो सकेगा। प्रिये, मुझे वहां ले चलो।

बेलीन—चलो, मेरे हृदय के स्वामी, आओ, प्राणधन !

दसवाँ दृश्य

आंजेलिक और त्वानेत्त

त्वानेत्त—लो, वे वकील को ले कर बैठक के अन्दर गए हैं। मेरे कानो मे वसीयतनामे की भनक पड़ी है। तुम्हारी सौतीली माता सो नही रही। निस्सन्देह कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा है जिस के द्वारा, तुम्हारे पिता जी को बहका कर, तुम्हे अवश्य ही हानि पहुंचाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

आँजेलिक—अपनी इच्छा के अनुसार पिता जी जिसे चाहे अपनी सम्पत्ति दें पर वे मुझे इस प्रकार किसी को न सौंपें। त्वानेत्त, तू देखती ही है कि मेरे हृदय पर कैसे वज्र-प्रहार किए जा रहे हैं। मै हाथ जोड़ कर कहती हूं कि मुझे इस विषम दशा में अकेली न छोड़ देना।

त्वानेत्त—मैं ? मै तुम्हें अकेली छोड़ूं ! इस से पहले मैं मर ही क्यो न जाऊँ। तुम्हारी विमाता सौ बार यत्न कर चुकी है कि मै उस की विश्वस्त पात्र बनूं और उस का कार्य्य सिद्ध करूं। पर मेरे हृदय मे उस के लिये तनिक भी सहानुभूति नहीं है। मैं सदा तुम्हारे पक्ष मे रही हूं। मुझ पर विश्वास करो। यह काम मेरे ऊपर छोड़ दो।

मैं सब प्रकार से तुम्हारी सेवा करूंगी। पर जिस से विशेष फल की प्राप्ति हो ऐसी तुम्हारी सेवा करने के लिये मुझे रंग ढंग बदलना पड़ेगा। तुम्हारे हित के लिए अपने उत्साह को छिपाना पड़ेगा और तुम्हारे पिता और तुम्हारी बिमाता की बातों की हाँ मे हाँ मिलानी पड़ेगी।

आँजेलिक—मै तेरे पैरो पड़ती हूं कि जिस तरह भी हो सके जो ब्याह अभी पक्का हुआ है उस की सूचना प्यारे क्लेआन्त को दे दे।

त्वानेत्त—मेरे पास अपने प्रेमी, वृद्ध पोलिशिनल साहूकार को छोड़ कर और कोई ऐसा पुरुष नहीं हैं जिसे इस काम मे लगाया जाय। उस पुराने पापी से तुम्हारा काम करवाने के लिए मुझे कुछ प्रेम का खेल खेलना पड़ेगा। आज तो बहुत देर हो गई है कल पौ फटते ही मै उसे बुलवा भेजूंगी। वह उछलता, कूदता, खुशो खुशी········ ।

ग्यारहवाँ दृश्य

बेलीन (घर के अन्दर), आँजेलिक, त्वानेत्त

बेलीन—री, त्वानेत्त !

त्वानेत्त—(आँजेलिक से) देखा, मुझे तो बुलाया जा रहा है। नमस्ते ! मेरे ऊपर विश्वास रखना।

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

(आरगां का भवन)

क्लेआन्त और त्वानेत्त

त्वानेत्त—(क्लेआन्त को न पहचान कर) क्यो साहब, आप क्या चाहते है ?

क्लेआन्त— मैं क्या चाहता हूं ?

त्वानेत्त—आश्चर्य ! महान् आश्चर्य ! आप हैं ! आप इधर कैसे चले आए ?

क्लेआन्त—अपने भाग्य को जानने, मनमोहनी आँजेलिक से दो चार बातें करने, उस के हृदय के भावों को मालूम करने, और जिस विनाशकारी ब्याह की मुझे अभी सूचना मिली है उसके विषय में उस के संकल्प-बिकल्पो की जांच पड़ताल करने के लिए चला आया।

त्वानेत्त—अच्छी बात है पर आँजेलिक से बेखटकी से बातें नहीं हो सकती। बहुत ही सावधान होना पड़ेगा। जिस कड़ी चौकसी में उसे रखा गया है उस की सूचना आप को दे दी गई है। न उसे बाहिर जाने की आज्ञा है न किसी से बातें करने की। उस दिन एक बूढ़ी फूफी की उत्सुकता के कारण हमे किसी तरह नाटक देखने की छुट्टी मिल गई थी। वहीं आप के अनुराग का प्रादुर्भाव हुआ। इस रहस्य को हमने सर्वथा छिपा रक्खा है। किसी पर भी उसे प्रगट नहीं होने दिया।

क्लेआन्त—इसी लिए मै भी यहाँ क्लेआन्त और आँजेलिक के प्रेमी के तौर पर नही आया हूं। मैं तो उस के संगीताचार्य के मित्र की हैसियत से यहां आया हूं। मुझे यह कहने के लिए आज्ञा दो गई है कि संगीताचार्य जी ने मुझे अपनी जगह भेजा है।

त्वानेत्त—लो! उस के पिता जी आ रहे हैं। थोड़ा एक तरफ हटो और मुझ से अलग हो जाओ ताकि मै आप के आने की उन्हें सूचना दे दूं।

दूसरा दृश्य

आरगां और त्वानेत्त

आरगां—(अपने आप को अकेला समझ कर और त्वानेत्त को न देख कर) डाक्टर पूरगों ने मुझे कहा था कि प्रति दिन प्रातःकाल के समय अपने कमरे में बारह वार आगे बारह बार पीछे घूमा करो किन्तु मैं उन से यह पूछना भूल गया कि कमरे की लम्बाई की तरफ घूमना है या चौड़ाई की तरफ।

त्वानेत्त—बाबू जी, एक भद्र ....

आरगां—धीरे बोल, नकटी! तू तो मेरा सारा सिर फाड़ रही है। तू नहीं जानती कि रोगिओं से इतने ऊंचे नहीं बोलना चाहिए।

त्वानेत्त—जी, मैं आप से कहना चाहती हूं कि ·· ········

आरगां—तुझे कहा धीरे बोल।

त्वानेत्त—जी (बोलने का अभिनय करता है।)

आरगां—हैं? क्या कहती है?

त्वानेत्त—जी, मै आप से कहती हूँ कि··· ······ ··(फिर बोलने का अभिनय करती है)।

आरगां—क्या कहती है?

त्वानेत्त— (जोर से) मै कहती हूं कि एक भद्र पुरुष आप के दर्शन के लिए बाहिर खड़े हैं।

आरगां—आने दो (त्वानेत्त क्लेआन्त को आगे बढ़ने का संकेत करती है।)

तीसरा दृश्य

आरगां, क्लेआन्त और त्वानेत्त

क्लेआन्त—श्रीमान् जी·········

त्वानेत्त—(क्लेआन्त से) इतने जोर से न बोलिए, डर है कहीं बाबू जी का सिर न फट जाय।

क्लेआन्त—श्रीमान् जी, मुझे यह देख कर बडा हर्ष हुआ है कि आप उठ खड़े हुए हैं और अब आप का स्वास्थ्य पहले से अच्छा है।

त्वानेत्त—(क्रोध का अभिनय करती हुई) कैसे ? पहले से अच्छे हैं ? झूठ बात है। बाबू जी तो सदा रोगी रहते हैं।

क्लेआन्त—मैं ने लोगों को कहते सुना था कि श्रीमान् जी अब पहले से अच्छे हैं और उन के चेहरे पर भी कान्ति प्रतीत होती है।

त्वानेत्त—'चेहरे पर कान्ति' कहने से आप का क्या अभिप्राय है ? बाबू जी के चेहरे की कान्ति तो नितान्त फीकी हो गई है। ये केवल तुम्हारे जैसे ढीठ लोग हैं जो उन्हें कहते हैं कि अब आप पहले से अच्छे है। इतने रोगी तो वे कभी भी नही हुए।

आरगां—त्वानेत्त ठीक कहती है।

त्वानेत्त—वे दूसरे लोगों की तरह चलते फिरते हैं, सोते है, खाते हैं, पीते हैं किन्तु इस का यह अर्थ नहीं कि वे सख्त बीमार नहीं हैं।

आरगां—बहुत ठीक।

क्लेआन्त—श्रीमान् जी, मुझे बहुत ही खेद है। मैं आप की पुत्री श्रीमती आँजे-लिक के गायनाचार्य के यहाँ से आ रहा हूं। उन्हे कुछ दिनो के लिए पहाड़ पर जाना पड़ा है। मैं उन का घनिष्ट मित्र हूं। इस लिए उन्हों ने संगीत का अभ्यास जारी रखने के लिए मुझे अपने स्थान में भेजा है। वे डरते थे कि कहीं ऐसा न हो कि नित्य का अभ्यास छूटने से पिछला पाठ भी चौपट हो जाय।

आरगां—अच्छी बात है। (त्वानेत्त से) आंजेलिक को बुला लाओ।

त्वानेत्त—बाबूजी, मेरे ख्याल से तो मास्टर जी को ही उस के कमरे में ले जाना बेहतर होगा।

आरगां—नहीं, उसे ही यहां ले आ।

त्वानेत्त—यदि उन को एकान्त न मिलेगा तो जैसा पाठ पढ़ाया जाना चाहिए वैसा पाठ न पढ़ाया जा सकेगा।

आरगां—पढ़ाया जा सकेगा। क्यो न पढ़ाया जा सकेगा ?

त्वानेत्त—बाबू जी, ऊंचे शब्द से आप का सिर फट जायगा और आप को चक्कर आने लगेंगे। जिस रोग-ग्रस्त अवस्था में आप हैं उस दशा में शांति भंग होने देना आप के लिए सर्वथा हानिकारक है।

आरगां—नहीं, नहीं, मुझे संगीत से प्रेम है और मेरा चित भी प्रसन्न होगा कि...... लो ! वह तो आ ही गई (त्वानेत्त से) जा, देख आ, बीबी-रानी जी शृङ्गार कर चुकी हैं या नहीं।

चौथा दृश्य

आरगां, आंजेलिक और क्लेआन्त

आरगां—आओ बेटी, आँजेलिक। तुम्हारे गायनाचार्य पहाड़ पर चले गए हैं। यह देखो, तुम्हें गाना सिखाने के लिए उन्हो ने अपनी जगह पर इन को भेजा है।

आंजेलिक—(क्लेआन्त को पहचान कर) हे ईश्वर !

आरगां—यह क्या ? तुम्हारे इस विस्मय का क्या कारण है ?

आंजेलिक—कारण यह ... ..

आरगां—क्या है ! तुम इस तरह क्यो चकराती हो ?

आंजेलिक—इस का कारण पिता जी यह है कि यहाँ पर एक विलक्षण दैवी घटना हो रही है।

आरगां—कैसे ?

आंजेलिक—कल रात को मैं ने एक सुपना देखा कि मैं एक ऐसे भारी संकट में पड़ी हूँ जैसा संसार में किसी को कभी नहीं हुआ। इतने ही मे इन्हीं भद्रपुरुष जैसा एक पुरुष मेरे निकट आया। मैं ने कहा—भ वन् बचाओ, बचाओ, मुझे इस महा-विपत्ति से बचाओ। उस दिव्य पुरुष ने मेरी बाँह पकड कर मुझे उस सकट से निकाल बाहिर कर दिया। यहां आकर अकस्मात् उसी भद्र पुरुष को जिस का सारी रात स्वप्न देखती रही हूं अपने सन्मुख पा मेरा विस्मय बहुत ही बढ़ गया।

क्लेआन्त—सोते चाहे जागते, आप के हृदय में स्थान पाना कोई कम आनन्द की बात नहीं है। पर यदि आप सचमुच किसी सकट मे पड़ी हो और उस से आप को उबारने के लिए मैं आप की दृष्टि में योग्य पात्र समझा जाऊं तो निस्सन्देह मेरे आनन्द की सीमा न रहेगी। कोई भी ऐसा काम नहीं जो मैं आप के . ... ।

पांचवां दृश्य

आरगां, क्लेआन्त, त्वानेत्त

त्वानेत्त —(आरगां से) धर्म से, बाबू जी, अब तो मैं भी आप ही के पक्ष में हो गई हूं। कल मैं ने जो कुछ कहा था वह मैं वापिस लेती हूं। श्रीमान् दियाफबारस, पिता पुत्र दोनों, आप के दर्शन को आए हैं। आप को सर्व श्रेष्ठ जंवाई मिला है। आप धन्य हैं आप को संसार के रत्नरूप और अत्यन्त सुशील नवयुवक को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन्हो ने केवल दो ही शब्द कहे पर उन के दो ही शब्दो ने मुझे तो मोह लिया। आप की पुत्री भी उन पर अवश्य ही मुग्ध हो जायगी।

आरगां (क्लेआन्त से, जो वहाँ से उठ कर चले जाने का अभिनय करता है) नहीं, साहिब ! आप न जायँ। आप देखते हैं मेरी कन्या के ब्याह की तैय्यारी है। उधर के लोग वर को लेकर यहाँ पधारे हैं। वर से बधू की अभी तक भेंट नहीं हुई है।

क्लेआन्त—श्रीमान् जी, ऐसी हृदयङ्गम भेंट के अवसर पर मेरी उपस्थिति की कामना करने से आप ने मेरा बहुत ही आदर किया है।

आरगां—वर एक योग्य अनुभवी डाक्टर का पुत्र है। आज से चौथे दिन ब्याह का लग्न है।

क्लेआन्त—बहुत अच्छा।

आरगां—गायनाचार्य जी को अवश्य ही निमन्त्रण भेज दीजिएगा ताकि वे फेरों के समय उपस्थित हो जायँ।

क्लेआन्त—निमन्त्रण के भेजने में कुछ भी विलम्ब या चूक न होगा।

आरगां—आप से भी पधारने की प्रार्थना करता हूं।

क्लेआन्त—आप मुझे बहुत ही आदर दे रहे हैं।

त्वानेत्त—चलो, उन को बैठाने का प्रबन्ध करो। वे सामने आ पहुँचे हैं।

———

छटा दृश्य

(श्रीमान् दियाफबारस, टोमस दियाफबारस, आरगां, क्लेआन्त,
त्वानेत्त और नौकर चाकर।)

आरगां—(अपने कनटोप को हाथ से केवल छू लेता है पर कनटाप को उतारता नहीं है) डाक्टर पूरगो ने मुझे सिर से टोपी उतारने की मनाही कर रक्खी है। आप लोग स्वयं डाक्टर है आप जानते है कि टोपी उतारने का क्या परिणाम होगा।

श्री० दियाफवारस—जब भी हम किसी को देखने जाते हैं हमारा काम रोगिओं को सहायता देना है न कि उन्हें कष्ट देना।

(आरगां और श्री० दियाफवारस दोनो एक ही साथ बोलते हैं।)

आरगां—श्रीमान् जी, मैं आप लोगों का स्वागत . ...

दियाफवारस—श्रीमान् जी, हम आप की सेवा में उपस्थित............

आरगां—बड़े हर्ष से करता हूं।

दियाफवारस—मैं और मेरा पुत्र टोमस।

आरगां—आप ने मुझपर बहुत कृपा की है।

दियाफवारस—श्रीमान् जी, आप पर प्रकट करने के लिए............

आरगां—मेरी इच्छा है .. ..

दियाफवारस—वह आनन्द जिस के हम भागी हैं।

आरगां—कि मैं आप की कोठी पर जाने के लिए समथ होता।

दियाफवारस—और जो महती कृपा आप ने हम पर............

आरगां—आप को विश्वास दिलाने के लिए .. ..

फियाफवारस—हमारा इस प्रकार स्वागत कर··· ··

आरगां—श्रीमान् जी, आप जानते हैं कि ·····

दियाफवारस—श्रीमान् जी, यह सम्मान ·····

आरगां—एक रोगी···

दियाफवारस—जो आप के साथ सम्बन्ध मे ·····

आरगां—कुछ भी नही कर सकता केवल ·····

दियाफवारस—और आप को विश्वास दिलाते हैं कि ·····

आरगां—इतना ही आप से कह सकता हूं कि वह······

दियाफवारस—जहाँ तक हमारी विद्या काम देगी वहाँ तक··· ·

आरगां—प्रत्येक अवसर को ढूंढ कर निकालेगा ताकि···········

दिवाफवारस—और दूसरे हर प्रकार से भी···········

आरगां—आप को बतलाने के लिए कि ·········· ··

दियाफवारस—हम सदा तैय्यार रहेगे ···· ·····

आरगां—वह आप का दास है।

दियाफवारस—आप पर जी जान बलिहार होने के लिए (अपने पुत्र से) टोमस आगे बढ़ो, प्रणाम करो।

टोमस—(अपने पिता से) प्रणाम बधू के पिता जी से ही आरम्भ करना चाहिए न।

दियाफवारस—हां।

दियाफवारस—हाँ।

टोमस—(आरगां से) महोदय ! मैं आप के चरण कमलों को प्रणाम करता हूं। मैं आप को अपना दूसरा पिता मानता हूं। आप के प्रति मेरे सद्भाव हैं और मैं आप का सम्मान करता हूं। आप मेरे दूसरे पिता हैं पर मैं यहाँ तक कहने को तय्यार हूं कि मैं आप का पहले पिता से भी अधिक ऋणी हूं। पहले पिता ने मुझे जन्म दिया, किन्तु आप ने मुझे चुना है। पहले पिता मुझे अपनाने में विवश थे, किन्तु आप ने बड़ी कृपा से मुझे अङ्गीकार किया है। उन से मैं ने जो कुछ पाया है वह उन के पार्थिव शरीर की रचना है किन्तु आप से मुझे जो मिला है वह आप के संकल्प की प्रतिच्छाया है। मन की भावनाएं जिस परिमाण में शारीरिक गुणों से अधिक उत्कृष्ट होती हैं उसी परिमाण में मैं आप का अधिक ऋणी हूं, उसी परिमाण में मैं इस भावी सम्बन्ध को अधिक बहुमूल्य समझता हूं, जिस के लिए मैं आज समय से पहले ही, आप को बहुत ही विनीत और सम्मान-पूर्ण प्रणामाञ्जलि चढ़ाने आया हूं।

त्वानेत्त—चिरस्थायी हों वे कालिज जहाँ शिक्षा पाकर पुरुष ऐसा चतुर होकर निकलता है।

टोमस—(दियाफवारस से) क्यों पिता जी, ठीक कहा है ?

दियाफवारस—अनवद्यम्।

आरगां—(आंजेलिक से) आओ, इन महानुभाव को प्रणाम करो।

टोमस—(दियाफवारस से) क्यों पिता जी, चुम्बन से अभिवादन करूँ ?

दियाफवारस—हाँ।

टोमस—(आंजेलिक से) श्रीमती जी, विधाता ने जो आप को सास का पद प्रदान किया है वह यथार्थ ही है, क्यों कि.........

आरगां—(टोमस से) यह जिन से आप बात कर रहे हैं, मेरी पत्नी नहीं है। यह मेरी पुत्री आँजेलिक है।

टोमस—तो वे कहाँ हैं ?

आरगां—वह अभी आने वाली हैं।

टोमस—पिता जी, उन के आने की प्रतीक्षा करूँ ?

दियाफवारस—वधू से अभिवादन करो।

टोमस—देवि ! जिस प्रकार सूर्योदय के समय सूर्यरश्मि के प्रकाश में मैम्नो की पाषाण प्रतिमा मधुर राग आलापती है उसी प्रकार आप के रूप-लावण्य रूपी सूर्योदय के प्रकाश में मैं अपने आप में एक मधुर भाव के संचार का अनुभव करता हूं। बनस्पति शास्त्र के विद्वान् जैसा कहते हैं कि सूरजमुखी नाम का फूल सदा दिन-करमणि की ओर खिचा रहता है उसी प्रकार मेरा हृदय इस क्षण से लेकर सदा के लिए आप के अद्भुत नेत्र रूपी ज्योतिर्मय नक्षत्रों की तरफ खिचा रहेगा। ये ही मेरे हृदय के ध्रुव तारे होगे। देवि ! आज आप के रूप-लावण्य की वेदी पर अपने हृदय की आहुति देने के लिए मुझे अनुमति दीजिए। आज से लेकर आयु पर्यन्त मेरे प्राण मेरे सारे मनोरथ और मेरे जीवन की कीर्ति इसी बात में होगी कि मैं ऐसी देवी का बहुत ही विनीत बहुत ही आज्ञाकारी और बहुत ही विश्वास-पात्र दास तथा पति बनूं।

त्वानेत्त-अहा ! शिक्षा प्राप्त करने का यही फल है। ऐसी मनोहर बातें करनी तो आजाती हैं।

आरगां—(क्लुआन्त से) क्यों जी, आप की क्या राय है ?

क्लुआन्त—इन महाशय की जिह्वा पर तो स्वयं सरस्वती विराज रही है। ये जैसे वक्ता हैं यदि वैसे ही अच्छे डाक्टर भी हों तो इन का रोगी बनना सब के लिए आनन्द का विषय होगा।

त्वानेत्त—इस में कोई सन्देह नहीं। इन की वक्तृताओं में जैसा चमत्कार है यदि वैसा ही चमत्कार इन के औषधि-विधान मे भी हो तो बहुत ही सराहनीय बात होगी।

आरगां—[नौकरों से] चलो जल्दी। मेरी कुर्सी और सब के लिए कुर्सिएं लाओ। [नौकर कुर्सिआं लाकर देते हैं] बेटी इधर बैठो [दियाफवारस से] श्रीमान् जी ! आप देख रहे हैं, सभी आप के पुत्र की प्रशंसा कर रहे हैं और मैं समझता हूं कि ऐसे सुपुत्र को पा कर आप धन्य हैं।

दियाफवारस—महोदय, यह इस लिए नहीं कि मैं उस का पिता हूं। हां इस बात को मैं गर्व सहित कहता हूं कि मैं उस से सर्वथा सन्तुष्ट हूं और जो कोई भी उसे देखता है यही कहता है कि यह युवक बहुत ही सुशील है। उस की कल्पना-शक्ति कभी भी बहुत उत्सर्पिणी नहीं हुई। न ही उस मे वह प्रचण्ड उद्दण्डता ही है जो कुछ नवयुवकों में पाई जाती है। यही बातें हैं जिन से मैं सदा कहा करता था कि उस की विवेचना-शक्ति प्रबल होगी—और यही एक गुण है जो हमारे व्यवसाय के लिए अनिवार्य्य है। जब वह छोटा सा था उस मे वे बातें कभी नही दिखाई दीं जिन्हें हठ और रूठना कहते हैं। वह सदा सौम्य, निरुपद्रव और मौन रहता था—मुख से कभी एक शब्द तक न निकलता था और न वह कभी उन खेलो को ही खेलता था जिन्हें बाल-क्रीड़ा कहते हैं। उसे पढ़ना सिखाने में बहुत ही कठिनाई का सामना

करना पड़ा। वह नौ वर्ष का हो गया था और अभी बाराखड़ी भी न सीखा था। 'अच्छा' मैं अपने मन में कहा करता। सब से बढ़िया फल लाने वाले वृक्ष वे होते हैं जो देर से बढ़ते हैं। रेत की अपेक्षा संगमरमर पर बड़ी कठिनाई से लिखा जाता है पर वह लेख वहां अनन्त काल तक सुरक्षित रहता है। बोध की यह जड़ता, कल्पना की यह स्थूलता, भविष्य मे आने वाली विवेक-शक्ति की कुशाग्रता का चिन्ह है। जब मैं ने उसे कालिज मे भेजा तो उसे शिक्षा विकट प्रतीत हुई पर उस ने कठिनाइओ से युद्ध किया। वह अपनी धुन का पक्का था। उस के अध्यापक मुझ से उस के परिश्रम और उस की कष्ट-सहिष्णुता की सदा मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। सारांश यह कि नित्य के परिश्रम से उस को यश प्राप्त हुआ और उसे चिकित्सा की उपाधी मिल गई। मैं बिना किसी अभिमान के साथ कह सकता हूँ कि दो बरस हुए जब से वह श्रेणी में आया है, अभी तक किसी भी विद्यार्थी ने आयुर्वेद के सारे शास्त्रार्थों में इतना कोलाहल नहीं मचाया जितना उसने मचाया है। उस का एक प्रकार का आतङ्क छाया हुआ है। एक भी शास्त्रार्थ ऐसा नहीं होता जिस मे जाकर वह अन्त तक विषय पर सिंहनाद न करे। शास्त्रार्थ मे स्थिर है। सिद्धान्त मे निश्चल है। जो राय एक बार कायम कर लेता है उसे कभी बदलता नही। जिस किसी भी विषय को लेता है उस में तर्क के अन्त तक युक्तिआं देता है। सब से बड़ी बात, जो मेरे हृदय को गद्गद कर देती है और जिस में वह मेरे आदर्शों का अनुकरण करता है, यह है कि वह ऋषिओं की बातों का एकदम आंखें मीच कर अनुसरण करता है। आधुनिक शताब्दी मे जीवन-विज्ञान के जो नित नए, अपने आप को वैज्ञानिक कहाने वाले, अनुसन्धान निकलते रहते हैं-विशेष कर रक्त का संचार तथा ऐसा ही अन्य निर्मूल कल्पनाएं-उन को समझने और उन की युक्तिओ और उन के अनुभव को सुनने की भी कभी इच्छा नहीं करता।

टोमस—(अपनी जेब से निबन्ध की एक बड़ी लपेटी हुई हस्त-लिखित कापी निकाल कर और आंजेलिक को उपहार के तौर पर देकर) रक्त को संचारी मानने वालों के विरुद्ध मैं ने यह एक निबन्ध लिखा है जिस मे उनके मत का मैं ने खण्डन किया है और अपना पक्ष सिद्ध किया है। [आरगां को प्रणाम करता है] श्रीमान् जी की आज्ञा से मैं अपनी प्रतिभा की इस प्रथम उपज को [आंजेलिक की ओर इशारा करके] इन्हें भेंट करता हूँ।

आंजेलिक—महाशय, मेरे लिए तो यह एक निरर्थक सामान है। मैं ये बातें नही जानती।

त्वानेत्त—(निबन्ध लेकर) लाईए, लाईए। यह चित्र से कम नही। कमरा सजाने के काम आयगा।

टोमस—[आरगां को प्रणाम करता है] यदि श्रीमान् जी की आज्ञा हो तो मैं आप का मनोरंजन करने के लिए आप को निमन्त्रण देता हूं कि आप एक न एक दिन आन कर मेरे एक स्त्री-शव को चीरने-फाड़ने के काम को देखें।

त्वानेत्त—यह मनोरञ्जन तो बहुत ही हृदयङ्गम होगा। कुछ पुरुष ऐसे हैं जो अपनी प्रेम-वल्लभाओं का मनोरञ्जन नाटक प्रहसन द्वारा करते हैं पर स्त्री-शव के चीर-फाड़ द्वारा मनोरञ्जन करना अपूर्व बात है।

आरगां—क्यों जी, इन्हें राज दरबार में ले जाने और राजकीय चिकित्सक बना देने का आप का विचार नहीं है?

दियाफवारस— मैं तो आप से साफ साफ बात कहा करता हूं। दरबार के महा पुरुषों में काम करना हमें नहीं भाता। मेरा सदा से यह मत रहा है कि साधारण जनता में काम करना हमारे लिए अधिक लाभदायक है। साधारण जनता से बहुत सुभीता है। अपने कार्य्य का किसी को भी उत्तर नहीं देना पड़ता। जब तक चिकित्सा शास्त्र के नियमों का अनुसरण किया जाय तब तक परिणाम के विषय मे चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं होती। किन्तु महा पुरुषों के विषय में जो बड़े झंझट की बात है वह यह है कि जब वे रोगी हो जाते हैं तो उन को प्रबल इच्छा होती है कि डाक्टर लोग उन को स्वस्थ बना दें।

त्वानेत्त—कैसी बेतुकी बात है। डाक्टर लोग उन को स्वस्थ कर देंगे यह इच्छा रखना इन लोगों की कितनी बड़ी ढिठाई है। आप लोग उन के पास उन को स्वस्थ करने के लिए थोड़ा ही जाते हैं। आप तो केवल अपनी फीस लेने और नुसखे लिखने के लिए हैं। स्वस्थ होना तो उन का काम है चाहे हों चाहे ना हों।

दियाफवारस—सही बात है। रोगिओं को विधि के अनुसार दवाई दे देना ही केवल मात्र हमारा कर्तव्य है।

आरगां—[क्लेआन्त से] श्रीमान् जी, इन महानुभावों के सामने आंजेलिक से कुछ गाना गवाईए।

क्लेआन्त—महोदय, मैं आप ही की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था। मेरा बिचार है कि उपस्थित सज्जनों के विनोद के लिए कुमारी आंजेलिक के साथ एक छोटे से गीतिनाटक के—जो अभी बना है—एक दृश्य को गाऊँ। [आंजेलिक को एक कागज देते हुए] लीजिए, यह आप का भाग है।

आंजेलिक—मेरा भाग!

क्लेआन्त—[आंजेलिक से] कृपा करके 'नाहीं' न करें और मुझे समझाने का अवसर दें कि वह कौन सा दृश्य है जिसे मैं आप के साथ मिल कर गाना चाहता

हूं। [ऊंचे] आवाज तो मरी गाने के लिए अच्छी नहीं है किन्तु यदि मैं अपने भाव को व्यक्त कर सकू तो यही मेरे लिए पर्याप्त होगा। मै आशा करता हूं कि आप लोग मुझे क्षमा करने की कृपा करेगे क्योकि मैं कुमारी आंजेलिक को गवाने के लिए विवश हूँ।

आरगां—उस के छन्द तो मधुर हैं न ?

क्लेआन्त—वस्तुतः यह गीति नाटक आशु कविता का एक नमूना है। आप के सामने जो कुछ गाया जायगा वह सुवृत्त गद्य ही है। अथवा यों समझिए कि गण, मात्रा आदि के नियन्त्रण से मुक्त पद्य है। ऐसा काव्य जो दो प्रेमिओ के प्रेम रस और आवश्यकता से प्रेरित हुए हृदयो का उद्गार हो और जो वे स्वयं बिना किसी की सहायता के कहते हैं जैसे बनो मे गोप गोपिका परस्पर कहा करते हैं।

आरगां—बहुत अच्छा। भला सुनें तो।

क्लेआन्त—दृश्य का विषय यह है। एक गोप एक दृश्य का सौन्दर्य देखने में तल्लीन था। दृश्य अभी आरम्भ ही हो रहा था कि एकाएक उसे अपने पास ही कुछ कोलाहल सुनाई दिया जिस से उस की एकाग्रता भग हो गई। उस ने मुंह फेरा और देखा कि एक नरपशु धृष्टता की बातें कह कर किसी गोपिका के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है। सब से पहले उस ने स्त्री जाति का पक्ष जिस स्त्री जाति का मनुष्य-मात्र आदर करते हैं, ग्रहण किया। फिर उस दुरात्मा को उस की धृष्टता का दण्ड देकर वह उस गोपिका के पास गया तो क्या देखता है कि एक युवती, जिस के नेत्र ऐसे सुन्दर थे जैसे उस ने पहले कभी नही देखे थे, रो रही थी। उस के आँसुओ की बून्दे क्या थीं मानो ससार भर में सब से श्रेष्ठ मोतिओ के दाने थे। उस ने अपने मन में कहा—"शोक! ऐसे भी नृशंस हैं जो ऐसे अनुपम रूप का भी तिरस्कार कर सकते हैं ? कौन ऐसा राक्षस, ऐसा पाषाण हृदय होगा जो ऐसे आसुओ से न पसीजे ?" उस ने उन आँसुओ को जिन्हों ने उस के हृदय को मोह लिया था, थामने का यत्न किया। इसी बीच उस कमनीय गोपिका ने भी उस की इस स्वल्प सेवा के लिए उसे धन्यवाद देने का यत्न किया, और वह धन्यवाद ऐसे हृदयहारी, ऐसे स्निग्ध, ऐसे आसक्तिमय ढँग से किया गया कि वह गोप उस के मोहन मन्त्र को न रोक सका। प्रत्येक शब्द, प्रत्येक चितवन एक प्रज्वलित बाण था जिस ने उस के हृदय को चीर दिया। उस ने कहा—"संसार में कोई वस्तु ऐसी है जो ऐसे धन्यवाद के इन स्नेह-सने वचनों की अधिकारी हो सके ! ऐसे कृतज्ञता-पूर्ण हृदय के प्रेम की मधुरता को एक क्षण के लिए अपनाने के लिए कोई क्या कुछ न्योछावर न करेगा, किन सेवाओ किन भयंकर प्राण-हर कार्यों को हर्ष से न करेगा ?" वह दृश्य सारा समाप्त हो गया पर उस ने उस की तरफ कुछ ध्यान न दिया पर इतना उलाहना दिया कि वह अत्यन्त संक्षिप्त हुआ क्योंकि उस की

समाप्ति ने उसे उस की आराध्य गोपिका से अलग कर दिया। उस प्रथम दर्शन से, उस पुण्य पर्व से, वह अपने साथ ऐसे प्रगाढ़ प्रेम के भावों को ले गया जो बरसों की परिणति का परिणाम होते हैं। अब उसे विरह व्यथा सताने लगी; जो रूप-लावण्य उस ने क्षण भर के लिए देखा था उस मधुर रूप को देखे बिना उस के हृदय पर आघात होने लगे जिस मधुर रूप के ध्यान में वह रात दिन लगा रहता था उस का, एक बार फिर साक्षात् करने के लिए, जो कुछ उस से बन पड़ा, उस ने किया, पर उस की गोपिका पर जो कड़ा पहरा लगा रहता उस के कारण उस की सारी युक्तिआँ विफल हो गईं। प्रेम के उन्माद ने उसे उस आराध्य सुन्दरी के पाणिग्रहण की, जिस के बिना वह जीवित नहीं रह सकता था, याचना के लिए प्रेरित किया। किसी प्रकार से पत्र भेज कर उस ने सुन्दरी की अनुमति भी ले ली, पर इसी समय उसे सूचना मिली कि उस सुन्दरी के पिता ने उस का ब्याह किसी दूसरे के साथ करने का निश्चय कर लिया है और इस ब्याह के लिए सब तय्यारिआ हो गई हैं। बिचार कीजिए कि इस से उस शोकाकुल गोप के हृदय पर कितना कठोर आघात हुआ होगा। वह इस घातक व्यथा से छटपटाने लगा। उस पात्र को जिसे वह अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता है किसी अन्य की भुजाओ में देखने का भयकर बिचार उस के लिए असह्य हो गया। इस निराशा की दशा में, प्रेम के इस उत्कट आवेश मे, उस ने अपनी गोपिका के घर मे प्रवेश करने, उस के भावों का पता लगाने और उस से अपने भाग्य का निपटारा करवाने की कोई युक्ति ढूँढ निकाली। जिस बात का उसे भय था उसी की सारी तय्यारिआं उसे वहाँ आँखों के सामने दिखाई दी। वहाँ उस ने अपने उस अयोग्य प्रतिस्पर्धी को आया देखा जिसे एक पाषाणहृदय पिता की सनक ने उस के प्रेम की मृदुलता के प्रतिकूल खड़ा कर दिया था। उस ने इस हास्यास्पद प्रतिस्पर्धी को अपनी हृदयङ्गम गोपिका के निकट एक ऐसे विजेता की भाँति देखा जिसे अपनी विजय का पूरा भरोसा हो गया हो। क्रोध से उस का हृदय तलमलाने लगा। किसी तरह उस के आवेग को रोक कर उस ने व्यथित नेत्रो से अपनी उपास्य देवी के ऊपर दृष्टी डाली। उस युवती की प्रतिष्ठा और उस के पिता की उपस्थिति ने बोलने से उसे रोका। केवल नेत्रो द्वारा ही वह अपने भाव प्रकट कर सका। पर अन्त में उस ने नियन्त्रण की जंजीरो को तोड़ डाला। उस के उन्मत्त प्रेम ने उसे इस प्रकार बोलने के लिए विवश किया—

मनमोहनी मालती! यह वेदना बेपारावार।
हृदयहेरि कुछ बोलहु मुख सो अपने हृदय उद्गार॥
भँजहु यह नीरवता निष्ठुर करो भाग्य निस्तार।
जासो जीवन ज्योति जगै अथवा मृत्यु अनिवार॥

आञ्जेलिक—(गाती है)

निज नैनन निरखत हो जीवनधन।
उदासी घटा सी हिय छाय रही॥

विवाह विडम्बना विषम विष समान जियरा जराय रही ॥
दृग ऊपर उठाय कै नभ निहारती हूँ।
तुम पै नन डारती आह निकारती हूँ ॥
आरत हूँ अति हि, अपनेननि सों गारत हूँ।
इतनो इ बोलि कै मौन जिय में धारत हूँ ॥

आरगां—धन्य धन्य ! मुझे यह विश्वास न था कि मेरी पुत्री इतनी निपुण है कि वह बिना किसी संकोच के इस तरह खुल कर गा सकती है।

क्लेआन्त—मनमोहनी मालती ए !
प्रेमी मिलिन्द तुम्हारा ए।
सौभाग्य बस इतना जो हो
हृदय में बिठलाओ प्रिये ॥

आंजेलिक—इस विषम वातावरण में पड़ कर
तुम से कुछ छिपाऊँगी नहीं।
हाँ ! तुम हो प्राण आधार मिलिन्द
सदा हृदय से कहूंगी यही ॥

क्लेआन्त—श्रुतिसुखद वचनामृत तुम्हारा यह अहो।
मैं जागता हूँ अथवा सोय रहा कहो।
फिर बेर कहो मालती भ्रम हि दूर करो ॥

आंजेलिक—हां तुम हो प्राण आधार मिलिन्द !

क्लेआन्त—मालती एकै बेर और कहो।

आंजेलिक—तुम हो प्राण आधार !

क्लेआन्त—सौ बार कहो, न रुको प्रिये !

आंजेलिक—तुम जीवन सर्वस्व तुम हो प्राण आधार।
तुम ही मेरा बिश्व तुम बिन सूना संसार ॥

क्लआन्त—विश्व जिन के चरण-रज सम ओ देवताओ महिपालो।
तुम्हारा सौभाग्य क्या इस से बढ़ कर हो सकता कहो ॥
किन्तु प्रिये ! विचार यह ऊधम मचा रहा।
एक प्रतिस्पर्धी हाँ एक प्रतिस्पर्धी...... ...

आंजेलिक—मृत्यु से अधिक वह घृणा का पात्र।
उस की उपस्थिति में तुम्हे ही क्या।
मुझे भी दारुण वेदना है ॥

क्लेआन्त—पिता विवश कर सकता तुम्हे।
अपने बचन बलि चढ़ायगा ॥

आंजेलिक—मैं आत्मघात करूंगी ।
न यम से तनिक डरूंगी ॥
ब्याह से परे रहूंगी ।
मैं आत्मघात करूंगी ॥

आरगां—और यह सब कुछ सुन कर उस के पिता ने क्या कहा ?

क्लेआन्त—कुछ भी नहीं कहा ।

आरगां—ऐसा मूर्ख पिता भी कभी किसी ने न देखा होगा । ऐसी बेहूदा बातो को सुन कर भी कुछ न बोला ।

क्लेआन्त—(आगे गाना गाता है) हा ! प्रिये...... .

आरगां—नही, नहीं, इतना ही प्रर्याप्त है । तुम्हारा यह गीतिनाटक बहुत ही निकृष्ट श्रेणी का है । तुम्हारा गोप मिलिन्द ठीठ और उस की गोपिका मालती अविनीत है कि अपने पिता के सामने ऐसी बातें कहतो है । (आंजेलिक से) यह कागज़ मुझे दिखाओ । हहा ! इस में वे शब्द कहाँ है जिन्हें तुम ने गाया। इस में तो राग चिन्हो के सिवाय और कुछ लिखा ही नहीं है ।

क्लेआन्त– श्रीमान् जी, क्या आप को पता नही कि थोड़ा समय हुआ स्वरों द्वारा ही शब्दो को लिखने का आविष्कार हो चुका है ?

आरगां—अच्छी बात है । मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूं । नमस्ते । आप के छिछोरे गीतिनाटक का संगीत न ही सुनते तो अच्छा था ।

क्लेआन्त—मैं ने तो आप के चित्त का विनोद करना चाहा था ।

आरगां—प्रमत्त प्रलाप से किसी का विनोद नही होता । लो मेरी धम-पत्नी भी आ गई ।

सातवाँ दृश्य

बेलीन, आरगां, आंजेलिक, दियाफवारस, टोमस, और त्वानेत्त

आरगां—प्रिये, ये श्रीमान् दियाफवारस के सुपुत्र हैं ।

टोमस— श्रीमती जो, आप को विधाता ने जो साम का पद प्रदान किया है वह यथार्थ ही है। सचमुच आप के मुखारविन्द पर मातृत्व विशेष.........

बेलीन—श्रीमान् जी, मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मै आप के दर्शन से कृतार्थ होने के लिए समय पर यहाँ आ पहुँची हूं ।

टोमस—सचमुच आप के मुखारविन्द पर मातृत्व विशेष...सचमुच आप के मुखारविन्द पर मातृत्व विशेष... ...श्रीमती जी, आप ने मेरी बात को बीच ही में काट डाला है जिस से मेरी स्मृति डाँवाडोल हो गई है ।

दियाफवारस—टोमस, कोई चिन्ता नही, फिर किसी समय सही ।

आरगां—प्रिये, क्या ही अच्छा होता कि तुम कुछ पहले यहाँ आई होतीं ।

त्वानेत्त—अहो ! श्रीमती जी, आप ने कैसा अच्छा अवसर हाथ से गँवाया है कि आप 'दूसरे पिता' 'सूर्योदय और मेम्नो' और 'सूरजमुखी फूल' की चर्चा के समय उपस्थित न हो सकीं।

आरगां—आओ बेटी, इन महानुभाव का हाथ पकडो और इन के साथ वह कौल करो जा पत्नी पति के साथ करती है।

आञ्जेलिक—पिता जी ?

आरगा—'पिता जी' क्या ? क्या कहना चाहती हो ?

आजेलिक—ईश्वर के लिए इतनी उतावली न करें। हमे कम से कम इतना समय दीजिए कि हम एक दूसरे के परिचय को प्राप्त कर सकें और परिणत सम्बन्ध के लिए जो भाव आवश्यक है उन को परस्पर अंकुरित होता देख सकें।

टोमस—देवी, मुझ से यदि पूछो तो मै तो यही कहूँगा कि मेरे हृदय मे उन भावों का न केवल प्रादुर्भाव वरन् वृद्धि भी हो चुकी है। अत एव मुझे प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं।

आञ्जेलिक—यदि आप को उतावली है तो मुझे तो नहीं है और सच बात तो यह है कि आप के गुणों का मेरे चित्त पर अभी तक पर्याप्त प्रभाव नहीं पडा है।

आरगां—अच्छा अच्छा ! प्रभाव व्याह होने पर हो जायगा।

आञ्जेलिक—नहीं ! पिता जी, मै हाथ जोडती हूँ, मुझे कुछ समय दीजिए। विवाह एक ऐसा बन्धन है जिस मे किसी के हृदय को कभी बलात्कार से नहीं जकडना चाहिए और यदि ये श्रीमान् प्रतिष्ठित पुरुष है तो इन्हें चाहिए कि ऐसी अबला को किसी दशा मे भी ग्रहण न करें जो केवल विवशता के कारण उन की बनाई जायगी।

टोमस—परिणामं न शोचामि, देवि ! मैं प्रतिष्ठित पुरुष हूँ और मेरी प्रतिष्ठा तुम्हें तुम्हारे पिता जी के हाथ से ग्रहण करने से घट नही सकती।

आञ्जेलिक—पशु-बल से दूसरे के हृदय पर अधिकार करना एक पैशाचिक प्रथा है।

टोमस—देवि ! प्राचीन काल के इतिहास मे हम ने पढा है कि जिन युवतिओं से प्रेम किया जाता था उन्हें उन के पिता के घर से बल पूर्वक उठा कर ले जाने का रिवाज था ताकि यह बात न प्रकट हो कि वे अपनी मनो-कामना से पुरुष के बाहु-पाश से बन्धी है।

आञ्जेलिक—श्रीमान् जी, भूत काल भूत ही था किन्तु अब तो वर्तमान समय है। नये युग मे इस तरह की विडंबनाएँ शोभा नहीं देतीं। जब रुचि होती है, जब पूर्व सौहार्द जाग्रत हो उठता है तब उस व्याह के लिए किसी के आग्रह की आवश्यकता ही नहीं रहती। आप इतने अधीर न हों। अत एव यदि आप सच-मुच मुझ से प्रेम करते है तो जैसे मैं चाहती हूँ वैसा करें।

टोमस—करूँगा क्यों नहीं, देवि ! पर जिस से मेरे प्रेम को तनिक भी बाधा पहुंचे, उसे छोड कर बाकी सब कुछ करने को उद्यत हूं।

आञ्जेलिक—प्रेम की सब से बडी कसौटी है—अपनी प्रेमवल्लभा की इच्छा के अनुसार चलना।

टामस—देवि! अस्ति प्रभेद । जिस मे उस के प्रेम को आघात न पहुचे, एवमिति अनुमन्ये। जिस मे उस के मिलने मे अडचन पडे, प्रेम को आघात पहुँचे, नेति प्रत्याख्यानम्।

त्वानेत्त—(आञ्जेलिक से) तुम्हारा वाद-विवाद व्यर्थ है। यह अभी विश्वविद्यालय से निकले हैं। इन की युक्तिओं के सामने तुम्हारा तर्क न ठहर सकेगा। यह जब चाहें तुम्हारा मुँह बन्द कर सकते है तो फिर वैद्यवाचस्पति कहलाने की दुलभ कीर्ति से क्यों सकुचाती हो ? स्नातकों के मण्डल मे प्रवेश करने से नाहीं क्यों करतो हो ?

बेलीन—कदाचित् उस के हृदय का झुकाव किसी और तरफ़ हो।

आञ्जेलिक—मासी जी ! यदि मेरे हृदय का झुकाव किसी तरफ हो तो वह ऐसा होगा जिस की मान और मर्यादा आज्ञा देते हैं।

आरगा—मेरे ईश्वर ! मेरी तो विचित्र दशा हो रही है।

बेलीन—पुत्र, यदि मै तुम्हारे स्थान पर होती तो मै इसे विवाह के लिए कभी विवश न करती और इस दशा मे मैं क्या कुछ करूंगी यह भी मै खूब जानती हूं।

आञ्जेलिक—मासी जी मै आप का अभिप्राय समझती हूं। आप की मुझ पर जितनी कृपा है वह भी मुझे मालूम है पर कदाचित् आप की बहुमूल्य सम्मति काम मे लाने योग्य ही नहीं समझी जायगी।

बेलीन—क्यों नहीं, तुम जैसी कुलोन और सुशील कन्याएं जब अपने पिता की आज्ञा मानने और अपने आप को उस की इच्छा पर छोड देने की इस प्रकार विडम्बना करती है, तो किसी की सम्मति को अवकाश मिलने ही क्यों लगा है ? माता पिता की आज्ञा का पालन करना तो पहले युगों मे हो चुका।

आञ्जेलिक—मासी जी, पुत्री के कर्तव्य की भी कोई सीमा होती है। स्मृति और सदाचार इस कर्तव्य को प्रत्येक बात मे नही घटाते।

बेलीन—इस का अर्थ यह है कि तुम्हारे विचार ब्याह के पक्ष मे है पर तुम अपना वर स्वयं चुनना चाहती हो।

आञ्जेलिक—यदि पिता जी मुझे ऐसा पति नहीं देना चाहते जो मेरी इच्छा के अनुकूल हो तो कम से कम मै उन से यह प्रार्थना करूगी कि मेरा ऐसे पुरुप के साथ ब्याह न करें जिस से मै कभी प्रेम कर नहीं सकती।

आरगां—श्रीमान् जी, इन सब बातों के लिए मै आप लोगों से क्षमा

चाहता हूं।

आञ्जेलिक—व्याह करने में प्रत्येक का अपना उद्देश होता है। मैं तो अर्धाङ्गिनी बनने के लिए व्याह करना चाहती हूं, ताकि तन मन से पति की सेवा कर सकूं, इस लिए इस मामले मे मेरे लिए सावधानी से काम लेना आवश्यक है। एक ऐसी होती है जो केवल माता पिता के नियन्त्रण से छुटकारा पाने और स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने के लिए व्याह कर लेती हैं। कुछ ऐसी भी है जिन के लिए व्याह एक सौदा मात्र है जो केवल जीवन निर्वाह के लिए व्याह करती हैं। उन का व्याह इस लिए होता है कि जिस के साथ शादी करती है उस की मृत्यु से धन सम्पत्ति उन के हाथ लगे। ऐसी स्त्रिएं बिना किसी संकोच के एक पति के मरने पर दूसरा पति कर लेती है। सच पूछिए तो ऐसी स्त्रिएं वर मे न गुणों को देखती है और न ही गुणों को कुछ भी महत्ता देती है।

बेलीन—आज तो तुम बडी सतर्क प्रतीत होती हो। कृपा कर यह तो बतलाओ कि तुम्हारे इस व्याख्यान का अर्थ क्या है?

आञ्जेलिक—मेरा अभिप्राय, मासी जी, जो कुछ मैं ने कहा है उस से पृथक् अभिप्राय और क्या हो सकता है?

बेलीन—तुम ऐसी निपट गँवार हो, बेटी, कि तुम से बात करने को भी जी नहीं चाहता।

आञ्जेलिक—मासी जी, तुम मुझे कोई अविनय की बात कहने के लिए विवश करना चाहती हो, किन्तु मैं तुम्हें बता देना चाहती हूं कि तुम्हें इस बात मे सफलता न होगी।

बेलीन—तुम्हारे अविनय की तुलना संसार में कोई कर ही नहीं सकता।

आञ्जेलिक—मासी जी! आप भले ही कहे।

बेलीन—तुम्हारा अभिमान हास्यास्पद है, तुम्हारा अहङ्कार उद्धत है जिस पर सारा संसार नाक चढ़ाता है।

आञ्जेलिक—मासी जी, इन सारी बातों से तुम्हारा काम न चलेगा। तुम्हारे चिढाने से भी मै उद्विग्न नहीं होने लगी हूं, और मेरे यहां रहने से कदाचित् तुम्हें अपनी मनोकामना मे सफल होने की कोई आशा लगी रहे अत एव उस आशा को दूर करने के लिए मैं तुम्हारे नेत्रों से दूर होती हूं।

आठवां दृश्य

आरगां, बेलीन, दियाफवारस, टोमस, त्वानेत्त

आरगां—(आञ्जेलिक से, जो वहां से चल देती है) सुनो। तुम्हारे लिए और कोई दूसरा मार्ग नहीं। चार दिन के अन्दर या तो तुम्हारा इन महोदय के साथ व्याह होगा या तुम्हे संन्यासिनिओं के संघ मे जाना पडेगा। (बेलीन से) तुम कुछ चिन्ता न करो, मैं उसे आप ही ठीक कर लूंगा।

वेलीन—प्रिय, मुझ को तुम्हें छोडने मे बहुत दुःख होता है किन्तु नगर मे बहुत ज़रूरी काम है जिस की उपेक्षा नहीं हो सकती। मै अभी लौट आती हूँ।

आरगा—जाओ, प्रिये! वकील साहिब के घर होते आना ताकि हमारा काम जल्दी हो जाय।

वेलीन—नमस्ते, मेरे हृदय के खिलौने!

आरगा—नमस्ते, प्रिये!

नवॉ दृश्य

आरगा, दियाफवारस, टोमस, त्वानेत्त

आरगा—केवल यही एक स्त्री है जो मुझे प्यार करती है किसी को विश्वास ही न होगा।

दियाफवारस—अच्छा श्रीमान् जी, आज्ञा दीजिए हम बिदा होते है।

आरगा—श्रीमान् जी, कृपा कर इतना तो कह दीजिए कि मै इस समय कैसा हूँ।

दियाफवारस—(आरगा की नाडी देखते हुए) लो, टोमस, श्रीमान् जी की दूसरी बाँह पकडो। देखूँ तुम उन की नाडी से रोग का ठीक ठीक निर्णय कर सकते हो या नहीं। कि ब्रवीषि?

टोमस—ब्रवीमि, श्रीमान् जी की नाडी एक ऐसे पुरुष की नाडी-जैसी है जिस का स्वास्थ्य अच्छा न हो।

दियाफवारस—ठीक।

टोमस—और स्तब्ध नहीं किन्तु स्तब्ध-जैसी।

दियाफ़वारस—बाढम्।

टोमस—और कुछ २ संचारी।

दियाफवारस—युज्यते।

टोमस—जिस से प्लीहा अर्थात तिल्ली मे कुछ विकार लक्षित होता है।

दियाफवारस—अथ किम्। एवमेतत।

आरगा—नहीं डाक्टर पूरगों कहते है कि कलेजे की ख़राबी है।

दियाफवारस—हॉ, हॉ! प्लीहा कहे चाहे कलेजा कहे, बात एक ही है, क्योंकि अधरोदर की धमनी, अन्तर के सूक्ष्म तन्तु, तथा नसों के सम्बन्ध से, इन दोनों मे संवेदना होती है। खाने के लिए तो निरसन्देह पक्व अन्न बता गए होंगे।

आरगा—नहीं, उबाले हुए अन्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं बता गए।

दियाफवारस—हॉ हॉ! पकौ हुआ, उबाला हुआ, बात एक ही है। वे बहुत सोच समझ कर आप को पथ्य, अनुपान आदि बता जाते है। आप को इन से अधिक अच्छा डाक्टर नहीं मिल सकता। इन के हाथ मे आप का जीवन सर्वथा सुरक्षित है।

आरगां—श्रीमान् जी, यह तो बतलाइए कि एक अंडे में कितना नमक डालना चाहिए।

दियाफवारस—छः, आठ, दस, सम संख्या के अनुसार, जिस तरह औषधिओं मे विषम संख्या के अनुसार।

आरगा—अच्छा श्रीमान् जी, आशा है कि शीघ्र हो आप के दर्शन होंगे।

दसवाँ दृश्य

बेलीन, आरगा

बेलीन—जीवनधन, बाहिर जाने से पहिले तुम्हें एक बात की सूचना देने आई हूँ जिस मे सावधानी और चौकसी की आवश्यकता है। जब मै आञ्जेलिक के कमरे के सामने से निकल रही थी तो मुझे एक नवयुवक दिखाई दिया, जो मुझे देखते ही चम्पत हो गया।

आरगा—मेरी पुत्री के साथ एक नवयुवक ?

बेलीन—हाँ। तुम्हारी छोटी कन्या लुइसों भी उन के पास थी। वह तुम्हे सारी बात बता सकेगी।

आरगां—प्रिये, उसे यहाँ भेज दो, उसे यहाँ भेज दो। ओह! इतनी धृष्टता! (अकेले) उस के विरोध पर मुझे जो विस्मय हुआ था वह सब जाता रहा।

ग्यारहवाँ दृश्य

आरगा, लुइसों

लुइसों—कहिए पिता जी, मुझे क्या आज्ञा है? मासी जी कहती थी कि आप मुझे बुला रहे है।

आरगां—हाँ, हाँ। इधर आओ, मेरे समीप आओ। इधर मुँह करो। नेत्र ऊपर उठाओ। मेरी तरफ देखो। अच्छा

लुइसों—क्या पिता जी?

आरगा—हाँ?

लुइसों—क्या?

आरगां—मुझ से कुछ न कहोगी?

लुइसों—हाँ पिता जी, यदि आप की इच्छा हो तो आप का मनोरञ्जन करने के लिए गधे की खाल की कहानी सुनाऊँ या लोमड़ी और कौवे की कथा कहूँ। यह मैं ने अभी सीखी है।

आरगां—मै तुम से कहानिआँ नहीं सुनना चाहता।

लुइसों—तो फिर क्या चाहते हो?

आरगा—आह! ठगनी, तू अच्छी तरह जानती है कि मै क्या चाहता हूँ।

लुइसों—पिता जी, क्षमा करो।

आरगा—मेरी आज्ञा मानने का यही तरीक़ा है।

लुइसों—क्या पिता जी ?

आरगा—क्या मैं ने तुम से नहीं कहा कि जो कुछ देखो तुरन्त मुझ से आकर कह दो ?

लुइसों—क्यों नहीं, पिता जी।

आरगा—तो क्या तुम ने मेरा कहना किया ?

लुइसों—हाँ, पिता जी। मै जो कुछ देखती हूँ सदा आकर आप से कह देती हूँ।

आरगां-तो आज तुम ने कुछ नहीं देखा ?

लुइसों-नहीं, पिता जो।

आरगा-नहीं ?

लुइसों-नहीं, पिता जी।

आरगां-सच कहती हो ?

लुइसों-हाँ, सच कहती हूँ।

आरगां-अच्छा, नहीं देखा है। तो मै अभी तुझे कुछ दिखाता हूँ।

लुइसों-(आरगा को बेंत उठाते देख कर) हाय ! पिता जी !

आरगा-जितनी छोटी उतनी खोटी ! तू मुझे यह न बतलायगी कि तैं ने अपनी दीदी के कमरे मे एक पुरुष देखा है।

लुइसों-(रोती हुई) पिता जी !

आरगां-(लुइसों की बाँह पकड कर) यह लो ! तुम्हें झूठ बोलना सिखाता हूँ !

लुइसों-(पैर पकड कर) हाय ! पिता जी ! तुम्हारे पैरों पडती हूँ। दीदी ने मुझ से कहा था कि कोई बात पिता जी से न कहना किन्तु मैं सब कुछ आप से कहे देती हूँ।

आरगां-पहले तुमे झूठ बोलने के लिए दण्ड मिलना आवश्यक है। फिर बाकी देखा जयगा।

लुइसों-पिता जो ! क्षमा करो।

आरगां-नहीं, यह न होगा।

लुइसों-पिता जी ! मेरे प्यारे पिता जी ! मुझे दण्ड न दो।

आरगां-नहीं, तुमे अवश्य दण्ड मिलेगा।

लुइसों-पिता जी ! ईश्वर के लिए इस बार छोड दो।

आरगां-(मारना चाहता है) आ, इधर आ !

लुइसों-हाय ! पिता जी ! तुम ने मेरी कमर तोड दी है ! ठहरो, मै मरं

गई ! (मरने का नाट्य करती है) ।

आरगां–हा दैव ! यह क्या हो गया ! लुइसों लुइसों ! हाय, मेरे ईश्वर ! लुइसों ! हाय, बेटी ! हाय, दुर्भाग्य ! मेरी हतभागिनी कन्या मर गई ! यह मैं अभागा क्या कर बैठा । आह ! पापी छडी ! तू छडी न हुई, यम-दूत हुई । तेरा सत्यनाश हो । हाय ! मेरी अभागिनी बेटी ! हाय ! मेरी अभागिनी लुइसों ।

लूइसों–ठहरो, ठहरो, पिताजी ! इतना विलाप न करो । मै बिलकुल नही मरी ।

आरगा–देखा कलजुगी ठगनी को । अच्छा, इस बार मै तुम्हें क्षमा करता हूँ, इस शर्त पर कि मुझ से सारी बातें ठीक ठीक कह दो ।

लुइसों–बहुत अच्छा, पिता जी ।

आरगां–खबरदार, कोई बात छिपाई तो । मेरी यह छोटी उंगली सब कुछ जानती है । यदि तुम झूठ बोलोगी तो यह उसी समय मुझे कह देगी कि लुइसों झूठ बोल रही है ।

लुइसों—किन्तु पिता जी, दीदी से न कहना कि मै ने आप से ये बात कहीं है ।

आरगां—नहीं, नहीं ।

लुइसों—(इधर उधर देख कर कि कोई सुन तो नहीं रहा है) । पिता जी, जब मै दीदी के साथ थी, उस के कमरे मे एक पुरुप आया ।

आरगा—अच्छा, फिर ?

लुइसों—मै ने उस से पूछा कि तुम क्या चाहते हो तो उस ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी दीदी को गाना सिखाया करता हूँ ।

आरगा–(स्वगत) हाँ ! यह बात है ! (लुइसों से) अच्छा, फिर ?

लुइसों–फिर दीदी कमरे मे आई ।

आरगा–हाँ, फिर ?

लुइसों–उस ने कहा—"चले जाओ, चले जाओ, यहाँ से चले जाओ । मेरे ईश्वर ! तुम मुझे पागल बनाना चाहते हो ।"

आरगा–अच्छा, फिर ?

लुइसों–किन्तु वह कमरे से निकलता ही न था ।

आरगां–उस ने आञ्जेलिक से क्या कहा ?

लुइसों–उस ने सैकडों बातें कही ।

आरगा–क्या बातें कहीं ?

लुइसों–उस ने यह कहा और वह कहा—कि मै तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम संसार में सब से सुन्दरी हो ।

आरगां–हाँ, फिर क्या कहा ?

लुइसों–फिर वह दीदी के पांव पडा।

आरगा–फिर ?

लुइसों–फिर उस ने दीदी के हाथ चूमे।

आरगा–फिर ?

लुइसों–इतने मे द्वार पर मासी जी आईं और वह कमरे से भाग गया।

आरगा–बस ? और कोई बात नही हुइ ?

लुईसों- नहीं, पिता जी।

आरगा–किन्तु मेरी यह छोटी उंगली तो बड-बडा रही है कि अभी कुछ बात और भी बाकी है। (उंगली को अपने कान से लगा कर) ठहरो! अच्छा! हॉ, हा! फिर ? अच्छा, अच्छा। यह लो! मेरी उगली मुझे बता रही है कि कुछ बात रह गई है तुम ने कुछ देखा है और मुझ से नही कहा।

लुइसों–नहीं पिता जी, आप की छोटी उगली झूठी है।

आरगा–ख़बरदार।

लुइसों–नही पिता जी, इस का विश्वास न करो। यह झूठ बोलती है। मैं आप से कहती हूॅ यह झूठ बोलती है।

आरगां–अच्छा, अच्छा, मै देखूँगा। जाओ, ध्यान से सारी बातें देखती रहो। (आप ही आप) अहो! बालक अब बालक नहीं रहे। मेरी विपत्ति का क्या ठिकाना है। मुझे अपनी रोग-ग्रस्त दशा पर विचार करने तक को अवकाश नहीं। (पलंग पर गिर पडता है) बस मैं चला!

बारहवां दृश्य

बेराल्द आरगां

बेराल्द—क्यो भाई जी, क्या हाल है ? तबीयत कैसी है ?

आरगां—भैया, कुछ न पूछो। बहुत खराब है।

बेराल्द—बहुत खराब ? यह क्या ?

आरगा—हॉ, इतनी निर्बलता आ रही है कि किसी को उस पर विश्वास ही न होगा।

बेराल्द—यह तो सर्वथा शोचनीय है।

आरगा—मुझ मे बात चीत करने की भी शक्ति नहीं है।

बेराल्द—भाई जी, मैं आञ्जेलिक के लिए एक वर का प्रस्ताव लेकर आप के पास आया हू।

आरगा—(पलंग से उठ कर और आवेश से बातें करते हुए) भाई, उस नकटी का नाम न लो। इस कुलटा, ढीठ, निर्लज्ज, कलमुंही को मै दो दिन से पहले ही सन्यासिनिओं के संघ मे न रख आऊं तो कहना।

बेराल्द—चलो यह भी अच्छा हुआ। मुझे यह देख कर बडी प्रसन्नता हुई

कि आप के शरीर में कुछ शक्ति तो आई और मेरे यहां आने से आप को कुछ लाभ हुआ। अच्छा, अच्छा, काम की बातें फिर होती रहेंगी। मैं आप के लिए कुछ मनोविनोद की सामग्री लाया हूँ। यह सामग्री किसी तरह मेरे हाथ लग गई। इस से आप के दिल की भड़ास मिट जायगी और आप के हृदय में उल्लास पैदा होगा, फिर आप मेरी बातो को अधिक शान्ति से सुन सकेंगे। ये लोग रासधारी हैं। इन का नाच देखने और इन का गाना सुनने से आप को अवश्य आनन्द आयगा और यह आप के लिए डाक्टर पूरगों के नुसखे से कम लाभदायक न होगा। आईए—

विषकम्भक

[वहमी रोगी का भाई उस का मनोरञ्जन करने के लिये रासधारिओ को लाता है। वे नाचते हैं और बीच बीच में गाना भी सुनाते हैं]

स्त्री के वेष मे पहला रासधारी

सब मिलि रचो रङ्गरलिआं,
जीवन-वसन्त जब लगि जग जोबन-अरुणिमा दिखराय रहा।
सुरस स्निग्धता पै ताकी तन मन वारो,
प्रेम-प्रसून विकसाय रही चहुँ दिसि सौरभ सरसाय रही॥
प्रेम की उद्दीपना बिना,
तिहुँ काल कबहुँ एकौ छिना।
रसभोग जग के अतिसै लुभावने घने,
नहीं समर्थ दयिता जन मन मनावने॥
सब मिलि रचो रङ्गरलिआं॥ ध्रुव॥
इन अनमोल क्षणों का न यो क्षय करो।
रूपलावण्य उड़ा जाता है,
समय उसे मिटाये जाता है,
बुढ़ापे का शिशिर आता है,
हिम बन कर उसे छिजाता है,
मधुर अतीत को नीरस बना जाता है॥
सब मिलि रचो रङ्गरलिआं॥ ध्रुव॥

(सब मिल कर नाचते है)

स्त्री वेश में दूसरा रासधारी

प्रेम का प्रबल आह्वान जब हो
तब उस में विवेक बाधक क्यों हो ?

जोबन की मादकता में,
मृदुना की भावुकता में,
हृदय का रुझान मधुरतम क्यों न हो ?
प्रेम की प्रति झङ्कार में वह मधुर आकर्षण है वे जादू भरे है,
कि हम स्वयं अबोधपूर्व उस के प्रथम शरो का आवाहन करते है।
किन्तु उस की तीव्र वेदनाओं औ करुण क्रन्दनो को जब सुनते है,
उस के सगीत में भी प्रलय की शङ्का से सहम कर रह जाते है ॥

स्त्री वेश में तीसरा रासधारी

अपने इस वयस में,
जो जन बसे मन में।
उसे मृदु प्रेम करना,
है अति मधुर भावना॥
किन्तु कदाचित् यदि वह लोल हो।
तब यन्त्रणा का क्या तोल हो॥

स्त्री वेश में चौथा रासधारी

प्रेमी की चञ्चलता में
भाग्य की विडंबना हि क्या?
शोक-सताप अरु रोष है इस में
कि उस ने दिल को क्यों चुरा लिया।

स्त्री वेश में दूसरा रासधारी

हमारे तरुण हृदयों को
फिर कैसे आश्वासन हो?

स्त्री वेश में चौथा रासधारी

उस की इन निष्ठुरताओं का यों सोच क्या ?
प्रकृति का नाच है नाचने में संकोच क्या ?

सब मिल कर

हाँ, उस की मधुर अलसान को अनुसरो,
उसकी सनक, रोमाञ्च औ आवेश को।
जदपि उस में कुछ स्खलन हो सन्ताप हो,
उस की हृदयहारनि शत हुलासनि सिमरो॥

[फिर सब मिल कर नाचते हैं और अपने साथ लाये हुए बन्दरों से उछल-कूद कराते है।]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

बेराल्द आरगां और त्वानेत्त

बेराल्द—हां ! भाई जी, आप की क्या राय है ? क्या यह रासलीला इतनी ही अच्छी नही है जितनी एक मात्रा अमलतास की ?

त्वानेत्त—ऊँहु ! अच्छा अमलतास फिर भी अच्छा ही है।

बेराल्द—हां, यदि आप चाहें तो हम एक साथ बैठ कर आपस में दो एक बातें कर लें।

आरगां—ज़रा ठहरो, भैया। मैं अभी लौटा आता हूँ।

त्वानेत्त—ठहरो, बाबू जी, आप को याद नही रहा कि लाठी के बिना आप से नही चला जायगा।

आरगा—हां, तू ठीक कहती है।

दूसरा दृश्य

बेराल्द और त्वानेत्त

त्वानेत्त—कृपा करके अपनी भतीजी का पक्ष न छोड़िए।

बेराल्द—मैं अपनी तरफ से कोई बात उठा न रखूँगा। जहां तक हो सकेगा उस की इच्छा को पूरा करने में सहायक बनूँगा।

त्वानेत्त—इस अनुचित विवाह को, जो इन के दिमाग में समाया हुआ है, किसी न किसी तरह अवश्य ही रोक दीजिए। मेरे मन में यह बात आई है कि किसी ऐसे डाक्टर को यहां लाना अच्छा होगा जो हमारी इच्छा पर चलने वाला हो और जो डाक्टर पूर्गों के प्रति इन के हृदय में अश्रद्धा पैदा कर दे और जो उन की चिकित्सा की निन्दा करे। पर इस काम के लिए हमारे पास कोई योग्य पुरुष नहीं है। मैं ने स्वय ही इन्हें छलने की ठान ली है।

बेराल्द—कैसे ?

त्वानेत्त—यह एक ऊटपटांग-ही-जैसी कल्पना है। इस में कोई दानाई की बात तो नहीं किन्तु आशा है कि इस से अभीष्ट वस्तु की सिद्धि होगी। यह तो आप मुझ पर छोड़ दीजिए। आप अपनी तरफ से प्रयत्न करें। लो ! हमारा रोगी लौट आया है।

तीसरा दृश्य

आरगां और बेराल्द

बेराल्द—भाई जी, सब से पहले आप से मेरी यह प्रार्थना है कि जब हम बातचीत कर रहे हों तो आप अपने चित्त को उद्विग्न न होने दें।

आरगां—अच्छा ऐसा ही होगा।

बेराल्द—और जो कोई भी बात मैं आप से कहूँ उस का शान्ति से उत्तर दें, उस में किसी तरह का क्रोध न करें।

आरगां—अच्छा।

बेराल्द—और जिन बातों पर हम दोनों विचार करेंगे उन पर पक्षपात रहित होकर तर्क वितर्क करें।

आरगां—मेरे ईश्वर! हां, हां। यह तुम्हारी कैसी भूमिका है।

बेराल्द—हाँ भाई जी, तो यह कैसी बात है कि इतनी धन-सम्पत्ति के होते हुए, और वह भी ऐसी दशा में जब कि आप के केवल एक कन्या मात्र है—क्योंकि मुन्नी को मैं अभी इस गिनती में नही लाता—मैं पूछता हूँ, यह क्या बात है, कि आप उसे सन्न्यासिनिओं के मठ में छोड़ आने की बात चीत कर रहे हैं।

आरगां—बात कैसी है? क्या मैं अपने घर का मालिक नहीं हूँ और यह मेरे अधिकार में नही है कि घर में जैसा उचित समझूँ करूँ?

बेराल्द—भाभी जी को भी तो इन दोनों कन्याओं से आप के चित्त को खिन्न करने के प्रयत्न करने के लिए उपदेश की आवश्यकता नही और मुझे इस में कोई सन्देह नही कि यदि इन दोनों कन्याओं को सन्न्यासिनी बना दिया तो वह हर्ष से फूली न समायगी।

आरगां—फिर वही बात! और कुछ हो न हो, बात बात में सब से पहले बेचारी अबला को घसीटा जायगा। मेरी स्त्री ही सारे अनिष्टों की मूल है, और सभी भले हैं, सब उस के पीछे पड़े हुए हैं।

बेराल्द—नही, भाई जी, इस बात की चर्चा ही न चलाए। आप की स्त्री में परिवार के हित के लिए जैसे सद्भाव हैं वैसे ससार में किसी और में ढूँढ़ कर भी न मिलेंगे। सचमुच यह कोई साधारण स्त्री नहीं, देवी है। अपने स्वार्थ को तो वे जानती ही नहीं। आप के ऊपर उन का अद्भुत स्नेह है। बालकों पर जैसी उस की ममता है और उन के लिए उस के हृदय में जैसी उदारता है वह किसी की कल्पना में भी नही आ सकती। इस में तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता। सो उन की चर्चा तो छोड़ दीजिए। आञ्जेलिक के विषय में बातें कीजिए। हा भाई जी, तो क्या सोच कर आप उस का ब्याह एक डाक्टर के पुत्र के साथ करने लगे हैं?

आरगां—क्या सोच कर? यही कि मुझे एक जामाता की आवश्यकता है जो

मेरे लिए उपयोगी हो।

बेराल्द—भाई जी, इस में आप की पुत्री का तो कोई हित नहीं, और हम उस के लिए अधिक योग्य वर की आयोजना कर चुके हैं।

आरगां—हां, ठीक है। किन्तु, भाई साहिब, मेरे लिए तो डाक्टर का पुत्र अधिक उपयोगी है।

बेराल्द—भाई जी, वर कन्या के लिए है या आप के लिए ?

आरगां—दोनों के लिए, कन्या के लिए भी और मेरे लिए भी। मैं अपने परिवार में ऐसे लोगों को लाना चाहता हूँ जिन की मुझे आवश्यकता है।

बेराल्द—इसी तर्क के अनुसार, यदि आप की छोटी कन्या ब्याह के योग्य होती तो आप उस का ब्याह किसी दवाई बेचने वाले के साथ कर देते ?

आरगां—क्यों नहीं ?

बेराल्द—क्या यह अनहोनी बात नहीं है कि आप अपने इन डाक्टरों, हकीमों पर सदा इस तरह लट्टू रहें और अपने हितैषियों और प्रकृति के विरुद्ध निरन्तर रोगी रहने का संकल्प किए बैठे रहें ?

आरगां—इस में तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?

बेराल्द—अभिप्राय यह कि मैं ने आज तक आप से कम रोगी पुरुष नहीं देखा। आप के सुदृढ़ शरीर से बढ़ कर शरीर पाने की मेरी चाहना नहीं है। आप की स्वस्थता का और इस बात का कि आप का शरीर सर्वाङ्ग सम्पूर्ण है एक बड़ा भारी प्रमाण यह है कि निरन्तर चेष्टा करते रहने पर भी आप अभी तक उस के अङ्गों को खराब नहीं कर सके हैं और इतनी औषधियों को अन्दर ठूंसते रहने पर भी आप अभी तक मरे नहीं हैं।

आरगां—भाई, तुम्हें पता नहीं कि इन औषधियों ने ही मुझे अब तक बचा रक्खा है। डाक्टर पुरगों कहते हैं कि यदि वे लगातार तीन दिन भी मेरी सुध न लें तो मेरे प्राण चले जायंगे।

बेराल्द—यदि आप सावधान न रहे तो वह आप की ऐसी सुध लेगा कि वह आप को परलोक भेज देगा।

आरगां—भाई, कुछ बुद्धि से भी काम लेना चाहिए। औषधि-सेवन में तुम्हारा विश्वास नहीं है ?

बेराल्द—नहीं, भाई जी, मेरी राय में मोक्ष के लिए औषधि-सेवन में विश्वास करना आवश्यक नहीं।

आरगां—क्या कहा ? जिस बात को सारा संसार मानता है और प्रत्येक युग में जिस की प्रतिष्ठा होती आई है उस को तुम सच न मानकर निषिद्ध मानते हो।

मूर्खता समझता हूं। यदि दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो मुझे संसार में इस से अधिक विडम्बना, इस से अधिक हास्यास्पद बात और कोई दिखाई नहीं देती कि एक मनुष्य दूसरे को स्वस्थ करने की ढिठाई दिखलावे।

आरगा—एक मनुष्य दूसरे को स्वस्थ नहीं कर सकता? तुम्हारे इस अविश्वास का कारण?

बेराल्द—कारण यही, भाई जी, कि हमारे शरीर की कल के पुर्जे ऐसे रहस्यों से भरे हुए हैं जिन का भेद अभी तक किसी पर नहीं खुला है और प्रकृति ने हमारी आँखों के सामने ऐसा भारी पर्दा डाल रक्खा है कि हमारी दृष्टि उन तक नहीं पहुँच सकती।

आरगां—तो तुम्हारी राय में डाक्टर लोग कुछ नहीं जानते?

बेराल्द—नहीं भाई जी बिलकुल नहीं। वे साहित्य अधिकांश पढ़े होते हैं। शुद्ध संस्कृत बोल लेते हैं। रोगों के नाम, लक्षण, और निदान भी जानते हैं पर यदि चिकित्सा की बात करें तो चिकित्सा उन को नहीं आती।

आरगा—कम से कम इतना तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि डाक्टर लोग इस विषय को दूसरों की अपेक्षा अधिक जानते हैं।

बेराल्द—हां, भाई जी इतना तो जानते ही हैं जितना मैं पहले आप से कह चुका हूँ, पर इन बातों से रोग नहीं कटता? इन की विद्या की महत्ता केवल इन के शब्दों के आडम्बर में, दीर्घ समासों में है जिस में युक्तियों के बदले शब्द और परिणामों के बदले प्रतिज्ञाएँ सामने रक्खी जाती है।

आरगां—भैया, तुम्हारे जैसे सयाने, तुम्हारे जैसे चतुर पुरुष भी संसार में हैं फिर भी हम देखते हैं कि रोग के समय सारा ही संसार डाक्टरों की शरण लेता है।

बेराल्द—यह मनुष्य की दुर्बलता का चिन्ह है। यह उन की विद्या की सत्यता का प्रमाण नहीं।

आरगां—फिर भी डाक्टर लोग अपनी विद्या में विश्वास रखते हैं। अन्यथा वे स्वयं अपने लिए इस का उपयोग क्यों करते?

बेराल्द—इस का कारण यह है कि डाक्टर स्वयं साधारण जनता की तरह भ्रम में पड़े होते हैं जिस के द्वारा वे दूसरों से लाभ उठाते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो निर्भ्रान्त हो कर जनता के भ्रम से लाभ उठाते हैं। उदाहरण के लिए, आप के डाक्टर पूर्गों किसी को धोखा नहीं देना चाहता। वह सिर से पैर तक पूरा पूरा डाक्टर है। वह उन व्यक्तियों में है जो अपने विधानों को गणित के सिद्धान्तों से भी अधिक विश्वसनीय मानते हैं और जो उन की परीक्षा करना पाप समझते हैं, जो समझते हैं कि डाक्टरी में कोई बात ऐसी नहीं जो अस्पष्ट हो, कोई सिद्धान्त ऐसा नहीं जिस पर

सन्देह किया जा सके, कोई कठिनाई ऐसी नहीं जो सुलझाई न जा सके। वे उन महात्माओं में हैं जो पूर्व-संग के प्रचण्ड आवेग से, श्रद्धा के दुराग्रह से, बुद्धि और लौकिक ज्ञान की कुशाग्रता से, बिना किसी संकोच के अन्धा धुंध विरेचन और रक्त-स्राव की व्यवस्था करते हैं। आप के शरीर को वे जिस तरह पंगु बना रहे हैं उस के लिए हमें उन से द्वेष नहीं करना चाहिए। वह यदि आप को परलोक भेजेगा तो किसी बुरी धारणा से नहीं, किन्तु आप ही के हित के लिए, अपनी अतुल श्रद्धा से और अपने दृढ विश्वास से प्रेरित हो कर। आप को मारने में भी वह उसी सद्‌भावना से काम लेगा जिस से उस ने अपनी स्त्री और बालकों को मारने में लिया था और आवश्यकता पड़ने पर स्वयं अपना अन्त करने में भी न हिचकेगा।

आरगां—भैया, यह उन के प्रति तुम्हारा द्वेष भाव है कि तुम इस तरह की बातें बना रहे हो। मतलब की बात पर आओ। जब कोई रोगी हो जाय तो उसे क्या करना चाहिए?

बेराल्द—कुछ भी नहीं।

आरगां—कुछ भी नहीं?

बेराल्द—नहीं, कुछ नहीं। केवल शरीर को विश्राम देना चाहिए। प्रकृति स्वयं—यदि हम उसके मार्ग में बाधा न डालें—धीरे २ क्रमशः रोग को उस अङ्ग से बाहिर निकाल देती है जिस अङ्ग पर उस ने आक्रमण किया है। यह हमारी चिन्ता है, यह हमारी अधीरता है जो काम खराब करती है। प्रायः लोग जो मरते हैं वे सब के सब अपने रोगों से नहीं किन्तु औषधिओं के कारण मौत के मुँह में जाते हैं।

आरगां—भाई, यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि बहुत सी बातों में हम प्रकृति की सहायता कर सकते हैं।

बेराल्द—नारायण, नारायण! यही तो हम लोगों की कोरी कल्पना है जिस में हम अपने आप को धोखा देते हैं। सदा से ही लोगों में कुछ ऐसी अन्धी धारणाएं चली आती हैं जिन में हम इस कारण विश्वास करते हैं कि उस से हमारी बड़ाई होती है और हमारी कामना होती है कि उन से जगत का कल्याण हो। जब कोई वैद्य या हकीम प्रकृति को सहारा देने, उस का भार हल्का करने, उस से विषाक्त द्रव्यों को निकाल फेंकने, उस की कमिओं को पूरा करने, उसे स्वस्थ करने और उस की क्रियाओं में पूरी प्रगति लाने की चर्चा चलाता है, जब वह रक्त को शोधने, अँतड़िओं और मस्तिष्क को तर व ताज़ा बनाने, तिल्ली को ठीक करने, छाती को बढ़ाने, कलेजे को नया बनाने, दिल को दृढ़ करने, शरीर की खोई हुई स्वाभाविक ऊष्मा को लौटा लाने और सुरक्षित रखने की बात छेड़ता है और कहता है कि मैं आयु में अनेकों वर्षों की बढ़ती करने के रहस्यों को जानता हूँ तो वह

आप को डाक्टरी की विचित्र आख्यायिका सुना रहा है। किन्तु जब अनुभव से उस की सचाई को परखने का समय आता है तब पता लगता है कि ये बातें निर्मूल हैं। उन सुन्दर स्वप्नों के समान हैं जिन में विश्वास करने के कारण जागने पर सिवाय पछताने के और कुछ नहीं रह जाता।

आरगां—दूसरे शब्दों में इस का अर्थ यह है कि सारे संसार का विज्ञान तुम्हारे मस्तिष्क के अन्दर भरा हुआ है और तुम समझते हो कि वर्तमान शताब्दी के उच्च से भी उच्च डाक्टरों की अपेक्षा तुम अधिक जानते हो।

बेराल्द—बचन और कर्म से आप के महा-वैद्य दो भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य हैं। यदि उन की बातों को सुनें तो प्रतीत होता है कि सारे ससार में उन से अधिक चतुर व्यक्ति नहीं है। यदि उन के कामों पर दृष्टि डालें तो पता लगेगा कि इन जैसा मूर्ख ससार में कोई नहीं है।

आरगां—हाँ जी! क्यों नहीं! मैं समझ गया कि तुम वैद्यराजों के भी वैद्य-राज हो। जी चाहता है कि इन महानुभावों में से कोई इस समय यहाँ होता तो तुम्हारी दलीलों का मुँहतोड़ उत्तर देकर तुम्हारे मुखर प्रलाप को रोकता।

बेराल्द—भाई जी, मुझे किसी डाक्टर से शास्त्रार्थ नहीं करना है। प्रत्येक पुरुष अपनी मनमानी बातों पर विश्वास करता है और अपनी धन-सम्पत्ति के अनुसार उन के अच्छे या बुरे फल को भोगता है। मैं ने जो कुछ कहा है वह तो हमारी आपस की बात है, इस लिए इच्छा होती है कि आप को इस भ्रम से थोड़ा बहुत निकालने और साथ ही आप का मनोरंजन करने के लिए आप को मोलिएर के इस विषय के किसी नाटक का खेल दिखाने ले चलूँ।

आरगां—तुम्हारा मोलिएर भी एक ही ढीठ है। क्या खूब! उस के नाटक भी ऐसे हैं कि डाक्टर जैसे प्रतिष्ठित पुरुषों को उपहास्य का पात्र बनाया है।

बेराल्द—वह डाक्टरों को उपहास्य का पात्र नहीं बनाता केवल उन की डाक्टरी का उपहास करता है।

आरगां—डाक्टरी पर शासन करने की बात भी तो उसे खूब फबती है न। कैसा नादान है। उस की यह कैसी धृष्टता है कि आयुर्वेद के विधानों और वैद्यक के परामर्शों पर उपहास्य और डाक्टरों की सम्मति पर आक्षेप करना चाहता है। डाक्टरों जैसे प्रतिष्ठित पुरुषों को अपनी रङ्गशाला के नट-पात्र बनाना चाहता है!

बेराल्द—तो आप की राय में लोगों के नाना प्रकार के व्यवसायों को छोड़ कर वह रङ्गमंच पर और क्या दिखलावे। नित्य राजों महाराजों के स्वांग तो होते ही हैं। कुलीनता में वे आप के डाक्टरों से किसी तरह कम नहीं हैं।

आरगां—शैतान का बेड़ा डूबे! यदि मैं डाक्टर होता तो उसकी इस धृष्टता का बदला लेता। जब वह रोगी हो पड़ता तो मैं उस की औषधि द्वारा सहायता किए

बिना उसे मृत्यु-शय्या पर छोड़ देता, चाहे वह कितना ही अनुनय विनय करता, चाहे वह कुछ ही कहता, मैं उस के लिए तिल-प्रमाण रक्त स्राव की भी व्यवस्था न करता, और उस से कहता 'मर जा, मर जा। इस से तुझे डाक्टरों का प्रहास्य करने की शिक्षा मिलेगी'।

बेराल्द—आप तो उस पर इतने झुंझला उठे हैं।

आरगां—हां ! यह व्यक्ति दुर्विनीति है, और यदि डाक्टर लोग चतुर हैं, तो उन्हें मेरे बताये हुए मार्ग पर चलना चाहिए।

बेराल्द—वह आप के डाक्टरों से भी चतुर है, क्यों कि वह उन से सहायता की याचना ही न करेगा।

आरगां—यदि वह औषधिओं का आश्रय न लेगा तो फिर तो उस के लिए और भी बुरा है।

बेराल्द—औषधिओं का आश्रय न लेने का भी कारण है। उस का निश्चय है कि केवल हृष्ट पुष्ट शरीर वाले पुरुषों में ही रोग के साथ साथ औषधिओं के आघात को सह सकने की शक्ति है, और उस के शरीर में जो शक्ति है उस से केवल रोग ही सहा जा सकता है।

आरगां—कैसी निपट उजड्ड दलील है। ठहरो, जी ! अब इस आदमी की अधिक चर्चा न चलाओ; क्योंकि इस से मेरा रोष भड़क रहा है और इस दशा में तुम मेरे रोग की वृद्धि का कारण बनोगे।

बेराल्द—मुझे आप की यह बात बहुत पसन्द आई है, और इस प्रसंग को बदलने के लिए मैं आप से यह कहना चाहता हूँ कि अपनी कन्या के प्रति थोड़ी सी अरुचि के कारण आप को उसे संन्यासिनी बनाने का भयङ्कर संकल्प नहीं कर लेना चाहिए। जवांई के चुनाव में आप को आंखें मीच कर अपने इस रोष का अनुसरण नहीं करना चाहिए जो आप के ऊपर भूत बन कर सवार हो रहा है। ऐसे मामले में यत्किञ्चत् कन्या के रुझान के अनुकूल ही चलना पड़ता है, क्योंकि यह सारे जीवन के लिए है और ब्याह का सारा आनन्द इस पर निर्भर है।

चौथा दृश्य

फ़ेरां (हाथ में एक पिचकारी लिए हुए) आरगां और बेराल्द

आरगां—ओह ! भाई, जरा ठहरो।

बेराल्द—क्यों ? आप क्या करना चाहते हैं ?

आरगां—यह थोड़ा सा विरेचन लेना है इस में कोई देर तो लगेगी नहीं।

बेराल्द—आप मज़ाक कर रहे है। क्या आप एक क्षण भी बिना विरेचन

और बिना औषधि के नही रह सकते ? यह अपना विरेचन किसी और समय के लिए रहने दें और अब विश्राम करें।

आरगां—श्री फ्लेरां जी, सांझ को अथवा कल प्रात सही।

फ्लेरां—(बेराल्द से) तुम्हें इस तरह हस्ताक्षेप करने का क्या अधिकार है ? क्यों इस तरह डाक्टरों के विधानों का विरोध करते हो ? उन्हे यह मेरा लाया हुआ विरेचन क्यों सेवन नही करने देते ? यह तुम्हारा अच्छा साहस है।

बेराल्द—जाईए, साहिब, जाईए। आप की बातो से स्पष्ट है कि आप को किसी के मुँह पर बोलना नही आता।

फ्लेरां—तुम्हें इस तरह डाक्टरो की हंसी उड़ा कर मेरे बहुमूल्य समय को नष्ट न करना चाहिए। मैं यहां विधान के अनुसार औषधि देने आया हूँ और अब चल कर डाक्टर पूरगों से कहता हूँ कि उन की आज्ञा का पालन करने से मुझे रोक दिया गया है और मेरे नियोग के पूरा होने में बाधा डाल दी गई है। फिर तुम्हें पता लगेगा।

पांचवां दृश्य

आरगा और बेराल्द

आरगां—भैया, तुम अवश्य कोई न कोई उपद्रव कराओगे।

बेराल्द—डाक्टर पूरगों के बताए हुए विरेचन का सेवन न करने में उपद्रव हो जायगा। भाई जी, एक बार फिर पूछता हूँ कि क्या आप को इस डाक्टर रोग से मुक्त कराने का कोई उपाय नही है। और क्या आप अपने सारे जीवन भर इन लोगों की औषधिओ के दास बने रहेंगे।

आरगां—मेरे ईश्वर ! भाई, तुम तो स्वस्थ पुरुष की तरह बाते करते हो ? यदि तुम मेरी जगह होते तो तुम्हें अपने शब्दो को बहुत कुछ बदलना पड़ता। जब पुरुष स्वस्थ होता है, तो डाक्टरी की निन्दा करना सहज होता है।

बेराल्द—आप को कौन सा रोग है ?

आरगां—तुम मेरी देह में आग लगाना चाहते हो। क्या ही अच्छा होता कि मेरा रोग तुम्हें ग्रस लेता, फिर मैं देखता कि तुम्हारा प्रमत्त प्रलाप ऐसे ही बना रहता। लो, डाक्टर पूरगों आ रहे हैं।

छठा दृश्य

पूरगो, आरगा, बेराल्द और त्वानेत्त

पूरगों—मुझे अभी नीचे फाटक पर एक रोचक समाचार मिला है। तुम मेरे विधानों पर हंसी उड़ाते हो और तुम ने मेरी बताई हुई औषधि को सेवन करने से इन्कार कर दिया है।

आरगा—डाक्टर जी यह मेरा अपराध...

पूरगों—ऐसी बड़ी पाषाणता, इतना बड़ा दुस्साहस, डाक्टर के विरुद्ध रोगी का यह विलक्षण विद्रोह !

त्वानेत्त—यह बडी भयंकर बात है।

पूरगों—यह विरेचन जिसे मैं ने प्रेम से स्वयं अपने हाथ से बना कर तय्यार किया था।

आरगां—इस में मेरा अपराध...

पूरगों—जो शास्त्र के सारे नियमों से आविष्कृत करके बनाया गया था।

त्वानेत्त—बड़ा अन्याय हुआ है।

पूरगों—और जो अँतडिओं पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालने वाला था।

आरगां—मेरे भाई ने .

पूरगों—उसे तिरस्कारपूर्वक लौटा देना !

आरगा—(बेराल्द की ओर संकेत करके) इसी ने ..

पूरगों—यह मर्यादा का उल्लंघन करना है।

त्वानेत्त—सही बात है।

पूरगों—शास्त्र का घोर अपमान।

आरगां—(बेराल्द को दिखला कर) इस का कारण वही...

पूरगों—आयुर्वेद के विरुद्ध यह एक ऐसा अपराध है, ऐसा अक्षम्य विद्रोह है, जिस के लिए कोई भी दण्ड पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

त्वानेत्त—आप का कहना यथार्थ है।

पूरगा—मैं सूचना देता हूँ कि आज से मैं तुम्हारे साथ कोई व्यवहार न रखूँगा।

आरगां—यह मेरा भाई है जिस ने...

पूरगों—अब तुम्हारे साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

त्वानेत्त—यह आप के लिए उचित ही है।

पूरगों—इस विच्छेद को पूरा करने के लिये—ताकि तुम्हारा और मेरा कोई सम्पर्क न रहे—यह लो यह वह दानपत्र है जिसे मैं विवाह के उपलक्ष में अपने भतीजे को देना चाहता था। (दानपत्र को फाड़कर क्रोध से उस के टुकड़ों को इधर उधर फेंक देता है।)

आरगां—मेरा भाई इस सारे अनिष्ट का कारण है।

पूरगों—मेरे विरेचन का इस तरह तिरस्कार करना ?

आरगां—आप उसे मँगाइए, मैं आप के सामने ही सेवन करूंगा।

पूरगों—मैं शीघ्र ही तुम्हें स्वस्थ कर देता।

त्वानेत्त—ये इस के अधिकारी नही है।

पूरगों—मैं तुम्हारे शरीर को सोधने और पित्त आदि बिकारों को निर्मूल ही करने वाला था;

आरगां—हाय! भैया!

पूरगों—रोग को निर्मूल करने के लिए एक दर्जन औषधिओ से अधिक की आवश्यकता न थी।

त्वानेत्त—ये आप की ऐसी सेवा के पात्र नही है।

पूरगों—चूँकि तुम ने मेरे हाथ से स्वस्थ न होना चाहा...

आरगां—इस में मेरा कोई अपराध नही।

पूरगों—चूँकि तुम उस आज्ञा का उल्लंघन कर चुके हो जिस का पालन करना रोगी का कर्तव्य है।

त्वानेत्त—इस का बदला लेना जरूरी है।

पूरगों—चूँकि मेरी बतलाई हुई औषधिओ के विरुद्ध तुम ने विद्रोह की घोषणा कर दी है।

आरगां—नहीं, बिल्कुल नही।

पूरगों—मुझे कहना पड़ता है कि मैं तुम्हें तुम्हारे रुग्ण शरीर, तुम्हारी अँतड़िओं के उद्वेग, तुम्हारे रक्त-विकार, तुम्हारे पित्त की कटुता और तुम्हारे शरीर-धातु की कलुषितता पर छोड़ता हूँ।

त्वानेत्त—यह बहुत अच्छा हुआ है।

आरगां—मेरे ईश्वर!

पूरगों—और मैं कहता हूँ कि चार दिन के अन्दर ही तुम्हारा रोग असाध्य हो जायेगा।

आरगां—हा! भगवन्! मुझ पर दया करो।

पूरगों—तुम मन्दाग्नि से ग्रस्त होओगे।

आरगां—डाक्टर पूरगों!

पूरगों—मन्दाग्नि से अजीर्ण होगा।

आरगां—डाक्टर पूरगों!

पूरगों—अजीर्ण से अपाचकता बढ़ेगी।

आरगां—डाक्टर पूरगों!

पूरगों—अपाचकता से आमातिसार होगा।

आरगां—डाक्टर पूरगों!

पूरगों—आमातिसार से रक्तातिसार (सम्रहणी)।

आरगां—डाक्टर पूरगों!

पूरगों—रक्तातिसार से जलोदर होगा।

आरगां—डाक्टर पूरगों!

पूरगों—और जलोदर से जीवन-ज्योति के बुझने मे कोई देर न लगेगी। यही तुम्हारी मूर्खता का अन्त होगा।

सातवाँ दृश्य

आरगा और बेराल्द

आरगां–हे मेरे ईश्वर! मै मर गया। भाई, तुम ने मेरा सत्यानाश कर दिया।

बेराल्द—क्यों? बात क्या है?

आरगां—अब मैं अधिक नहीं जी सकता। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि डाक्टर ने बदला लेना आरम्भ कर दिया है।

बेराल्द—भाई जी, आप सचमुग पागल हो गए है। बहुत से कारणों से मैं नहीं चाहता कि जो कुछ आप कर रहे है लोग आप को यह करते देखे। मेरी प्रार्थना भी कुछ सुने। ज़रा चौकस हो जायँ। अपने आप को संभालें। अपने वहम के इस प्रकार दास न बन जायँ।

आरगा—भाई, तुम देखते ही हो कि उन्हों ने मुझे कैसे अनोखे रोगों का भय दिखलाया हैं।

बेराल्द—आप बडे भोले हैं।

आरगां—उस ने कहा है कि चार दिन के अन्दर मेरा रोग असाध्य हो जायगा।

बेराल्द—यदि उस ने कह भी दिया तो फिर क्या हो गया? यह कोई देव-वाणी तो नहीं है? आप की बातों को सुनने से ऐसा प्रत त होता है मानो आप के जीवन का सूत्र डाक्टर पूरगों के हाथ मे है और उस पर उस का सर्वोपरि पूर्ण अधिकार है। अपनी इच्छानुसार वह उसे लम्बा कर दे अथवा तोड डाले। जरा तो सोचिए कि आप के जीवन का आधार आप स्वयं है। डाक्टर पूरगों का क्रोध आप को मारने मे इतना ही असमर्थ है जितना उस की औषधिआँ आप को जीवित रखने में है। यदि आप चाहें तो डाक्टरों से छुट्टी पाने का इस घटना से लाभ उठा सकते है, किन्तु यदि आप को प्रकृति ने ऐसा बनाया है कि आप उन के बिना नहीं रह सकते तो आप आसानी से किसी दूसरे डाक्टर को रख सकते हैं जिसे रखने से आप को भय कम रहे।

आरगां—भैया! यह मेरी प्रकृति को अच्छी तरह जानते है, और उन को यह भी मालूम है कि चिकित्सा की कौन सी विधि मेरे लिए श्रेयस्कर है।

बेराल्द—मुझे विवश हो कर कहना पडता है कि आप बड़े वहमी है और आप वस्तुओं को विलक्षण दृष्टि से देखते है।

आठवाँ दृश्य

आरगा, बेराल्द और त्वानेत्त

त्वानेत्त—(आरगां से) बाबू जी, एक डाक्टर आप को मिलने आए हैं।

आरगां—कैसा डाक्टर ?

त्वानेत्त—औषधि देने वाला डाक्टर !

आरगां—मैं पूछता हूं कि वह कौन है।

त्वानेत्त—मै उन्हे नहीं जानती, किन्तु उन की आकृति मेरे से इतनी मिलती है जितनी पानी की एक बून्द दूसरी बून्द से।

आरगां—अच्छा, उन्हें अन्दर ले आ।

नौवाँ दृश्य

आरगा और बेराल्द

बेराल्द—अनायास ही आप की इच्छा पूरी हुई जाती है । एक डाक्टर आप को छोड़ता है, दूसरा स्वयं आ कर उपस्थित हो जाता है।

आरगां—मुझे भय है कि तुम कोई न कोई उपद्रव न कर बेठो।

बेराल्द—फिर वही बात ! आप सदा उसी बात को दोहराते चले जाते है।

आरगां—यह देखो, सारे रोग यहाँ मेरे हृदय पर हैं जिन का मुझे कुछ पता नहीं चलता। ये .....

दसवाँ दृश्य

आरगां, बेराल्द, त्वानेत्त (डाक्टर के वेश में)

त्वानेत्त—श्रीमान् जी, आज्ञा दीजिए कि मै आप के दर्शन करूँ और आप को जितने विरेचन और जितना रक्त स्राव आवश्यक हो उस के लिए आप को अपनी क्षुद्र सेवा अर्पण करूं।

आरगां—श्रीमान् जी, इस के लिए मै आप का बहुत आभारी हूँ। (बेराल्द से) सचमुच साक्षात् त्वानेत्त ही है।

त्वानेत्त—श्रीमान् जी, क्षमा कीजिए, मैं अपने नौकर को एक बात कहनी भूल गया। मैं अभी लौट आता हूँ।

ग्यारहवाँ दृश्य

आरगां और बेराल्द

आरगां—क्यों ? तुम क्या कहते हो ? क्या यह सचमुच त्वानेत्त नहीं है?

बेराल्द—हाँ, अनुहार तो बहुत कुछ उसी की जैसी है, किन्तु इस प्रकार की समानता को देखने का हमारा यह पहला ही अवसर नहीं है। इतिहास प्रकृति के इन कौतुकों से भरा पड़ा है।

आरगां—मुझे तो आश्चर्य होता है, और ..

बारहवाँ दृश्य

आरगां, बेराल्द, त्वानेत्त

त्वानेत्त—क्यों, बाबू जी, क्या आज्ञा है ?

आरगां—कैसे ?

त्वानेत्त—क्या आप ने मुझे बुलाया है ?

आरगां—मैं ने ? नहीं तो।

त्वानेत्त—तो मेरे कानों मे यों ही भनक पड़ी होगी।

आरगां—ज़रा यहीं ठहर, देखूं तुम्हारी अनुहार डाक्टर जी से कैसी मिलती है।

त्वानेत्त—हाँ जी, क्यों नहीं! मुझे नीचे काम है, और मैं उन्हें अच्छी तरह देख चुकी हूँ।

तेरहवाँ दृश्य

आरगां और बेराल्द

आरगां–यदि मैं ने इन दोनों को एक साथ न देखा होता तो मुझे दोनों के एक होने मे कोई सन्देह न रहता।

बेराल्द–इस प्रकार की सदृशताओं की मैं ने कई अद्भुत कहानियाँ पढ़ी है; और वर्तमान युग मे भी हम ने ऐसे लोग देखे हैं जिन पर सारे संसार को भ्रान्ति होती है।

आरगां–मुझे भी अभी भ्रान्ति हो गई होती और मैं तो यह कहने में कसम खाने तक को तय्यार था कि दोनों एक ही हैं।

चौदहवाँ दृश्य

आरगां, बेराल्द, त्वानेत्त (डाक्टर के वेश में)

त्वानेत्त–श्रीमान् जी, मैं आप से हार्दिक क्षमा चाहता हूँ।

आरगां–(बेराल्द) आश्चर्यजनक सादृश्य है।

त्वानेत्त–आप जैसे विश्रुत रोगी को देखने का मेरा जो यह कुतूहल है इस के लिए आप कृपा कर अपने मन मे कोई बुरी धारणा न करें। आप की ख्याति, जो संसार मे सर्वत्र फैल रही है, मेरी इस स्वच्छन्दता का कारण है।

आरगां–श्रीमान् जी, मैं तो आप का दास हूं।

त्वानेत्त–श्रीमान् जी, आप मुझे बड़े गौर से देख रहे हैं। आप बता सकते है मेरी आयु इस समय कितनी होगी ?

आरगां–मेरा विचार है लगभग छबीस या सताईस बरस की होगी।

त्वानेत्त–ह ह ह । मेरी आयु इस समय नब्बे वर्ष की है।

आरगां–नब्बे बरस ?

त्वानेत्त–जी हाँ। यह मेरी विद्या के रहस्य का चमत्कार है कि मैं अब

भी इतना तरुण और ओजस्वी बना हुआ हूं ।

आरगां–सचमुच आप नब्बे वर्ष के सुन्दर नवयुवक वृद्ध है ।

त्वानेत्त–मैं चलता फिरता डाक्टर हूँ । अपनी योग्यता के अनुकूल अपूर्व सामग्री ढूँढने, अपने मनोयोग के अनुरूप ऐसे रोगिओं का पता लगाने, जो उन महान, मनोमुग्धकारी आयुर्वैदिक रहस्यों के उपयुक्त पात्र हों जिन्हें मैं ने अपने परिश्रम से ढूँढ निकाला है, एक नगर से दूसरे नगर मे, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे, एक राज्य से दूसरे राज्य मे फिरता रहता हूँ । साधारण रोगों के कूडे करकट से, गठिया, खाँसी, ज्वर, ताप, शिरोवेदना आदि तुच्छ रोगों की चिकित्सा करना मै अपना समय व्यर्थ नष्ट करना समझता हूँ । मैं महारोगों की चिकित्सा करता हूं । सन्निपात, शाश्वतिक तथा अलोहित ज्वर, महामारियाँ, पुराने जलोदर, फेफडों की सूजन-युक्त पार्श्व शूल इत्यादि महत्त्वपूर्ण रोगों की टोह मैं रहता हूं । ये रोग है जिन मे मुझे आनन्द आता है । ये रोग है जिन में मेरी विजय का डका बजता है, और श्रीमान् जी, मै चाहता हूँ कि जो रोग मैने अभी गिने है ये सभी आप को होते, सारे डाक्टरों ने हताश हो कर आप को छोड दिया होता और आप बिल्कुल मरणासन्न होते, ताकि मुझे अपनी औषधिओं के उत्कर्ष को दिखलाने का सौभाग्य प्राप्त होता और मै आप की सेवा कर के अपनी लालसा पूरी कर सकता ।

आरगां–श्रीमान् जी, मै आप की इन कृपाओं के लिए जो आप मुझ पर कर रहे है बहुत कृतज्ञ हूं ।

त्वानेत्त–मुझे अपनी नाडी दिखलाइए । आओ जी आओ, ठीक ठीक चलो, जैसा तुम्हें चलना चाहिए वैसी चलो । ओह ! मुझे तुम्हें ठीक ठीक चलाना पडेगा । अहो ! यह नाडी तो बडी ढिठाई कर रही है । मालूम होता है तुम मुझे अभी पहचानती नही हो । आप का डाक्टर कौन है ?

आरगां—डाक्टर पूरगों ।

त्वानेत्त—यह नाम मेरी पुस्तक के प्रसिद्ध डाक्टरों की सूची मे नहीं है । उस ने आप को कौन सा रोग बतलाया है ?

आरगा—उन्हों ने तो कलेजे की ख़राबी बतलाई किन्तु लोग कहते हैं कि तिल्ली बढ़ गई है ।

त्वानेत्त–ये सारे ही काठ के उल्लू है । आप के फेफडे ख़राब हो गए हैं ।

आरगा–फेफडे ख़राब हो गए हैं ?

त्वानेत्त–हाँ । आप को क्या कष्ट है ?

आरगां—समय समय पर सिर मे दर्द होता है ।

त्वानेत्त—ठीक, वही फेफडों का रोग ।

आरगां—कभी कभी आंखों के आगे अन्धकार जैसा छा जाता है।

त्वानेत्त—वही फेफडे।

आरगां—कभी २ हृदय धडकने लगता है।

त्वानेत्त—वही फेफडे।

आरगा—कभी कभी सारे अङ्ग बलहीन हो जाते है।

त्वानेत्त—वही फेफडे।

आरगां—और कभी पेट मे इतनी घोर पीडा होती है जैसे शूल उठ रहा हो।

त्वानेत्त—वही फेफडे। भोजन के लिए आप को भूख लगती है और आप रुचि पूर्वक खाते हैं?

आरगां—जी हां।

त्वानेत्त—वही फेफडे। थोडी सी मदिरा पीने को भी आप की रुचि होती है?

आरगा—जी हाँ।

त्वानेत्त—वही फेफडे। भोजन करने के पीछे आप की आख लग जाती है आप सुख पूर्वक सो जाते है?

आरगां—जी हाँ।

त्वानेत्त—वही फेफडे, मैं आप से कहता हूँ, कि आप को फेफडों का रोग है। आप के डाक्टर ने आप को खाने के लिए क्या बताया है?

आरगा—उन्हों ने मुझे थोडा शोरवा पीने को कहा है।

त्वानेत्त—मूर्ख!

आरगा—मुरगी।

त्वानेत्त—मूर्ख!

आरगां—भेड का मांस।

त्वानेत्त—मूर्ख!

आरगां—ताज़े अण्डे।

त्वानेत्त—मूर्ख!

आरगां—उदरशोधन के लिए साँझ को त्रिफलादि चूर्ण।

त्वानेत्त—मूर्ख!

आरगां—और विशेष कर शराब ख़ूब पानी मिला कर पीना।

त्वानेत्त—अन्धेन नीयमाना यथा अन्धाः। आप को शराब बिना पानी मिलाय पीनी चाहिए; और आप का रक्त अत्यन्त पतला हो रहा है, उस को गाढ़ा करने के लिए बकरी, चरबी भरा सूअर का मास, मोटी मछली, दूध, दही, मक्खन, डबल रोटी, पनीर वग़ैरह ख़ूब खाने चाहिएं, ताकि रक्त के अश गाढे

होकर परस्पर चिपक सकें। आप का डाक्टर गधा है। मैं आप के पास अपने किसी शिष्य को भेजूँगा और जब तक इस नगर मे ठहरा हुआ हूँ समय समय पर स्वय भी आप को देखने आया करूंगा।

आरगां—मुझ पर आप का बडा अनुग्रह होगा।

त्वानेत्त—यह बॉह आप ने कौन सी भूत-सिद्धि के लिए रक्खी हुई है ?

आरगां—कैसे ?

त्वानेत्त—यदि मैं आप की जगह होता तो मै बिना किसी विलम्ब के उसे अभी कटवा देता।

आरगां—क्यों ?

त्वानेत्त—क्या आप नहीं देखते कि वह सारी पुष्टि अपनी ओर खींच रही है और दूसरे पार्श्व को बढने से रोक रही है।

आरगां—जी हाँ, आप ठीक कहते है पर उस के बिना तो मेरा काम नहीं चल सकता।

त्वानेत्त—आप को यह दाहिनी आँख भी भूतनी बन कर बैठी हुई है। यदि मै आप की जगह होता तो मै ने उसे भी निकलवा दिया होता।

आरगां—आप मेरी दाहिनी आँख को निकालना चाहते है।

त्वानेत्त—आप नहीं देखते कि वह दूसरी आख को बाधा पहुँचा रही है ? उस की पुष्टि को छीन कर स्वयं पुष्ट हो रही है। मेरे ऊपर विश्वास करें, जितनी जल्दी हो सके उसे निकलवा डालें। फिर आप अपनी बाईं आँख से अधिक साफ देख सकेंगे।

आरगां—अभी कोई जल्दी नहीं।

त्वानेत्त—अच्छा,आज्ञा दीजिए। मुझे दु ख है कि मै इतनी जल्दी आप को छोड रहा हूँ। मुझे डाक्टरों की एक विराट् सभा मे उपस्थित होना है जिस में एक ऐसे मनुष्य के विषय मे परामर्श होने वाला है जिस का कल देहान्त हुआ था।

आरगां—ऐसे मनुष्य के विषय मे जिस का कल देहान्त हुआ था ?

त्वानेत्त—हाँ, ताकि हम सब बैठ कर विचार करें और देखे कि उसे स्वस्थ करने के लिए क्या चिकित्सा होनी चाहिए थी। नमस्ते। फिर दर्शन करूँगा।

आरगां—आप जानते है कि रोगी लोग उपचारशील नहीं होते।

पन्द्रहवाँ दृश्य

आरगा और बेराल्द

बेराल्द—सचमुच यह डाक्टर बड़ा योग्य प्रतीत होता है।

आरगां—हाँ, बहुत शीघ्रकारी है।

बेराल्द—सभी नामी डाक्टर ऐसे ही होते हैं।

आरगां—मेरी एक बाँह कटवाई जाय, मेरी एक आंख निकलवाई जाय, ताकि दूसरी अधिक उपयोगी बने। इस से वह जैसी है वैसी ही क्यों न रहे? क्या सुन्दर चिकित्सा है कि मैं एक साथ ही काना और लूला बन जाऊँ।

सोलहवाँ दृश्य

आरगां, बेराल्द और त्वानेत्त

त्वानेत्त—(किसी दूसरे से बोलने का अभिनय करती हुई) आईए, आईए, मैं आप की दासी हूँ; मैं आप से हंसी नहीं कर रही।

आरगां—बात क्या है?

त्वानेत्त—यही आप के डाक्टर महोदय मेरी नाडी देखना चाहते थे।

आरगा—ज़रा सोचो तो सही नब्बे वर्ष की आयु मे यह रंगीलापन।

बेराल्द—हाँ! भाई जी, डाक्टर पूरगों तो अब आप से सम्बन्ध तोड चुके हैं, अब आप की इच्छा हो तो आञ्जेलिक के वर के विषय का प्रस्ताव आप के सामने रक्खूँ।

आरगा—नहीं भैया, उस ने मेरी इच्छा का विरोध किया है। मैं उसे सन्न्यासिनिओं के मठ मे छोड़ना चाहता हू। मै जानता हूँ कि इस विद्रोह की तह मे प्रेम का स्वाग है। उन की जो गुप्त मेल मुलाकात हुई है उस का भी मुझे पता है। वे समझते होंगे मुझे कुछ मालूम नही है।

बेराल्द—अच्छा, भाई जी मान लो कि थोडा रुझान किसी तरफ हो भी तो इस मे कौन सा पाप है? यदि उस का लक्ष्य विवाह जैसे पुनीत सम्बन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं तो आप को उस से रुष्ट नही होना चाहिए।

आरगां—चाहे कुछ भी हो, उसे सन्न्यासिनी बनना पड़ेगा; मै यह निश्चय कर चुका हूँ।

बेराल्द—आप किसी दूसरे व्यक्ति को प्रसन्न करना चाहते है।

आरगां—मैं तुम्हारा अभिप्राय समझता हूँ। तुम बार २ वही रट लगाते हो। मेरी स्त्री तुम्हारे हृदय का काँटा हो रही है।

बेराल्द—जी! भाई जी! हृदय खोल कर बात करना आवश्यक है। मेरा अभिप्राय भाभी ही से है। यह मुझ से नहीं देखा जाता कि इधर तो आप डाक्टरों के फंदे में फसे रहे और उधर भाभी के इतने क्रीत दास बन जायँ कि वह जिस फन्दे में फंसाना चाहे उस मे स्वय ही सिर नीचा करके आ गिरे।

त्वानेत्त—नहीं, जी! श्रीमती जी के विषय मे ऐसी बाते न करे। वह एक ऐसी स्त्री है जिस के विषय मे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उस मे कोई कपट नहीं। वह बाबू जी को प्यार करती है। बाबू जी उसे प्यार करते है . उस का बखान नहीं हो सकता।

आरगां—(बेराल्द से) इसी से पूछो कि वह मुझ से कितना लाड प्यार

करती है।

त्वानेत्त—सच्ची बात है।

आरगा—मेरे रोग के कारण वह कितनी चिन्तित रहती है।

त्वानेत्त–इस मे कोई सन्देह नहीं।

आरगा—मेरे लिए वह कितना कष्ट उठाती है और मेरी कितनी सेवा करती है।

त्वानेत्त–सही बात है। (बेराल्द से) यदि आप की इच्छा हो तो मैं अभी आप को विश्वास दिला दूं और आप को दिखला दू कि श्रीमती जी बाबू जी को कितना प्यार करती है। (आरगा से) बाबू जी, आज्ञा दीजिए कि मै इन की भूल को दिखला कर इन के भ्रम को मिट दू।

आरगा–कैसे ?

त्वानेत्त–श्रीमती जी लौटने ही वाली है। आप इस पलग पर खूब अकड कर लेट जायॅ और मर जाने का अभिनय करे। आप देखेगे कि उन्हे कितना दुःख होगा जब मै उन्हे यह समाचार सुनाऊगी।

आरगां–मेरी भी यही इच्छ है।

त्वानेत्त–हा, पर उन्हे देर तक निराशा मे न रखना। कही ऐसा न हो कि वे अपने प्राणों पर खेल बैठे।

आरगा—यह मुझ पर छोड दो।

त्वानेत्त–(बेराल्द से) आप इस कोने मे छिप जायॅ।

सत्रहवॉ दृश्य

आरगां और त्वानेत्त

आरगां–मृत्यु का अभिनय करने मे कोई भय तो नहीं है ?

त्वानेत्त–जी, नही। इस मे क्या भय है ? केवल आप अकड कर लम्बे पड जायं। (धीमे) अपने भाई को हराने मे आप को बहुत आनन्द आयगा। यह लो, बीबो जी आ गईं। आप खूब तन कर लेटे रहें।

अठारहवॉं दृश्य

बेलीन, आरगां (पलंग पर अकड कर पडा हुआ) त्वानेत्त

त्वानेत्त—(इस तरह अभिनय करती है मानो उस ने बेलीन को नहीं देखा) हा ! दैव ! हा ! दुर्भाग्य ! यह कैसा दारुण वज्रपात !

बेलीन—क्यों त्वानेत्त, क्या है ?

त्वानेत्त—हाय ! बीबी जी !

बेलीन—क्या हुआ ?

त्वानेत्त—आप के प्राणनाथ स्वर्ग लोक को चले गए।

बेलीन—मेरे पति स्वर्गलोक को चले गए ?

त्वानेत्त—हाय, वह तपस्वी आत्मा चला गया।

बेलीन—सचमुच ?

त्वानेत्त—सचमुच। इस दुर्घटना का पता अभी किसी को नहीं लगा है। अकेली मैं ही यहाँ थी। मेरी बाँहों ही में उन के प्राण निकले हैं। यह देखिए, वे अपने पलंग पर लम्बे पड़े हैं।

बेलीन—ईश्वर, तेरा धन्यवाद ! आज मेरे सिर पर से एक बहुत बडा बोझ उतरा है। त्वानेत्त, तू गधी है कि उस की मौत से विह्वल हो रही है।

त्वानेत्त—बीबी, मै ने समझा कि रोना चिल्लाना आवश्यक है।

बेलीन—छिः छिः ! काहे को इतना कष्ट उठा रही है ? उस के मरने से कौन सी हानि हो गई ? संसार मे रह कर ही उस ने कौन सी भलाई की है ? किसी को भी तो अच्छा नही लगता था। उसे देख कर घृणा होती थी। जब देखो, पेट मे विरेचन अथवा औषधि ठूंसी जाती थी। सिनकते, खाँसते, थूकते ही सारा दिन बीतता था। बूढा, साहस-हीन, दुःख-दायी, बुरे स्वभाव वाला, सब को काम करा कर निरन्तर थकाता रहता था। नौकर-चाकरों को तो रात दिन झिड़के देता रहता था।

त्वानेत्त—दाह-संस्कार से पूर्व का क्या ही सुन्दर मन्त्रोच्चारण है।

बेलीन—त्वानेत्त, तुझ को मुझे मेरी आयोजनाओं को पूरा करने मे सहायता देनी पडेगी। तू इस बात का विश्वास रख कि मेरी सेवा करने का तुझे निश्चित पारितोषिक मिलेगा। सौभाग्य से अभी तक किसी को उस के मरने की ख़बर नहीं मिली है। आ उस को बिस्तरे में लिटा दें और जब तक मैं अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं करती, इस मौत को गुप्त रखें। कुछ हुंडिआं है और कुछ नकद रुपये है जिन पर मै कब्ज़ा करना चाहती हूँ। मै ने अपने जीवन की बसन्त उस के साथ यों ही नहीं बिताई है। आ, त्वानेत्त, इधर आ, सब से पहले हमे चाबिओं को अपने अधिकार मे कर लेना चाहिए।

आरगां—(फुर्ती से उठ कर) ! धीरे।

बेलीन—हाय !

आरगां—हाँ, मेरी धर्मपत्नी, यही तुम्हारा प्रेम है ?

त्वानेत्त—हा ! हा ! मुर्दा मरा नहीं ?

आरगां—(बेलीन से, जो वहाँ से चलती बनती है) तुम्हारे इस प्रेम को देख कर, मेरे लिए जो तुम ने सुन्दर स्तोत्र रचा है उसे सुन कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। यह एक चेतावनी है जो मुझे भविष्य मे सावधान रक्खेगी और कई अविवेक-पूर्ण कामों से मुझे रोकेगी।

उन्नीसवाँ दृश्य

बेराल्द (गुप्त स्थान से निकाल कर), आरगा और त्वानेत्त ।

बेराल्द—हाँ तो ! भाई जी ! आप ने देख लिया ?

त्वानेत्त—प्रभु की कसम मुझे तो कभी भी इस का विश्वास न होता। आप की पुत्री के आने की आहट आ रही है। आप फिर पहले की तरह लेट जायँ। देखे वह किस प्रकार आप की मौत के समाचार को सुनती है। यह परीक्षा कोई बुरी नही है, और आप उस का श्रीगणेश कर ही चुके है । इस से आप को मालूम हो जायगा कि आप के प्रति आप के परिवार के कैसे भाव है। (बेराल्द लुक जाता है)

बीसवाँ दृश्य

आरगाँ, आञ्जेलिक, त्वानेत्त ।

त्वानेत्त—(ऐसा अभिनय करती है मानो उस ने आञ्जेलिक को नही देखा) हा ! दैव ! यह शोक का कैसा उल्कापात है ! हाय रे ! दुर्दिन !

आञ्जेलिक—त्वानेत्त, तुझे यह क्या हो गया ? तू यह करुणा-क्रन्दन क्यों कर रही है ?

त्वानेत्त—हा राम ! मेरे भाग्य मे तुम्हें यह दुःखदायी समाचार सुनाना था।

आञ्जेलिक—हैं ! क्या ?

त्वानेत्त—तुम्हारे पिता जी का स्वर्गबास हो गया।

आञ्जेलिक—मेरे पिता जी का स्वर्गबास हो गया, त्वानेत्त ?

त्वानेत्त—हाँ। वह देखो उन के प्राण अभी निकले है। हृदय की धड़कन का बंद होना ही उन की मृत्यु का कारण हुआ।

आञ्जेलिक—हे ईश्वर! अहो दुर्भाग्य! कैसा दारुण आघात! हाय! संसार मे मेरे एक पिता जी ही रहे थे सो वह भी मुझ से छीन लिए गए और ऐसे समय पर जब वे मुझ से रूसे हुए थे। हाय री ! मेरी निराशा ! मुझ अभागिन का अब क्या होगा ? इतनी महती विनाशकारी हानि के पीछे मुझे कौन सी सान्त्वना मिल सकती है ?

इक्कीसवाँ दृश्य

आरगाँ, आञ्जेलिक, क्लेआन्त, त्वानेत्त

क्लेआन्त—सुन्दरि ! आञ्जेलिक ! यह तुम्हें क्या हो गया है ? कौन सा दुर्भाग्य तुम्हें रुला रहा है ?

आञ्जेलिक—हाय ! जीवन मे मेरी जो सब से अधिक प्यारी, सब से अधिक बहुमूल्य वस्तु थी उसी के लिए रोती हूँ। पिता जी की मृत्यु पर रो रही हूँ।

क्लेआन्त—हे विधाता ! यह कैसी दुर्घटना ! कैसा अतर्कित आघात ! शोक ! मै ने अभी तुम्हारे चाचा जी से उन से मेरे विषय मे दो चार शब्द कहने की प्रार्थना की थी। मै स्वयं उन के दर्शन करने आ रहा था कि भक्ति-भाव और अनुनय-विनय से उन के हृदय को कुछ नरम करूं ताकि मेरे मनोरथों के अनुसार वह आप को मुझे सौप दें।

आञ्जेलिक—हाय ! क्लेआन्त अब इस की चर्चा न चलाओ। मेरे साथ विवाह के सारे विचार यहा ही छोड दो। पिता जी की मृत्यु के पीछे अब मै इस ससार से कोई नाता नहीं रखना चाहती। मै सदा के लिए ससार त्यागती हूँ। हाँ, पिता जी ! मै ने आप को इच्छाओं का घोर विरोध किया पर अब मै आप के कम से कम एक संकल्प को पूरा करूंगी। मैं ने आप के हृदय को दुखाया। मैं दोषी हूँ। इस दुःख को मै प्रायश्चित द्वारा दूर करूगी (अपने घुटनो पर झुक कर) पिता जी, आज्ञा दीजिए। मै आप के चरणों को स्पर्श करके और उन के साक्ष्य मे आज ही यह प्रतिज्ञा करती हूँ

आरगां—(आञ्जेलिक के सिर पर हाथ धर कर) धन्य ! बेटी !

आञ्जेलिक—है !

आरगा—आओ, डरो मत। मैं मरा नही हूँ। अहो, तुम मेरी आत्मा हो। मेरी सच्ची पुत्री हो। तुम्हारी सुन्दर प्रकृति को देख कर मेरा रोम रोम प्रफुल्लित हो रहा है।

बाईसवॉ दृश्य

आरगां, बेराल्द, आञ्जेलिक, क्लेआन्त, त्वानेत्त

आञ्जेलिक—अहा ! कैसा मनोमुग्धकारी विस्मय है ! पिता जी, परम सौभाग्य से विधाता ने आप को मेरे प्रेम के लिए फिर से जीवन प्रदान किया है, मै अभी आप के चरणों मे सीस रख कर आप की आज्ञा से, आप से एक प्रार्थना करना चाहती हूँ। यदि आप मेरे हृदय के झुकाव से सहमत न हों, यदि आप मुझे क्लेआन्त पति न देना चाहें, तो मै आप की दुहाई देती हूँ कि कम से कम मेरा किसी दूसरे पुरुष के साथ बलात्कार से व्याह न करें। यही एक अनुग्रह है जिस की मै आप से भिक्षा मांगती हूँ।

क्लेआन्त—(आरगा के पाँवों पडता है) श्रीमान् जी ! इन की और मेरी प्रार्थना से आप अपने हृदय को पसीजने दे और हमारे इस मधुर प्रेम की पारस्परिक प्रेरणा का कोई विरोध न करे।

बेराल्द—भाई जी, आप कैसे विरोध कर सकते है ?

त्वानेत्त—बाबू जी, क्या आप ऐसे प्रेम के प्रति अपने हृदय को कुण्ठित कर सकते हैं ?

आरगां—यदि ये डाक्टर बनने को तय्यार हों तो मै इस विवाह के

प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता हूँ। (क्लेआन्त से) हाँ जी, डाक्टर बनो तो मै आप को अपनी कन्या दूं।

क्लेआन्त—बडो प्रसन्नता से, श्रीमान् जी। यदि इतने से मै आप का जँवाई बन सकता हूं तो डाक्टर ही क्या, आप चाहे तो मैं दवाईओं की दुकान भी खोलने को तय्यार हूँ। डाक्टर बनने की तो बात ही क्या है, प्यारी आञ्जेलिक को प्राप्त करने के लिए मै कठिन से कठिन कार्य्य सहर्ष कर सकता हूँ।

बेराल्द—भाई जी, मेरे मन मे एक विचार आया है। आप स्वयं ही डाक्टर बन जायँ तो बहुत ही सुभीते की बात होगी ताकि जिस जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह सब अपने मे ही मिल सके।

त्वानेत्त—सही बात है। आप को शीघ्र स्वस्थ करने का यही सच्चा साधन है। कोई भी रोग ऐसा हठीला नहीं जो डाक्टरों के साथ अठखेलिआँ करे।

आरगां—भैया, प्रतीत होता है कि तुम मेरी हँसी कर रहे हो। क्या मेरी उमर अब विद्यार्थी बनने की है?

बेराल्द—खूब! विद्यार्थी बनने की बात भी अच्छी चलाई! पढाई कैसी? आप अच्छे विद्वान् है। डाक्टरों मे अनेक ऐसे है जो आप से अधिक योग्य नही है।

आरगां—इस के लिये संस्कृत बोलने का अच्छा ज्ञान होना चाहिए और रोगों को पहचानने और उन के लिए कौन औषधि आवश्यक है यह जानना चाहिए।

बेराल्द—आप जिस समय कंधे पर डाक्टरों का चोगा पहनेगे और सिर पर डाक्टरों की पगडी बाधेंगे तो सब कुछ जान जायगे। आप इतने चतुर बन जायंगे कि इतना चतुर बनने की आप की इच्छा भी न होगी।

आरगां—क्या कहा? चोगा पहनने और पगडी बांधने से ही पुरुष को रोगों के कारण, लक्षण, और निदान पर कहने का ज्ञान हो जाता है?

बेराल्द—जी हा। यदि चोगा पहना हुआ हो और पगड़ी बधी हुई हो तो सब ऊट-पटाग वैज्ञानिक और सारी शेखचिल्ली की कल्पनाएँ दार्शनिक बन जाती हैं।

त्वानेत्त—ठहरिए। बाबू जी! डाढी भी बडे काम की चीज है। आप की डाढी खूब बढ़ी हुई है ही। बस, आधा वैद्य तो पुरुष डाढी से ही बन जाता है।

क्लेआन्त—जो भी हो मैं तो हर हालत मे सब कुछ करने के लिए तय्यार हूं।

बेराल्द—(आरगां से) आप कहें तो यह काम अभी हो जाय।

आरगां—अभी कैसे?

बेराल्द—हां आप ही के घर मे।

आरगां—मेरे घर मे ?

बेराल्द—हाँ। मैं कुछ ऐसे डाक्टरों को जानता हूं जो मेरे मित्र हैं। वे अभी आकर विधि-पूर्वक आप के भवन मे इस संस्कार को करेंगे। इस मे आप की एक कौडी भी खर्च न होगी।

आरगां—मैं क्या कहूँ, क्या उत्तर दूँ ?

बेराल्द—आप को केवल दो शब्दों मे सारी विद्या सिखा दी जायगी और जो कुछ आप के लिए कहना आवश्यक है वह आप को काग़ज पर लिख कर दे दिया जायगा। आप जायँ और सुन्दर समयोचित वस्त्र पहिन कर तय्यार हों। मैं किसी को भेज कर उन्हें बुलवाता हूं।

आरगां—अच्छा, देखें।

तेईसवाँ दृश्य

बेराल्द, आञ्जेलिक, क्लेआन्त, त्वानेत्त

क्लेआन्त—आप का अभिप्राय क्या है ? अपने इन डाक्टर-मित्रों को बुला कर आप क्या करना चाहते है ?

त्वानेत्त—आप का उद्देश क्या है ?

बेराल्द—आज साँझ को थोडा मनोविनोद करना। नटों ने किसी डाक्टर की उपाधि-प्राप्ति के अवसर को अपने एक विष्कम्भक का विषय बनाया है जिस मे नाचना और गाना भी होगा। मैं चाहता हूं कि हम सब मिल कर इस से अपना मनोविनोद करें और भाई जी इस मे प्रथम पात्र बनें।

आञ्जेलिक—चाचा जी, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप पिता जी की बहुत अधिक हँसी उडा रहे हैं।

बेराल्द—बेटी, यह उन को हसी उडाना नहीं है किन्तु उन के हृदय के भावों के अनुकूल चलना है। पर यह बात गुप्त है। हम सब एक दूसरे के मनोरञ्जन करने के लिए उस मे अभिनय करेंगे। आज कल होली है इस त्योहार पर ऐसी बातें होती ही है। चलो जल्दी, चटपट सारी तय्यारिआं कर डालो।

क्लेआन्त—(आञ्जेलिक से) आप इस मे सहमत है ?

आञ्जेलिक—हाँ, चाचा जी जिस के सूत्रधार है उस मे सहमत क्यों न हूँगी ?

श्रीमद्विजयराघवगढ़ाधीशात्मज कविवर ठाकुर जगन्मोहन सिंह

राय बहादुर ला० हीरा लाल, रिटायर्ड डिप्टी कमिश्नर, कटनी।

विजयराघवगढ़ नामक किला व बस्ती मध्यप्रदेश के ज़िला जबलपुर मे कटनी जंक्शन स्टेशन से बीस मील की दूरी पर है। उस स्थान मे कविवर ठाकुर जगन्मोहनसिंह का जन्म हुआ था। इन के वंश का विकास आमेर (जयपुर) राज घराने से है। आमेराधिपति कुन्तल जी के द्वितीय पुत्र आलनसी जी से (जिन को अडसी जी भी कहते है) आप की शाखा का प्रारम्भ होता है। आप के पूर्वज घाट खुटेटा* नामक ठिकाने के जागीरदार थे। इस जागीर की वार्षिक आय सवा लाख की थी। आलनसी जी से नवमी पुश्त मे भीमसिंह जी हुए। इन से अपने भाइओ से नही बनी। परिणाम यह हुआ कि भीम सिंह जी ने अपने भाइओ से पृथक् होकर १७वी शताब्दी के लगभग घाट खुटेटा से बुंदेलखण्ड की ओर प्रस्थान किया। भीम सिंह जी को पन्ना नरेश महाराज छत्रसाल ने अपने यहां आश्रय देकर सम्मानित किया। भीम सिंह जी ने पन्ना दरबार की ओर से कई लडाइओ मे विजय पाई और अंत मे रणक्षेत्र में ही प्राण त्याग किए। बस बुंदेलखण्ड मे इस वंश की स्थिति का समय भीमसिंह जी से प्रारम्भ होता है। उन की फौजी सेवा के उपलक्ष मे ठाकुर भीमसिंह जी के पुत्र कृपाराम जी को कई मौज़े जागीर मे मिले। कृपा राम जी से तीसरी पुश्त मे बेनी सिंह जी हुए। ये अत्यंत पराक्रमी, वीर, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ तथा उदार पुरुष थे। अपने बाहुबल तथा योग्यता के कारण ठाकुर बेनी सिंह को महाराज हिन्दू-पत पन्ना नरेश ने प्रधानामात्य के पद से विभूषित किया। उन्हो ने कई घोर संग्रामो मे आश्चर्यजनक पराक्रम का परिचय दिया। आप के जीवनकाल की कुछ विशेष घटनाएं उल्लेखनीय है —

(१) संवत् १८३४ में राजा खुमान सिंह अजय गढ वालों से बेनी सिंह जी ने लड़ कर विजय पाई। उस के उपलक्ष मे आप को खिलत और जागीरें आदि मिली।

---

* घाट-खुटेटा—अब अलवर राज्य मे है और अलवर नरेश महाराज बखतावर सिंह जी ने संवत् १८४७ मे जब्त कर राज्य मे मिला लिया।

† अलवर राज्य मे आप के कुटुम्ब के लोग अभी इन्द्रगढ़, ईंदपुरी, नवगवाँ, बम्मी हल्दीना इत्यादि स्थानो में मौजूद है।

(२) सबत् १८४५ मे गठौरा* नामक स्थान में एक घोर युद्ध† हुआ। यह संग्राम बुंदेलखण्ड के इतिहास मे अतीव भयंकर और भीष्म संग्रामो मे से एक समझा जाता है।

इस समय पन्ना राज्य की स्थिति एक भयानक रूप से डावांडोल हो रही थी। एक नोनेसिह पमार ने, पन्ना राज्य पर अपना अधिकार जमाने के हेतु, एक महती सेना से सज्जित हो, बड़े समारोह के साथ पन्ना पर आक्रमण किया। इधर पन्ना की ओर से बेनीसिह जी सेना नायक होकर युद्ध के लिये रवाना हुए। गठौरा मे दोनो दलो का भयंकर संग्राम हुआ। अंत मे बेनीसिह जी ने विपक्षी दल को पूर्ण रूप से परास्त कर विजय प्राप्त की। इस संग्राम की जीत पन्ना राज्य की स्थिरता के लिये बड़े महत्त्व की घटना है। इस से बेनीसिह जी की ख्याति बुंदेलखण्ड मे पूर्णत व्याप्त हो गई। यहां तक कि इस लड़ाई की गाथा और बेनीसिह की कीर्ति के गीत आज भी उस प्रांत मे गाए जाते है और कई एक स्मारक अनेक स्थानो मे पाए जाते हैं, यथा—पन्ना मे, बेनीसागर, बेनी-महल और बेनीगंज, चित्रकूट के कामता नाथ के मौजे मे दो मंदिर और बाग, जिला बांदा परगना पैलानी मे चार मौजा के चोहद्दे पर बेनीकुंवा और बेनीहार इत्यादि। अंत मे बेनी सिह जी युद्ध मे मारे गए। वे तीन लड़के छोड़ गए। एक ठाकुर गजसिह दूसरे दुर्जनसिह और तीसरे गन्धर्वसिह। इन मे से अन्तिम मरहठो की लड़ाई मे हटा मे मारे गए। गजसिह पन्ना के दीवान हुए और कई एक प्रसिद्ध लड़ाइयो मे विजयी होने के कारण दरबार पन्ना से उन्हे राजधर बहादुर की उपाधि तथा एक भारी इलाका अमुवा कल्याणपुर नाम का मुड़वार मे अर्थात् युद्ध सेवा के बदले मिला। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जब भारत मे कब्जा किया उस समय प्रत्येक देशी राज्यो के साथ संधि तथा शर्तें की गईं और अहदनामें लिखे गए। इसी तरह पन्ना दरबार के साथ कार्रवाइआं हुईं जो दरबार के प्रधान मंत्री ठाकुर गजसिह राजधर-बहादुर के द्वारा संपादित हुईं। इन का नाम कई एक स्थानो मे आया है‡।

इसी प्रकार युद्ध सेवा के उपलक्ष मे ठाकुर दुर्जनसिह का श्रावण वदी ४ संवत् १८२७ में मैहर का इलाका प्राप्त हुआ तब से राजधर बहादुर पन्ना मे रहे।

---

* गठौरा—स्थान अब छतरपुर राज्य (बुंदेलखण्ड) मे है।

† यह युद्ध असाढ़ वदी १ सम्वत् १८४५ मे हुआ।

‡ देखो Aitchinsin's Treaties and Engagements P. 276-279 Vol. II, edition, 1876.

और दुर्जन सिंह जी मैहर चले आए। यहां कई लडाइआं इन्हें बघेलो के साथ लड़नी पड़ी, किन्तु सबो मे आप ने विजय पाई और अंत मे मैहर राज्य मे अपना अधिकार और शासन पूर्ण रीति से स्थापित कर लिया। तदनंतर दुर्जनसिंह जी और अंग्रेज सरकार के साथ संधि शर्तें और अहदनामे, औरो की भांति, हुए। उन्हें १८ मार्च सन् १८१४ को सनदें प्राप्त हुई।

ठाकुर दुर्जनसिंह के दो लडके हुए। एक विष्णुसिंह दूसरे प्रयागदाससिंह। सन् १८२६ मे दुर्जन सिंह जी की मृत्यु के पश्चात् दोनो भाइओ मे झगडा आरंभ हुआ। अंतिम परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी सरकार ने मैहर राज्य को पृथक् २ दो भागो मे तुल्य अधिकारो के साथ, दोनो भाइओ के बीच, बटवारा कर दिया। विष्णुसिंह को मैहर और प्रयागदाससिंह को दूसरा आधा हिस्सा मिला। इस प्रकार ठाकुर प्रयागदास सिंह जी विजयराघवगढ़ के राजा हुए और उन को गवर्नमेंट से २९ फरवरी सन् १८२९ का सनद मिली जिस से उन को सम्पूर्ण अधिकार मैहर के समान अपने राज्य मे प्राप्त हुए। जिस समय इन्हों ने अपना आधा हिस्सा मैहर से लड कर लिया, उस समय बघेलो का बहुत प्रभाव था। वे लोग दृढ रूप से गढी बन्द हो कर जमे थे। ठाकुर प्रयागदाससिंह जब अपने आधे भाग के प्रबन्ध मे उद्यत हुए, उस समय बघेलो ने इन के शासन मे विघ्न डालना आरम्भ किया और लडने को उन्मुख हुए। परिणाम यह हुआ कि ठाकुर प्रयागदाससिंह ने प्रत्येक गढ़ी को ध्वस्त कर, बघेलो को हरा दिया। पहले कन्हवारे वालो की गढी तोड़ी गई। फिर क्रमश देवरा, भैंसवाही, बनजारी, मझगंवा, सिनगौड़ी, बरही इत्यादि स्थानो की गढ़िओ पर अधिकार जमाया गया। तत्पश्चात् खितौली का इलाका जो उस समय रीवां राज्य मे था, रीवां से लड़ कर जीता गया और विजयराघवगढ़ मे शामिल कर लिया गया। आप ने कटनी और झयावन नदी के सुभग संगम पर एक सुदृढ और सुन्दर दुर्ग बनवाया। तथा अपनी राजधानी के नगर की भी नीव डाली जिस का नाम विजयराघवगढ़ रक्खा गया। यह देश पहले प्राय जंगली और उजाड था। खेती किसानी अधिक न थी। किन्तु उक्त ठाकुर साहब ने अपनी उदारता, बुद्धिमत्ता, परिश्रम तथा बाहुबल के द्वारा, इसे धन, धान्य, विद्या और वैभव से संपन्न कर दिया। आप के बनाए हुए कई एक द्रष्टव्य स्थान है यथा विजयराघव-गढ़ मे अनेक विशाल मंदिर, कई बडे २ बाग़, बगीचे, कुवे, बावली, तालाब, किला इत्यादि अभी तक वर्त्तमान है। आप का सम्बन्ध ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ संतोष जनक था। कई संकटो और आपत्ति के समय मे ठाकुर साहब ने अंग्रेज़ सरकार को अच्छी सहायता पहुंचाई थी। इस के उपलक्ष मे गवर्नमेंट से

आप को बिलहरी* और जैतपुर का इलाका पान खाने को मिला था। इस के अतिरिक्त खिलत, तोपें इत्यादि भी प्रदान हुई थीं। ठाकुर प्रयागदास सिंह ने १९ वर्ष बड़ी योग्यता के साथ राज्य किया।

आप को कविता से भी घना प्रेम था। उन्हो ने कई एक काव्यात्मक ग्रंथ रचे थे। वे बहुधा भक्ति रस की कविता करते थे और अपना उपनाम "रामनिधि" लिखते थे। विजयराघव पचीसी, नित्यराघवमिलन इत्यादि अनेक रचनाएं उन्हो ने की हैं। वे राम के सच्चे उपासक थे। बानगी स्वरूप विजयराघव पचीसी से एक झूलना छंद उद्धृत किया जाता है :—

> साम बट्ट के तट्ट लकुट्ट लिये दिए सीस मुकट्ट मनीन जड़ा।
> लसै भाल तिलक्क भलक्क रह्यो निमि छूटी अलक्क करन्न कड़ा॥
> यह देखि वनक्क ठनक्क ठना रामनिधूधि को मन्न वही मैं अड़ा।
> मन मोहनी तान को गान करे विजयराघौ सरज्जू की तीर खड़ा॥

ठाकुर प्रयागदास सिंह जी की मृत्यु संवत् १८४६ ई० में हुई। उन के लड़के ठाकुर सरजूप्रसादसिंह जी हुए। अपनी मृत्यु के पूर्व ठाकुर प्रयागदास सिंह जी अपना राज्य अपने लड़के सरजूप्रसादसिंह जी की नाबालगी के कारण, अंग्रेज गवर्नमेंट के सुपुर्द कर गए। ठाकुर सरजूप्रसादसिंह जी की अवस्था अपने पिता की मृत्यु के समय केवल ५ वर्ष की थी। ठाकुर प्रयागदास सिंह जी की इच्छानुसार विजयराघव गढ़ राज्य शासन ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में लिया और राज्य कोर्ट-आफ-वार्डस् के प्रबंध मे आ गया। एक मैनेजर अथवा प्रबन्धकर्त्ता नियुक्त हो गया। राजा नाबालिग थे ऐसे अपरिपक्व वयस्क रईसो के पास सदा मुफ्तखोरे, बदमाश स्वार्थ लोलुपो की भरमार रहती है, जो निज स्वार्थ के लिए अपने सरदार वा राजा के शुभाशुभ पर विचार न करते हुए, रईस को अनिष्ट मार्ग में बहकाने वा लगाने के लिए सदा निरत रहते हैं। अभाग्यवश यहां भी ऐसी ही स्थिति थी। परिणाम यह हुआ कि सरजूप्रसादसिंह जी अपनी अल्प अवस्था के कारण एक प्रबल अभीष्ट मंडल से आवेष्ठित हो गए। इन राज के विद्रोहिओ ने, अपने षड्यंत्र द्वारा ठाकुर सरजूप्रसादसिंह जी की इच्छा के विरुद्ध राज्य के मैनेजर को राजा का नाम लेकर मार डाला। इस घटना के समय ठा० सरजूप्रसादसिंह जी की अवस्था प्राय १६ वर्ष की थी। सन् १८५७ के विद्रोह का समय उपस्थित था और यह बदमाश दल, इस समय

---

* एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान कटनी से ९ मील नैर्ऋत्य की तरफ है। इस का प्राचीन नाम पुष्पावती नगरी था।

का अनुचित लाभ उठा कर, ऐसे ही और अत्याचार बालक राजा के नाम से करने लगा। अंत मे नाबालिग राजा सरजूप्रसाद सिह के विरुद्ध मामला चला और गवर्नमेंट ने कुल विजयराघव गढ़ का राज्य और समस्त जायदाद ज़ब्त कर ली और ठा० सरजूप्रसाद सिह को ट्रान्सपोर्टेशन फार-लाइफ अर्थात् आजन्म काले पानी का दण्ड दिया गया। स्वभावत इस परिणाम से सरजूप्रसाद सिह को असह्य वेदना हुई और दण्ड भुगतने के पहले ही उन्हो ने आत्मघात कर लिया। सारांश सन् १८६५ मे समूचा विजयराघव गढ़ का राज्य जिस की वार्षिक आय नये जीते हुए तथा प्राप्त किये हुए इलाको को छोड़ कर उस समय प्राय दो लक्ष की थी जब्त कर लिया गया और फल यह हुआ कि बालक सरजूप्रसाद सिह की भविष्य निर्दोष वा निरापराध संतान इस भयंकर दंड का परिणाम अभी तक भोग रही है यहा स्थान नही है कि इस विषय की पूर्ण-रूप से आलोचना वा मीमांसा की जा सके कि ठा० सरजूप्रसाद सिह के मामले मे ब्रिटिश गवर्नमेंट ने कहां तक न्याय का अवलम्बन किया। परन्तु इस सम्बन्ध मे इतना अवश्य उल्लेखनीय है कि (१) ठा० सरजूप्रसाद सिह नाबालिग थे, (२) राज्य ठा० प्रयागदास सिह की इच्छानुसार उत्तराधिकारी राजा के नाबालगी के कारण गवर्नमेंट को प्रबन्ध करने के लिए सौंपा गया था, (३) सरजूप्रसाद-सिह के पिता ठा० प्रयागदास सिह ने गवर्नमेंट को विशेष आपत्ति और संकट के समय अमूल्य सहायता पहुंचाई थी।

ठा० सरजूप्रसाद सिह जी के लड़के ठा० जगन्मोहन सिह जी हुए। इन का जन्म श्रावण सुदी १४ संवत् १९१४ मे इसी उपद्रव के समय विजयराघवगढ़ के किले मे हुआ। विजयराघवगढ़ राज्य के जब्ती के बाद ठा० जगन्मोहन सिह जी को गवर्नमेंट ने राजकुमार पाठशाला काशी (Wards' Institute Queen's College Benares) को विद्याध्ययन के निमित्त भेज दिया और १९ मार्च सन् १८६६ ई० को आप वहां भरती हो गए। गवर्नमेंट ने उन के लिए पहले २०) मासिक पोलिटिकल पेंशन मंजूर की किन्तु पीछे बनारस के कमिश्नर तथा एजंट गवर्नर जनरल की शिफारिश पर १००) मासिक जीवन पर्य्यन्त के लिए नियत हो गया। ठा० जगन्मोहन सिह ने उस कालेज मे १२ वर्ष तक विद्याध्ययन किया और अंग्रेजी संस्कृत तथा हिन्दी मे बहुत अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इस का पता आप के कालेज से प्राप्त प्रशंसा पत्रो से लगता है। कालेज छोड़ते समय इन्हें जो सर्टीफिकिट संस्कृत मे दिया गया उस में डाक्टर थीबो, बापूदेव शास्त्री, शिवकुमार शर्मा प्रभृति १३ पंडित वर्यो के हस्ताक्षर है। ठाकुर साहब की संस्कृत की योग्यता की भूरि २ प्रशंसा करते हुए उन्हों ने अंत में

लिखा है—"इत्येतत्सकलार्थबोधकमिदं प्रशंसापत्रमस्मै सत्कुलोत्पन्नाय सुशीलाय मेधाविने च निम्ननिवेशितनामधेया पण्डितवर्य्याश्च साहेबवर्य्याश्च वितरन्ति"। उक्त ठाकुर साहब केवल इन भाषाओ के विद्वान ही न थे, किन्तु आप संस्कृत तथा हिन्दी मे अच्छी कविता भी करते थे। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के समकालीन और परम मित्र भी थे।

आप की लेखनी से हिन्दी भाषा के अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ निकले है, उन के नाम ये हैं —

(१) श्यामा स्वप्न (एक गद्य पद्य मय विख्यात उपन्यास जो हिन्दू यूनीवर्सिटी काशी के बी ए कोर्स मे रह चुका है, (२) श्यामा सरोजिनी (पद्यमय), (३) श्यामा लता, (४) प्रेम सम्पत्ति लता (५) कालिदास कृत मेघदुत का भाषा छंदोबद्ध अनुवाद (६) कुमार संभव (भाषा छंदो में), (७) देवयानी, (८) ओंकार चंद्रिका अर्थात् ओङ्कार मान्धाता प्राचीन माहिष्मती का माहात्म्य (९) प्रलय अर्थात् महानदी के पूर का वर्णन (१०) सांख्य सूत्रो की भाषा टीका, (११) ज्ञान प्रदीपिका अर्थात् महर्षि कपिल कृत सांख्यकारिका का भाषा छन्दो मे अनुवाद, (१२) शिलन का बन्दी अर्थात् Byron's Prisoner of Chillons का भाषा छन्दोबद्ध वर्णन, (१३) हंसदूत का पद्य मय शिखरिणी भाषा छन्दो मे अनुवाद, (१४) ऋतुसंहार, (१५) प्रतिमाक्षर दीपिका (पिंगल ग्रंथ), (१६) सज्जनाष्टक, इत्यादि। इन मे से कुछ ग्रंथ छप चुके है और कुछ बिना छपे रह गए है।

ठाकुर साहब की रचना की विवेचना अनेक विद्वानो ने की है। "हिन्दी साहित्य का इतिहास" नामक स्वरचित पुस्तक मे पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने ठाकुर साहब के गद्य पद्य लेखो की समालोचना यो की है —'विजयराघवगढ के राजकुमार ठाकुर जगन्मोहनसिंह जी संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे जानकार तथा हिन्दी के एक प्रेमपथिक कवि और माधुर्य पूर्ण गद्य लेखक थे। प्राचीन संस्कृत साहित्य के अभ्यास और विंध्याटवी के रमणीय प्रदेश मे निवास के कारण विविध-भावमयी प्रकृति के रूप माधुर्य की जैसी सच्ची परख, जैसी सच्ची अनुभूति इन मे थी वैसी उस काल के किसी हिन्दी कवि या लेखक में नहीं पाई जाती। अब तक जिन लेखको (भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बद्रीनारायण चौधरी इत्यादि इत्यादि) की चर्चा हुई उन के हृदय मे इस भूखंड की रूप-माधुरी के प्रति कोई सच्चा प्रेम संस्कार न था। परंपरा पालन के लिए चाहे प्रकृति का वर्णन उन्हो ने किया हो, पर वहां उन का हृदय नही मिलता। अपने

हृदय में अंकित भारतीय ग्राम्य जीवन के माधुर्य का जो संस्कार ठाकुर साहब ने अपने "श्यामा स्वप्न" में व्यक्त किया है उस की सरसता निराली है। बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण आदि कविओ और लेखकों की अपनी दृष्टि और अपने हृदय की पहुँच मानव क्षेत्र तक की थी, प्रकृति के ऊपर क्षेत्र तक नहीं, पर ठाकुर जगन्मोहनसिंह ने नर-क्षेत्र के सौन्दर्य को प्रकृति के और क्षेत्रों के सौन्दर्य्य के मेल मे देखा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य की रुचि संस्कार के साथ भारत भूमि की प्यारी रेखा को मन मे बसाने वाले ये पहले हिन्दी लेखक थे। कविओ की पुराने प्यार की बोली मे देश की दृश्यावलि को सामने रखने का मूक समर्थन तो इन्हों ने ही किया है, साथ ही भाव की प्रबलता से प्रेरित कल्पना के विप्लव और विक्षेप को अंकित करने वाली एक प्रकार की प्रलाप शैली भी इन्हो ने निकाली जिस मे रूप विधान का वैलक्षण्य प्रधान था न कि शब्द विधान का। क्या अच्छा होता यदि इस शैली का हिन्दी मे स्वतन्त्र रूप से विकास होता ! तब तो बंग साहित्य में प्रचलित इस शैली का शब्द प्रधान रूप, जो हिन्दी पर कुछ काल से चढ़ाई कर रहा है और अब काव्य क्षेत्र का अतिक्रमण कर कभी २ विषय निरूपक निबंधों तक का अर्थग्रास करने दौड़ता है, शायद जगह न पाता।" इसी प्रकार श्री जगन्नाथप्रसाद शर्म्मा एम. ए ने काशी की नागरी प्रचारिणी पत्रिका के श्रावण संवत् १९८५ के अङ्क में अपने 'हिन्दी की गद्य शैली का विकास' शीर्षक पांडित्यपूर्ण लेख मे यो लिखा है :—'इस समय के गद्य साहित्य का सुन्दर उदाहरण ठाकुर जगन्मोहनसिंह जी की रचनाओ मे प्राप्त होता है। ' शैली के विचार से इन की लेखन प्रणाली स्पष्ट और अलंकृत होती थी, परन्तु उस मे 'प्रेमघन' की उलझन वाली वाक्य रचना नही रहती थी। उन की शैली मे तड़क भड़क न रहते हुए भी चमत्कार और अनोखापन है जो केवल उन्ही की वस्तु कही जा सकती है। उस मे एक व्यक्तित्व विशेष की झलक पाई जाती है। संस्कृत ज्ञान का उपयोग उन्हो ने अपने शब्द चयन मे किया है। शब्दो की सुन्दर सजावट से उन की भाषा मे कांति आ गई है। इस कांति के साथ मधुरता एवं संस्कृत का सामंजस्य है।" परिशिष्ट मे ठाकुर साहब की गद्य पद्य रचना के कुछ अंश उद्धृत किए गए हैं जिन से स्पष्ट हो जायगा कि उन की जो प्रशंसा की गई है वह किसी तरह अत्युक्ति नही है।

ठाकुर साहब को आदि मे सरकार ने तहसीलदारी का काम सौंपा और यदि वे अपनी जायदाद के मैनेजर के पुत्र के समान ठकुर सुहाती कह जाते, तो उन के जिलाधीश अर्थात् डिपुटी कमिश्नर हो जाने में कोई शंका न थी।

मैनेजर के पुत्र ने १५) माहवारी की नौकरी से आरंभ कर बिना अंग्रेजी जाने डिपुटी कमिश्नरी का पद प्राप्त कर लिया था, परन्तु उन का विशेष गुण ठाकुर साहब में नही था। ठाकुर साहब ठाकुर ही थे, लडने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। चापलूसी की हिम्मत कहां थी कि वह उन के निकट जाती। उस ज़माने के अफ़सर विशेष खुशामद प्रिय थे। ठाकुर साहब तो इन लोगो से बराबरी का बर्ताव करते थे। फलतः उन को सदैव उसी पद पर स्थिर रहना पड़ा जिस पर वे आदि ही मे नियुक्त हुए थे। आप के कई राजा महाराजा गुरु भाई थे। उन में से महाराजा कूच बिहार उन के परम मित्र थे। इस लिए उन्हो ने ठाकुर साहब पर अपना प्रभाव डाल कर अपने पास बुला लिया और अपनी स्टेट कौंसिल का मंत्री नियुक्त किया। यही कार्य करते हुए उन्हो ने ४ मार्च सन् १८९९ ई० को अपनी लीला संवरण कर दी। आप एक पुत्र रत्न श्री ठाकुर ब्रजमोहनसिह जी को छोड गए है जो बी ए पास कर अंत मे विलायत जा कर बैरिस्टरी की परीक्षा पास कर आए हैं। आप की विद्या के प्रति बड़ी ही अभि-रुचि है। वे सदैव ज्ञान उपार्जन मे लगे रहते है। उन्हो ने तंत्रो का बड़े परिश्रम और चाव से अध्ययन किया है और उस विषय के मार्मिक जानकार है। उन्हीं की सहायता से सनदो और अन्य प्रमाणिक पत्रो के आधार पर यह लेख और तैयार किया गया है। यदि कोई ठाकुर जगन्मोहनसिह का विशद जीवन चरित लिखना चाहे तो उस के लिए अभी बहुत सामग्री मौजूद है। भविष्य की दशा कौन कह सकता है?

———

परिशिष्ट १

छात्रावस्था में लिखित ऋतुसंहार के वंदना भाग से उद्धरण।

छंद

भुव मधि जम्बूद्वीप दीप सम अति छबि छायो।
तामे भारत खंड मनहु विधि आपु बनायो॥
ताहू में अति रम्य आरजावर्त मनोहर।
सकल कर्म की भूमि धर्म्मरत जहँ के नरवर॥
मनु वालमीक व्यासादि से पूजनीय जहँ के अमित।
भे मनुज अबौ जग के सबैं मानत जिनकी आन नित॥
जहँ हरि लिय अवतार राम कृष्णादि रूप धरि।
जहँ विक्रम बलि भोज धरम नृप गे कीरति करि॥
जहँ की विद्या पाय भये जग के नर सिच्छित।
जहँ के दाता सदा करत पूरन मन इच्छित॥
जहँ गंगा सी पावन नदी हिम सो ऊँचो शैलवर।
जहँ रत्न खानि अगनित लसत मानहु मनिमय सकलधर॥

दोहा

तामें खंड बुंदेल को सोहत सब मन हारि।
जहँ के छत्रिन की विदित सब जग में तरवारि॥
तामें नगर नवल विजय राघवगढ़ विख्यात।
महानदी के तट पर बसत धन जन सो अवदात॥

कुण्डलियां

बहत अपावन संग मिलि कठने तरल तरंग।
केहंजुआ के मोर से जहं गिरि अतिहि उतंग।
जहँ गिरि अतिहि उतंग लसत श्रृंगन मन भाए।
जिन पै बहु मृग चरहि मिष्ट तृन नीर लुभाए।
सघन वृक्ष तरु लता मिले गहबर धर उलहत।
जिन मे सूरज किरण पत्र रंध्रन नहिं निबहत॥
डोलत जहँ इत उत बहुत सारस हंस चकोर।
कूजत कोकिल तरु तरुन नाचत जहँ तहँ मोर।
नाचत जहँ तहँ मोर रोर तम चोर मचावत।
गावत जित जित चक्रवाक बिहरत पारावत।
भन जगमोहनसिंह सारिका सुक बहु बोलत।
बक जल कुक्कट कारंडव जहँ प्रमुदित डोलत॥

याही मग है के गए दंडक बन श्री राम।
तासो पावन देश यह विंध्याटवी ललाम।
विंध्याटवी ललाम फूल फल सो अति छाई।
कुरबन कनकि कुमुद कमल के बरन सुहाई।
भन जगमोहनसिंह न सोभा जात सराही।
अति ही बन रमनीय गए रघुबर मग याही॥
साल ताल हिंतालवर सोभित तरुन तमाल।
नव कदम्ब पुनि निम्ब बहु विलसत अम्ब बिसाल।
विलसत अम्ब बिसाल इंगुदी अरु आमलकी।
सरो सिंसिपा सीसम की सोभा सुभ झलकी।
भन जगमोहनसिंह दृगन प्रिय लगत प्रियाला।
वर जामुन कचनार सपीपर परम विसाला॥
राजत आपु जहां विजयराघव जू महाराज।
बाम भाग श्री जानकी साजे सोलह साज।
साजे सोलह साज लसत सुन्दरि बैदेही।
दच्छिन लछिमन भ्रात राम के परम सनेही।
भन जगमोहनसिंह मदन शोभा लखि लाजत।
ऐसे मम कुल इष्टदेव जहँ सदा विराजत॥

श्यामा स्वप्न से उद्धृत।

मै कहां तक इस सुन्दर देश का वर्णन करूं कही २ कोमल २ श्याम—कही भयंकर और रूखे सूखे वन—कही झरनो का झंकार—कही तीर्थ के आकार—मनोहर २ दिखाते हे। कही कोई अकेला जन्तु प्रचंड स्वर से बोलता है—कही कोई मौन ही हो कर डोलता है—कही विहंगमो का रोर कही निष्कूजित निकुंजो के छोर—कही नाचते हुए मोर—कही विचित्र तम चोर—कही स्वेच्छाहार बिहार करके सोते हुए अजगर- जिन का गंभीर घोष कंदरो में प्रतिध्वनित हो रहा है—कही भुजंगो की स्वास से अग्नि की ज्वाला प्रदीप्त होती है—कही बडे २ भारी भीम भयानक अजगर सूर्य के किरणो मे घाम लेते है, जिन के प्यासे मुखो पर झरनो के कनूके पडते है—शोभित है।

जहां की निर्झरिनी—जिन के तीर वानीर के भिरे मदकल कूजित विहंगमो से शोभित है—जिन के मूल से स्वच्छ और शीतल जलधारा बहती है—जिन के किनारे से श्याम जम्बू के निकुंज फलभार से नमित जनाते है—शब्दायमान होकर झरती हैं।

जहां के गिरि-विवर कुहिरे के तिमिर से छाये है। इन मे से मालती थुत्कार करती निकल कर पुष्पो की टट्टियो के बीच प्रतिदिन विचरतीं दिखाई देतीं है। जहां के शल्लकी वृक्षो की छाल में हाथी अपना बदन रगड २ कर खुजली मिटाते है और उन में से निकला क्षीर सब बन के शीतल समीर को सुरभित करता है।

ये वही गिरि है जहां मत्त मयूरो का यूथ वरूथ का वरूथ होकर अपनी कुहुक से प्रसन्न करता है। ये वही वन की स्थली है जहां मत्त २ हरिण हरिणियों समेत विचरते हैं।

मञ्जु वञ्जुल की लता और नील निचुल के निकुंज जिन के पत्ता ऐसे सघन जो सूर्य की किरनो को भी नही निकलने देते इस नदी के तट पर शोभित हैं।

कुंज में तम का पुंज पुंजित है, जिस से श्याम तमाल की शाखा निम्ब के पीत पत्रो से मिली है। रसाल का वृक्ष अपने विशाल हाथों को पिप्पल के चंचल प्रबालो से मिलाता है, कोई लता जम्बू से लिपट कर अपनी लहराती हुई डार को सब से ऊपर निकालती है। अशोक के ललित पुष्पमय स्तवक झूमते है, माधवी तुषार के सदृश पत्रो को दिखलाती है, और अनेक वृक्ष अपनी पुष्पनमित डारों से पुष्प की वृष्टि करते है। पवन सुगंध के भार से मंद २ चलती है। केवल निर्झर का रव सुनाई पडता है कही २ कोइल का बोल दूर से सुनाता है और कलरव का कलरव निकटस्थित वृक्ष से सुनाई पडता है।

शिलन के बन्दी अर्थात् Byron's Prisoner of Chillon के अनुवाद से उद्धृत

केश सुपेत एक निशि माहीं नाहिन जरा जगायो है।
तोहू दुख अरु चिन्ता कारन जर्जर वदन लखायो है।
जौन परे भ्रम भारी मोकहँ नाहिन कछुक प्रयास।
बैठे २ तरुन उचिट गे मानहुं लेत उसास॥
जो सब भोग भोगिवो ठहरो तिन्हे धर्म के लाने जू।
परी जौन पग बेडी मेरे झोली गीत कहाने जू।
सो तो सूरी चढयो इहीलों तज्यो न प्रन निज आप।
वाही के हित मै हूं पायो दारुन दुख संताप॥
रहे सात भ्राता हम तिगरे पै अब न रहे न एको है।
बच्यौ एक हत्यारो मै ही तजी न पै निज टेको है।
गये काल करि छै ज्वाली में एक सुहाग पाय।
जैसे आप गये सु तैसे निज वच प्रनन गंवाय॥

स्थान खम्भ गाथिक सांचे के रहे पुराने भारी है।
शिल्प भुँइरे जो गभीर अति ऊंची अंध्यारी कारी है।
वे भारी भूरे भयदायक धुंधरे जहँ न प्रकाश।
रवि की किरन रंध्र नहिं पावै झिलमिल करै उजास॥
कहुं दरार दीवार बीच मोटी टूटी फूटी सी।
भूली कतहु किरन इक पैठत कानन कुरँग बधूटी सी।
फरस फबीले ओदे फैलत रहि रहि प्रभा विकास।
दल दल पै मनु उलका दीपक जोत करत परकास॥
प्रति खंभन में लोह मुंदरी जामें इक इक साँकर है।
खनखनात भारी अतिकारी ढँता सहित मुख जाकर है।
देखु अजौ वाके वाँके ए पैन दांत लखाँय।
जौलौ प्रान रहे तन मेरे तौलौ कढ़ुन मिटाँय॥

हंसदूत के अनुवाद से उद्धृत

लसैं पीरा फेटा हरति हरिता लद्युति मनो।
हसैं धीरे २ परम सुख आनन्द सदनो।
जपा श्रेनी कैसे कमल चरनौ लालिम लसैं।
तमालो सी कालो पुरुष अस मेरे हिय बसैं॥
गयो गोपी ही को मदन जब तें छोड़ि सदनै।
सखा सँगै जी को किय तब सनाथा मधुवनै।
परी सौरी चिन्ता भरित जल बाधा असहिनी।
अगाधा में डूबी दुखित तहँ राधा विरहिनी॥
उठी भारी ज्वाला जलत विरहा दारुन हियो।
बुझावे के लाने चुरत मन जो भीतर भियो।
गई कालिन्दी पै परिचित कुटी संग सखियाँ।
लखैं जाको प्यारी विसुधि चित्त मूँदी सु अँखियाँ॥
सुषुप्ती में जैसे खबर सब भूली बदन की।
भई राधा तैसे सुधि बुधि सबै छूट तन की।
लुटी सो धूली पै सखिन तिहि घेरी चहुं तहां।
नवै कालिन्दू ह्वै नयन जल बाढ़ि मिली जहां॥
हलैना डोलैना नहिन कछु बोलै विरहिनी।
खिलौना सी बैठी विजन नलिनी पल्लव सनी।
करै शंका जी की कुशल शत ध्यावै निसिदिना।

भई मूर्च्छा भारी बदन ललिता के उर धरै।
कलिन्दी के नीरै सलिल कन जो संदहु हरै।
करें बैठी चिन्ता विजन दल झेलै कमलिनी।
सखी प्यारी जी की हरित नयनी दुःख दलिनी॥
तबै खोलै नैना चलत कछु कंठो सुरमई।
गई आसा स्वासा सबन अब आसा जिय भई।
कहां है री मेरो उरज अंचरा घूंघट कहां।
सुनै हर्षी सारी करत धुनि भारी मुद महां॥
गई ती कालिन्दी भरन गगरी नीर ललिता।
धरयो सीढ़ी जैसे पनघट शिला पैर बनिता।
उठायो ओली में कमल दल की सेज रचिकै।
सुवायो राधा को सबन मिलि कै जाय बचिकै॥

अन्य पुस्तकों से उद्धृत

सपनें सरिता तट कुंज सहेट,
मिली जगमोहन साँमरिया।
गहि बांह लता लपटाय हिये,
बश कीनी सबै विधि पामरिया।
झक झोर मरोर गही बहियां,
छल कै पकरी उन कामरिया।
जगमोहन जो झगरो बिच हाय,
गई खुलि नींद की भामरिया॥
घन कानन देखि डरौं लखि तो,
मृग प्यारी विलोचन याद करौं।
लखि श्रीफल श्रीफल की सुधि आवति,
चंद कपोल अमोल धरौं॥
सर बीच विलोलन बीची लखै,
जगमोहन भौंहन सोच दरौं।
कच नागिन नाग बली तन हेरि,
भली विधि भूलन मोह परौं॥
हे कचनार कहौ कच नागिनी,
कोकिल कोकिन बैनी लखी कहुँ।
दाड़िम दाड़िम दंत दुखी,
मृगलोचनी हे मृग तोको दिखी कहुं॥

श्यामा सरोज मुखी तन साँवरी,
श्यामलता सुभली बिलखी कहुँ ।
दै जगमोहन दौर बताय,
चित्चोरी चित्चोर में ऐसी लखी कहुँ ॥

जौ वह देश बसंत बहार,
निहारि कै कोइल कूकि कहौ किन ।
फूले सरोज सरोवर ज्यों,
मधुमाते मलिंद सुगूंजि रहौ छिन ॥

हे कचनार अनार अशोक,
विशोक करौ दुख देव दहौ जिन ।
सौरभ पौन करो तहँ गौन,
बिनै जगमोहन केन अहो दिन ॥

सूनी भई अब खोर सबै,
तरु बैठि के मोर न सोर मचावई ।
सूने अटा अब चूनरी की छटा,
छावै न छज्जन वैसी कहा भई ॥
सूने निकुंज भए सिगरे अब,
भृंग के पुंज न गुंजन आवई ।
सूनी रसाल की डारन जो,
जगमोहन कोकिल कंठ न गावई ॥

लखि तेरी कली को अली निन जे,
चित चाह औ आस लगाय रहे ।
चहुं चाकर से मड़रात फिरै,
फल बाहर तू नहिं वन कहे ।
अब कीट जे गोचर तेरे न हे,
जगमोहन ते फल सीत रहे ।
धिक तोहि रसाल कहाँ धौं कहौ,
तुहि शत्रु औ मित्र को ज्ञान न हे ॥

यों उर आवत है जगमोहन,
धामहु छोडि के धूनी रमाइए ।
डारि के सेल्ही गरे अँसुवान की,
आसन द्वारे तिहारे जमाइए ।

तापि वियोग हुतासन श्यामा,
बंबंबर गूदरी नेह बिछाइए।
चाह निबाह के कंदर पैठि,
सुतार मिलाप को बैठि मिलाइए॥
प्रेम के गेरु सनेह सो घोरि,
सरीर को जामा अबै रँगवाइए।
बांधि निबाह जटा जुह मौलि,
तिहारेई पांव की राख चढ़ाइए।
लोह चमीटा मनोरथ बैठि,
हियो तुब चुम्बक मे मिलवाइए।
जोग बड़ो करिये जगमोहन,
तो कुच तुंग पहारन जाइए॥

प्रफुलित कंजन औ कोकनद गंजन कै,
कारे द्रग खंजन निरंजन लुभाए लेत।
देखत ही प्यारी अनप्यारी छबि तारन की,
फूलन के हारन जुत बारन लुभाए लेत।
देखु जगमोहन जो चंद्र अति मंद लगै
प्यारो सुखकंद हमैं दूनी दुति पाए लेत।
भाय लेत भृकुटी तरंग रंग भौरी यह,
नाभि सर वाके सब बदन बनाए लेत॥

उत पहार दावा लगी मनो दिवाली जोत।
इत तन बिरह पहार के दूनी अगिनहुं होत॥

कौन बिथा जानै अरी बिछुरन कैसो होय।
बिन बीते अपने उपर दुख सुख जाने कोय॥

चंपक चंपक बदनि जो देखी देहु बताय।
कैंपलास फूलन अगिन जरी बिरह बस आय॥

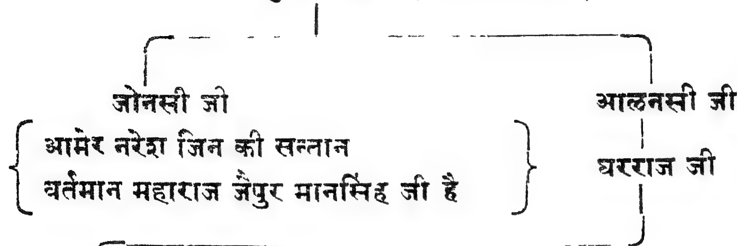
ये कपोत कल बादिनी कबहुं मिली जो तोहि।
लै पाती उड़ि जाहु ढिग तासु कहौ पुनि मोहि॥

किंशुक फूले बन लसै मनो धूम बिन आग।
देखत बनत न आजरी यह दइमारी फाग॥

इत्यादि।

परिशिष्ट २

विजयराघवगढ़ राज घराने का वंश वृक्ष



वाहड़ जी
|
जोधा जी
|
कान्दल जी
|
बलो जी
|
जगमाल जी
|
खंडेराय जी
|
थानसिंह जी
|
भीमसिंह जी
|
कृपाराम जी
|
नन्दशाह जी
|
बेनीसिंह जी
|
दुर्जनसिंह जी
|
प्रयागदाससिंह जी
|
सरयूप्रसादसिंह जी
|
जगन्मोहनसिंह जी
|
ब्रजमोहनसिंह जी (वर्तमान है)
|
चन्द्रमोहनसिंह जी (वर्तमान है)

ਗੁਰਬਾਨੀ ਵਿਚਾਰ ॥

ਰਾਮਕਲੀ ਕੀ ਵਾਰ ਮਃ ੧

ਸਹੰਸ੍ਰ ਦਾਨੁ ਦੇ ਇੰਦ੍ਰ ਰੋਆਇਆ ॥ ਪਰਸਰਾਮ ਰੋਵੈ ਘਰ ਆਇਆ ॥ ਅਜੈ ਸੁ ਰੋਵੈ ਭੀਖਿਆ ਖਾਇ ॥ ਐਸੀ ਦਰਗਹ ਮਿਲੈ ਸਜਾਇ ॥ ਰੋਵੈ ਰਾਮੁ ਨਿਕਾਲਾ ਭਇਆ ॥ ਸੀਤਾ ਲਛਮਣ ਵਿਛੁੜਿ ਗਇਆ ॥ ਰੋਵੈ ਦਹਸਿਰ ਲੰਕ ਗਵਾਇ ॥ ਜਿਨਿ ਸੀਤਾ ਆਂਦ੍ਰ ਡਉਰੂ ਵਾਇ ॥ ਰੋਵਹਿ ਪਾਂਡਵ ਭਏ ਮਜੂਰ ॥ ਜਿਨ ਕੈ ਸੁਆਮੀ ਰਹਿਤ ਹਜੂਰਿ ॥ ਰੋਵੈ ਜਨਮਜਾ ਖੁਇ ਗਇਆ ॥ ਏਕੀ ਕਾਰਣਿ ਪਾਪੀ ਭਇਆ ॥ ਰੋਵਹਿ ਸੇਖ ਮਸਾਇਕ ਪੀਰ ॥ ਅੰਤਿ ਕਾਲਿ ਮਤਿ ਲਾਗੈ ਭੀੜ ॥ ਰੋਵਹਿ ਰਾਜੇ ਕੰਨਿ ਪੜਾਇ ॥ ਘਰ ਘਰ ਮਗਹਿ ਭੀਖਿਆ ਜਾਇ ॥ ਰੋਵਹਿ ਕਿਰਪਨ ਸੰਚਹਿ ਧਨ ਜਾਇ ॥ ਪੰਡਿਤ ਰੋਵਹਿ ਗਿਆਨੁ ਗਵਾਇ ॥ ਬਾਲੀ ਰੋਵੈ ਨਾਹਿ ਭਤਾਰੁ ॥ ਨਾਨਕ ਦੁਖੀਆ ਸਭੁ ਸੰਸਾਰ ॥ ਮੰਨੇ ਨਾਉ ਸੋਈ ਜਿਣਿ ਜਾਇ ॥ ਅਉਰੀ ਕਰਮੁ ਨ ਲੇਖੈ ਪਾਇ ॥

ਇਹ ਉਪਰ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਤਵਾਰੀਖ ਗੁਰੂ ਖਾਲਸਾ ਹਿਸਾ ੧ ਨੰਬਰ ੧ ਕ੍ਰਿਤ ਭਾਈ ਗਿਆਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਗਿਆਨੀ ਦੇ ਸਫਾ ਨੰਬਰ ੪੧੯ ਤੇ ਲਿਖਿਆ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਅਰ ਇਸਦੇ ਨਾਲ ਇਹ ਸਾਖੀ ਚਲਦੀ ਹੈ ।

ਫਗਣ ਸੰਮਤ ੧੫੭੯ ਬਿ: ਨੂੰ ਬਾਬਾ ਜੀ ਭਾਈ ਬਾਲੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈਕੇ ਕਰਤਾਰ ਪੁਰੋਂ ਚਲਕੇ ਨੁਸ਼ੈਹਰੇ ਪਿੰਡ ਜਾ ਠਹਿਰੇ । ਓਥੇ ਇਕ ਸ਼ਾਹੂਕਾਰ ਨੂੰ ਗੱਦੀ ਤਕੀਆ ਲਾਈ ਬੈਠੇ ਦੇਖਕੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੇ ਬਾਬੇ ਪ੍ਰਤੀ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਜੀ ਤੁਸੀਂ ਤਾਂ ਕਹਿੰਦੇ ਸੇ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਕੋਈ ਸੁਖੀ ਨਹੀਂ ਅਰ ਸ਼ਾਹੂਕਾਰ ਤਾਂ ਸਭ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੁਖੀ ਦਿਸਦਾ ਹੈ, ਤਾਂ ਬਾਬੇ ਜੀ ਨੇ

ਕਿਹਾ ਪੁਛ ਵੇਖ। ਜਾਂ ਮਰਦਾਨੇ ਨੇ ਉਸਨੂੰ ਪੁਛਿਆ ਤਾਂ ਓਹ ਬੋਲਿਆ ਮੇਰੇ ਜਿਹਾ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਕੋਈ ਦੁਖੀ ਨਹੀਂ, ਮਰਦਾਨੇ ਦੇ ਪੁਛੇ ਤੋਂ ਓਸਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੇਰੀ ਇਸਤ੍ਰੀ ਵੱਡੀ ਸੁੰਦਰ ਮੁਟਿਆਰ ਹੈ, ਮੈਂ ਨਪੁੰਸਕ ਹਾਂ, ਓਹ ਪਰ ਪੁਰਖ ਹੰਢਾਂਵਦੀ ਹੈ, ਮੈਂ ਦੇਖ ਦੇਖ ਸੜਦਾ ਹਾਂ ਤੇ ਝੁਰਦਾ ਹਾਂ ਉਪਾਇ ਬਹੁਤ ਕੀਤੇ ਕੋਈ ਰਾਸਨਹੀਂ ਆਇਆ। ਮਰਦਾਨਾ ਸੁਣਕੇ ਹੈਰਾਨ ਹੋਗਿਆ ਤੇ ਬਾਬੇ ਜੀ ਨੇ ਏਹ (ਉਪਰ ਲਿਖਿਆ) ਸ਼ਬਦ ਉਚਾਰਿਆ। ਅਸੀਂ ਮੈਕਾਲਿਫ ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਰਚਿਤ ਸਿਖ ਇਤਿਹਾਸ ਹਿਸਾ ਪੈਹਲਾ ਦੇ ਸਫਾ ਨੰਬਰ ੧੬੭ ਤੋਂ ੧੬੯ ਤੀਕ ਦਾਉਲਥਾ ਹੇਠਾਂ ਦਿੰਦੇ ਹਾਂ, ਜੋ ਪਾਠਕਾਂ ਨੂੰ ਇਸਗਲ ਦਾ ਵੀਪਤਾ ਲਗ ਜਾਵੇ ਕਿ ਸਿਖ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਖੋਜ ਦੀ ਅਜੇ ਕਿਤਨੀ ਭਾਰੀ ਲੋੜ ਭਾਸਦੀ ਹੈ। ਮੈਕਾਲਿਫ ਸਾਹਿਬ ਲਿਖਦੇ ਹਨ:— ਇਸ ਪੁਰ ਪੰਡਤ ਬ੍ਰਹਮ ਦਾਸ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਢਹਿ ਪਿਆ, ਗਲ ਵਿਚੋਂ ਠਾਕਰ ਲਾਹਕੇ ਪਰੇ ਸੁਟ ਦਿਤੇ ਅਤੇ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਉਪਾਸ਼ਕ ਬਣਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰਨ ਲਗਾ। ਪਰ ਉਸਦੇ ਮਨ ਵਿਚ ਖੋਟੀ ਵਾਸ਼ਨਾ ਨਾ ਗਈ। ਜੋ ਸੇਵਾ ਕਰੇ ਥੋੜੇ ਚਿਰ ਲਈ ਬੇਪਰਵਾਹੀ ਨਲ ਕਰੇ, ਕਿਉਂਕਿ ਉਹ ਆਪਣੇ ਮਨ ਵਿਚ ਸਚੇ ਕਿ ਮੈਂ ਅਗੇ ਭੀ ਇਹੋ ਜੇਹੀ ਸੇਵਾ ਕਰਦਾ ਸੀ, ਪਰ ਹਉਮੈਂ ਦੇ ਕਾਰਣ ਜੋ ਕੁਝ ਉਹ ਕਰੇ ਉਹ ਵਿਅਰਥ ਚਲਾ ਜਾਏ।

ਇਕ ਦਿਨ ਮੁਲਾਕਾਤ ਸਮੇਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉਸਨੂੰ ਕਿਹਾ ਤੂੰ ਕੋਈ ਗੁਰੂ ਧਾਰਨ ਕਰ ਲੈ। ਪੰਡਤ ਪੁਛਣ ਲਗਾ:—ਕਿਹੋ ਜਿਹਾ ਗੁਰੂ ਧਾਰਨ ਕਰਾਂ? "ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉਸਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਓਹ ਉਜਾੜ ਵਿਚ ਇੱਕ ਕੋਠਾ ਹੈ। ਜਾਹ। ਉਥੇ ਚਾਰ ਫਕੀਰ ਬੈਠੇ ਹੋਣਗੇ ਉਹ ਤੈਨੂੰ ਇਸ ਗਲ ਦਾ ਉਤਰ ਦਸਣਗੇ। ਪੰਡਤ ਉਨ੍ਹਾਂ ਫਕੀਰਾਂ ਪਾਸ ਗਿਆ। ਕੁਝ ਚਿਰ ਮਗਰੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਕਿਹਾ—'ਜਾਹ ਉਸ ਮੰਦਰ ਵਿਚ ਤੈਨੂੰ ਗੁਰੂ ਲੱਭੇਗਾ।' ਪੰਡਤ ਉਸ ਮੰਦਰ ਵਲ ਗਿਆ ਉੱਥੇ ਸੂਹੇ ਬਸਤਰ ਪਾਏ ਹੋਏ ਇਕ ਤੀਵੀਂ ਮੰਦਰ ਦੀ ਰਾਖੀ ਕਰਦੀ ਸੀ। ਉਸ ਤੀਵੀਂ ਨੇ ਆਦਰ ਭਾਉ ਕਰਨ ਦੀ ਥਾਂ ਪੰਡਤ ਨੂੰ ਬੁਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਛਿਤਰਾਂ ਨਾਲ ਕੁਟਿਆ। ਡਤ ਰੋਂਦਾ ਕੁਰਲਾਂਦਾ ਉਨਾਂ ਚੋਹਾਂ ਫਕੀਰਾਂ ਪਾਸ ਮੁੜ ਆਇਆ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਉਸਨੂੰ ਇਸ ਭੈੜੇ ਪਾਸੇ ਵਲ ਭੇਜਿਆ ਸੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਪੰਡਤ ਪਾਸੋਂ ਪੁਛਿਆ:—ਇਸਦੇ ਉਤਰ ਵਿਚ ਪੰਡਤ ਨੇ ਆਪਣੀ ਦੁਖ ਭਰੀ ਵਿਥਿਆ ਸੁਣਾਈ। ਫਿਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਉਸਨੂੰ ਦਸਿਆ ਕਿ ਉਹ ਤੀਵੀਂ ਮਾਇਆ ਅਥਵਾ ਦੁਨੀਆਂ ਦਾ ਪਿਆਰ ਸੀ ਅਤੇ ਕਿਹਾ—ਇਹੋ ਤੇਰਾ ਗੁਰੂ ਹੈ, ਜਿਸਦੀ

ਕਿ ਤੂੰ ਬਹੁਤ ਚਾਹਨਾਂ ਕਰਦਾ ਸੀ। ਇਹ ਸੁਣਕੇ ਪੰਡਤ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸ ਮੁੜਿਆ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਢਹਿ ਪਿਆ। ਉਸੇ ਵੇਲੇ ਉਸਨੇ ਦੋ ਊਠਾਂ ਦੇ ਭਾਰ ਦੀਆਂ ਪੋਥੀਆਂ ਸੁਟ ਪਾਈਆਂ ਤੇ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਨਾਮ ਜਪਣ ਲਗਾ। ਫਿਰ ਅਜਿਹਾ ਨਿਮਰ ਸੇਵਕ ਬਣਿਆਂ ਜਿਹੋ ਜਿਹਾ ਬਣਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਸੀ ਗਲ ਕੀ ਉਹ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਨਾਮ ਜਪਣ ਲਗਾ ਅਤੇ ਸੰਗਤ ਦੀ ਚਰਣ ਰੇਣਿ ਬਣ ਗਿਆ। ਪੰਡਤ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸੋਂ ਪੁਛਿਅ:–"ਇਸ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਕੌਣ ਸੁਖੀ ਹੈ ?" ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਸਲੋਕਾਂ ਦਵਾਰਾ ਉਤਰ ਦਿਤਾ ਇਹ ਸਲੋਕ ਹਸੂ ਅਤੇ ਸੀਂਹੇ ਨੇ ਲਿਖ ਲੀਤੇ।

ਅਗੇ "ਸਹੰਸ੍ਰ ਦਾਨ–ਲੇਖੈ ਪਾਇ" ਵਾਲਾ ਉਪਰ ਲਿਖਿਆ ਸਾਰਾ ਸ਼ਬਦ ਆਉਂਦਾ ਹੈ।

ਹੇਠਾਂ ਹੁਣ ਅਸੀਂ ਸ਼ਬਦ ਦੇ ਅਰਥ ਸਾਖੀਆਂ ਸਣੇ ਦੇਂਦੇ ਹਾਂ।

ਸਹੰਸ੍ਰ ਦਾਨੁ ਦੇ–––––ਰੋਆਇਆ।

ਇੰਦ੍ਰ–ਇਹ ਇਕ ਵੱਡਾ ਦੇਵਤਾ ਹੈ ਬ੍ਰਹਮਾ ਵਿਸ਼ਨੂੰ, ਮਹੇਸ਼ ਜਾਂ ਸ਼ਿਵ ਜੀ ਨੂੰ ਛਡਕੇ ਇਹ ਹੀ ਸਾਰਿਆਂ ਦੇਵਤਿਆਂ ਦਾ ਮਾਲਕ ਅਥਵਾ ਵੱਡਾ ਮੰਨਿਆਂ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸਦੀ ਕਥਾ ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਹੈ ਕਿ ਇਕ ਵਾਰੀ ਇੰਦਰ ਨੇ ਪਤਾ ਕੀਤਾ ਜੋ ਉਸਦੀ ਇਸਤ੍ਰੀ 'ਸੱਚੀ' ਤੋਂ ਵਧ ਸੋਹਣੀ ਹੋਰ ਇਸਤ੍ਰੀ ਵੀ ਮਾਤ ਲੋਕ ਉਤੇ ਹੈ ਤਾਂ ਚੰਦਰਮਾ ਜੇਹੜਾ ਸਭ ਨੂੰ ਪਿਆ ਤਕਦਾ ਹੈ ਕਿਹਾ ਕਿ ਗੋਤਮ ਦੀ ਇਸਤ੍ਰੀ 'ਅਹਿਲਿਆ' ਸਾਰੀਆਂ ਮੁਟਿਆਰਾਂ ਤੋਂ ਸੁੰਦਰ ਹੈ। ਇਸ ਪੁਰ ਇੰਦਰ ਦੇਵਤੇ ਨੇ ਅਹਿਲਿਆ ਨਾਲ ਪਾਪ ਕਰਮ ਕਰਨ ਦੀ ਠਾਣੀ ਅਰ ਆਪਣੀ ਸਹੈਤਾ ਤੇ ਚੰਦ੍ਰਮਾਂ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲਿਆ ਇੰਦ੍ਰ ਨੇ ਚੰਦ੍ਰਮਾਂ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤੂੰ ਅਜ ਰਾਤ ਆਪਨੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲੀ ਕਰ ਲਈਂ ਤੇ ਨਾਲੇ ਸਵੇਰ ਸ਼ਾਰ ਕੁਕੜ ਦਾ ਰੂਪ ਧਾਰਕੇ ਗੋਤਮ ਦੇ ਮਕਾਨ ਪਾਸ ਜਾ ਬਾਂਗ ਦੇਵੀਂ। ਗੋਤਮ ਚੰਦ੍ਰਮਾਂ ਦਾ ਢਲਦਾ ਪਰਛਾਵਾਂ ਦੇਖ ਅਰ ਕੁਕੜ ਦੀ ਬਾਂਗ ਸੁਣਕੇ ਗੰਗਾ ਵਿਖੇ ਅਸ਼ਨਾਨ ਨੂੰ ਜਾਵੇਗਾ ਅਰ ਮਗਰੋਂ ਮੈਂ ਅਹਿਲਿਆ ਨਾਲ ਮੰਦ ਕਰਮੀ ਕਰਨ ਵਿਖੇ ਕਾਮਯਾਬ ਹੋ ਜਾਵਾਂਗਾ। ਰਾਤ ਪਈ ਤਾਂ ਗੋਤਮ ਨੂੰ ਠੀਕ ਇਕਰ ਹੀ ਧੋਖਾ ਦਿਤਾ ਗਿਆ ਅਰ ਓਹ ਸਵੇਰੇ ਹੀ ਗੰਗਾ ਵਿਖੇ ਅਸ਼ਨਾਨ ਨੂੰ ਤੁਰ ਪਿਆ। ਗੰਗਾ ਮਾਤਾ ਨੇ ਉਸਨੂੰ ਅੱਧੀ ਰਾਤ ਦੇ ਸਮੇਂ ਆਉਂਦਾ ਦੇਖ ਕਿਹਾ

ਕਿ ਤੂੰ ਵਾਪਸ ਜਾਹ, ਤੇਰੇ ਘਰ ਚੋਰ ਪੈ ਰਿਹਾ ਹੈ । ਜਦ ਗੋਤਮ ਗੰਗਾ ਤੋਂ ਅਸ਼ਨਾਨ ਕੀਤੇ ਬਿਨਾਂ ਹੀ ਮੁੜ ਆਇਆ ਤਾਂ ਡਿੱਠਾ ਕਿ ਇੰਦ੍ਰ ਨੇ ਅਪਣੀ ਕਰਤੂਤ ਭੇਸ ਵਟਾਕੇ ਹੋਰ ਦੀ ਹੋਰ ਹੀ ਬਨਾਈ ਹੈ ਅਥਵਾ ਇੰਦ੍ਰ ਨੇ ਗੋਤਮ ਵਿਚਾਰੇ ਨੂੰ ਧੋਖੇ ਵਿਚ ਲਿਆਕੇ ਉਸਦੀ ਇਸਤ੍ਰੀ ਨਾਲ ਭੋਗ ਕੀਤਾ। ਗੋਤਮ ਰਿਸ਼ੀ ਨੇ ਗੁਸੇ ਵਿਚ ਆਕੇ ਇੰਦ੍ਰ ਨੂੰ ਸਰਾਪ ਦਿਤਾ ਕਿ ਤੂੰ ਇਕ ਭਗ ਦੇ ਭੋਗਣ ਲਈ ਇੱਥੇ ਆਯਾ ਹੈਂ ਤੂੰ 'ਸਹੰਸ੍ਰ (ਭਗ) ਗਾਮੀ" ਹੋਵੇਂਗਾ, ਅਥਵਾ ਤੇਰੇ ਆਪਣੇ ਜਿਸਮ ਵਿਚ ਹਜ਼ਾਰਾਂ ਭਗ ਹੋਵਣਗੇ ਸੋ ਅਜਿਹਾ ਹੀ ਹੋਯਾ ਇੰਦ੍ਰ ਇਸ ਸਰਾਪ ਤੋਂ ਦੁਖੀ ਹੋਕੇ ਪੰਪਾਸਰੇ ਤਲਾ ਵਿਖੇ ਚਲਾ ਗਿਆ ਤੇ ਇੰਦ੍ਰ ਸਿੰਘਾਸਨ ਸਖਨਾਂ ਕਰ ਗਿਆ ਜਿਸ ਤੇ ਦੇਵਤਿਆਂ ਨੇ ਵਿਸ਼ਨੂੰ ਪਾਸ ਪੁਕਾਰ ਕੀਤੀ ਤਾਂ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਵਿਸ਼ਨੂੰ ਨੇ ਤਰਸ ਖਾਕੇ ਇੰਦ੍ਰ ਦੇ ਹਜਾਰ ਭਗ ਦੀ ਥਾਂ ਹਜ਼ਾਰ ਨੇਤਰ ਕਰ ਦਿਤੇ । ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਵਿਚ ਇਕਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ–"ਗੋਤਮ ਤਪਾ ਅਹਿਲਿਆ ਇਸਤ੍ਰੀ ਤਿਸ ਦੇਖ ਇੰਦ੍ਰ ਲੋਭਾਇਆ ॥ ਸਹਸ੍ਰ ਸਰੀਰ ਚਿਹਨ ਭਗ ਹੂਏ ਤ ਮਨਿ ਪਛੋਤਾਇਆ।" (ਪ੍ਰਭਾਤੀ ਮਹਲਾ ੧)

ਸੋ ਉਪਰਲੀ ਤੁਕ ਦੇ ਅਰਥ ਹੋਏ ਕਿ ਇੰਦ੍ਰ ਹਜ਼ਾਰ ਭਗ ਹੋ ਜਾਵਨ ਦਾ ਸਰਾਪ ਰਿਸ਼ੀ ਗੋਤਮ ਪਾਸੋਂ ਲੈਕੇ ਬਹੁਤ ਦੁਖੀ ਹੋਇਆ।

ਪਰਸਰਾਮ ਰੋਵੈ——–ਆਇਆ।

ਪਰਸਰਾਮ ਜਮਦਗਨ ਦਾ ਪੁਤਰ ਸੀ ਅਰ ਜਮਦਗਨ ਦੇ ਸਾਂਢੂ ਦਾ ਨਾਮ ਸਹੰਸ੍ਰ ਬਹੁ ਅਥਵਾ ਹਜਾਰ ਭੁਜਾਂ ਵਾਲਾ ਰਾਜਾ ਕਰਕੇ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਜਮਦਗਨ ਇਕ ਰਿਸ਼ੀ ਵੀ ਸੀ ਸੋ ਜਿਸਦੇ ਕਾਰਨ ਇਸਨੇ 'ਕਾਮਧੇਨ' ਗਊ ਆਪਨੇ ਵਸ ਕੀਤੀ ਹੋਈ ਸੀ। ਇਕ ਵਾਰੀ ਜਮਦਗਨ ਦੀ ਇਸਤ੍ਰੀ 'ਰੇਣਕਾ' ਨੇ ਸਹੰਸ੍ਰ ਬਾਹੂ ਅਰ ਉਸਦੀ ਇਸਤ੍ਰੀ ਦੀ ਆਪਣੇ ਘਰ ਰੋਟੀ ਵਰਜੀ। ਜਿਸ ਵੇਲੇ ਸਹੰਸ੍ਰ ਬਾਹੂ ਨੇ ਰੋਟੀ ਚੰਗੇ ੨ ਖਾਣਿਆਂ ਨਾਲ ਡਿਠੀ ਤਾਂ ਪੁਛਿਆ ਕਿ ਹੇ ਜਮਦਗਨ ਤੂੰ ਥੋੜੇ ਚਿਰ ਵਿਚ ਹੀ ਐਡਾ ਅਮੀਰ ਕੀਕਰ ਹੋਗਿਆ ਏ ਤਾਂ ਜਿਸਦਾ ਕਾਰਨ ਜਮਦਗਨ ਨੇ 'ਕਾਮਧੇਨ' ਗਊ ਦੀ ਹੋਂਦ ਦਸੀ। ਸਹੰਸ੍ਰ ਬਾਹੂ ਨੇ ਜਮਦਗਨ ਪਾਸੋਂ ਕਾਮਧੇਨ ਗਊ ਮੰਗੀ, ਜਿਸ ਪੁਰ ਜਮਦਗਨ ਨੇ ਨਾਂਹ ਕਰ ਦਿਤੀ। ਸਹੰਸ੍ਰ ਬਾਹੂ ਨੇ ਇਸ ਪੁਰ ਆਪਣਾਂ ਅਪਮਾਨ ਜਾਣਿਆਂ

ਅਰ ਗਊ ਨੂੰ ਜ਼ੋਰਾਵਰੀ ਕਰਕੇ ਖੋਹ ਕੇ ਲੈ ਗਿਆ। ਆਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਇਸ ਪੁਰ ਪਰਸਰਾਮ ਨੇ ਸਹੰਸ੍ਰ ਬਾਹੂ ਦੇ ੯੦੦ ਪੁਤਰ ਤੇ ਹੋਰ ਸੈਨਾਂ ਕਤਲ ਕੀਤੀ। ਸਮਾਂ ਪਾਕੇ ਸਹੰਸਰ ਬਾਹੂ ਦੇ ਬਾਕੀ ਪੁਤਰਾਂ ਨੇ ਰਿਸ਼ੀ ਜਮਦਗਨ ਨੂੰ ਮਾਰ ਦਿੱਤਾ। ਇਸ ਪੁਰ ਮਾਂ ਦਾ ਵਰਲਾਪ ਅਰ ਕੀਰਨੇਂ ਸੁਨ ਪਰਸਮਾਮ ਰੋਂਦਾ ਕੁਰਲਾਂਦਾ ਘਰ ਮੁੜਿਆ। ਹੁਣ ਪਰਸਰਾਮ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪਿਤਾ ਦੀ ਮੌਤ ਦਾ ਬਦਲਾ ਲੈਣ ਦਾ ਪ੍ਰਣ ਕੀਤਾ ਅਰ ਵਿਸ਼ਨੂੰ ਭਗਵਾਨ ਦੀ ਭਗਤੀ ਕਰਕੇ ਉਸ ਪਾਸੋਂ ਇਹ ਵਰ ਲਿਆ ਕਿ ਮੈਂ ਸਮੂਹ ਛਤਰੀਆਂ ਨੂੰ ਇੱਕੀ ਬਾਰ ਨਾਸ ਕਰਾਂ। ਪਰਸਰਾਮ ਨੂੰ ਹਿੰਦੂ ਅਵਤਾਰ ਮੰਨਦੇ ਹਨ। ਸ੍ਰੀ ਰਾਮ ਚੰਦਰ ਜੀ ਦੇ ਨਾਲ ਭੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਮੇਲ ਹੋਇਆ ਦਸਦੇ ਹਨ। ਰਾਮ ਜੀ ਨੇ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਪਰਸਰਾਮ ਦੀ ਧਨਖ ਚੜ੍ਹਾ ਦਿਤੀ ਤਾਂ ਉਸਨੇ ਝਟ ਰਾਮ ਜੀ ਦਾ ਲੋਹਾ ਮੰਨ ਲਿਆ।

ਪਰਸਰਾਮ ਨੇ ਜਦ ਪਿਤਾ ਦੀ ਮੌਤ ਪੁਰ ਅਪਣੀ ਮਾਤਾ ਦੇ ਕੀਰਨੇ ਅਤੇ ਦੁਖੀ ਹਿਰਦੇ ਦੇ ਵਿਰਲਾਪ ਸੁਣੇ ਤਾਂ ਝਟ ਰੋਂਦਾ ਹੋਇਆ ਵਾਪਸ ਘਰ ਮੁੜਿਆ।

ਅਜੈ ਸੁ——ਖਾਇ।

ਅਜੈ—ਇਹ ਰਾਜਾ ਦਸਰਥ ਦਾ ਪਿਤਾ ਸੀ ਤੇ ਵੱਡਾ ਹੰਕਾਰੀ ਸੀ। ਇਹ ਆਪਣੀ ਇਸਤ੍ਰੀ ਜਿਸਦਾ ਨਾਮ 'ਇੰਦਮਤੀ' ਸੀ ਨਾਲ ਬਹੁਤ ਪ੍ਰੇਮ ਕਰਦਾ ਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਇਕ ਵਾਰੀ ਇਸਨੇ ਇਕ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਨੂੰ ਉਸਦੇ ਦਾਨ ਮੰਗਨ ਤੇ ਘੋੜਿਆਂ ਦੀ ਲਿੱਦ ਉਸਦੇ ਪੱਲੇ ਪਾ ਦਿਤੀ। ਉਸ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਨੇ ਲੈਕੇ ਰਖ ਛੱਡੀ ਅਰ ਇਕ ਦਿਨ ਜਦ ਰਾਜਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਖੇਡਦਾ ਇਕ ਡਾਢੇ ਘੰਨੇ ਜੰਗਲ ਵਿਚ ਜਾ ਨਿਕਲਿਆ ਤਾਂ ਉਸ ਨੂੰ ਖਿਆਲ ਆਇਆ ਕਿ ਰਾਣੀ ਦਾ ਪ੍ਰੇਮ ਪਰਖਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਰਾਜੇ ਨੇ ਇਕ ਹਿਰਨ ਨੂੰ ਮਾਰਕੇ ਉਸਦੇ ਲਹੂ ਨਾਲ ਆਪਨੇ ਕਪੜੇ ਲਬੇੜਕੇ ਰਾਣੀ ਪਾਸ ਭਜਵਾ ਦਿੱਤੇ ਤੇ ਅਖਵਾ ਭੇਜਿਆ ਕਿ ਰਾਜਾ ਮਰ ਗਿਆ ਹੈ, ਉਸਨੂੰ ਜੰਗਲ ਵਿਖੇ ਸ਼ੇਰ ਨੇ ਖਾਹ ਲਿਆ ਹੈ ਅਰ ਰਾਣੀ ਕਪੜਿਆਂ ਨੂੰ ਰਾਜੇ ਦੀ ਨਸ਼ਾਨੀ ਵਜੋਂ ਰਖ ਛੱਡੇ। ਜਦ ਰਾਣੀ ਨੇ ਲਹੂ ਭਿੰਨੇ ਕਪੜੇ ਰਾਜੇ ਦੇ ਡਿੱਠੇ ਤਾਂ ਉਸਤੋਂ ਨਾ ਰਿਹਾ ਗਿਆ ਅਰ ਝਟ ਸਤੀ ਹੋ ਗਈ। ਜਦ ਰਾਜੇ ਨੂੰ ਇਹ ਪਤਾ ਲਗਾ ਤਾਂ ਓਹ ਭੀ ਰਾਜ ਭਾਗ ਛਡਕੇ ਜੰਗਲਾਂ ਨੂੰ ਹੋ ਤੁਰਿਆ।

ਜਦ ਰਾਜਾ ਬੈਰਾਗੀ ਹੋਕੇ ਇਸਤ੍ਰੀ ਦੇ ਵਿਯੋਗ ਵਿਖੇ ਜੰਗਲ ਵਿਖੇ ਜਾ ਰਿਹਾ ਸੀ ਤਾਂ ਉਸਨੂੰ ਭੁਖ ਲਗੀ। ਦੇਵ ਨੇਤ ਨਾਲ ਇੱਥੇ ਓਹ ਹੀ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਆ ਨਿਕਲਿਆ ਜਿਸਨੂੰ ਰਾਜੇ ਨੇ ਹੰਕਾਰ ਵਿਚ ਆਕੇ ਲਿਦ ਦਾਨ ਦਿਤੀ ਸੀ। ਉਸ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਨੇ ਹੁਣ ਰਾਜੇ ਨੂੰ ਓਹ ਹੀ ਦਾਨ, ਸਗੋਂ ਜੇਹੜਾ ਹੁਣ ਵਧੇਰੇ ਫਲਿਆ ਫੁਲਿਆ ਸੀ ਰਾਜੇ ਨੂੰ ਮੋੜਿਆ ਤਾਂ ਰਾਜਾ ਇਹ ਦੇਖ ਬੜਾ ਚਿੰਤਾਤੁਰ ਹੋਇਆ ਤੇ ਪਸਚਾਤਾਪ ਕੀਤਾ।

ਰਾਜਾ ਅਜੇ ਰੋਂਦਾ ਹੈ ਜਦ ਉਸਨੂੰ ਭਿੱਖਿਆ ਮੰਗਣੀ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਤੇ ਖਾਨ ਨੂੰ ਘੋੜਿਆਂ ਦੀ ਲਿੱਦ ਲੱਭਦੀ ਹੈ।

ਜਨਮੇਜਾ—ਇਹ ਮਹਾਂਬਲੀ ਅਰਜਨ ਦੀ ਕੁਲ ਵਿੱਚੋਂ ਸੀ ਤੇ ਇਸ ਦੇ ਪਿਤਾ ਦਾ ਨਾਮ ਪਰੀਛਤ ਸੀ। ਇਕ ਵਾਰੀ ਇਸਨੇ ਮਹਾਂ ਰਿਖੀ ਬਿਆਸ ਜੀ ਤੋਂ ਪੁਛਿਆ ਕਿ ਮੇਰੇ ਵਡੇ ਵਡੇਰੇ ਪਾਂਡਵ ਕੋਰਵ ਨੇ ਜੂਆ ਕਿਉਂ ਖੇਡਿਆ ਜਦ ਕਿ ਓਹ ਐਡੇ ਵਿਦਵਾਨ ਸਨ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਮਹਾਤਮਾਂ ਜੀ ਨੇ ਉਤਰ ਦਿਤਾ ਕਿ ਇਹ ਸਾਰੀ ਹੋਣੀ ਹੀ ਸੀ, ਈਸ਼ਵਰ ਦੀ ਰਜਾ ਨੂੰ ਕੋਈ ਰੋਕ ਨਹੀਂ ਸਕਦਾ। ਜਨਮੇਜਾ ਨੇ ਇਸਤੇ ਸ਼ੰਕਾ ਕੀਤੀ ਕਿ ਪਰਮੇਸਰ ਦੀ ਰਜਾ ਜਾਂ ਭਾਣਾ ਕੁਝ ਵੀ ਨਹੀਂ ਪੁਰਖ ਜੋ ਚਾਹੇ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਬਿਆਸ ਜੀ ਨੇ ਬਹੁਤ ਸਮਝਾਇਆ ਪਰੰਤੂ ਆਪਣੇ ਹਠ ਤੇ ਡਟਿਆ ਹੀ ਰਿਹਾ ਅੰਤ ਬਿਆਸ ਜੀ ਨੇ ਜਨਮੇਜਾ ਨੂੰ ਉਸਦੇ ਸਿਰ ਆਉਣ ਵਾਲੀ ਬਿਪਤਾ ਦਸੀ ਤੇ ਆਖਿਆ ਕਿ ਦੇਖ ਜੇਕਰ ਤੇਰੀ ਸਿਆਣਪ ਕੁਝ ਕਰ ਸਕਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਚਾਰਾ ਢੂੰਡ। ਜਿਤਨੀ ਭੀ ਵਾਹ ਲਗੀ ਲਾ ਲੈ ਪਰ ਫਿਰ ਭੀ ਹੋਣੀ ਹੋਕੇ ਹੀ ਰਹੇਗੀ। ਬਿਆਸ ਜੀ ਨੇ ਰਾਜੇ ਨੂੰ ਇਕਰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਕੁਝ ਸਮੇਂ ਮਗਰੋਂ ਤੇਰੇ ਕੋਲ ਇਕ ਘੋੜੀ ਹੋਵੇਗੀ ਜਿਸਦਾ ਮੇਲ ਤੇਰੇ ਸਿਕਾਰ ਜਾਨ ਸਮੇਂ ਇਕ ਘੋੜੇ ਨਾਲ ਹੋਵੇਗਾ ਅਰ ਓਹ ਇਕ ਕਾਲੇ ਕੰਨ ਵਾਲਾ ਬੱਚਾ ਜਣੇਗੀ ਜਦ ਓਹ ਏੱਚਾ ਜਵਾਨ ਹੋਵੇਗਾ ਤਾਂ ਤੂੰ ਅਸਮੇਧ ਜਗ ਕਰੇਂਗਾ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਤੇਰਾ ਪ੍ਰੇਮ ਇਕ ਸੁੰਦਰ ਜਵਾਨ ਇਸਤ੍ਰੀ ਨਾਲ ਲੱਗੇਗਾ ਜਿਸ ਨਾਲ ਤੂੰ ਵਿਆਹ ਕਰੇਂਗਾ, ਜਿਸ ਸਮੇਂ ਤੂੰ ਅਸਮੇਧ ਜਗ ਵਿਖੇ ਅਠਾਰਾਂ ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ ਨੂੰ ਅੰਨ ਖਵਾਉਂਦਾ ਹੋਵੇਂਗਾ ਤਾਂ ਉਸ ਸਮੇਂ ਤੇਰੀ ਇਸਤ੍ਰੀ ਬੜੇ ਝਰੀਕ ਅਰ ਸੁੰਦਰ ਕਪੜੇ ਪਾਕੇ ਆਪ ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ ਨੂੰ ਭੋਜਨ ਵਰਤਾਵੇਗੀ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਉਸ ਦਿਆਂ ਬਰੀਕ ਕਪੜਿਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਉਸ ਦਿਆਂ ਅੰਗਾਂ ਨੂੰ ਦੇਖ ਹੱਸਨਗੇ ਅਰ ਤੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਹੱਸਨ ਨੂੰ ਮਸਖਰੀ ਸਮਝਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ

ਅਠਾਰਾਂ ਹੀ ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ ਦੇ ਸਿਰ ਕਟਵਾ ਦੇਵੇਂਗਾ ਜਿਸ ਤੇ ਤੈਨੂੰ ਅਠਾਰਾਂ ਕੁਸ਼ਟ ਹੋਵਨਗੇ ਅੰਤ ਤੇਰੀ ਗਤੀ ਕਿਤੋਂ ਵੀ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗੀ ਅਰ ਤੂੰ ਆਪਨਿਆ ਬਜ਼ੁਰਗਾਂ ਦੇ ਕਾਰਨਾਮੇ ਮਹਾਂਭਾਰਤ ਵਿੱਚੋਂ ਸੁਣਕੇ ਕੁਸਟ ਤੋਂ ਮੁਕਤੀ ਪਾਵੇਂਗਾ। ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਰਾਜੇ ਨੇ ਬਹੁਤ ਯਤਨ ਕੀਤੇ ਕਿ ਹੋਣੀ ਮਿਟ ਜਾਵੇ ਪਰੰਤੂ ਹੋਣੀ ਦੇ ਕੰਮ ਕੇਹੜਾ ਮੇਟ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਜੋ ਕੁਝ ਬਿਆਸ ਜੀ ਨੇ ਦਸਿਆ ਸੀ ਸੋਲਾਂ ਆਨੇ! ਸਚ ਨਿਕਲਿਆ ਤੇ ਅੰਤ ਜਨਮੇਜਾ ਨੇ ਆਪਣੀ ਭੁਲ ਮੰਨੀ। ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਵਿਖੇ ਆਇਆ ਹੈ:–

"ਰਾਜਾ ਜਨਮੇਜਾ ਦੇ ਮਤੀ ਬਰਿਜ ਬਿਆਸ ਪੜਾਇਆ ॥ ਤਿਨਿ ਕਰਿ ਜਗ ਅਠਰਹ ਘਾਏ ਕਿਰਤੁ ਨ ਚਲੈ ਚਲਾਇਆ ॥

(ਪ੍ਰਭਾਤੀ ਮ: ੧ ਦਖਨੀ)

ਫੇਰ ਲਿਖਿਆ ਹੈ:–

"ਜਨਮੇਜੈ ਗੁਰ ਸਬਦੁ ਨ ਜਾਨਿਆ ॥"

[ਗਉੜੀ ਮ: ੧

ਪਰਸਰਾਮ ਅਵਤਾਰ ਦੀ ਕਥਾ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਆਪਣੀਆਂ ਵਾਰਾਂ ਵਿਖੇ ਇਕੁਰ ਲਿਖਦੇ ਹਨਃ–

ਸਹਸ ਬਾਹੁ ਜਮਦਗਨ ਘਰ ਹੋਇ ਪਰਾਹੁਣ ਚਾਰੀ ਆਯਾ॥ ਕਾਮਧੇਨ ਲੋਭਾਇਕੈ ਜਮਦਗਨੇ ਦਾ ਸਿਰ ਵਢਵਾਯਾ। ਪਿਟਦੀ ਸੁਣ ਕੇ ਰੇਣਕਾ ਪਰਸਰਾਮ ਧਾਈ ਕਰ ਆਯਾ। ਇੱਕੀ ਵਾਰ ਕਰੋਧ ਕਰ ਖੱਤ੍ਰੀ ਮਾਰ ਨਿੱਖਤ੍ਰ ਕਰਾਯਾ। ਚਰਣ ਸ਼ਰਣ ਫੜ ਉਬਰੇ ਦੂਜੇ ਕਿਸੇ ਨ ਖੜਗ ਉਚਾਯਾ। ਹਉਮੈ ਮਾਰ ਨ ਸਕਿਆ ਚਿਰੰਜੀਵ ਹੋਇ ਆਪ ਜਨਾਯਾ। ਚਰਣ ਕਵਲ ਮਕਰੰਦ ਨ ਪਾਯਾ।

(ਵਾਰ ੨੩, ਪਉੜੀ ੭)

"ਪੰਡਿਤ ਰੋਵਹਿ ਗਿਆਨੁ ਗਵਾਇ ॥" ਬਾਰੇ ਹੇਠ ਲਿਖੀ ਪਉੜੀ ਅਸੀਂ ਵਾਰਾਂ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਵਿੱਚੋਂ ਪਾਠਕਾਂ ਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ–ਗੋਚਰ ਕਰਦੇ ਹਾਂਃ–

(ਪੰਡਤ ਵੀ ਮੂਰਖ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ)

ਗੋਸ਼ਟ ਗਾਂਗੇ ਤੇਲੀਐ ਪੰਡਿਤ ਨਾਲ ਹੋਵੈ ਜਗਾ ਦੇਖੈ ॥ ਖੜੀ ਕਰੈ ਇਕ ਅੰਗੁਲੀ ਗਾਂਗਾ ਦੁਇ ਵੇਖਾਲੇ ਰੇਖੈ ॥ ਫੇਰ ਉਚਾਇ ਪੰਜਾਂਗੁਲਾਂ ਗਾਂਗਾ ਮੁਠ ਹਲਾਇ ਅਲੇਖੈ ॥ ਪੈਰੀਂ ਪੈ ਉੱਠ ਚਲਿਆ ਪੰਡਿਤ ਹਾਰ ਭੁਲਾਵੈ ਭੇਖੈ ॥ ਨਿਰਗੁਣ ਸਰਗੁਣ ਅੰਗ ਦੁਇ ਪਰਮੇਸਰ ਪੰਜ ਮਿਲਣਸਰੇਖੈ ॥ ਅੱਖੀਂ ਦੋਵੇਂ ਭੰਨਸਾਂ ਮੁਕੀ ਲਾਇ ਹਲਾਇ ਨਿਮੇਖੈ ॥ ਮੂਰਖ ਪੰਡਿਤ ਸੁਅਤਿ ਵਿਸੇਖੈ ॥

(ਵਾਰ ੩੨, ਪਉੜੀ ੧੮)

ਬਾਕੀ ਸ਼ਬਦ ਦੇ ਅਰਥ ਸਰਲ ਹੀ ਹਨ, ਸੋ ਵਿਸਥਾਰ ਪੂਰਵਕ ਲਿਖਣ ਦੀ ਅਵਿਸ਼ਕਤਾ ਨਹੀਂ ॥ (ਬ. ਸ.)

----

੧ ਓ ਸੀ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ ਕੀ ਫਤੇ ॥

ਗੁਰਬਾਣੀ ਅਤੇ ਰਾਗ

"ਰਾਗ" ਆਖਣ ਨੂੰ ਭਾਵੇਂ ਦੋ ਅਖਰਾਂ ਦਾ ਸ਼ਬਦ ਹੈ ਪਰ ਅਸੀਂ ਅਗਰ ਇਹ ਲਿਖ ਦੇਈਏ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੋ ਅਖਰਾਂ ਪਰ ਧਰਤੀ ਅਤੇ ਅਕਾਸ਼ ਦੋਵੇਂ ਮਸਤ ਹਨ ਤਾਂ ਅਯੋਗ ਨਹੀਂ, ਰਾਗ ਦੀਆਂ ਸੁਰਾਂ (ਸ. ਰੇ. ਗਾ. ਮਾ. ਪਾ. ਧਾ. ਨੀ) ਭਾਵੇਂ ਸੱਤ ਹੀ ਹਨ ਪਰ ਜੇ ਅਸੀਂ ਇਹ ਆਖ ਦੇਈਏ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸੱਤਾਂ ਸੁਰਾਂ ਪਰ ਸੱਤੇ ਪਾਤਾਲ ਅਤ ਸੱਤੇ ਆਕਾਸ਼ ਮੋਹਤ ਹਨ ਤਾਂ ਝੂਠ ਨਹੀਂ, ਕਿਉਂਕਿ ਅਗਰ ਮਾਨੁਖ ਸਰੇਣੀ ਵਲ ਦੇਖੋ ਤਾਂ ਬਾਲ ਬਿਰਧ, ਗਰੀਬ, ਅਮੀਰ; ਪੜ੍ਹਿਆਂ, ਅਨਪੜ੍ਹਿਆ, ਧਰਮੀ ਅਧਰਮੀ, ਸਭ ਇਸਦੇ

ਸੈਦਾਈ ਹਨ, ਜਦੋਂ ਪਸ਼ੂ ਅਤੇ ਬਨਚਰ ਬਲਕੇ ਵਿਹੁ ਭਰੇ ਸਰਪਾਂ ਆਦਿ ਵਲ ਝਾਤੀ ਮਾਰੋ ਤਾਂ ਇਸ ਪਰ ਮਸਤ ਹੋਏ ਦਿਸਣਗੇ।

ਜਦ ਬਿਰਛਾਂ ਬੂਟਿਆਂ ਵਲ ਤਕੋ ਤਾਂ ਆਪਣੇ ਪੱਤਰਾਂ ਦੇ ਖੜਕਾਰ ਦੇ ਤਾਲ ਅਤੇ ਸ਼ੂਕਦੀ ਆਵਾਜ ਵਿਚੋਂ ਇਸੇ ਦੀ ਮਿੱਠੀ ਸੁਰ ਕੱਢਦੇ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੋਣਗੇ, ਜਦੋਂ ਨਦੀਆਂ ਅਤੇ ਨਾਲਿਆਂ ਪਰ ਜਾਓ ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵੈਹਣ ਦੀ ਸ਼ਾਂ ਸਾਂ ਵਿਚ ਇਸੇ ਦੀ ਪਿਆਰੀ ਲੈ ਸੁਣਾਈ ਦੇਵੇਗੀ, ਜਦੋਂ ਕੋਇਲ, ਭੌਰੇ ਅਤੇ ਹੋਰ ਪੰਛੀਆਂ ਵਲ ਨਜਰ ਫੇਰੋ ਤਾਂ ਇਸੇਦੀ ਮੋਹਨੀ ਗੁੰਜਾਰ ਸਾਡੇ ਕਰਨ ਇੰਦਰਿਆਂ ਵਿਚ ਆਵੇਗੀ, ਗਲ ਕੀ ਸਿਰਜਨ ਹਾਰ ਦੀ ਜਿਸ ਰਚਨਾ ਵਲ ਭੀ ਦੇਖੋ ਉੱਸੇ ਵਿਚ ਹੀ ਮਿਠਾਸ ਭਰੀ ਮਨਮੋਹਨੀ ਸੁਰਾਂ ਦਾ ਅਲਾਪ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਹੋਰਨਾ ਨੇ ਰਾਗ ਨੂੰ ਕਿਸਤਰਾਂ ਵਰਤਿਆਂ

ਇੰਦਰ ਦੇਵਤਾ ਨੇ ਅਪਣੇ ਮਨ ਦੀ ਪ੍ਰਸੰਨਤਾ, ਅਖਾੜੇ ਦੀ ਸ਼ਾਨ, ਤੇ ਦਰਬਾਰ ਦੀ ਸ਼ੋਭਾ ਲਈ ਅਪਛਰਾਂ ਇਕਤ੍ਰ ਕੀਤੀਆਂ ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਨਿਰਤ-ਕਾਰੀ ਸੈਹਤ ਰਾਗ ਸ੍ਰਵਨ ਕੀਤਾ, ਸ੍ਰੀ ਕ੍ਰਿਸਨ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਅਪਣੀ ਮਧੁਰ "ਮੁਰਲੀ" ਵਿਚ ਰਾਗ ਦੀ ਮਿਠੀ ਸੁਰ ਭਰਕੇ ਅਪਣੇ ਪ੍ਰੇਮੀਆਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰੇਮ ਵੱਸ ਕੀਤਾ। ਸਾਂਈ ਬੁਲੇ ਸ਼ਾਹ ਜੀ ਨੇ ਰੁੱਠੇ ਹੋਏ ਪੀਰ ਨੂੰ ਰਾਗ ਦੇ ਪ੍ਰੇਮ ਰੂਪੀ ਬੰਧਨ ਵਿਚ ਬੰਨਕੇ ਖੜਾ ਕੀਤਾ ਤੇ ਖਿਮਾ ਦੀ ਲੈ ਵਿਚ ਅਜੇਹਾ ਅਲਾਪ ਕੀਤਾ ਜੋ ਪੀਰ ਨੇ ਸਾਰੀਆਂ ਭੁੱਲਾਂ ਬਖਸ਼ ਦਿਤੀਆਂ। ਰਾਜਿਆਂ ਅਤੇ ਮਹਾਰਾਜਿਆਂ ਨੇ ਮੈਦਾਨ ਜੰਗ ਵਿਚ ਦਿਲ ਛੱਡਕੇ ਮੁਰਦਾ ਹੋਈਆਂ ਫੋਜਾਂ ਵਿਚ ਢਾਡੀਆਂ ਦੀ ਰਾਹੀਂ ਇਸੇ ਨਾਲ ਜਿੰਦ ਪਾਈ ਅਰ ਬਿਜੈ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤੀ। ਰੂਪ ਦੇ ਪਾਰਖੂਆਂ ਨੇ ਇਸੇ ਦ੍ਵਾਰਾ ਰੂਪ ਦੀ ਪਛਾਣ ਕਰਕੇ ਰੂਪ ਧਾਰੀਆਂ ਨੂੰ ਅਪਣੇ ਵਸ ਕੀਤਾ, ਚੰਚਲ ਚਿਤ ਵਾਲਿਆਂ ਇਸੇ ਨਾਲ ਹੀ ਚੰਚਲਤਾਈ ਦਾ ਰੰਗ ਮਾਣਿਆਂ, ਗਲ ਕੀ ਇਹ ਇਕ ਐਸੀ ਹਰ ਮਨ ਭਾਉਣੀ ਅਮੋਲ ਵਸਤ ਹੈ ਜੋ ਇਸਤੋਂ ਹਰ ਖਿਆਲ ਦੇ ਮਾਨੁਖ ਨੇ ਅਨੰਦ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤਾ।

ਗੁਰੂ ਘਰ ਅਤੇ ਰਾਗ

ਸਤਿਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਉਸ ਅਕਾਲ ਦੇ ਜਾਪ ਅਤੇ ਉਸ ਨਾਲੋਂ ਵਿਛੜੀਆਂ ਰੂਹਾਂ ਦਾ ਮਿਲਾਪ ਕਰਾਕੇ ਸਾਰੇ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਚਾਰੇ ਤਾਪ ਗੁਆਉਣ ਲਈ ਅਵਤਾਰ ਧਾਰਿਆ ਸੀ ? ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਹਰ ਰੰਗ ਵਿਚ ਉਸ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਹੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਦਿਸ ਰਿਹਾ ਸੀ, ਜਿਸ ਪਰ ਉਚਾਰਨ ਕੀਤਾ।

ਸੋਦਰੁ ਕੇਹਾ ਸੋ ਘਰੁ ਕੇਹਾ ਜਿਤੁ ਬਹਿ ਸਰਬ ਸਮਾਲੇ ॥
ਵਾਜੇ ਨਾਦ ਅਨੇਕ ਅਸੰਖਾ ਕੇਤੇ ਵਾਵਣ ਹਾਰੇ ॥
ਕੇਤੇ ਰਾਗ ਪਰੀ ਸਿਉ ਕਹੀਅਨਿ ਕੇਤੇ ਗਾਵਣ ਹਾਰੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਤੁਹਨੋ ਪਉਣੁ ਪਾਣੀ ਬੈਸੰਤਰ ਗਾਵੈ ਰਾਜਾ ਧਰਮੁ ਦੁਆਰੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਚਿਤੁ ਗੁਪਤੁ ਲਿਖਿ ਜਾਣਹਿ ਲਿਖ ਲਿਖ ਧਰਮੁ ਵੀਚਾਰੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਈਸਰੁ ਬਰਮਾਂ ਦੇਵੀ ਸੋਹਨਿ ਸਦਾ ਸਵਾਰੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਇੰਦ ਇੰਦਾਸਣਿ ਬੈਠੇ ਦੇਵਤਿਆ ਦਰਿ ਨਾਲੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਸਿਧ ਸਮਾਧੀ ਅੰਦਰਿ ਗਾਵਨਿ ਸਾਧ ਵੀਚਾਰੇ ॥
ਗਾਵਨਿ ਜਤੀ ਸਤੀ ਸੰਤੋਖੀ ਗਾਵਹਿ ਵੀਰ ਕਰਾਰੇ ॥
ਗਾਵਨਿ ਪੰਡਿਤ ਪੜਨਿ ਰਖੀਸੁਰ ਜੁਗ ਜੁਗ ਵੇਦਾ ਨਾਲੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਮੋਹਣੀਆ ਮਨੁ ਮੋਹਨਿ ਸੁਰਗਾ ਮਛ ਪਇਆਲੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਰਤਨ ਉਪਾਏ ਤੇਰੇ ਅਠਸਠਿ ਤੀਰਥ ਨਾਲੇ ॥
ਗਾਵਹਿ ਖੰਡ ਮੰਡਲ ਵਰਭੰਡਾ ਕਰਿ ਕਰਿ ਰਖੇ ਧਾਰੇ ॥
ਸੇਈ ਤੁਧਨੋ ਗਾਵਹਿ ਜੋ ਤੁਧ ਭਾਵਨਿ ਰਤੇ ਤੇਰੇ ਭਗਤ ਰਸਾਲੇ ॥
ਹੋਰ ਕੇਤੇ ਗਾਵਨਿ ਸੇ ਮੈਂ ਚਿਤਿ ਨ ਆਵਨਿ ਨਾਨਕੁ ਕਿਆ ਵੀਚਾਰੇ ॥
ਸੋਈ ਸੋਈ ਸਦਾ ਸਚੁ ਸਾਹਿਬੁ ਸਾਚਾ ਸਾਚੀ ਨਾਈ ॥
ਹੈਭੀ ਹੋਸੀ ਜਾਇ ਨ ਜਾਸੀ ਰਚਨਾ ਜਿਨਿ ਰਚਾਈ ॥

ਰੰਗੀ ਰੰਗੀ ਭਾਤੀ ਕਰਿ ਕਰਿ ਜਿਨਸੀ ਮਾਇਆ ਜਿਨਿ ਉਪਾਈ ॥
ਕਰਿ ਕਰਿ ਵੇਖੈ ਕੀਤਾ ਆਪਣਾ ਜਿਸ ਤਿਸਦੀ ਵਡਿਆਈ ॥
ਜੋ ਤਿਸੁ ਭਾਵੈ ਸੋਈ ਕਰਸੀ ਹੁਕਮੁ ਨ ਕਰਣਾ ਜਾਈ ॥
ਸੋ ਪਾਤਿਸਾਹੁ ਸਾਹਾ ਪਾਤਿਸਾਹਿਬੁ ਨਾਨਕ ਰਹਿਣੁ ਰਜਾਈ ॥

ਸਚੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਨੇ ਉਚਾਰਿਆ ਕਿ ਹੇ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਅਸੰਖਾਂ ਹੀ ਤੇਰ ਵਾਜੇ (ਸਾਜ) ਹਨ ਤੇ ਅਨੇਕ ਵਜਾਉਣ ਵਾਲੇ ਹਨ, ਅਰ ਸਾਰੇ ਬ੍ਰਹਮੰਡ ਦੀ ਸਾਮਗਰੀ ਹੀ ਤੇਰੇ ਗੁਣ ਗਾਇਨ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ, ਬਸ ਫੇਰ ਤਾਂ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਰਾਗ ਦ੍ਵਾਰਾ ਹੀ ਉਸ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਗੁਣ ਗਾਉਣਾ ਅਪਣੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਅਧਾਰ ਬਣਾ ਲਿਆ, ਰਾਗ ਦੇ ਨਾਲ ਸਾਜ ਦੇ ਬਜੰਤਰੀ (ਮਰਦਾਨੇ) ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਸਾਥੀ ਬਣਾ ਲਿਆਂ। ਤੁਸੀ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦਾ ਜੀਵਨ ਵਾਚੋ ਤਾਂ ਆਪਨੂੰ ਪਤਾ ਲਗੇਗਾ ਕਿ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੇ ਜਿਥੇ ਭੀ ਬਿਸਰਾਮ ਕੀਤਾ ਜਾਂ ਕੋਈ ਜਗਆਸੂ ਆਇਆ ਤਾਂ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਹੁਕਮ ਹੋਇਆ, "ਭਾਈ ਮਰਦਾਨਿਆਂ ਰਬਾਬ ਵਜਾ" ਬਸ ਜਿਸ ਵੇਲੇ ਮਰਦਾਨੇ ਦੇ ਰਬਾਬ ਦੀ ਤਾਰ ਵਿਚੋਂ ਸੁਰ ਨਿਕਲੀ, ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਨਰਿੰਕਾਰ ਦੇ ਗੁਣਾਂ ਦਾ ਅਲਾਪ ਕੀਤਾ ਪਾਸ ਬੈਠੇ ਆਦਮੀ ਤਾਂ ਇਕ ਪਾਸੇ ਰਹੇ ਬਨਾਂ ਦੇ ਬਨ ਚਰ ਅਤੇ ਪੰਖੇਰੂ ਭੀ ਮੋਹਤ ਹੋ ਗਏ ਅਰ ਕਈ ਵਾਰੀ ਇਹ ਸਰੂਰ, ਇਹ ਮਸਤੀ ਹਾਂ ਜੀ ਇਹ ਇਲਾਹੀ ਰੰਗ ਕਈ ਕਈ ਦਿਨ ਜੰਮਿਆ ਰਿਹਾ ॥

ਇਸ ਰਾਗ ਦੀ ਬਰਕਤ ਨਾਲ ਸੱਜਣ ਠੱਗ ਤੇ ਕੌਡੇ ਰਾਖਸ ਜੇਹੇ ਤਰ ਗਏ, ਇਸੇ ਰਾਗ ਦੀ ਲੈ ਵਿਚ ਵਗਦੇ ਦਰਿਆ ਤੇ ਰਿੜ੍ਹੇ ਆਉਂਦੇ ਪਰਬਤ ਠੱਲੇ ਗਏ, ਇਸੇ ਰਾਗ ਦੀ ਮਿਠਾਸ ਨਾਲ ਰੇਠੇ ਜੇਹੇ ਕੌੜੇ ਬਿਰਛ ਮਿੱਠੇ ਹੋ ਗਏ ਗਲ ਕੀ ਸਾਰੇ ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਪਾਰ ਉਤਾਰਾ ਹੋ ।ਗਆ । ਆਦ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਜੀ ਦੀ ਮਹਾਨ ਕ੍ਰਿਪਾਲਤਾ ਕਰਕੇ ਹਰੀ ਕੀਰਤਨ ਗੁਰ ਸਿਖਾਂ ਦਾ ਨਿਤ ਕਰਮ ਹੋ ਗਿਆ, ਬਲਕੇ ਕੀਰਤਨੀ ਜਥੇ ਮੁਕਰਰ ਹੋਗਏ, ਸੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਸਾਹਿਬ ਗੁਰੂ ਅਮਰ ਦੇਵ ਜੀ ਅਰ ੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਕੀਰਤਨ ਦਾ ਉਹ ਪ੍ਰਵਾਹ ਚਲਾਇਆ ਕਿ ਸੰਸਾਰ ਵਾਸੀ ਜੀਵਾਂ ਵਿਚ ਆਸਤਕਤਾ ਦੀ ਰੌ ਚਲ ਪਈ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਸਿਮਰਨ ਤੇ ਧਰਮ ਪਰਚਾਰ ਹੋਣ ਲਗ ਪਿਆ ।

ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਅਤੇ ਰਾਗ

ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਨੇ ਕਲਜੁਗੀ ਜੀਵਾਂ ਦੇ ਉਧਾਰ ਲਈ ਪਰੇਮ ਭਰੇ ਰਾਗ ਵਿਚ ਹਰੀ ਸਜ ਪੂਰਤ ਗੁਰਬਾਣੀ ਨੂੰ ਇਕਤ੍ਰ ਕਰਨ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਧਾਰਿਆ, ਪੈਹਲੇ ਕੁਛ ਬਾਣੀ ਇਕਤ੍ਰ ਕੀਤੀ ਫੇਰ ਪਤਾ ਲਗਾ ਕਿ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਸੈਂਚੀਆਂ ਬਾਬਾ ਮੋਹਨ ਜੀ ਪਾਸ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਗੁਰ ਸਿਖਾਂ ਨੂੰ ਭੇਜਿਆ ਗਿਆ ਪਰ ਬਾਬਾ ਜੀ ਨੇ ਸਾਫ ਇਨਕਾਰ ਕਰ ਦਿਤਾ ਫੇਰ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਵਿਚਾਰ ਕੀਤੀ ਕਿ ਇਸ ਪਰੇਮ ਮਈ ਰਾਗ ਨਾਲ ਕਠੋਰ ਤੋਂ ਕਠੋਰ ਚਿਤ ਮੋਮ ਹੋ ਸਕਦੇ ਹਨ ਤੇ ਵਿਹੁ ਅਰ ਕੁੜਤਨ ਭਰੀਆਂ ਵਸਤਾਂ ਵਿਚ ਅੰਮ੍ਰਿਤ ਸੰਚਿਆ ਗਿਆ ਤਾਂ ਬਾਬਾ ਮੋਹਨ ਜੀ ਇਸ ਨਾਲ ਕਿਸਤਰਾਂ ਨਾ ਮੋਹੇ ਜਾਣਗੇ,ਇਹ ਵਿਚਾਰ ਕੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀਨੇ ਆਪ ਸਾਜ਼ ਹਥ ਵਿਚ ਪਕੜਿਆ ਤੇ ਮੋਹਨ ਜੀ ਦੇ ਚੁਬਾਰੇ ਹੇਠ ਜਾ ਬੈਠੇ ਅਤੇ ਕ।ਰਤਨ ਦੀ ਬਰਖਾ ਆਰੰਭ ਕਰ ਦਿਤੀ ਬਸ ਜਦ ਪਰੇਮ ਭਰੀ ਮਿਠੀ ਸੁਰ ਬਾਬਾ ਜੀਦੇ ਕੰਨਾ ਤਕ ਪੁਜੀ ਤਾਂ ਮੋਹਤ ਹੋਕੇ ਉਸ ਅਵਾਜਤੇ ਪੁਜੇ ਅਰ ਜੋ ਹੁਕਮ ਹੋਇਆ ਉਸ ਅਗੇ ਸਿਰ ਝੁਕਾਇਆ। ਇਕ ਵਾਰੀ ਕੀਰਤਨ ਕਰਨ ਵਾਲੇ (ਸੱਤਾ ਬਲਵੰਡਾ) ਰਬਾਬੀ ਕਿਸੇ ਗੱਲੇ ਰੁਸ ਗਏ ਤੇ ਅਨੇਕ ਯਤਨਾਂ ਨਾਲ ਮਨਾਉਣ ਪਰ ਭੀ ਨਾ ਮੰਨੇ ਤਾਂ ਹਰੀ ਕੀਰਤਨ ਬਿਨਾ ਇਕ ਪਲ ਭੀ ਨਾ ਕੱਟ ਸਕਣ ਵਾਲੇ ਸੀ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਸੰਗਤਾ ਨੂੰ ਹੁਕਮ ਦਿਤਾ ਕਿ ਤੁਸੀ ਆਪ ਕੀਰਤਨ ਕਰੋ ਅਰ ਸਾਜ਼ ਵਜਾਓ ਉਸੇ ਦਿਨ ਤੋਂ ਹੀ ਰਬਾਬੀਆਂ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਰਾਗੀ ਜਥੇ ਭੀ ਤਿਆਰ ਹੋ ਗਏ।

ਇਸਤਰਾਂ ਆਪ ਜਿਉਂ ਜਿਉਂ ਸਿਖ ਇਤਿਹਾਸ ਪੜ੍ਹੋਗੇ ਤਿਉਂ ਤਿਉਂ ਪਤਾ ਲਗੇਗਾ ਕਿ ਹਰੀ ਕੀਰਤਨ ।ਸਖਾਂ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਅਧਾਰ ਸੀ, ਇਥੋਂ ਤਕ ਕਿ ਜਦ ਸ਼ਾਹੀ ਜੁਲਮਾਂ ਦੇ ਕਾਰਨ ਸਿਖ ਜੰਗਲਾਂ ਵਿਚ ਰਹਿਣ ਲਗੇ ਤਾਂ ਉਥੇ ਹੀ ਨਿਤ ਨਿਯਮ ਅਨੁਸਾਰ ਕੀਰਤਨ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਚਲਦਾ ਰਿਹਾ ਬਲਕੇ ਜੁੱਧਾਂ ਜੰਗਾਂ ਦੇ ਮੈਦਾਨ ਵਿਚ ਤੇ ਵਗਦੀਆਂ ਤਲਵਾਰਾਂ ਅਰ ਵਰ੍ਹਦੀਆਂ ਗੋਲੀਆਂ ਸਮੇਂ ਭੀ ਲਗ ਦੀ ਵਾਹ ਕੀਰਤਨ ਦਾ ਨਾਗਾ ਨਹੀਂ ਪੈਣ ਦਿਤਾ।

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਵਿਚ ਰਾਗ

ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੇ ਜੋ ਬਾਣੀ ਰਚੀ ਹੈ ਉਹ ਰਾਗ ਵਿਚ ਰਚੀ ਹੈ ਐਥੋਂ ਤਕ ਕਿ ਸ਼ਬਦ ਦੇ ਪਹਿਲਾਂ ਰਾਗ ਦਾ ਨਾਉ, ਗਾਉਣ ਦਾ ਘਰ, ਰਹਾਉ ਅਤੇ ਠੈਹਰਾਉ ਦਾ ਪੂਰਾ ਜ਼ਿਕਰ ਕੀਤਾ ਹੈ ਜਿਸਤੋਂ ਗਾਉਣ ਵਾਲੇ ਨੂੰ ਸ਼ਬਦ ਦੇ ਰਾਗ ਸਬੰਧੀ ਸਭ ਅੰਗਾਂ ਦਾ ਠੀਕ ਪਤਾ ਲਗ ਜਵੇ, ਇਸਤੋਂ ਭੀ ਅਗੇ ਸ਼ਬਦ ਨੂੰ ਗਾਉਣ ਲਈ ਕਿਤੇ ਕਿਤੇ ਧੁਨੀਆਂ ਭੀ ਲਿਖ ਦਿਤੀਆਂ ਹਨ, ਯਥਾ "ਲੱਲੇ ਬੈਹਰਾਮ ਕੀ ਧੁਨੀ ਗਾਉਣੀ" ਅਥਵਾ ਟੁੰਡੇ ਅਸਰਾਜੇ ਕੀ ਧੁਨੀ ਗਾਉਣੀ, ਜਿਸਤੋਂ ਪ੍ਰਤੱਖ ਹੈ ਕਿ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਗੁਰਬਾਣੀ ਦਾ ਰਾਗ ਨਾਲ ਬੜਾ ਗੂੜ੍ਹਾ ਸਬੰਧ ਰਖਿਆ ਹੈ ॥

ਗੁਰੂ ਘਰ ਦੇ ਸਾਜ਼

ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਕੇਵਲ ਰਾਗਾਂ ਦਾ ਹੀ ਖਿਆਲ ਨਹੀਂ ਰਖਿਆ ਬਲਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਵਜਾਉਣ ਵਾਲੇ ਸਾਂਜ਼ਾਂ ਦਾ ਭੀ ਧਿਆਨ ਰਖਿਆ ਹੈ, ਜਿਸਤਰਾਂ ਪਹਿਲੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਨੇ ਮਰਦਾਨੇ ਦੇ ਵਜਾਉਣ ਲਈ ਇਕ ਨਵਾਂ ਸਾਜ਼ "ਰਬਾਬ" ਆਪ ਬਨਵਾਕੇ ਦਿਤਾ, ਰਬਾਂਬ 'ਰੱਬ ਆਬ' ਦੇ ਅਖਰੀ ਅਰਥ ਹਨ ਰੱਬ ਅਥਵਾ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਰੰਗ ਵਿਚ ਰੱਤਾ ਹੋਇਆ, ਉਸਤਰਾਂ ਇਹ ਸਤਾਰ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਹੈ ਜੋ ਉਸ ਨਾਲੋਂ ਬੋਹਤ ਸੁਖੈਨ ਹੈ, ਯੂਰਪ ਵਾਲਿਆਂ ਇਸਦੀ ਨਕਲ ਪਰ "ਬੈਂਜੋ" ਤੇ "ਮੈਂਡਲਮ" ਤਿਆਰ ਕੀਤੇ ਹਨ ਪਰ ਉਹ ਇਸਦੇ ਸੁਰੀਲੇ ਪਨ ਤੇ ਮਿਠਾਸ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਪੁਜ ਸਕੇ।

ਸੁਰਿੰਦਾ—ਜਦ ਸੱਤਾ ਬਲਵੰਡਾ ਰਬਾਬੀ ਰੁੱਸ ਗਏ ਤਾਂ ਸੀ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਸੰਗਤਾਂ ਨੂੰ ਕੀਰਤਨ ਕਰਨ ਦਾ ਹੁਕਮ ਦਿਤਾ ਤਾਂ ਉਸ ਸਮੇਂ ਸਾਰੰਗੀ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਪਰ ਸੁਖੈਨ ਰਿੰਦਾ ਤਿਆਰਕਰਵਾਇਆ ਗਿਆ ਸੁਰਿੰਦਾ ਯਾ ਸੁਰ ਿੰਦੇ ਦੇ ਅਖਰੀ ਅਰਥ ਹਨ ਸੁਰਾਂ ਦਾ ਇਦੂ ਇਸਦੀ ਬਨਾਵਟ ਸਾਰੰਗੀ ਤੋਂ ਬੜੀ ਸੁਖੈਨ ਅਰ ਸੁਰੀਲੀ ਹੈ, ਇਸਦੇ ਨਾਲ ਹੀ

ਬਜਾਉਣ ਲਈ ਮਰਦੰਗ ਅਗਵਾ ਢੋਲਕੀ ਦਾ ਰਿਵਾਜ ਸੀ ਜਿਸਦੀ ਥਾਂ ਤਬ-
ਲਿਆਂ ਦੀ ਡੋੜੀ ਪ੍ਰਚਲਤ ਕੀਤੀ । ਦਸਮੇਸ਼ ਪਿਤਾ ਜੀ ਦਾ ਬਹੁਤ ਸਮਾ ਭਾਵੇਂ
ਯੁੱਧਾਂ ਜੰਗਾ ਵਿਚ ਬੀਤਦਾ ਸੀ ਪਰ ਇਸ ਆਤਮਕ ਆਨੰਦ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨਿਤਨੇਮ
ਅਨੁਸਾਰ ਮਾਣਿਆ ਅਰ ਵਜਾਉਣ ਲਈ "ਤਾਊਸ" ਨਵਾਂ ਸਾਜ਼
ਪ੍ਰਚਲਤ ਕੀਤਾ ।

ਰਾਗਾਂ ਦਾ ਵੇਰਵਾ

ਰਾਗ ਅਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਵਾਰ ਦਾ ਬੜਾ ਭਾਰੀ ਵਿਸਥਾਰ ਹੈ ਜਿਸ ਲਈ
ਇਕ ਭਾਰੇ ਪੁਸ਼ਤਕ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ, ਪਰੰਤੂ ਮੁਖ ਰਾਗ ਛੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਨਾਮ
ਸ੍ਰੀ ਰਾਗ, ਭੈਰਵ, ਮੇਘ, ਦੀਪਕ, ਕੌਸ਼ਕ (ਮਾਲ ਕੌਂਸ) ਹਿੰਡੋਲ ਹਨ,
ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮੁਖ ਭੇਦ ਤਿੰਨ ਹਨ ੧. "ਉੜਬਾ" ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪੰਜ ਸ੍ਵਰ
ਲਗਦੇ ਹਨ, ਯਥਾ ਮਾਲ ਕੌਂਸ ਤੇ ਹਿੰਡੋਲ, ੨, "ਖੁੜਬ" ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਛੇ
ਸ੍ਵਰ ਲਗਦੇ ਹਨ ਜਿਸਤਰਾਂ ਮੇਘ, ਦੀਪਕ, "ਸੰਪੂਰਨ" ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸਤ ਸ੍ਵਰ
ਲਗਦੇ ਹਨ ਜਿਹਾਕੁ ਸ੍ਰੀ ਰਾਗ ਤੇ ਭੈਰਵ, ਗੁਰਬਾਣੀ ਵਿਚ "ਸ੍ਰੀ ਰਾਗ" ਸਭਦਾ
ਮੁਖੀ ਮੰਨਿਆ ਗਿਆ ਹੈ ਸੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਵਿਚ ਪੈਹਲਾਂ ਇਹੋ ਰਾਗ
ਰਖਿਆ ਗਿਆ, ਇਸਦੀ ਉਤਪਤੀ ਮਹਾਂ ਦੇਵ ਦੇ ਮੁਖ ਤੋਂ ਲਿਖੀ ਹੈ ਕਈ ਸ਼ੇਸ਼
ਨਾਗ ਤੋਂਭੀ ਆਖਦੇ ਹਨ,ਇਸਦੇ ਗਾਉਣ ਦਾ ਸਮਾ ਪਿਛਲਾ ਪੈਹਰ ਅਥਵਾ ਦਿਨ
ਦੇ ੧ ਵਜੇ ਤੋਂ ੪ ਵਜੇ ਦੇ ਵਿਚਕਾਰ ਦਸਿਆ ਹੈ, ਇਸਦੀ ਤਾਸੀਰ ਸਬੰਧੀ
ਲਿਖਿਆ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਨਾਲ ਫਿਕਰ ਦਾ ਨਾਸ ਤੇ ਮਸਤੀ ਅਰ ਸਰੂਰ ਦਾ
ਆਉਣਾ ਲਿਖ਼ਿਆ ਹੈ।

ਦਾਸ— ਗਿਆਨੀ ਖਜ਼ਾਨ ਸਿੰਘ

ਮਿਯੂਨਿਸਿਪਲ ਕਮਿਸ਼ਨਰ ਲਾਹੌਰ.

ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਗੰਜ ਸ਼ੱਕਰ

(ਪਿੱਛੇ ਤੋਂ ਅੱਗੇ)

ਅਸੀਂ ਪਹਿਲੇ ਦਸ ਆਏ ਹਾਂ ਕਿ ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਮੁਲਤਾਨੀ ਪੰਜਾਬੀ ਬੋਲੀ ਵਿਚ ਅਧਿਕ ਮਿਲਦੀ ਹੈ। ਹੁਣ ਅਸੀਂ ਇੱਥੇ ਉਸੇ ਹੀ ਗਲ ਦੀ ਪੁਸਟੀ ਵਿਚ ਕੁਝ ਕੁ ਮੁਲਤਾਨੀ ਗੀਤ ਹੇਠਾਂ ਦੇਕੇ ਬਾਬਾ ਜੀ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਪੁਰ ਹੋਰ ਵਿਚਾਰ ਕਰਦੇ ਹਾਂ। ਇਹ ਮੁਲਤਾਨੀ ਗੀਤ 'Multani Stories by F. W. Skemp ਨਾਮੀ ਪੁਸਤਕ ਵਿਚੋਂ ਲਏ ਗਏ ਹਨ।

(੧)

ਮੁਦਤ ਗੁਜਰੀ ਪਈਆਂ ਜੁਦਾਈਆਂ
ਨਿਕਰ ਗਿਓਂ ਦਿਲ ਖਸ, ਵੇ ਵਲ ਵਾਪਸ ਵੈ।
ਤੋਂ ਕਾਰਨ ਘਰ ਬਾਰ ਸਟਿਅਮ
ਬਾਲ ਬੱਚੇ ਅਸ ਕਸ, ਵੇ ਵਲ ਵਾਪਸ ਵੈ।
ਮੁੱਲਾਂ ਭੁੱਪ ਬਾਹਮਣ ਜੋਸੀ ਕੋਈ ਨਾਂ
ਦੇਵਮ ਦਸ, ਵੇ ਵਲ ਵਾਪਸ ਵੈ।
ਜੋ ਕੁਝ ਕੀਤੋ ਚੰਗੀ ਕੀਤੋ ਹਈ,
ਸ਼ਾਬਾਸ਼, ਸ਼ਾਬਾਸ਼, ਵੇ ਵਲ ਵਾਪਸ ਵੈ।
ਗਮਨਾਕ ਦੇ ਚਾਕ ਛੁਟਾਏਂ, ਜੁਲਮ
ਕਨੂੰ ਕਰ ਬਸ, ਵੇ ਵਲ ਵਾਪਸ ਵੈ।
ਅਜ ਕਲ ਆਵਣ ਕੀਤੋ, ਮਾਹੀ ਤੈਡੀ,
ਅਜ ਕਲ ਮੂਲ ਨ ਖੁਟਦੀ।
ਸਾਂਗ ਹਿਜਰ ਦੀ ਲਗੀ ਹਿਮ,

ਪੀੜ ਜਿਗਰ ਵਿਚ ਉਠਦੀ।
ਹੱਡ ਚੰਮ ਜਲ ਬਲ ਖੇਹ ਥੀਏ,
ਅਜਨ ਸੋਜ਼ੂ ਜਿੰਦ ਨ ਛੁੱਟੇ।
ਗਮਨਾਕ ਫਰਾਕ ਦੀ ਰਾਤ ਭੈੜੀ,
ਅਜਨ ਪਾਰਾ ਨਾਂ ਫੁੱਟੇ ।
ਔਖੀ ਉਮਰ ਗੁਜ਼ਾਰਨ ਤੋਂ ਬਿਨ,
ਡੁੱਖੀ ਦੇਹੁ ਗੁਜ਼ਰਦੇ ।
ਨਕਸ਼ ਨਿਗਾਰ ਅਤੇ ਅੰਗ ਢੰਗ ਦਿਲ ਤੋਂ
ਹਰਗਿਜ਼ ਨਹੀਂ ਵਿਸਰ ਦੇ, ਤੈਂ ਦਿਲਬਰ ਦੇ।
ਜਿੰਦੜੀ ਘਾਲਿਮ ਵਲ ਨਾ ਭਾਲਿਓ,
ਤਰਫ ਇਹੀ ਅਬਦਰ ਦੇ, ਨਾਲ ਮੇਹਰ ਦੇ।
ਸਿਰ ਦੇ ਵੈਰੀ ਨਾਲ ਕਹਿੰਦੇ ਇਹੋ,
ਜਹੇਆਂ ਨਹੀਂ ਕਰੇਂਦੇ ਤੋਰਾਂ ਸਰਦੇ ।
ਪਏ ਭੁਗਤ ਸੂੰ ਛੋੜ ਨਾ ਵੈਸੂੰ
ਝੁਰਦਾ ਮਰਦਾ ਥੀ ਕੇ ਬਰਦਾ।
ਮੂਲ ਨ ਲੈਹਸਮ ਕਬਰ ਵਿਚਾਲੇ,
ਇਹੋ ਦਾਗ ਹਿਜਰ ਦੇ। ਦਰਦ ਅੰਦਰ ਦੇ।
ਗਮਨਾਕ ਫਰਿਆਦ ਕਰੇਸੂੰ ਅਗੂੰ,
ਰਬ ਅਕਬਰ ਦੇ ਰੋਜ ਹਸ਼ਰ ਦੇ।
ਯਾਰ ਮੈਡਾ ਦਿਲਬਰ ਮੈਡਾ ਨਾਂ ਕਰ ਤੂੰ
ਮਾਨ, ਵਿਡਿਆਈ ਹਿਕ ਮੇਹਰ ਦੀ।
ਦੀਦ ਨਾ ਭਾਲਿਆਂ ਏਵੇਂ ਮੈਡੀ ਗਲ ਗਈ
ਉਮਰ ਅਜਾਈ ਸਿਕ ਤੈਡੀ ਵਿਚ।

ਰੁਲਦਿਆਂ ਫਿਰਦਿਆਂ ਮੈਕੂੰ ਵਿਸਰਿਮ ਮਾਂ
ਪਿਓ ਭਾਈ, ਬੇਕਸ ਸੈ ਸੈ।
ਅਰਜ਼ਾਂ ਕੀਤੀਆਂ ਥੀਆ ਮਨਜ਼ੂਰ ਨਾਂ ਕਾਈ॥

(੨)

ਯਾਰ ਨਾ ਨੇਰੇ ਅਤੇ ਹਰ ਕੋਈ ਜੇਹਰੇ,
ਹੁਣ ਕਿੱਧੇ ਮਹੂੰ ਕਰੇ ਜੇ ?
ਮੌਤ ਆਵੇ ਯਾ ਵਤ ਥੀਵੇ ਮੇਲਾ, ਤਾਂ ਆਜ਼ਾਦ ਬਵੀਜੇ।
ਨਾਂ ਵਤ ਖੇਸ਼ ਕਬੀਲੇ ਤੋਂ, ਨਿਤ ਮੈਂਹਰੇ ਹੱਥ ਰਹੀਜੇ।
ਕਿਆ ਪੁਛਦੇਂ ? ਗ਼ਮਨਾਕ ਸਭੇ ਹਨ, ਨੇਹ ਦੇ ਇਹ ਨਤੀਜੇ।
ਹਿਕ ਅਰਜ਼ ਕੀਤਿਅਮ ਦਿਲ ਜਾਨੀ ਕੂੰ, ਚੁਪ ਕਰਕੇ ਲੰਘ ਵੈਂਦਾ।
ਬੈਹ ਗੋਸ਼ੇ ਸਮਝਾਵਾਂ ਦਿਲ ਕੂੰ, ਨਾਂ ਘਿਨ ਨਾਂ ਸੋਹਣੇ ਦਾ।
ਨਹੀਂ ਵਫਾ ਵਿਚ ਏਂਦੇ ਕੂੰ, ਦਿਲ ਪਿਆ ਖਸ ਵੈਂਦਾ।
ਬੇਕਸ ਦਰਦਾਂ ਮੂਲ ਨਾਂ ਛੋਡਿਆ, ਤੋਰ ਰਹਿਮ ਕੰਡ ਵਲੇਂਦਾ।

(੩)

ਕਾਫ ਕਾਸਦਾ ਤੈਂ ਕੂੰ ਕਸਮ ਏ ਰਬ ਦੀ,
ਵੰਞ ਆਖੀਂ ਯਾਰ ਕੂੰ ਇਵੇਂ।
ਸਾਲਾ ਜੀਵੇਂ, ਹਰਦਮ ਜੀਵੇਂ।
ਅਸਲੋਂ ਪੂਰਾ ਮੂਲ ਨਾਂ ਕੀਤੋ,
ਹੁਣ ਅਕਰਾਰ ਕੂੰ ਇਵੇਂ, ਸ਼ਾਲਾ ਜੀਵੇਂ।
ਤਾਂਘਾ ਦੇ ਵਿਚ ਗਾਲ ਦਿਤਿਓ ਹਈ,
ਸਾਡੇ ਹਾਰ ਸਿੰਗਾਰ ਕੂੰ ਇਵੇਂ, ਸ਼ਾਲਾ ਜੀਵੇਂ।

ਬੇਂਦੀ ਮੂਲ ਨਾਂ ਹਈ ਮੂਲ ਹਰਗਿਜ਼ ਤੈਂ
ਦਿਲ ਕੂੰ ਇਵੇਂ, ਸ਼ਾਲਾ ਜੀਵੇਂ ।
ਏ ਨੌ ਰੋਜ਼, ਮੈਂ ਕਾਈ ਤਾਈਂ ਕੂਕਾਂ
ਹਈਂ ਅਜਾਰ ਕੂੰ ਇਵੇਂ, ਸ਼ਾਲਾ ਜੀਵੇਂ ।

(੪)

ਮਾਏ, ਨੀਂ ਮਾਂ ! ਮਲਾਮਤ ਕਰ ਨਾਂ ਮੈਕੂੰ ।
ਮਾਏ ਕੈਂਚ ਕਨੂੰ ਨਾ ਮੁੜਸਾਂ,
ਏਹ ਜਾਨ ਪਿਆਰੀ ਲਖ ਲਖ ਵਾਰੀ,
ਸਦਕੇ ਯਾਰ ਦੇ ਕਰਸਾਂ।
ਯਾਰ ਵਸਾਇਆ ਤਾਂ ਵਸ ਵੈਸਾਂ
ਉਜੜੀ ਪੁਜੜੀ ਮੁਰਸਾਂ ।
ਯਾਰ ਗੂਦਾਸ ਦੀ ਬਨ ਬਨਹੀ ਬਰਦੀ ਥੀਕੇ;
ਸਿਰ ਤੇ ਤਨਸਾਂ, ਪਾਣੀ ਭਰਸਾਂ ॥

(੫)

(ੳ) ਆ ਮਾਹੀ, ਤੇਡੇ ਆਵਣ ਦੇ ਲਖ ਐਹਸਾਨ ਮਨੇਸਾਂ,
ਕਦਮ ਚੁਮੇਸਾਂ,
ਸੀਸ ਨਵੇਸਾਂ,
ਇਸਤਕਬਾਲ ਕਰੇਸਾਂ।
ਉਨਹੇਂ ਸੇਂਗੀਆਂ ਤਾਣੇ ਦੇਂਦੀਆਂ ਕੂੰ ਸੜ, ਤੇਦਾ ਹੁਸਨ ਡਖੇਸਾਂ ।
(ਅ) ਮੈਹਮਾਨੀ ਨੌ ਰੋਜ਼ ਸਜਣ ਕੂੰ,
ਮੈਂ ਮਿਠੜਾ ਜੋਬਨ ਡੇਸਾਂ,

ਕੌਲ ਬਲੇਸਾਂ,
ਭੁਖ ਵੰਞੇਸਾ,
ਐਸ਼ ਕਰੇਸਾਂ ।

(੬)

ਮੁਦਤ ਹੋਈ ਯਾਰ ਨਾਂ ਮਿਲਿਆ,
ਹਾਇ ਵੇ ਲੋਗੋ ਲੁਟੀਆ ।
ਕਾਂ ਉਡੇਂਦੀ, ਪੀਰ ਸੁਰੇਂਦੀ, ਰਾਹ ਬਾਲੇਂਦੀ ਹੁਟੀਆਂ ।
ਬਿਸਮਲ ਵਾਂਗੇ ਪਈ ਤੜਫਾਵਾਂ
ਨਿਤ ਹਿਜਰ ਦੀ ਕੁਠੀਆਂ ।
ਭੈੜੀ ਅਮੜੀ ਜੋੜ ਪਿਲਾਕਿਮ ਦਰਦ ਲੱਖਾਂ ਦੀਆਂ ਘੁਟੀਆਂ ।

ਉਪਰ ਲਿਆਂ ਗੀਤਾਂ ਵਿਖੇ ਜਿੱਥੇ ਜਿੱਥੇ ਕਿਸੇ ਸ਼ਬਦ ਹੇਠ ਲਕੀਰ ਖਿੱਚੀ ਗਈ ਹੈ, ਉਸ ਦਾ ਭਾਵ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸ਼ਬਦਾ ਦਾ ਪ੍ਰਯੋਗ ਮਧਜ ਪੰਜਾਬ ਦੇਸ ਦੀ ਬੋਲੀ ਵਿਖੇ ਨਹੀਂ ਜਾਂ ਬਹੁਤ ਘਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ । ਅਰ ਉਹ ਹੀ ਸ਼ਬਦ ਜਦ ਅਸੀਂ ਮੁੜ ੨ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿਖੇ ਭੀ ਦੇਖੀਆ ਤਾਂ ਇਹ ਕੈਹਣੋਂ ਉੱਕਾ ਹੀ ਸੰਕੋਚ ਨਾਂ ਹੋਵੇਗਾ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਦੀ ਬੋਲੀ ਅਧਿਕ ਕਰਕੇ ਮੁਲਤਾਣੀ ਹੀ ਹੈ।

ਮੁਲਤਾਣੀ ਪੰਜਾਬੀ ਬੋਲੀ ਵਿਖੇ ਫਾਰਸੀ ਵਾਂਗੂ ਕ੍ਰਿਯਾ ਇਕ ਵਚਨ, ਉੱਤਮ ਪੁਰਖ ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ "ਮ" ਲਗਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਜਿਕਰ 'ਵੈਸਾਂ' ਤੋਂ 'ਵੈਸਮ'—'ਵਿਸਾਰ ਨਾ ਵੈਸਮ ਘੁੰਮਣ ਯਾਰ ਤੈਡੀ ਬਾਹਾਂ ਸਰਹਾਂਦੀ ।' ਤੇ ਹੋਰ ਦੇਖੋ ਉਪਰਲਿਆਂ ਗੀਤਾਂ ਵਿਖੇ—'ਸਟਿਅਮ'

'ਦੇਵਮ', 'ਕੀਤਿਅਮ' ਲਹਸਮ, ਵਿਸਰਿਮ। ਉਧਰ ਦੇਖੋ ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿਖੇ–'ਫਰੀਦਾ ਇਨੀ ਨਿਕੀ ਜੰਘੀਐ ਥਲ ਡੂਗਰ ਭਵਿਓਮਿ। ਅਜ ਫਰੀਦੈ ਕੂਜੜਾ ਸੈ ਕੋਹਾਂ ਥੀਓਮਿ॥ ੨੦॥' ਤੇ ਫੇਰ 'ਅਜ ਮਿਲਾਵਾ ਸ਼ੇਖ ਫਰੀਦ ਟਾਕਿਮ ਕੂੰਜੜੀਆਂ ਮਨਹੁ ਮਚਿੰਦੜੀਆਂ।

ਮੁਲਤਾਣੀ ਵਿਚ 'ਦੁਖ' ਸਬਦ ਦੇ 'ਦ' ਅਖਰ ਨੂੰ 'ਡ' ਬੋਲਦੇ ਹਨ, ਜਿਕਰ ਦੇਖੋ ਉਪਰਲੇ ਗੀਤਾਂ ਵਿਖੇ–'ਔਖੀ ਉਮਰ ਗੁਜ਼ਾਰਣ ਤੋਂ ਬਿਨ ਡੁੱਖੀ ਦੇਹੁ ਗੁਜ਼ਰ ਦੇ, ਜ਼ੁਲਮ ਕੈਹਰ ਦੇ।' ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਵਿਖੇ 'ਫਰੀਦਾ ਡੁਖਾ ਸੇਤੀ ਦਿਹੁ ਗਇਆ ਸੂਲਾਂ ਸੇਤੀ ਰਾਤ।' ਹੋਰ 'ਫਰੀਦਾ ਰਬ ਖਜੂਰੀ ਪਕੀਆਂ ਮਾਖਆ ਨਈ ਵਹੰਨਿ। ਜੋ ਜੋ ਵੰਞੈ ਡੀਹੜਾ ਸੁ ਉਮਰ ਹਥ ਪਵੰਨਿ॥' ਹੋਰ 'ਘੜੀਏ ਘੜੀਏ ਮਾਰੀਐ ਪਹਰੀ ਲਹੈ ਸਜਾਇ। ਸੋ ਹੇੜਾ ਘੜੀਆਲ ਜਿਉਂ ਡੁਖੀ ਰੈਣਿ ਵਿਹਾਇ॥ ੪੦॥'

'ਵੰਞ' 'ਵੈਂਦਾ' 'ਵੈਸੂੰ' ਆਦਿ ਕ੍ਰਿਯਾਵਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਮੁਲਤਾਣੀ ਵਿਚ ਆਮ ਹੈ। ਜਿਕਰ–'ਪਏ ਭੁਗਤ ਸੂੰ ਛੋੜ ਨ ਵੈਸੂੰ, ਝਰਦਾ ਮਰਦਾ ਥੀ ਕੇ ਬਰਦਾ।' 'ਹਿਕ ਅਰਜ ਕੀਤਿਅਮ ਦਿਲ ਜਾਣੀ ਕੂੰ ਚੁਪ ਕਰਕੇ ਲੰਘ ਵੈਂਦਾ'। ਹੋਰ 'ਕਾਸਦਾ ਤੈਂ ਕੂੰ ਕਸਮ ਏ ਰਬ ਦੀ ਵੰਞ ਆਖੀਂ ਯਾਰ ਕੂੰ ਇਵੇਂ।' ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਲਿਖਦੇ ਹਨ– 'ਫਰੀਦਾ ਦਰ ਦਰਵੇਸੀ ਗਾਖੜੀ ਚੱਲਾਂ ਦੁਨੀਆਂ ਭਤਿ। ਬੰਨਿ ਉਠਾਈ ਪੋਟਲੀ ਕਿਥੈ ਵੰਞਾ ਘਤਿ॥' 'ਫਰੀਦਾ ਕੂਕੇਦਿਆਂ ਚਾਂਗੇਦਿਆਂ ਮੱਤੀ ਦੇਂਦਿਆ ਨਿਤ। ਜੋ ਸੈਤਾਣ ਵੰਞਾਇਆ ਸੇ ਕਿਤ ਫੇਰਹਿ ਚਿਤ॥੧੫॥ ਹੋਰ 'ਫਰੀਦਾ ਮੰਡਪੁ ਮਾਲ ਨ ਲਾਇ ਮਰਗ ਸਤਾਣੀ ਚਿਤਿ ਧਰਿ। ਸਾਈ ਜਾਇ ਸਮਾਲ ਜਿਥੈ ਹੀ ਤਉ ਵੰਞਣਾ॥ ੫੮॥' 'ਫਰੀਦਾ ਰਬ ਖਜੂਰੀ

ਪਕੀਆਂ ਮਾਖਿਆ ਨਈ ਵਹੰਨਿ । ਜੋ ਜੋ ਵੰਞੈ ਡੀਹੜਾ ਸੁ ਉਮਰ ਹਥ ਪਵੰਨਿ ॥ ੮੯ ॥'

ਜੇਕਰ ਉਪਰਲਿਆ ਗੀਤਾਂ ਨੂੰ ਧਿਆਨ ਨਾਲ ਪੜ੍ਹੀਏ ਤਾਂ ਪਤਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਕਿ 'ਕਨੂੰ', 'ਤੇਡੀ', 'ਥੀ ਕੇ', 'ਹਿਕ', 'ਮੈਡੀ', 'ਘਿਨ', 'ਕਰੇਸਾਂ', 'ਚੁਮੇਸਾਂ' ਆਦਿਕ-ਸ਼ਬਦਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਮੁਲਤਾਣੀ ਬੋਲੀ ਵਿਖੇ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਜੋ ਮੁੜ ਅਸੀਂ ਫਰੀਦਾ ਜੀ ਦੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਵਿਖੇ ਦਰਜ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਸ਼ਲੋਕਾਂ ਵਿਖੇ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ—ਦੇਖੋ ਸ਼ਲੋਕ ਨੰਬਰ ੯੯, ੬੧, ੭੩, ੯, ੧੦, ੧੬, ੨੦, ੪੯, ੫੯, ੨੨੫, ੩੮, ੭੪ ਆਦਿ।

ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਬਹੁਤੀ ਬਾਣੀ ਹੱਡ ਬੀਤੀ ਜਾਪਦੀ ਹੈ । ਪਾਠਕਾਂ ਨੂੰ ਸ਼ਾਇਦ ਪਤਾ ਹੋਵੇਗਾ ਜੋ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ੩੬ ਵਰਹੇ ਬੜੀ ਕਠਨ ਤਪਸਿਆਂ ਕੀਤੀ ਅਰ ਬਿਰਦ ਅਵੱਸਥਾ ਤੀਕ ਰਬ ਦੀ ਭਗਤੀ ਕਰਦੇ ਰਹੇ । ਆਪ ਲਿਖਦੇ ਹਨ—

ਬੁਢਾ ਹੋਆ ਸੇਖ ਫਰੀਦੁ ਕੰਬਣਿ ਲਗੀ ਦੇਹਿ।
ਜੇ ਸਉ ਵਰਿਆ ਜੀਵਣਾ ਭੀ ਤਨੁ ਹੋਸੀ ਖੇਹ ॥ ੪੧ ॥

ਫਰੀਦਾ ਚਿੰਤ ਖਟੋਲਾ ਵਾਣੁ ਦੁਖੁ ਬਿਰਹ ਵਿਛਾਵਣ ਲੇਫੁ।
ਏਹੁ ਹਮਾਰਾ ਜੀਵਣਾ ਤੂੰ ਸਾਹਿਬ ਸਚੇ ਵੇਖੁ ॥ ੩੫ ॥
ਫਰੀਦਾ ਤਨੁ ਸੁਕਾ ਪਿੰਜਰੁ ਥੀਆ ਤਲੀਆਂ ਖੂੰਡਹਿ ਕਾਗ।
ਅਜੈ ਸੁ ਰਬੁ ਨ ਬਾਹੁੜਿਓ ਦੇਖੁ ਬੰਦੇ ਕੇ ਭਾਗ ॥ ੯੦ ॥

ਕਾਗਾ ਕਰੰਗ ਢਢੋਲਿਆ ਸਗਲਾ ਖਾਇਆ ਮਾਸੁ।
ਏ ਦੁਇ ਨੈਣਾਂ ਮਤਿ ਛੁਹਉ ਪਿਰ ਦੇਖਣ ਕੀ ਆਸ ॥ ੯੧ ॥

ਕਾਗਾ ਚੂੰਡਿ ਨ ਪਿੰਜਰਾ ਬਸੈ ਨ ਉਡਿਰ ਜਾਹਿ।
ਜਿਤੁ ਪਿੰਜਰੇ ਮੇਰਾ ਸਹੁ ਵਸੈ ਮਾਸੁ ਨ ਤਿਦੂ ਖਾਹਿ॥ ੯੨॥

ਫਰੀਦਾ ਸਿਰ ਪਲਿਆ ਦਾੜੀ ਪਲੀ ਮੁਛਾਂ ਭੀ ਪਲੀਆਂ।
ਰੇ ਮਨ ਗਹਿਲੇ ਬਾਵਲੇ ਮਾਣਹਿ ਕਿਆ ਰਲੀਆਂ॥ ੫੫॥

ਫਰੀਦਾ ਚਿੰਤ ਖਟੋਲਾ ਵਾਣੁ ਦੁਖੁ ਬਿਰਹ ਵਿਛਾਵਣ ਲੇਫ।
ਏਹੁ ਹਮਾਰਾ ਜੀਵਣਾ ਤੂੰ ਸਾਹਿਬ ਸਚੇ ਵੇਖਿ॥ ੩੫॥

ਫਰੀਦਾ ਅਖੀ ਦੇਖ ਪਤੀਣੀਆ ਸੁਣਿ ਸੁਣਿ ਰੀਣੇ ਕੰਨ।
ਸਾਖ ਪਕੰਦੀ ਆਈਆ ਹੋਰ ਕਰੇਂਦੀ ਵੰਨ॥ ੧੧॥

ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਇਕ ਵੈਰਾਗ ਰਸ ਦਾ ਸਮਾਂ ਬਧਾ ਹੈ ਅਰ ਇਸ ਨੂੰ ਕਈ ਵਾਰੀ ਪੜ੍ਹਨ ਤੋਂ ਭੀ ਜੀ ਨਹੀਂ ਉਕਸਾਉਂਦਾ। ਹਡ—ਬੀਤੇ ਮਾਮਲੇ, ਦੁਣੀਆਂ ਦੇ ਤਜਰਬੇ, ਪਿਆਰ ਦਾ ਅਨੋਖਾ ਸੁਆਦ ਤੇ ਹੋਰ ਕਈ ਸੋਹਣੇ ਉਪਦੇਸ਼ ਬਾਬਾ ਜੀ ਨੇ ਸੁਆਦਲੇ ਢੰਗ ਨਾਲ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿਖੇ ਭਰ ਦਿੱਤੇ ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਸਰਲ ਅਰ ਸੁਖੈਣ ਹੈ ਅਰ ਇਹ ਹੀ ਕਾਰਨ ਹੈ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਉਪਦੇਸ਼ ਹਰ ਛੋਟੇ ਵੱਡੇ ਦੇ ਮਹੂੰ ਤੇ ਹਨ। ਨਮੂਨੇ ਮਾਤਰ ਕੁਝ ਕੁ ਸ਼ਲੋਕ ਤੇ ਸ਼ਬਦ ਹੇਠਾਂ ਦੇਂਦੇ ਹਾਂ—

ਫਰੀਦਾ ਖਾਕੁ ਨ ਨਿੰਦੀਐ ਖਾਕੂ ਜੇਡ ਨ ਕੋਇ।
ਜੀਂਵਦਿਆਂ ਪੈਰਾਂ ਤਲੈ ਮੋਇਆ ਉਪਰਿ ਹੋਇ॥ ੧੭॥

ਫਰੀਦਾ ਰੋਟੀ ਮੇਰੀ ਕਾਠ ਕੀ ਲਾਵਣੁ ਮੇਰੀ ਭੁਖ।
ਜਿਨਾ ਖਾਧੀ ਚੋਪੜੀ ਘਣੇ ਸਹਿਣਗੇ ਦੁਖ॥ ੨੮॥

ਰੁਖੀ ਸੁਖੀ ਖਾਇਕੈ ਠੰਢਾ ਪਾਣੀ ਪੀਉ।

ਫਰੀਦਾ ਦੇਖਿ ਪਰਾਈ ਚੋਪੜੀ ਨਾ ਤਰਸਾਏ ਜੀਉ ॥ ੨੯ ॥
ਜੋਬਨ ਜਾਂਦੇ ਨਾ ਡਰਾਂ ਜੇ ਸਹੁ ਪ੍ਰੀਤਿ ਨ ਜਾਇ ।
ਫਰੀਦਾ ਕਿਤੀਂ ਜੋਬਨ ਪ੍ਰੀਤਿ ਬਿਨੁ ਸੁਕਿ ਗਏ ਕੁਮਲਾਇ ॥ ੩੪ ॥
ਫਰੀਦਾ ਜਿਨੀ ਕੰਮੀ ਨਾਹਿ ਗੁਣ ਤੇ ਕੰਮੜੇ ਵਿਸਾਰਿ।
ਮਤ ਸਰਮਿੰਦਾ ਥੀਵਈ ਸਾਈ ਦੇ ਦਰਬਾਰ ॥ ੫੯ ॥

ਰਾਗ ਆਸਾ

ਬੋਲੈ ਸ਼ੇਖ ਫਰੀਦੁ ਪਿਆਰੇ ਅਲਹ ਲਗੇ ।
ਇਹੁ ਤਨੁ ਹੋਸੀ ਖਾਕ ਨਿਮਾਣੀ ਗੋਰ ਘਰੇ ॥ ੧ ॥
ਆਜ ਮਿਲਾਵਾ ਸੇਖ ਰਰੀਦ ਟਾਕਿਮ
ਕੂੰਜੜੀਆਂ ਮਨਹੁ ਮਚਿੰਦੜੀਆ ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥
ਜੇ ਜਾਣਾ ਮਰਿ ਜਾਈਐ ਘੁਮਿ ਨ ਆਈਐ ॥
ਝੂਠੀ ਦੁਨੀਆ ਲਗਿ ਨ ਆਪੁ ਵਵਾਈਐ ॥ ੨ ॥
ਬੋਲੀਐ ਸਚੁ ਧਰਮੁ ਝੂਠੁ ਨ ਬੋਲੀਐ ॥
ਜੋ ਗੁਰ ਦਸੇ ਵਾਟ ਮੁਰੀਦਾ ਜੋਲੀਐ ॥ ੩ ॥
ਛੈਲ ਲੰਘੰਦੇ ਪਾਰਿ ਗੋਰੀ ਮਨੁ ਧੀਰਿਆ।
ਕੰਚਨ ਵੰਨੇ ਪਾਸੇ ਕਲਵਤਿ ਚੀਰਿਆ ॥ ੪ ॥
ਸੇਖ ਹਯਾਤ੍ਰੀ ਜਗਿ ਨ ਕੋਈ ਥਿਰੁ ਰਹਿਆ।
ਜਿਸੁ ਆਸਣਿ ਹਮ ਬੈਠੇ ਕੇਤੇ ਬੈਸਿ ਗਇਆ ॥ ੫ ॥
ਕਤਿਕ ਕੂੰਜਾਂ ਚੇਤਿ ਡਉ ਸਾਵਣਿ ਬਿਜੁਲੀਆਂ ।
ਸੀਆਲੇ ਸੋਹੰਦੀਆਂ ਪਿਰ ਗਲਿ ਬਾਹੜੀਆਂ ॥ ੬ ॥
ਚਲੇ ਚਲਣ ਹਾਰ ਵਿਚਾਰਾ ਲੇਇ ਮਨੋ ।
ਗੰਢੇਦਿਆਂ ਛਿਆ ਮਾਹ ਤੁੜੰਦਿਆਂ ਹਿਕੁ ਖਿਨੋ ॥ ੭ ॥
ਜਿਮੀਂ ਪੁਛੈ ਅਸਮਾਨ ਫਰੀਦਾ ਖੇਵਟ ਕਿਨਿ ਗਏ।

ਜਾਲਣ ਗੋਰਾਂ ਨਾਲਿ ਉਲਮੇ ਜੀਆ ਸਹੇ ॥ ੮ ॥

ਹੇਠਾਂ ਅਸੀਂ ਕੁਝ ਕੁ ਵਨਗੀ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚੋਂ ਹੋਰ ਦੇਂਦੇ ਹਾਂ ਜੋ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਵਿਖੇ ਦਰਜ ਨਹੀਂ—

੧. ਉਠ ਫਰੀਦਾ ਸੁਤਿਆ, ਮਨ ਕਾ ਦੀਵਾ ਬਾਲ।
ਸਾਹਿਬ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਜਾਗਦਾ, ਨਫਰਾਂ ਕੀਹ ਸੌਨੇ ਨਾਲ ॥

੨. ਚੱਕੀ ਚਲਦੀ ਵੇਖ ਕੇ, ਦੀਆ ਫਰੀਦੇ ਰੋਏ।
ਦੂਹਾਂ ਪੁੜਾਂ ਵਿਚ ਆਨਕੇ, ਸਾਬਤ ਰਿਹਾ ਨਾ ਕੋਏ।
ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਰਬ ਰਖਦਾ, ਰਹੇ ਕਿੱਲੀ ਮੁਢ ਖਲੋ ॥

੩. ਕੰਨਾਂ ਦੰਦਾਂ ਅੱਖੀਆਂ ਸਭਨਾਂ ਦਿੱਤੀ ਹਾਰ।
ਵੇਖ ਫਰੀਦਾ ਛੱਡ ਗਏ ਮੁਡ ਕਦੀਮੀ ਯਾਰ ॥

੪. ਫਰੀਦਾ ਐਸਾ ਹੋ ਰਹੁ, ਜੈਸੇ ਕਖ ਮਸੀਤ।
ਪੈਰਾਂ ਹੇਠ ਲਤਾੜੀਏ, ਸਾਹਿਬ ਨਾਲ ਪਰੀਤ ॥

੫. ਉੱਠ ਫਰੀਦਾ ਗਵਨ ਕਰ, ਦੁਨੀਆ ਦੇਖਨ ਜਾ।
ਕੋਇ ਜੋ ਬਖਸਿਆ ਮੋਹ ਮਿਲੈ, ਮੈਂ ਭੀ ਬਖਸ਼ਿਆ ਜਾ।

੬. ਕਬਰਾਂ ਵਲ ਵੇਖਕੇ—
ਓ ਜੋ ਦਿਸਣ ਢੇਰੀਆਂ, ਉਪਰ ਕਖ ਪਏ।
ਓਧਰੋਂ ਕੋਈ ਨ ਆਇਆ, ਏਧਰੋਂ ਲਖ ਗਏ ॥

੭. ਕੂਕ ਫਰੀਦਾ ਕੂਕ ਤੂੰ, ਜਿਉਂ ਰਾਖਾ ਜਵਾਰ।
ਜਬ ਲਗ ਟਾਂਡਾ ਨਾ ਗਿਰੇ, ਤਬ ਲਗ ਕੂਕ ਪੁਕਾਰ ॥

੮. ਫਰੀਦਾ ਮੈਂ ਨੂੰ ਮਾਰੀਂ ਮੁੰਜ ਕਰ, ਨਿਕੀ ਕਰਕੇ ਕੁਟ।
ਭਰੇ ਖਜ਼ਾਨੇ ਰਬ ਦੇ, ਜੋ ਭਾਵੇ ਸੋ ਲੁਟ ॥

੯. ਕਾਗਾ ਨੈਨ ਨਿਕਾਸ ਦੂੰ, ਪਿਅ ਕੇ ਦਿੱਖ ਲੇਇ ਜਾਹ।
ਪੈਹਲੇ ਦਰਸ ਦਿਖਾਇ ਕੇ, ਪਾਛੇ ਲੀਜਇ ਖਾਹ ॥

ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ

{ ਲਿਖਤ ਲੱਧਾ ਸਿੰਘ ਗਿਆਨੀ ਹਜ਼ੂਰੀ ਰਾਗੀ
ਰਿਆਸਤਫਰੀਦ ਕੋਟ }

ਬਮੂਜਬ ਰੋਬਕਾਰ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਪ੍ਰੈਜੀਡੈਂਟ ਸਾਹਿਬ ਬਹਾਦਰ ਕੌਂਸਲ ਆਲੀਆ ਰਿਆਸਤ ਫਰੀਦ ਕੋਟ ।



ਸ਼ੇਖ਼ ਫਰੀਦ, ਜੀ ਦਾ ਜਨਮ ਸੰਮਤ ੧੨੩੧ (ਸੰਨ ੧੧੭੩) ਰਮਜਾਨ ਦੇ ਮਹੀਨੇ ਜਿਸ ਦਿਨ ਪਹਿਲਾ ਰੋਜਾ ਸੀ ਉਸ ਦਿਨ ਮਾਤਾ ਮਰਯਮ, ਸੁਪਤਨੀ ਸ਼ੇਖ ਜਲਾਲੁ ਦੀਨ ਸੁਲੈਮਾਨ ਦੇ (ਜੋ ਖਲੀਫਾ ਉੱਮਰ ਦੀ ਸੰਤਾਨ ਵਿੱਚੋਂ ਸੀ) ਘਰ ਪਿੰਡ ਕੋਠੀ ਵਾਲ ਜ਼ਿਲਾ ਮੁਲਤਾਨ ਵਿਚ ਹੋਇਆ।

ਆਪ ਖ੍ਵਾਜਾ ਕੁਤਬੁ ਦੀਨ ਬਖਤਯਾਰ ਕਾਕੀ ਦੇ ਮੁਰੀਦ ਹੋਕੇ, ਬੜੇ ਵਿੱਦਜਾਵਾਨ ਤਿਆਗੀ ਤਪੱਸ੍ਰੀ ਕਰਤਾਰ ਦੇ ਭਜਨ

ਵਾਲੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਮਜ਼੍ਹਬ ਦੇ ਸਰਗਰੋਹ ਹੋਏ ਹਨ, ਅਤੇ ਆਪ ਦਾ ਨਿਵਾਸ ਦੇਹਾਂਤ ਪਾਕ ਪਟਨ ਜ਼ਿਲਾ ਮਿੰਟਗੁਮਰੀ ਪਇਆ ਗਿਆ ਹੈ ।

ਆਪ ਦੀਆਂ ੪ ਸਾਦੀਆਂ ਸਨ ਜਿਹਨਾਂ ਵਿਚੋਂ ੧ ਦਿਲੀ ਦੇ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਮੁਸਲਮਾਨ ਦੀ ਲੜਕੀ ਨਾਲ, ਜੇਹੜੀ ਫਕੀਰੀ ਲਿਬਾਸ ਵਿਚ ਸਾਥ ਰਹਿੰਦੀ ਸੀ ।

ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੰਤਾਨ ਪੰਜ ਪੁਤ੍ਰ ਤੇ ੩ ਲੜਕੀਆਂ ਸਨ, ਆਪ ਜਿਆਦਾ ਦੇਸ਼ਾ ਰਟਨ ਕਰਦੇ ਤੇ ਜੰਗਲਾਂ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦੇ ਫਿਰਦੇ ਸਨ ।

ਇਸੀ ਸਿਲਸਿਲੇ ਵਿਚ ਤਮਾਮ ਹਿੰਦ ਵਿਚ ਫਿਰਕੇ ਬੇ-ਗਿਣਤ ਹਿੰਦੂ ਘਰਾਣਿਆਂ ਦੇ ਹਜਾਰਾਂ ਦੀ ਤਾਦਾਦ ਵਿਚ ਹਿੰਦੂ ਆਪ ਦੇ ਬਚਨ ਬਿਲਾਸ ਸੁਨਕੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਹੋਏ ਤੇ ਏਸ ਹਾਲਤ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਫੇਰ ਕੌਮਾਂ ਦੀਆਂ ਕੌਮਾਂ ਨੂੰ ਮੁਸਲਮਾਨ ਬਨਾਇਆ ਗਿਆ ।

ਬਾਵਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੇ ਵੱਡਕੇ ਕਾਫੀ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚ ਆਇ ਹੋਏ ਸਨ, ਅਤੇ ਇਹਨਾਂ ਭੀ ਕਰ।ਬਨ ੯੫ ਬਰਸ ਜੱਟਾਂ ਜਿਮੀਂਦਾਰਾਂ ਵਿਚ ਹੀ ਗੁਜ਼ਾਰੇ ਇਸ ਲਈ ਏਹਨਾਂ ਦੀ ਜ਼ਬਾਨ ਰਚਨਾ ਚੰਗੀ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਚ ਹੈ ਜ਼ਿਸਦੇ ਨਾਲ ਤਮਾਮ ਵਡੇ ਤੇ ਛੋਟੇ ਦਰਜੇ ਦੇ ਆਦਮੀਆਂ ਨੂੰ ਸਨਾਕੇ ਆਪਣੇ ਖਿਆਲਾਂ ਵੱਲੇ ਪਰੇਰ ਦੇ ਰਹੇ ਹਨ ।

ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਰਾਗ ਸੁਨਾਉਣ ਵਾਲੇ "ਕਵਾਲ" ਜੋ ਹਿੰਦੂਆਂ ਤੋਂ ਮੁਸਲਮਾਨ ਹੋਕੇ ਵੈਰਾਗ ਭਰੇ ਗੀਤ ਤੇ ਕਾਫੀਆਂ ਸੁਨਾਂਦੇ ਸਨ ਜਿਹਨਾਂ ਨੂੰ ਸੁਣਕੇ ਬਾਵਾ ਸਾਹਿਬ ਆਪਣੇ ਹਮ ਰਾਹੀਆਂ ਸਮੇਤ ਮਸਤਾਨੇ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਸਨ।

ਮਸੀਤਾਂ ਅੰਦਰ ਰਾਗ ਸੁਣਨ ਵਾਸਤੇ ਮਜਲਸ ਕਰਨੀ ਬਾਵਾ ਜੀ ਵਾਸਤੇ ਰੁਕਾਵਟ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਅਰ ਪੰਜੇ ਵਕਤ ਨਮਾਜ ਲਈ ਬਾਵਾ ਸਾਹਿਬ ਮਸੀਤੇ ਜਾਣ ਦੇ ਪਾਬੰਦ ਨਹੀਂ ਸੇ। ਖ਼ੁਹਾਸ਼ਮੰਦਾਂ ਨੂੰ ਤਵੀਤ ਭੀ ਲਿਖਕੇ ਦਿੰਦੇ ਸਨ ਜਿਸ ਵਿਚ ਅੱਲਾ ਦਾ ਨਾਮ ਲਿਖਦੇ।

ਸੁਨਦੇ ਹਾਂ। ਨਿੰਮ੍ਰਤਾ ਵਿਚ ਹਜਰਤ ਮਸੀਹ ਨਾਲੋਂ ਵਧ ਗਏ ਸਨ ਅਰ ਓਹਨਾਂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚੋਂ ਇਸ ਤਰਹਾਂ ਦੇ ਭਾਵ ਪਰਗਟ ਹੁੰਦੇ ਹੈਨ:—

ਜਿਉਨਾ ਥੋੜਾ ਹੈ ਜਿਸਨੂੰ ਬੇ ਪਰਵਾਹੀ ਨਾਲ ਗਵਾ ਰਹਿਆ ਹਾਂ, ਜਵਾਨੀ ਵਿਚ ਹੀ ਅੱਗੇ ਲਈ ਤੋਸ਼ਾ ਬੰਨ੍ਹਣਾ ਸੀ ਪਰ ਦੁਨੀਆਂ ਦੇ ਆਨੰਦ ਵਿਚ ਸਮਾਂ ਬੀਤ ਗਿਆ, ਮੌਤ ਸਿਰ ਤੇ ਕੂਕ ਰਹੀ ਹੈ, ਜਿਹਨਾਂ ਜਵਾਨੀ ਵਿਚ ਕੁਝ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਓਹ ਬੁਢੇ ਹੋਕੇ ਕੀਹ ਕਰਨਗੇ, ਦਿਨ ਝਗੜਿਆਂ ਵਿਚ ਤੇ ਰਾਤਾਂ ਸੌਂ ਕੇ ਕਟ ਲਈਆਂ, ਚੇਤਾ ਰਖ ਕੇ ਹਿਸਾਬ ਦੇਣਾ ਪਵੇਗਾ, ਦਿਨ ਗਿਣਵੇਂ ਹੀ ਮਿਲੇ ਸਨ ਜੋ ਗੁਵਾਚ ਦੇ ਗਏ ਹਨ। ਮੈਥੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਬਹੁਤ ਚਲੇ ਗਏ ਹਨ ਤੇ ਜੋ ਦਿਸਦੇ ਹਨ ਏਹਨਾਂ ਅੱਗੇ ਪਿੱਛੇ ਚਲੇ ਜਾਣਾ ਹੈ, ਦੁਨੀਆਂ ਬਾਗ

ਦੀ ਸੈਰ ਹੈ ਸਵੇਰੇ ਨਿਗਾਰਾ ਸੁਣ ਕੇ ਰਾਹਾਂ ਰਾਹ ਪੈ ਜਾਂਦੇ ਹਨ, ਸਰੀਰ ਨਦੀ ਦੇ ਕਨਾਰੇ ਦੇ ਰੁੱਖ ਵਾਂਗੂ ਹੈ। ਕੱਚੇ ਘੜੇ ਵਿਚ ਕਿੰਨਾ ਚਿਰ ਪਾਣੀ ਰਹਿ ਸਕੇਗਾ, ਰੁੱਤ ਫਿਰੀ ਨੂੰ ਪਤ ਝੜ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਹੁਣ ਬੁਢੇਪਾ ਆ ਗਿਆ ਹੈ, ਦਾੜ੍ਹੀ ਮੁੱਛਾਂ ਪੀਲੀਆਂ ਹੋ ਗਈਆਂ ਹੈਨ। ਦੰਦ, ਕੰਨ, ਨੱਕ, ਅੱਖਾਂ, ਆਦਿਕ ਹੁਣ ਜਵਾਬ ਦਿੰਦੇ ਹੈਨ, ਮਿਤਰ ਭੀ ਵਿਛੁੜ ਦੇ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ, ਦੇਹੀ ਦੁਖਾਂ ਦੀ ਖਾਣ ਹੋ ਗਈ ਹੈ, ਮੌਤ ਤੋਂ ਕਿੰਨੇ ਛਪਾਕੇ ਨਹੀਂ ਰਖਣਾ ਅਖੀਰ ਖਾਕ ਹੋਣਾ ਹੈ, ਬਿਚਾਰੀ ਰੂਹ ਕਬਰ ਵਿਚ ਰੋਂਦੀ ਹੈ ਪਰ ਰੱਬ ਕਿਵੇਂ ਮਿਲੇ ਅਜ ਹੱਥ ਪੈਰ ਧੋਨ ਵਾਲਾ ਲੂਜਾ ਨਿਰਫਲ ਹੋਨ ਤੋਂ ਨੇੜੇ ਪਿਯਾ ਭੀ ਹਜਾਰਾਂ ਕੋਹਾਂ ਦੀ ਵਿਥ ਤੇ ਨਜਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ, ਦਰਵੱਜੇ ਦੇ ਘੜਿਆਲ ਨੂੰ ਬੇਦੋਸੀ ਮਾਰ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਮੇਰੇ ਦੋਸਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਨਹੀਂ ਕਿਸ ਵੇਲੇ ਬਗੁਲੇ ਨੂੰ ਬਾਜ ਵਾਂਗੂ ਮੌਤ ਨੇ ਆ ਫੜਨਾ ਹੈ ਅੱਗੇ ਵਾਲੋਂ ਨਿੱਕੀ ਤੇ ਧਾਰ ਨਾਲੋਂ ਤਿੱਖੀ ਪੁਰਸਲਾਤ ਹੈ। ਤਿਲ, ਗੰਨੇ ਕਾਗਜ ਕੁੰਨੇ ਕਪਾਹ ਦੀ ਹਾਲਤ ਮੈਨੂੰ ਖੌਫ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਮੰਦੇ ਅਮਲਾਂ ਨੂੰ ਇੱਦਾਂ ਮਾਰ ਪਵੇਗੀ ਜੇ ਅਮਲ ਚੰਗੇ ਹੋਣ ਤਾਂ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਵਿਚ ਉਗਾਹੀ ਦੇਨਗੇ, ਆਦਿਕ।

ਏਹਨਾਂ ਆਪਨੇ ਖਿਆਲਾਂ ਦਾ ਲੋਕਾਂ ਵਿਚ ਪਰਚਾਰ ਕਰਦੇ ਕਰਦੇ (ਇਸ ਰਿਆਸਤ ਫਰੀਦ ਕੋਟ) ਮੋਕਲ ਨਗਰ ਦੇ ਬਾਹਰ ਦੋ ਮੀਲ ਦੀ ਵਿੱਥ ਤੇ ਬਾਵਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਗੋਦੜੀ ਬੋਲਕੇ ਕਹਿੰਦੀ

ਹੈ ਕਿ ਮੇਰੇ ਸਬੱਬ ਤੈਨੂੰ ਲੋਕ ਫਕੀਰ ਮਨਦੇ ਹੈਨ ? ਬਾਵਾ ਜੀ ਨੇ ਉਤਰ ਵਿਚ ਗੋਦੜੀ ਨੂੰ ਕਹਿਆ ਕਿ ਮੇਰੇ ਉੱਤੇ ਹੋਨ ਤੋਂ ਤੂੰ ਗੋਦੜੀ ਹੈ,, ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਲੀਰ ੨ ਹੋ ਜਾਵੇਂ ।

ਗੋਦੜੀ ਲਾਹ ਕੇ ਸੁਟ ਆਏ, ਮੋਕਲ ਨਗਰ ਅੰਦਰ ਕਿਲੇ ਦੀ ਅਮਾਰਤ ਵਿਚ ਵੰਗਾਰੀ ਪਕੜੇ ਗਏ ਤੇ ਸਿਰ ਪਰ ਗਾਰੇ ਦੀ ਤਗਾਰ (ਟੋਕਰੀ) ਨੂੰ ਉਠਾਵਨ ਵੇਲੇ ਗੋਦੜੀ ਚੇਤੇ ਆਈ, ਬਾਵਾ ਜੀ ਦੇ ਸਿਰ ਤੋਂ ਗਾਰੇ ਵਾਲੀ ਟੋਕਰੀ ਉੱਚੀ ਵੇਖਕੇ ਸਭ ਲੋਕ ਡਰੇ ਅਰ ਰਾਜਾ ਮੋਕਲ ਦੇਵ ਪਾਸ ਜਾਕੇ ਦਸਿਆ ਗਿਆ ।

ਰਾਜਾ ਮੋਕਲ ਦੇਵ ਨੇ ਬਾਵਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੇ ਪਾਸੋਂ ਖਿਮਾਂ ਮੰਗੀ ਅਰ ਆਪਣਾ ਨਗਰ ਕਿਲਾ ਬਾਵਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ ਨਾਲ ਬਸਾਇਆ ਤੇ ਨਾਮ 'ਫਰੀਦ ਕੋਟ' ਰਖਿਆ ।

ਇਸ ਯਾਦਗਾਰ ਦੀਆਂ ਤਿੰਨ ਜਗਾਹ ਇਸ ਵਕਤ ਇਥੇ ਮੌਜੂਦ ਹੈਨ ।

(ੳ) ਪਹਿਲੀ ਜਗਹ ਜੋ ਜਨਾਨੇ ਮਹੱਲਾਂ ਵਿਚ ਹੈ। ਏਹ ਸਿਰ ਪਰ ਉੱਚੀ ਟੋਕਰੀ ਦੇਖਨ ਵਾਲੀ ਹੈ ਤੇ ਰਾਜਾ ਮੋਕਲ ਦੇਵ ਦੇ ਮਾਫੀ ਮੰਗਨ ਵਾਲੀ ਹੈ।

(ਅ) ਦੂਜੀ (ਚਿੱਲਾ ਬਾਵਾ ਸਾਹਿਬ) ਜਗਹ ਓਹ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਸਭ

ਲੋਕਾਂ ਸਮੇਤ ਆਕੇ ਬੈਠੇ ਅਤੇ ਗਾਰੇ ਵਾਲੇ ਹੱਥ ਵਣ ਦੇ ਦਰਖਤ ਨਾਲ ਪੂੰਝੇ ਸਨ, ਇਸ ਜਗਾ ਇਕ ਮੰਦਰ ਤੇ ਡੇਰਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਓਹ ਲਕੜੀ ਹਫਾਜ਼ਤ ਨਾਲ ਰੱਖੀ ਪਈ ਹੈ। ਸਾਲ ਵਿਚ ਇਕ ਵਾਰ ਮੇਲਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਦੂਰ ੨ ਤੋਂ ਲੋਕ ਔਂਦੇ ਹਨ ਰਿਆਸਤ ਵੱਲੋਂ ਹਰ ਸਮੇਂ ਸਾਮਾਨ ਮੁਰੰਮਤ ਆਦਿਕ ਸਾਲਾਨਾ ਦਿਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਮੌਜੂਦਾ ਇਸ ਥਾਂ ਦੇ ਪੁਜਾਰੀ 'ਪੀਰ ਗੌਂਸ ਮੁਹੰਮਦ ਜੀ' ਹੈਨ ਜੋ ਰਿਆਸਤੇ ਦਰਬਾਰੀ ਭੀ ਹੈਨ ਤੇ ਏਹ ਡੇਰਾ ਸਭ ਅਮਾ-ਰਤ ਰਿਆਸਤ ਦੇ ਖਰਚ ਤੋਂ ਹੀ ਤਿਆਰ ਹੋਕੇ ਰਿਆਸਤ ਦੇ ਪਰਬੰਧ ਵਿਚ ਹੈ।

(ੲ) ਤੀਜੀ ਓਹ ਥਾਂ ਜੋ ਸ਼ਹਿਰ ਤੋਂ ੨ ਮੀਲ ਦੇ ਫਾਸਲੇ ਤੇ ਬਾਹਰ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਬਾਵਾ ਸਾਹਿਬ ਤੇ ਗੋਦੜੀ ਦਾ ਝਗੜਾ ਹੋਇਆ ਅਰ ਗੋਦੜੀ ਲਾਹ ਸੁੱਟੀ ਸੀ ਜੋ 'ਲੀਰ ਮਾਲ ਬਾਵਾ ਫਰੀਦ' ਦੇ ਨਾਮ ਪਰ ਵਿਦਤ ਹੈ ਤੇ ਉੱਥੇ ਭੀ ਇਕ ਸਾਂਈ ਲੋਕ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ।

ਬਾਵਾ ਫਰੀਦ ਜੀਦੀ ਬਾਣੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਵਿਚ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸਦੇ ਮੁਤਅੱਲਕ ਜ਼ਿਕਰ ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚੋਂ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

ਬਾਵਾ ਫਰੀਦ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੀ ਬੰਸਾਵਲੀ ਹੇਠ ਦਿਤੀ ਗਈ ਹੈ, ਜੋ ਕੇ ਤੇਹਰਵੇਂ ਸ਼ੇਖ ਬਾਰਹਮ ਫਰੀਦ ਸਾਨੀ ਤਕ ਹੈ।

ਬਾਵਾ ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਦੇਹਾਂਤ ਸੰਮਤ ੧੩੨੩ ਅਰਥਾਤ **ਸੰਨ** ੧੨੬੬ ਵਿਚ ਪਾਕ ਪਟਨ ਹੋਇਆ ਹੈ ਇਸ ਜਗਾ ਯਾਦਗਾਰੀ ਮਕਾਨ ਸਾਮਾਨ ਅਤੇ ਪੁਰਾਨੀਆਂ ਕਤਾਬਾਂ ਭੀ ਹੈਨ।

ਸ਼ੇਖ਼ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਬੰਸਾਵਲੀ

(੧) ਸੇਖ ਜਲਾਲੁਦੀਨ

(੨) ਬਾਵਾ ਫਰੀਦੁਦੀਨ ਮਸ਼ਊਦ ਸ਼ਕਰਗੰਜ

(੩) ਦੀਵਾਨ ਬਦਰ ਦੀਨ ਸੁਲੈਮਾਨ

(੪) ਖ੍ਵਾਜਾ ਦਾਵਾਨ ਮੀਰ ਅਲਾਓ ਦੀਨ (ਮੌਜੇ ਦਰਯਾ)

(੫) ਖ੍ਵਾਜਾ ਦੀਵਾਨ ਪੀਰ ਮੁਇੱਜ਼ੁਦੀਨ

(੬) ਖ੍ਵਾਜਾ ਦੀਵਾਨ ਪੀਰ ਫਜ਼ੁਲ

(੭) ਖ੍ਵਾਜਾ ਮੁਨੱਵਰ ਸ਼ਾਹ

(੮) ਦੀਵਾਨ ਪੀਰ ਬਹਾਉ ਦੀਦ (ਹਾਰੂੰ)

(੯) ਦੀਵਾਨ ਸ਼ੇਖ ਅਹਮਦ ਸ਼ਾਹ

(੧੦) ਦੀਵਾਂਨ ਪੀਰ ਅਤਾਉੱਲਾ

(੧੧) ਖ੍ਵਾਜਾ ਸ਼ੇਖ ਮੁਹੰਮਦ

(੧੨) ਸ਼ੇਖ਼ ਬਰਾਹਮ (ਇਬਰਾਹੀਂਮ)

(ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀ ਅਨੁਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ ਕਵਿਤਾ ਫ਼ਾਰਸੀ ਅਰ ਗੁਰਮੁਖੀ ਅਖਰਾਂ ਵਿਚ ਸਾਡੇ ਪਾਸ ਪੁੱਜੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਪੁਰ ਛਾਨ-ਬੀਨ ਅਗਲੀ ਵਾਰੀ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇਗੀ। ਇੱਥੇ ਅਸੀਂ ਪਾਠਕਾਂ ਪਾਸ ਇਹ ਪ੍ਰਾਰਥਨਾ ਕਰਦੇ ਹਾਂ ਜੋ ਉਹ ਸਾਨੂੰ ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਜਾਂ ਜੀਵਣ ਪੁਰ ਖੋਜ ਭਰੇ ਲੇਖ ਭੇਜਕੇ ਧੰਨਵਾਦੀ ਬਨਾਉਣਾ। ਨਾਲਦਾ ਨਕਸ਼ਾ (ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਜੀ ਦੀ ਪੂਰੀ ਵੰਸ਼ਾਵਲੀ) ਸਾਨੂੰ ਸਰਦਾਰ ਬਹਾਦਰ ਸ: ਇੰਦਰ ਸਿੰਘ ਜੀ (ਪ੍ਰੈਜ਼ੀਡੈਂਟ, ਰਿਆਸਤ ਫਰੀਦ ਕੋਟ) ਦੀ ਕ੍ਰਿਪਾ ਦਵਾਰਾ ਪੀਰ ਗੌਂਸ ਮੁਹੰਮਦ ਸ਼ਾਹ ਸਾਹਿਬ, ਚਿੱਲਾ ਬਾਬਾ ਫਰੀਦ ਗੰਜ ਸ਼ਕਰ ਰਿਆਸਤ ਫਰੀਦ ਕੋਟ ਤੋਂ ਹੱਥ ਆਇਆ ਹੈ, ਜਿਸ ਦੇ ਲਈ ਅਸੀਂ ਉਪਰ-ਲਿਖਤ ਦੋਹਾਂ ਸਜਨਾਂ ਦੇ ਬਹੁਤ ਬਹੁਤ ਧੰਨਵਾਦੀ ਹਾਂ।)

ਐਡੀਟਰ)

मोहन्जोदारो

लक्ष्मणस्वरूप एम० ए०, डी० फिल (आक्सन)।

ईरान के सम्राट् डेरियस (*Darius*) ने भारत के उत्तरीय भाग पर आक्रमण किया और सिन्धु प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया। इसका उल्लेख नक्श-ए-रुस्तम शिलालेख में मिलता है। इस शिला लेख का काल ईसा से ५१० वर्ष पूर्व है। प्राय: पाश्चात्य इतिहासज्ञ भारत का प्राचीन इतिहास ईसा से छठी या सातवीं शताब्दी पूर्व से आरम्भ करते हैं। इससे पहले के काल को वे ऐतिहासिक काल से प्राचीन काल मानते हैं। भारत के इतिहास परम्परा के पण्डितों की स्मृति कलि-काल के आरम्भ से भी बहुत दूर जाती है। यदि सत्य द्वापर और त्रेता युगों की बात छोड दी जाए और केवल वर्तमान काल के विषय में ही विचार किया जाए, तो भारतीय पण्डितों के मतानुसार, भारत का इतिहास कलिकाल के समकालीन है और ईसा से ३१०३ वर्ष पूर्व आरम्भ होता है। पाश्चात्य विद्वान् इस लम्बी गणना को सार-रहित मानते आए हैं, पर पिछले ग्यारह वर्षों में हरप्पा और मोहञ्जोदारो * में उपलब्ध पुराने पदार्थों के अध्ययन ने यूरोप और अमेरिका के विद्वानों के मत में एक क्रान्ति पैदा कर दी है। वे अब मानने लग गए हैं कि, भारत का इतिहास ईसा से 3000–४000 वर्ष पूर्व तक पहुचता है। हरप्पा और मोहञ्जोदारो की उपलब्धियों से भारतीय इतिहास-परम्परा की आश्चर्यजनक पुष्टि हुई है। इसलिए भारत के इतिहास में हरप्पा और मोहन्जोदारो का विशेष महत्व है। इस लेख में हम मोहन्जोदारो का संक्षिप्त परिचय देने का यत्न करेंगे।

मोहन्जोदारो सिन्धु प्रान्त में, सिन्धु-नदी के तट पर अवस्थित है।

---

* यू० पी०, पञ्जाब, बिहार आदि में 'मोहन्जोदारो' उच्चारण ही प्रचलित है, परन्तु यह ठीक नहीं है। यह सिन्धी शब्द है और इसका उच्चारण "मोहन्जोदड़ो" है। इसका अर्थ है '*Mound of the dead*' अर्थात् 'मृतक की ढेरी'। किसी भी ऐतिहासिक लेख में 'मोहन्जोदड़ो' ही लिखना उचित है, परन्तु चूंकि हिन्दी संसार में 'मोहन्जोदारो' ही प्रचलित है, इसलिए हमने भी प्रचलित रूप ही रखा है—लेखक।

उत्तर-पश्चिमीय रेल के डोकरी स्टेशन (*N W R.*) से ८ मील पर है। आज से १० वर्ष पहले इस स्थान पर केवल रेत और मिट्टी के टिल्ले ही टिल्ले (*mounds*) दिखाई देते थे। एक टिल्ले के ऊपर महाराज कनिष्क का बनवाया हुआ एक बौद्ध-स्तूप था, पर यह स्तूप जीर्ण हो चुका था, भग्न अवस्था में था। कोई-कोई भाग गिर गया था। भारतीय-पुरातत्त्व-विभाग ने पहले इसी स्तूप पर कार्य्य आरम्भ किया, किन्तु उसको शीघ्र ही पता चला कि, इस स्थान पर बहुत ही पुरानी सभ्यता के चिन्ह है, और यह सभ्यता *Chalcolithic Age*+ के समकालीन है। पुरातत्त्व विभाग ने बडे उत्साह और परिश्रम से यहा कार्य्य आरम्भ किया। उसको अदभुत सफलता प्राप्त हुई। इस सफलता का प्रमाण रूप भारत का प्राचीनतम नगर मोहञ्जोदारो हमारे सम्मुख है। यह एक विशाल नगर है। इस नगर के मकान अग्नि द्वारा पकी हुई ईंटो से बनाए गए है। भूमि-गर्भ से इस विशाल नगर के प्रादुर्भूत होने से उस समय की सभ्यता के साक्षात्कार का सौभाग्य हमको प्राप्त हो गया है।

इस नगर के निरीक्षण से स्पष्ट है कि उन दिनों वास्तु-विद्या मे बहुत उन्नति हो चुकी थी। भारत के आधुनिक नगरों को देखने से मालूम होता है कि ये नगर किसी विशेष शैली से नहीं बनाए गए है। जैसे-जैसे जन सख्या बढती गई, वैसे-वैसे, मनमाने स्थानो पर व्यक्तिगत सुभीते के अनुसार, दुकान घर इत्यादि बनते गए, टेढी-मेढी गलियों का जन्म होता गया। किन्तु मोहञ्जो-दारो नगर की स्थापना एक विधि-विशेष के अनुसार हुई है। मध्य मे राजपथ था। यह बहुत चौडा था। इसकी दोनों तरफ बडी २ दुकानें थीं। उन दूकानों के ऊपर, परिवारों के रहने के लिए, चौबारे बने हुए थे। ऊपर जाने के लिए सीढियां थीं, जो बाजारों में आती थी। इस राजपथ के उत्तर और दक्षिण मे गलियां है। ये गलियां एक दूसरे के *Parallel* है। इन गलियों से छोटी गलिया फूटती है। ये बडी गलियों से ठीक *Right angles* पर है।

इस प्रकार इस नगर मे सीधी पंक्तियों मे भवन बनाए गए थे। पाठक-गण शायद समझें कि इसमे कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है, पर किसी

+ आधुनिक मत के अनुसार मानव सृष्टि मे आदि युग पाषाण युग (*Stone-Age*) था। इस युग मे सब कार्य पत्थर मे बने ओजारो मे किए जाते थे। इससे पीछे के युग को *Chalcolithic* कहते है। इस युग मे पत्थर के साथ तांबे और पीतल का भी प्रयोग होता था।

वर्तमान नगर को देखने से प्रतीत होगा कि, व्यवहार मे इस प्रकार करना कठिन ही नही, वरन् असम्भव सी बात है । भारत के नगरों की तो बात ही क्या, यूरोप मे भी (जहां वास्तु-विद्या का बहुत प्रचार है) वास्तु-विद्या के अनुसार नगर-निर्माण नहीं हुए है। केवल अमेरिका के हाल के बने हुए नगरों में यह बात दिखाई देती है। जिस विद्या का मोहञ्जोदारो के निर्माण में प्रयोग किया गया है, वह वास्तु-विद्या, ५००० वर्ष पीछे, केवल अमेरिका के नए नगरों में ही दृष्टिगोचर होती है, संसार के अन्य भागों के किसी नगर में उसका प्रयोग नहीं हो सका। इससे शायद पाठकगण तब की उन्नत वास्तु-विद्या के महत्त्व का अन्दाजा लगा सके।

प्रत्येक घर में एक प्रागण अवश्य था। घर कम से कम दो मञ्जिले अवश्य थे। नीचे-ऊपर, पृथक्-पृथक्, परिवार रहते थे, इसी लिए, ऊपर जाने के लिए, बाहर से ही सीढियां ऊपर जाती थीं। नगर मे स्थान का अभाव प्रतीत होता है या यों कहिए कि, आबादी (जन-संख्या) बहुत होने से थोडे से थोडे स्थान का भी खूब उपयोग किया जाता था। स्थान के अभाव के कारण घरों के साथ बाग-बगीचों का होना असम्भव था । सारे नगर मे किसी भी बाग-बगीचे का कोई भी चिन्ह नही पाया गया है। यह भी मालूम होता है कि, स्थानाभाव के कारण घरों के साथ बरामदा इत्यादि बनाने की प्रथा नहीं थी। एक ही घर में, ऊपर-नीचे, पृथक्-पृथक्, परिवारों के निवास से सिद्ध है कि, नगर का सामाजिक जीवन भली भाति सुसंगठित था, नही तो इस प्रकार परस्पर मिलकर रहना कठिन हो जाता । जैसे आज कल भी हिन्दू और मुसलमान परिवार एक ही घर मे इकट्ठे नही रह सकते, इसी प्रकार मोहञ्जोदारो मे भिन्न-परिवारों का मिल कर रहना कठिन हो जाता। इससे सिद्ध है कि, मोहञ्जोदारो के निवासी अधिक तर एक ही धर्म के अनुयायी थे, या कम से कम उनमे धर्म भेद यदि था, तो उस भेद का सामाजिक जीवन पर कुछ प्रभाव न था ।

यह भी प्रतीत होता है कि, मोहञ्जोदारो के लोग बडे सादे थे। वे अपने घरों की दीवारों पर, बाहर या भीतर, चूने आदि से पलस्तर नही करते थे। दीवारें केवल ईंटों की बनी हुई है और गारे से चुनी हुई है। केवल चूने से टीप कर दी गई है, पर पलस्तर या लिपाई का कोई चिन्ह नही मिलता।

दीवारें नितान्त सादी हैं। उन पर बेल-बूटे, चित्रकारी इत्यादि अलंकार नहीं हैं। और, न दीवारों पर किसी प्रकार की मूर्तियाँ ही हैं।

मोहंजोदारो में जो विशेष गुण है, वह इसकी स्वास्थ्य-सम्बन्धिनी प्रक्रिया है। इस नगर के कर्मचारियों को नगर के स्वास्थ्य का बहुत ख्याल था। नगर का स्वास्थ्य बहुधा नगर की सफाई पर निर्भर रहता है। यह सफाई बहुत कुछ नगर की नालियों पर निर्भर है। यदि नगर की नालियाँ गन्दी हैं, उनसे हरदम दुर्गन्ध फैलती रहती है, तो नगर के स्वास्थ्य पर अवश्य ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। स्मरण रहे व्यक्तिगत सफाई किसी भी गन्दे नगर में बहुत देर तक लाभदायक नहीं हो सकती। मिस मेयो ने भी अपनी पुस्तक "भारतमाता" (*Mother India*) में, एक बड़े आक्षेप के रूप में, लिखा है कि, "भारत के नगरों की नालियाँ खुली रहती हैं। उनमें गन्दगी रात-दिन बहती रहती है। दुर्गन्ध से वायुमण्डल आच्छादित रहता है। इन्हीं नालियों के ऊपर हलवाइयों की दूकानें हैं। नालियों की दुर्गन्ध में पकी इन मिठाइयों को भारत के लोग बड़े चाव से खाते हैं।" चाहे इस वर्णन में अतिशयोक्ति हो, परन्तु यह कहना ही पड़ता है कि, नगर के स्वास्थ्य का आधार नगर की नालियाँ ही हैं। मोहंजोदारो में पतनालों और नालियों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। घरों के पतनाले जो गली की नालियों में गिरते थे, खुले नहीं होने पाते थे। वे सब ढके हुए होते थे। जितने भी पतनाले खोदे गए हैं, वे सब-के-सब ढके हुए हैं। फिर गली की नालियाँ भी खुली नहीं होती थीं। ये नालियाँ भी सब की सब ढकी हुई होती थीं। पतनाले और गली की नाली का दृश्य चित्र में देखिए। ये नालियाँ इस नगर की प्रतिष्ठा हैं। इस प्रकार की नालियाँ, पंजाब प्रान्त की राजधानी लाहौर, ५००० वर्ष पीछे भी विद्यमान नहीं हैं। प्रत्येक गली में एक ढकी हुई नाली थी। दोनों तरफ के घरों से इस नाली को छोटी-छोटी नालियों से मिला दिया गया है। ये भी ढकी हुई हैं। प्रत्येक गली की नाली बड़ी नाली में जा गिरती है। ये बड़ी नालियाँ भी ढकी हुई हैं। ये बड़ी नालियाँ एक बड़े नाले में जा मिलती हैं। यह नाला भी ढका हुआ है। उन नालियों को साफ करने के लिए, स्थान-स्थान पर, गड्ढे रखे गए हैं। उनमें नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं, जिनसे उतर कर भंगी लोग नालियों की सफाई किया करते थे। इस प्रकार नगर में खुली दुर्गन्धि

पूर्ण सड़ी नालियों का दृश्य दृष्टिगोचर नहीं होता था, और नगर के स्वास्थ्य की भली भांति रक्षा होती थी।

मोहञ्जोदारो के लोगों को स्नान बहुत प्रिय था. प्रत्येक घर मे नीचे-ऊपर दोनों मंजिलों मे, स्नान गृह बने हुए है। इन स्नान-गृहों का फर्श पक्का है और एक तरफ ढालू है, जिसमे जल न रहे, तुरत बह जाए। जल ढके हुए पतनाले के द्वारा नाली मे गिरा दिया जाता था। स्नान के इतने प्रेमी होने के कारण जल की बहुत आवश्यकता होती थी। अधिक जल की आवश्यकता को पूरी करने के लिए प्राय: प्रत्येक घर मे एक छोटा सा गोल कूप बनवाया गया है। यह कूप भी पक्का है। कूप की मण्डेर का पत्थर रस्सी की रगड से जगह-जगह घिस गया है। इससे स्पष्ट है कि जल-रस्सी द्वारा हाथों से खींचा जाता था। कूप पर बर्तन रखने के स्थान मे छोटे २ गड्ढे पड गए है। इन छोटे-छोटे कूपों के अतिरिक्त गलियों के कोनों पर तथा बडे बाजार मे बडे-बडे कूप थे, जो सर्व-साधारण के लिए थे। स्नान के कमरे प्रत्येक घर मे पाए जाते है। इससे सिद्ध है कि, मोहञ्जोदारो के लोग निजी सफाई भी बहुत पसन्द करते थे। बडे कूप पनघट का काम देते थे। एक पनघट पर एक पत्थर की बेंच पडी है। इसपर बैठ कर मुहल्ले की स्त्रियां, अपने-अपने घडे भरने से पहले, गप-शप मारा करती होंगी।

बौद्ध-स्तूप के समीप ही एक बडा तालाब भी मिला है। यह ३६ फुट लम्बा और २३ फुट चौडा है। यह एक विशाल और आलीशान भवन के मध्य मे बना है। इस तालाब की चारों तरफ एक पक्का चबतरा था। चारों कोनों पर पर्देदार गोल प्रागण बने थे। इन प्रागणों की चारो तरफ पक्की दीवारे थी। भीतर स्तम्भ थे। तालाब बडे परिश्रम से बनाया गया था। इसकी दीवारों को बिल्कुल समतल करने के लिए थोडा-थोडा घिस दिया गया था। तालाब के नीचे का फर्श पक्का है। ईंटे चौडी करके नही रक्खी गयी है, वरन् लम्बी करके रखी गयी है। दोनों तरफ चौडी-चौडी सीढियां पानी तक आती है। इन सीढियों पर पात्र रखने के स्थान पर, लकडी या धातु के पत्तर जडे हुए थे। नमी से दीवारों को बचाने के लिए *Bitumen* का पलस्तर किया गया था। दक्षिण-पश्चिम कोने की तरफ ढालूपन था, जहां से एक छोटी सी मोरी द्वारा जल बाहर निकाला जाता था। यह जल एक बडे नाले मे गिरता था। यह नाला

भी ढका हुआ था। इस नाले की बनावट आश्चर्यजनक है। पहले भाग में यह नाला इतना ऊंचा है कि लम्बे से लम्बा पुरुष अच्छी तरह खड़ा हो सकता है। फिर क्रम से यह नाला तङ्ग होता जाता है और अन्त में एक अद्भुत छत वाले खमदार मार्ग से बाहर निकाल दिया जाता है।

मोहञ्जोदारो में बहुत सी पुरानी वस्तुयें उपलब्ध हुई हैं—नाना प्रकार के मिट्टी के खिलौने, धातु की मूर्तियां, आभूषण, बर्तन, रङ्ग-बिरङ्गे फूल रखने के गुलदस्ते इत्यादि-इत्यादि । पर जो बहुत ही आवश्यक वस्तु उपलब्ध हुई है, वह है मुद्रा समूह। मुद्राओं पर कुछ लेख अंकित हैं, जो अभी तक पढ़े नहीं गए हैं। न अक्षर ही पढ़े गए हैं और न भाषा के विषय में ही कुछ जाना जा सकता है। ये मुद्राएं पत्थर की बनी हैं। इनका आकार भिन्न २ प्रकार का है। अधिकतर मुद्राएं चौरस हैं। मध्य में एक छिद्र है, जहां से वे डोरी में पिरोयी जाती थीं। ऊपर कुछ अक्षर अंकित हैं। नीचे की तरफ किसी जानवर का चित्र है। अधिक मुद्राओं पर एक सींगवाले पशु का चित्र है, जो बैल के सदृश है। किसी-किसी मुद्रा पर छोटी सींगोंवाले बैल, किसी पर ऊंचे पिण्ड वाले साँड, किसी पर गैंडे, किसी पर भैंसे, किसी पर हाथी और किसी पर बारहसिंगे के चित्र हैं। कितनी ही मुद्राओं पर काल्पनिक पशुओं के भी चित्र हैं। किसी भी मुद्रा पर अश्व का चित्र नहीं मिला है। इससे अनुमान होता है कि, मोहञ्जोदारो के लोग अश्व से अनभिज्ञ थे। दो-चार ही मुद्राएं ऐसी हैं, जिनपर मनुष्य का चित्र है। एक चित्र में तो एक मनुष्य एक वृक्ष पर बैठा है। नीचे घात में एक सिंह बैठा है और मनुष्य क्रोध में उसकी तरफ घूर रहा है।

ये मुद्राएं बड़े महत्त्व की हैं। इन मुद्राओं के साक्ष्य से ही मोहंजोदारो के समय का निर्णय हुआ है। जैसी मुद्राएं हरप्पा और मोहंजोदारो में उपलब्ध हुई हैं, ठीक वैसी ही सुमेर (*Sumer*) और एलम (*Elam*) में भी मिली हैं। सुमेर और एलम के समय का निश्चय रूप से ज्ञान है। इससे परिणाम निकलता है कि, मोहंजोदारो का सुमेर और एलम समकालीन है अथवा मोहंजोदारो ईसा से लगभग ३००० वर्ष का है।

बच्चों के खिलौने बड़े विचित्र हैं। एक बैल का खिलौना है। इसकी पूंछ हिलाने से सिर भी हिलता है। एक हाथी है, जिसको दबाने से शब्द होता है पक्षियों के मिट्टी के खिलौने बहुत से मिले हैं। उनमें छिद्र हैं जिनमें से सीटी

बजायी जा सकती है। एक स्त्री की नग्न मूर्ति है। सिर पर पंखे के आकार का कोई वस्त्र है। दोनों कानों पर दो लम्बे कालर जैसे टुकड़े लटकते हैं। गले में कितने ही हार हैं। भुजाओं में कड़े और चूड़िया है। कमर में केवल रशनादाम है। एक नृत्य करने वाली स्त्री की धातु की मूर्ति है। सिर के बालों की लटें एक कन्धे पर डाल दी गयी है। गले में हंसली पहने हुए हैं। वाम हाथ में कलाई से लेकर कन्धे तक, चूड़ी पहने हुए हैं। यह मूर्ति भी नग्न है। इसके मुख पर औदासीन्य के भाव है। छोटी-छोटी डिब्बियों से लेकर बड़े-बड़े माट भी मिले है। प्याला, थाली, चमचा, कड़छी आदि भी प्राप्त हुए है। इन पर काले, लाल आदि रंगों के अनेक डिजाइन बनाए गये हैं। ऊखल, मूसल, चक्की आदि भी मिले है। सोने, चांदी, तांबे तथा कीमती पत्थरों के हार पाये गये हैं। तांबे के कितने ही औज़ार, चांदी का एक डब्बा, जिसमे आभूषण रखे हुये थे, और रूई का बना हुआ कपड़ा भी प्राप्त हुआ है। इससे मालूम होता है कि, आज से ५००० वर्ष पहले मोहन्जोदारो में रुई के कपड़े का प्रयोग होता था।

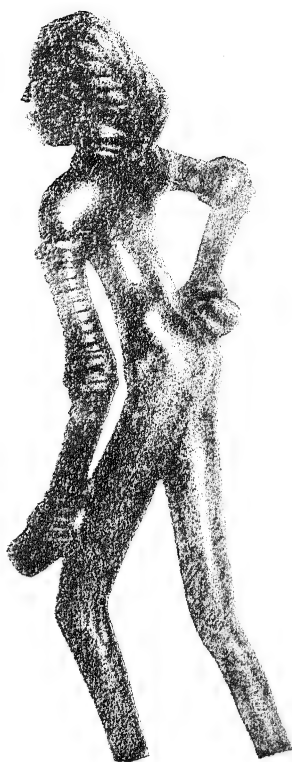
साराश यह है कि मोहजोदारों के लोगों की सभ्यता नागरिक सभ्यता थी। सुदूर छोटे-छोटे ग्रामों का निवास वहा वालों को भाता नही था। वे नगरों में बसते थे। उनके नगर समृद्धिशाली थे। उनका व्यापार दूर-दूर के देशों तक फैला हुआ था। उस समय गेहूं और जौ खूब पैदा होते थे। खजूर उनको बहुत प्रिय था, साढ, भैंसा, बैल, भेड, सूअर, कुत्ता, ऊंट, हाथी उनके पशु थे। घोड़े से वे परिचित थे। उनकी गाड़ी चार पहियों वाली थी। वह प्रायः बैलगाडी ही थी। धातु का काम करने में वे लोग चतुर थे। सोना, चांदी, पीतल की कुछ कमी न थी। शीशा भी काम में लाया जाता था। कातना कपड़े बुनना श्रेष्ठ समझा जाता था। युद्ध और शिकार में तीर कमान का प्रयोग होता था। गदा, नेजा, खड्ग इत्यादि भी युद्ध के शस्त्र थे। आरा, क्षोणी, उस्तरा इत्यादि अनेक औजार पीतल और तांबे के बनते थे। अमीर लोग सोने चांदी के आभूषण पहनते थे और गरीब लोग सीप और पत्थर के। लोग लिखना जानते थे। इनकी मुहरों पर लेख लिखे हुये है। मेसोपोटामियां की सुमेरियन सभ्यता और मिश्र देश की सभ्यता से इनकी सभ्यता ऊंचे दर्जे की थी। उदाहरण के तौर पर रुई का कपड़ा बुनने की विधि सिन्ध के लोगों को ही मालूम थी. अन्य देश वालों को नही। इनके से विशाल भवन मेसोपोटामिया, मिश्र और अन्य प्राचीन देशों

मे नहीं पाये गये है। स्नान पर अधिक जोर दिया जाता था। प्रत्येक घर मे अपना-अपना पृथक् कुंवा है। कुंवे के साथ स्नान करने का कमरा है। इससे प्रतीत होता है कि, स्नान उन लोगों का नित्य कर्म था। नगर मे एक सार्वजनिक पक्का स्नान-गृह था। उसकी दो तरफ सीढ़िया बनी हुई थी। बीच मे एक लम्बा-चौडा तालाब था। तालाब की दीवारे और नीचे का फर्श पक्के बने हुए थे। पानी को बाहर निकालने के लिए एक ऊपर से ढकी हुई नाली बनायी गयी थी। यह तालाब ऊपर से ढका हुआ था। इसकी चारों तरफ छोटे-छोटे कमरे थे। इन कमरो मे स्नान करने वाले लोग अपने वस्त्र बदलते थे। नगर की नालियों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कोई भी नाली ऊपर से खुली हुई नही होती थी। उनको पत्थरों से ढक दिया जाता था। इस प्रकार गन्दी नालयों का दृश्य दृष्टिगोचर नही होता था। दुर्गन्ध भी गलियों और बजारों मे नही फैलती थी। भारत के बडे-बडे नगरों मे आज भी वैसी नालियां नही बनी है। इससे सिद्ध है कि, उस समय के लोगों के जीवन मे सुख, आनन्द और ऐश्वर्य की मात्रा अधिक थी।

खिलौनो, बर्तनों, मुद्राओं, मूर्तिओं आदि पर जो नाना प्रकार के चित्र मिलते हैं, उनसे उन लोगों की चित्रकारी का पता चलता है। चित्रकला मे वे लोग सिद्ध-हस्त थे। ये चित्र बहुत अच्छे है। चित्र क्या है, जीती-जागती तस्वीर है। चित्रकला अपनी प्रौढ़ा अवस्था मे पहुंच चुकी थी। ऐसे सच्चे और मनोहर चित्र, हज़ारों वर्षों के पीछे केवल प्राचीन यूनान मे ही मिलते है, परन्तु मोहन्जो-दारों के लोगों के समय मे किसी भी देश मे नही पाए गये है।

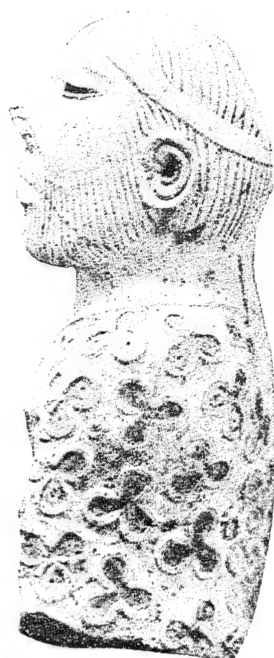
परन्तु जो सब से अद्भुत बात है, वह है शिव की पूजा मोहन्जोदारो में शिव जी की पूजा होती थी। बहुत से शिवलिङ्ग उपलब्ध हुए है। कितने ही शिवलिङ्ग तो वैसे ही है, जैसे कि आजकल भारत के बहुत से मन्दिरों मे देखे जाते हैं। इससे सिद्ध है कि, शिव की पूजा जिस प्रकार आजकल होती है, उसी प्रकार ५००० वर्ष पहले भी होती थी। संसार के जितने भी धर्म है, उनमे से किसी भी धर्म की पूजा का इतिहास इतनी दूर तक नहीं पहुचता, न किसी धर्म की पूजा के विषय मे ऐसा स्पष्ट सिद्ध करने वाला साक्ष्य ही मिलता है।

मोहन्जोदारो मे उपलब्ध प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन से हम इस परि-णाम पर पहुचते है कि ये वस्तुयें एक उच्च कोटि की सभ्यता की सूचक है।



मोहञ्जोदारो की मिट्टीकी

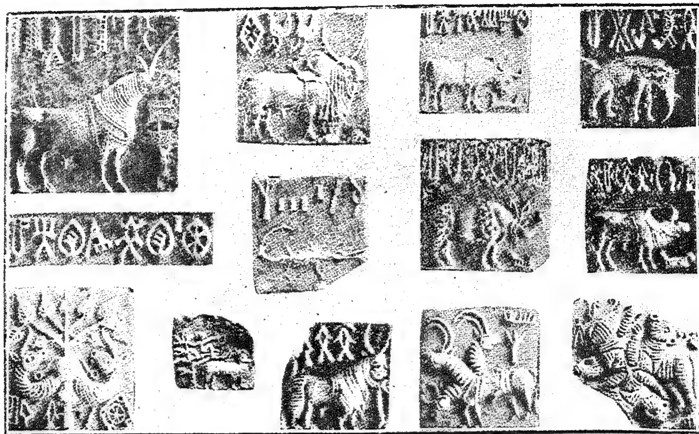
नग्न-स्त्री-मूर्ति



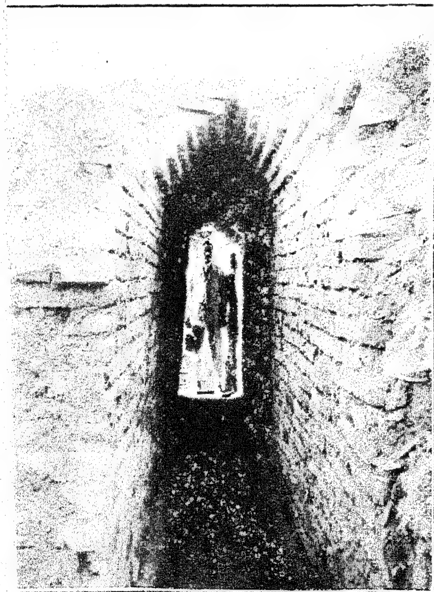
मोहञ्जोदारो की मनुष्य-मूर्ति



मोहञ्जोदारो की धातु की बनी नग्न-नर्त्तकी-मूर्त्ति



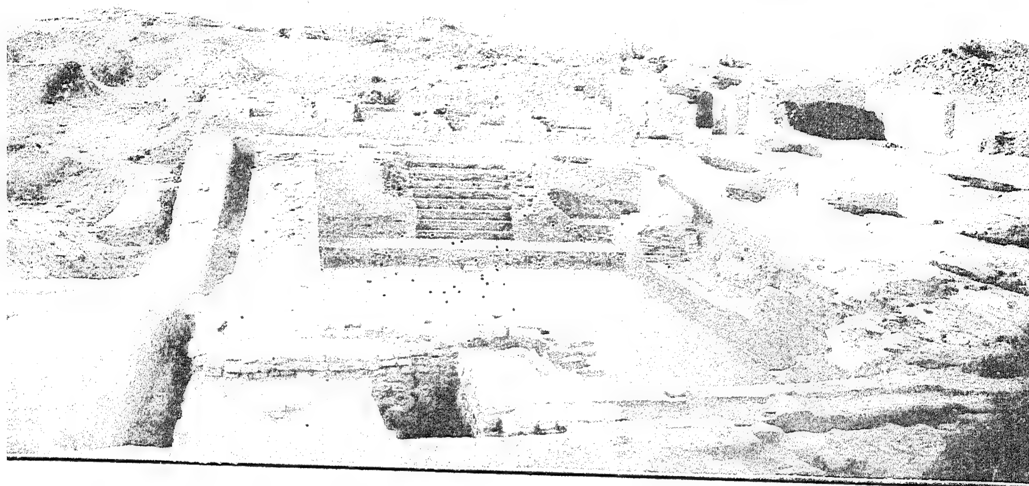
मोहञ्जोदारो में उपलब्ध मुद्राएं



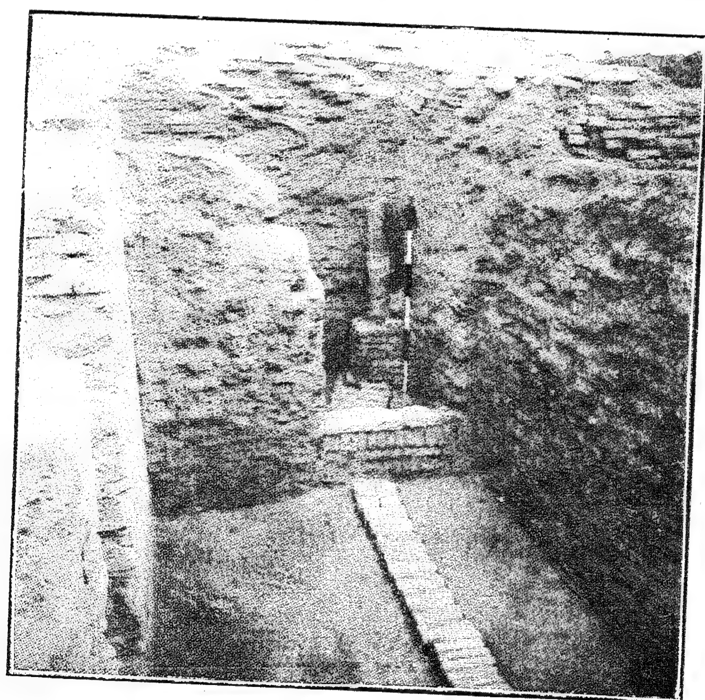
हञ्जोदारो के तालाब से पानी निकलने का पनाला



मोहञ्जोदारो के घर के भीतर छोटा कूप



मोहञ्जोदारो के पांच हजार वर्ष पुराने तालाब का दृश्य



मोहञ्जोदारो के ढके हुए पनाले और नाली का दृश्य

पर यह सभ्यता कोई नूतन सभ्यता नहीं थी। मोहञ्जोदारो नगर के स्थापित होने से हजारों वर्ष पहले इस सभ्यता का सूत्रपात्र हो चुका था, और मोहञ्जोदारो नगर की स्थापना से पहले कई हजार वर्षों मे इस सभ्यता की वृद्धि और पुष्टि हुई होगी। जब मोहंजोदारो नगर की स्थापना हुई, तब यह सभ्यता उन्नति के शिखर पर विराजमान थी। इससे स्पष्ट है कि, मोहञ्जोदारो नगर की स्थापना से कम-से-कम दो-तीन हज़ार वर्षों से भी पुरानी यह सभ्यता है इस सभ्यता का आरम्भिक काल ७००० या ८००० वर्ष तक पहुचता है।

स्वतन्त्र प्रमाणों मे यह सिद्ध किया जा सकता है कि, इस सभ्यता का आरम्भिक काल मोहंजोदारो नगर की स्थापना से अवश्य ही कम-से-कम दो-तीन हज़ार वर्ष पहले है। हम कुछ स्वतन्त्र प्रमाण भी लिखते है।

हम ऊपर लिख चुके है कि मोहञ्जोदारो नगर मे आज से ५००० वर्ष पहले शिवजी की पूजा होती थी। शिव उन लोगों का आराध्य देवता था। पर ऋग्वेद मे शिव का बहुत बडा दर्जा नही है। ऋग्वेद मे जो महत्त्व इन्द्र, अग्नि, वरुण का है, वह शिव का नहीं है। हम यह भी जानते है कि ऋग्वेद के समय जिन देवताओं का अधिक प्रभुत्व और महत्त्व है, उनका पीछे लोप हो गया, जैसे ऋग्वेदकाल के उच्चतम और सर्व श्रेष्ठ देवता इन्द्र और वरुण का दर्जा रामयण-महाभारतकाल मे विष्णु, ब्रह्मा और शिव से कम है। यदि हम ऋग्वेद के काल से लेकर महाभारत रामायण के काल तक, देवताओं के इतिहास पर दृष्टि डालें तो, मालूम होगा कि, विष्णु और शिव का दर्जा बराबर बढ़ता चला आया है। ऋग्वेद मे विष्णु और शिव साधारण देवता है। यजुर्वेद मे शिव का दर्जा, ऋग्वेद की अपेक्षा, बढ गया है, और रामायण महाभारत के काल तक शिव का दर्जा इतना बढ गया है कि, वह हिन्दू त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) का तृतीय अंश बन गया। देवता के इस इतिहास को स्मरण रखते हुए और मोहञ्जोदारो नगर मे शिव की अद्भुत प्रतिष्ठा को जानते हुए हम इस परिणाम पर पहुंच गए है कि, ऋग्वेदकाल मोहञ्जोदारो नगर की स्थापना के काल से बहुत प्राचीन है।

दूसरा प्रमाण यह है कि, उपलब्ध मुद्रा लेखों से स्पष्ट है कि, मोहञ्जोदारो नगर के निवासी लिखना जानते थे। अक्षर लिख सकते थे अथवा लिखने की कला का उस समय आविष्कार हो चुका था। पर ऋग्वेद के समय लिखने की

प्रथा का आविष्कार नहीं हुआ था। इसी लिए ऋषि लोग मौखिक उपदेश से ही अपने शिष्यों को वेद पाठ पढाया करते थे। मन्त्र लिखे नही जाते थे। ऋचाएं पुस्तक के रूप मे विद्यमान नही थी। पीछे से मन्त्रों को पुस्तक का रूप दिया गया। इससे स्पष्ट है कि, लिखने की कला का आविष्कार ऋग्वेद के समय से बहुत पीछे का है। यह लिखने की कला मोहञ्जोदारो मे प्रचलित थी। इससे यह परिणाम निकलता है कि ऋग्वेद का समय मोहञ्जोदारो से बहुत पूर्व का है।

जर्मन देश के प्रसिद्ध आचार्य जैकोबी महोदय ने ज्योतिषशास्त्र की गणना से सिद्ध किया है कि, ऋग्वेद का समय ईसा से कम-से-कम ५००० वर्ष पहले का है। मोहञ्जोदारो का समय ईसा से ३००० वर्ष पहले का है। इससे हमारे ऊपर लिखे कथन की पुष्टि होती है कि, ऋग्वेद का समय मोहञ्जोदारो से कम-से-कम दो-तीन हज़ार वर्ष पहले का है। संसार के और किसी भी देश की सभ्यता का इतिहास इतने प्राचीन काल तक नहीं पहुंचता। फलतः भारत की सभ्यता ही प्राचीनतम सभ्यता है।

---

* श्रीः *

महाराष्ट्रिय सुप्रसिद्ध सन्त तुकारामजी का
संक्षिप्त परिचय

महाराष्ट्र में पूना के पास 'देहू' नाम के ग्राम मे सन् १५६० के समय में वैश्य कुल मे तुकाराम जी का जन्म हुआ, यह महात्मा गृहस्थाश्रमी होने पर भी इन्होंने अध्यात्म विषय पर महाराष्ट्र भाषा मे ऐसी उज्ज्वल और सरल कविताएं बनाई है, कि जिनको पढ कर पाश्चात्य विद्वान् लोग भी मुक्त कंठ होकर स्तुति करते है, इनकी कविताओं का 'अभङ्ग' यह नाम प्रसिद्ध है। इनकी संख्या लाखों से ऊपर है, ऐसा कहते है, परन्तु उनमे से उत्तत्तोत्तम आठ नौ हज़ार अभङ्ग छपे हुए मिलते है।

महाराष्ट्र मे तो इनके अभङ्ग का इतना आदर है कि 'पंढरपुर' ज़िला सोलापुर की तरफ बडे २ वैदिक तथा शास्त्री लोग भी वेद पाठ के तुल्य इनके अभङ्गों का नियम पूर्वक थोडा बहुत प्रतिदिन पाठ किया करते है। किं बहुना इनके कोई १०–१५ ऐसे विशिष्ट अभङ्ग है, कि जिनका पाठ कुछ दिन नियम पूर्वक करने मे नाना चाल के व्यावहारिक सङ्कट, तथा शारीरिक व्याधि भी हट जाते है। बहुत से श्रद्धालु महाराष्ट्र सज्जन अभी भी उन अभङ्गों का निर्दिष्ट उद्देश्य से उपयोग करते हुए देख पडते है।

इन अभङ्गों के विषय मे जेसी शास्त्री और वैदिकों की श्रद्धा है, वैसी ही महाराष्ट्रिय आङ्ग्ल-विद्या-धुरन्धर लोगों की भी इस पर अटल श्रद्धा और अनुपम प्रेम है। वे भी अपने तीव्र गवेषणा बुद्धि से इनके सार सर्वस्व को लूटते रहते है। प्राकृत जनता तो इनको प्रति दिन बडे ही आनन्द के साथ अपनी २ मंडली बना कर, ताल, मृदङ्ग, वीणा लेकर भिन्न २ रागों में गान करती हुई अपूर्व प्रेम के साथ नृत्य करती है। इनकी भाषा भी ऐसी सरल गम्भीर और स्पष्ट है, कि बालक, स्त्री लोग और अपठित मनुष्यों को भी वह सहज आकर्षण करती है। इतना ही नहीं, उस कारण उनके लिए वह एक जीवन सुधारने वाला और शान्ति देने वाला अमूल्य ग्रन्थ रूप चिन्तामणि हो बैठा है।

ऐसे अभगों मे से कतिपय सारवत्तर पद्य पाठकों की सेवा मे उन्ही की भाषा मे उपस्थित करके हिन्दी भाषा मे उन पद्यो का यथावत् अभिप्राय भी प्रकट करेंगे।

तुकाराम अपने को खास वैकुण्ठ लोक सें अवतीर्ण समझते हैं।

आम्ही वैकुण्ठ वासी, आलो याच कारणा सी
बोलिले जे ऋषि, साच भावे वर्तीया ॥
झाडु संताचे मारग, अडरानी भरले जग,
उच्छिष्टाचा भाग, उरला शेष तो सेवु ॥
अर्थ लोपले पुराणी, नाश केला शब्द ज्ञानी,
विषय लोभी मनें, साधने बुडविली ॥
पिट्ट भक्तीचा डांगोरा, कलिकालासी दरारा,
तुका म्हणे करा, जय जय कार आनन्दे ॥ १ ॥

(भावार्थ) हम लोक वैकुण्ठ वासी है, साक्षाद्भगवान् के पास सायुज्य मुक्ति को पाकर हमेशा आनन्द मे रहने वाले होते हुए भी, हम को भूलोक मे आना पडा, इसके दो कारण है। एक तो बडे बडे तपस्वी महर्षियों ने वेद द्वारा जो कहा है, उसका यथार्थ अनुष्ठान हम स्वयं करके लोगों से भी करवावे। दूसरा कारण यह की सज्जनों के चलने के लिए जो प्रणाली है, वह अनेक दोषों से ढक गई है। अतएव बहोत से जन रास्ता छोड कर जा रहे है। उन दोषों को हटा कर सज्जनो का रास्ता सफा करना।

पुराण ग्रन्थ भी अनेक है, पर उनका रहस्य पुराणही मे लुप्त हो गया। और केवल उनके अक्षरार्थ से जनता की भूल हो रही है। हर एक यजमान, पुरोहित प्रभृतिओं का मन लोभी हो जाने से यज्ञादि साधन भी डूब गए। अब हमको यज्ञादि कर्म काण्ड का अनुष्ठान, अथवा बाह्य अनुष्ठान के विना ही मन मे यज्ञिय उपासना, यह दोनो करना असम्भव होगया और कराल कलिकाल तो दोषो को बढा रहा है। ऐसी दशा मे भगवान् की भक्ति हि प्राणियों के उद्धार के लिये एक साधन बचा है। हम उसी का बडे जोर से तुमुल दुदुभी बजावेगे, जिससे कलि काल भी भयभीत होकर कांपने लगे। तुकाराम कहते है—हम भी केवल आनन्द से भगवान्

का जय जय कार करेंगे और जन-जनार्दन का प्रारब्ध भोग रूप यज्ञ हो रहा है, उसमें जो बचेगा (अर्थात् हमारे प्रारब्ध से जो हमारे पास आवेगा) उसी को यज्ञ शेष 'अमृत' समझ कर प्रति दिन ग्रहण करेंगे, इससे जीवन यात्रा भी बिना परिश्रम की और अत्यन्त पवित्र होगी। इसी प्रकार तुम भी हमारे साथ करो।

सन्तों का इतर जनता से वैलक्षण्य

पृथ्वीचिया पोटी हिरा गारगोटी, दोहींशी कसवटी लावूं नये।
दुधाचिये पोटी ताक आणि लोणी, एकया मोलें दोन्ही मागू नये॥
आकाशा चे पोटी चन्द्र तारागण, प्रकाशा समान मानू नये॥
तुका म्हणे तैसे सन्त आणि जन, दोहींसी समान पाहू नये॥ २॥

(भा) हीरा और कंकर दोनों भूमाता के गर्भ से निकलते हैं, पर हीरा तो कसौटी पर चढाया जाता है, बडे २ लोहे के घनों के प्रहारों से आजमाया जाता है। तब वह बडे २ सार्व भौमों का मुकुट मणि हो बैठता है, क्या यह प्रक्रिया और यह गौरव कंकरों में पाया जायगा ? दूध को गरम कर आतञ्चन कर (दहि जमा कर) मन्थन करके उसमें से मक्खन और तक्र दोनों साथ ही निकलते है, तो क्या मक्खन के मूल्य से ही तक्र को भी कोई खरीद करेगा ? आकाश के विशाल आंगण में चन्द्र और तारागण विराजमान होते है, तो क्या राका पौर्ण-मासी के दिन अकेले चन्द्रमा ने दिए हुए प्रकाश के समान अमावास्या के दिन सब तारागण मिल कर भी प्रकाश को दे सकते है ? तुका कहते है—वैसे ही अकेले सन्त का बोधमय प्रकाश, उसका गौरव रूप मूल्य और उसकी तीव्र तर तपस्या रूप कसौटी क्या करोडों प्राकृत जनों में पाई जा सकती है। जो कि दृष्टांत में भी तीनों बातें एक जगह नही मिलती, वही तीनों सन्त रूप दार्ष्टान्तिक में समुच्चित और उज्ज्वलता से चमकती हुई देख पडती है। ऐसे सन्तों का प्राकृत जनता की अपेक्ष्या महदन्तर हम क्या वर्णन करे।

सन्तों का लक्षण

न व्हती ते सन्त करिता कवित्व, सतांचे ते आप्त नव्हती सन्त।
येथे नाही वेश सरते आडनाव, निवडे घावडाव व्हावा आगी॥
नव्हती ते सन्त धरिता भोंदला, करिता वाकला प्रावर्णासी।

न व्हती ते सन्त करिता कीर्तनें, सागता पुराणें नव्हती सन्त ॥
तुका ह्मणे नाही निरसिता देह, तो वरी अवघे सासारिक ॥ ३ ॥

(भा०) केवल अध्यात्म विषयक कविता करने से सन्त नहीं कहे जा सकते। अथवा सन्तो के कुल मे पैदा होना, मात्र सन्तो का लक्षण नही है। वेष अथवा उपाधि मात्र धारण करने से सन्तो की महिमा प्राप्त नही होती।

सन्त होने के लिए तीव्रतर मानस तप से बनी हुई चित्त की अत्यन्त उज्ज्वल भूमिका ही अपेक्षित है। वीणा, ताल मृदङ्ग अथवा जीर्ण वस्त्रो की कथा पहनने मात्र से सन्त बनने की भूमिका सिद्ध नही होती। कि बहुना कथा, कीर्तन अथवा पुराण कहना इत्यादि से भी वह योग्यता नही बनती। अतः तुका कहते है—देहाभिमान निःशेष हटाना, यही सन्त बनने की विशेष भूमिका है। अर्थात् जब तक देहाभिमान रख कर उपरि चिन्ह मात्र धारण किए है, तब तक एकान्त मे पहाडों की गुफाओं मे निवास करने वाले भी सासारिक ही है। इस पद्यसे 'न हवै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति'।

'अशरीरं वाव सन्तं न प्रिया प्रिये स्पृशत'
'अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।'
'नानुध्यायात् वहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत।
दृश्यते त्वग्र्यया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः'।
इत्यादि श्रुतिओ का अर्थ तात्पर्यंत कथन किया।

तुकारामजी का वेदार्थमय जीवन।

वेदाचा तो अर्थ आम्हासी च ठावा, इतराने वहावा भार माथा। १।

(भा०) शरीराभिमान निरसन करने से हमारी चित्त बृत्ती स्वरूपतः वेदार्थ मय हो चुकी है, अतः वेदार्थ हम लोग ही जानते है, जिनकी अभी सासारिक भावना बाकी है, वे लोक वेद शास्त्र पढ कर भी केवल भार वाही है, अतः अन्य लोगों मे और हमारे मे यह भेद सिद्ध हुआ, कि हमारे मुख से जो बात निकलेगी, वह वेदार्थ से अन्य कभी नहीं हो सकती है, कि बहुना हमारी ज्ञानेन्द्रियों की और कर्मेन्द्रियों की सब बृत्तिया वेदार्थ मय है।

शरीराभिमान निरसन से क्या लाभ हुआ

आपुले मरण पाहिले म्या डोला तो झाला सोहला अनुपम ।
आनन्दे दाटली तिन्ही त्रिभुवने, सर्वात्मकपणे भोग झाला ।
एकदेशी होतो अहंकारे आथिला, त्याच्या त्यागे झाला सुकाल हा ।
फिटले सुतक जन्मा मरणाचे, मी माझ्या संकोचे दूर झालो ।
नारायणे दिला वसतीस ठाव, ठेवोनिया भाव ठेलो पायी ।
तुकाम्हणे दिले उमटूनी जगी, घेतले ते अंगी लावूनिया । ४ ।

(भा)आज अपने दिव्य नेत्र से हमने हमारी प्रत्यक्ष मरण अवस्था देखी। वह एक अनुपम आनन्द महोत्सव हुआ। तीनो भुवन आनन्द से भरे है, उनका भोग आज हमको सर्वभाव से हुआ। आज तक देहाभिमान से हम एकदेशी बन बैठे थे, उस अहंभाव का त्याग होते ही सर्वात्म भाव हुआ। आनन्दमय रूप चारों ओर खुल गया। जन्म मरण परंपरा का अशुचि सम्बन्ध टूट गया। अब हमको परिछिन्न भाव (सकोच) कही रहा नही। भगवान ने हमको अपने यथार्थ रूप में रहने को विशाल जगा दी। अब हमे भगवान् के चरणों के सिवा और कोई देख पडता नही। तुका कहते है—यह जो हमारा अपरिच्छिन्न आनन्दमय नित्य रूप प्रकट हुआ, वही हम है, यह निश्चय अब काल—त्रय मे भी मलिन नही हो सकता ।

इससे सामर्थ्य कितना वढा

मऊ मेणाहूनि आम्ही विष्णु दास, कठीण वज्रास भेदू ऐसे ।
मेले जित असो, निजोनिया जागे, जो जो जे जे मागे ते ते देऊ ।
भले तरी देऊ गाडी ची लंगोटी, नाठाल्याचे काठी देऊ माथा।
माय वापा हूनि बहु मायावंत, करू घात पात शत्रु हूनि ।
अमृत ते काय गोड आम्हा पुढे, विष ते बापुडे कडू किती ।
तुका ह्मणे आम्ही अवघेचि गोड, जया पुरे कोड त्याचे परी । ५ ।

(भा)हम लोक भगवान् के दास होने से भगवान् के समान ही मृदुता मे मक्खन, मोम वगैरह से भी मृदु है। इससे उलटी वज्र को भी चूर करने वाली हमारी कठिणता है। हम लोग देह की दृष्टी से मरे है, तो भी चैतन्य दृष्टी से नित्य जीते है, सांसारिक वासना हमारी लीन होने से हम सोए रहे है, पर अन्तःकरण की तुरीया वस्था को

लेकर हम नित्य जगे हैं, अतएव हम सारे त्रिभुवन के किसी भी चीज को, जो मागे, उसको वह दे सकते हैं। मागने वाला यदि श्रद्धावान् और सरल हृदय का है, तो उसके लिए हम सर्वस्व अर्पण कर सकते हैं। यदि वही कपटी कुटिलबुद्धि है, तो उसके माथे डण्डा (शाप) भी दे सकते हैं। हम लोक प्रत्यक्ष जनक जननी से भी हर एक पर ज्यादा प्यार करने वाले हैं, इसमे विपरीत संपूर्ण कुल का भी हम नाश कर सकते हैं, जैसा कि बलवान् शत्रु भी नहीं कर सकता। हमारे मे जो मधुरता है वह अमृत मे कभी नहीं पाई जायगी, वैसे ही हमारी नाशकता शक्ती का लेश भी विष मे नहीं मिलेगा। इस पर भी तुका कहते है--कितना भी होय हम स्वरूपतः आनन्द और मृदुता तथा कल्याण ही के रूप मे है, हर एक अपने सद्‌गुणों से उसका लाभ उठा सकता है। दुर्जनों के लिए तो उसको दुष्टता ही का कुफल मिलेगा, हम स्वरूपतः कभी कुत्सित नहीं होंगे।

ऐसे संतों का लाभ अब अवश्य उठाना चाहिए ॥

रवि दीप हिरा दाविती देखणे, अदृश्य दर्शने सन्तावेनी।
त्याचा महिमा काय वर्णू मी पामर, न कले तो साचार ब्रह्मादिका।
तापली चन्दन निववितो कुडी, त्रिगुण तो काढी सत संग।
माय बापे पिण्ड पालियला माया, जन्म मरण जाये सत सगे।
संताचे बचन वारी जन्म दुःख, मिष्टान्न ते भूक निवारण।
तुका म्हणे जवली न पाचारिता जात्रे, सत चरणी जावे रिघावया ॥६॥

(भा) सूर्य, दीप अथवा हिरा इनसे केवल आखो से देखने योग्य, रूप वाली चीज ही देख पडती है, परन्तु सन्तो की महिमा से अतीत अनागत तथा रूप रहित वस्तु भी देख पडती है, ऐसे हमारे गुरु परम्परास्थित सन्तोकी महिमा हमारे जैसे साधारण जन क्या वर्णन कर सकते है, जिसका ब्रह्मादिको को भी पूरा पता नही लग सकता ॥

जगत् मे चन्दन यह विशेष ताप हारक और शान्ति दायक समझा जाता है, परन्तु वह भी तप्त शरीर को ही सुख देगा, जाडे से जकडी हुई तनु को उससे कोई लाभ नही, सन्त सग की तो यह बात है, कि वह क्या जाडा और क्या आतप, इन सब के उद्भव के कारणी भूत सत्वरज तम इन तीनो गुणों के सम्बन्ध को जड को ही काट देता है। माता पिता का यदि दृष्टान्त ले, जो कि बडे प्रेम

से बालकों की शरीर रक्षा के लिए अपना तन मन धन हर तरह से अर्पण करते है, परन्तु वे भी बालको को जन्म मृत्यु की पकड से कभी नही छुडा सकते, सन्तो का तो यह प्रभाव है, कि जिनके यथार्थ संग मात्र से ही जन्म मरण की वार्ता तक छिप जाती है। कोई कहे कि—मिष्टान्न भक्षण करने से सब इन्द्रियों की तृप्ति होकर अपूर्व आनन्द मिलता है, परन्तु उससे भी सांसारिक अन्य क्लेशों का निवारण नहीं होना प्रत्युत बृद्धि हि होती है। सन्त के बचनो से तो सब चालके क्लेशों का नाम निशान तक मिट जाता है, और अविच्छिन्न अखण्ड आनन्द ही आनन्द रह जाता है। अतः तुका कहते है—सन्त चरणों मे सद्भाव से शरण होने के लिए सन्तों के पास स्वयं अवश्य जाना चाहिए, वहां जाने के लिए बुलाने की अथवा सूचना तक की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये।

भगवान को हमने कितना वश किया है

चवदा भुवने जयाचिण पोटी, तोचि आम्ही कण्ठी साठविला।
काय एक उणे आमुचिण घरी, वोलिंगती द्वारी रिद्धि सिद्धि।
असुर जयाने घातले तोडरी, तो आम्हासी जोडी कर दोन्ही।
रूप नाहीं रेखा जयासी आकार, आम्ही तो साकार भवती वेला।
अनन्त ब्रह्माण्डे जया चेनि अंगी, समान तो मुगी आम्हा साठी।
तुका म्हणे आम्ही देवाहूनी वली, झालो हे निराली टेउनी आशा। ७।

(भा) जिस सर्व व्यापक चैतन्य भगवान के उदर मे चौदा भुवन सलील बसे है, उस शुद्ध बोध मय भगवान् को हमने हृदय मे समाय लिया है, इसीलिए चौदा भुवनो में से कही पर भी रहने वाली अच्छी से अच्छी चीज हमारे घर मे भरी है, तब हमारे यहा क्या कम है? किं बहुना रिद्धि सिद्धि वगैरह सब हमारी दासी बन कर दरवजा पर बैठती हुई हर एक अपेक्षित नई चोज को बना सकती हैं। जिस भगवाम ने हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु के समान दैत्यो को नष्ट और उध्वस्त किया, वह हम भक्तों के वश होकर दोनो हाथ जोड कर हमेशा कहता है–महाराज आप क्या चाहते हैं। जिस निर्गु ण निराकार भगवान् को रूप आकार अथवा परिच्छन्न-ता नहीं, उसी भगवान् को हमने एक भक्ती ही के कारण सगुण और साकार बना कर रखा है। किं बहुना चौदा चौदा भुवन जिस ब्रह्माण्ड मे रहते है, ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डो को जो भगवान् अपने मे एक ही काल मे लीला से विशाल

स्थान देता हुआ सबका योग क्षेम संकल्प मात्र से धूम धाम से चला रहा है, ऐसा अपार सामर्थ्य वाला भगवान् और यत्किंचित किडी चिटिया वैगेरह जीव मात्र हमारे दृष्टी में बराबर हैं (तात्पर्य यह की जो काम परमेश्वर कर सकते है, वही काम हम एक किडी मुंगी से करवा सकते है, जैसा कि पूर्व काल में ज्ञानेश्वर महाराज ने एक महिष (भैसा) के मुख से वैदिकों की सभा मे चारो वेद कण्ठ कहवाए) तुका कहते है-हम लोग भगवान् से भी बलवान बने है, परन्तु हमारा मन्तव्य उद्देश्य मात्र बहोत भिन्न है।

भक्ति के बल से तुकाराम स्वयं भगवान ही है।

भक्तीचिया पोटी रत्नाचिया खाणि, ब्रह्मीच्चि ठेवणी सकल वस्तु ।
माउली चे मागे बालकाची हारी, एका सूत्रे दोरी ओढतसे ।
जेथील जे मागे ते राया समोर, नाही से उत्तर येत नाही ।
सेवे चिये सत्ते धनीच सेवक, आपुले ते एक न वंची कांही ॥
आदि अन्ता ठाव असे मध्य भाग, भोवते असे जग उंवासनी ।
भावारूढ तुका झाला एकाएकी, देवच लौकिकी अवघा केला ॥ ८ ॥

(भा०) भक्ती यह एक ऐसा साधन है कि जिसके मध्य मे सब रत्नों की खान भरी है, कि बहुना भक्ति ही भगवान की सकल प्रिय वस्तु रखने की एक तिजोरी है, इसी बात को दो दृष्टान्त से पुष्ट करते है--

जैसे माता के पीछे सब बच्चे चलते है। माता की निगाह पर बच्चों का खुश रहना आश्रित है, यह बात पशु पक्षियों मे खास कर देख पडती है, जिनको कि एक काल मे बहुत बच्चे होते हैं, वह माता एक सूत्र से सब बच्चों को चलाती हुई वश करके बैठी है, वह सूत्र है—निरपेक्ष प्रेम।

दूसरा दृष्टान्त देखिए, जैसे किसी राजा का आज्ञाधारी सेवक जिस समय जो चीज़ राजा मागेगा, तुरन्त उसे उपस्थित कर देता है, कभी भी जिसके मुख से 'नहीं' यह उत्तर नहीं निकला। सेवा परायणता के गुण से ऐसी जगह सब चीज़ों का संसाधन, रक्षण, व्यवस्थापन और समय पर राजा के सामने उपस्थापन, यह सब बातें सेवक के अधीन होने से, सेवक ही स्वामी के तुल्य ऐश्वर्यवान् बनता है, और स्वामी को बिल्कुल आत्मवश करके रखता है। इस उदाहरण मे वैशिष्य स्वयं तुका कहते हैं—कि इसमे सेवक की एक भी चीज़ नहीं

है। सब चीजें, सब धन, सब प्रबन्ध की आज्ञा और सब सत्ता स्वामी की होते हुए भी, स्वामी तो परवश होता है, और सेवक तो मस्त होता है, केवल स्वामी के प्रति एक अनन्य भाव रखना इतना ही इसका ध्येय है, निर्दिष्ट स्वामी सेवक के दृष्टान्त को दार्ष्टान्तिक मे घटाते हुए तुका कहते हैं, इसी प्रकार अनन्य भक्ती से हमने वश किए हुए भगवान् निर्गुण निराकार अपरिच्छिन्न सर्व व्यापक होते हुए भी, हमारे लिए सगुण साकार बन कर हमारी सेवा लेने के लिए मध्य भाग मे उच्च सिंहासन पर विराजमान है, हम भी इनके सब भागों को जानते है, यह आदि मे कैसे अव्यक्त रहते है, मध्य मे भक्तों के भावना वश से कैसे २ व्यक्त हो सकते है, अन्त में फिर इनकी अव्यक्तता ही कैसी दृढ होती है। अव्यक्त होते हुए भी ब्रह्माण्ड को अपने वश चलाने की इनकी कुशलता कैसी होती है, इन सब गम्भीर बातों को हम प्रत्यक्ष करते हुए इतने उच्च भाव पर आरूढ हुए है, कि हमको व्यक्त दशा ही में अव्यक्त भगवान मय सब जगत दिखाई दे रहा है। तब हम भी भगवान् है यह अलग क्या कहना।

निर्गुण निराकार भगवान को प्रत्यक्ष रूप में सगुण साकार क्यों होना पड़ा।

माझ्या इन्द्रियासी लागले भाण्डण, म्हणतील कान रसना धाली।
करिती तलमल हस्तपाद भाल, नेत्रासी दुकाल पडिला घोर।
गुण गाय वाणी, आयकती कान, आमुचे कारण तैसे नव्हे।
दरशने फिटे नेत्राचा तो पाग, जेथे ज्याचा भाग घेईल ते।
तुका म्हणे ऐसे करी नारायणा, माझी ही वासना ऐसी आहे॥ ९॥

(भा) तुकाराम भगवान् के अखण्ड नाम स्मरण करने ही को सब से प्रथम साधन समझते थे। नाम स्मरण करने से वाणी और कर्ण हमेशा तल्लीन रहते थे, तो भी नेत्र और हस्तपादादिक की वृत्तिया या तो बन्द रखनी पडती थीं, अथवा जागतिक किसी पदार्थ की तरफ जाती थी, उनका जागतिक (लौकिक) पदार्थ की तरफ जाना तो तुकाराम जी को इष्ट नहीं था, बन्द करके रक्खे तो नेत्रादि इन्द्रियों की स्वभाव सिद्ध प्रवृत्ति-परता मारी जाती है, इसलिए नेत्रादि की तृप्ति, सगुण सरूप भगवान बने, तब ही हो सकती है, वैसी ही हस्तपादादि अवयवों को भगवान् की सेवा तब ही हो सकती है, यदि भगवान परिछिन्न और साकार बने, इस आशय से तुकाराम जी भगवान की प्रार्थना करते है—

महाराज ! हमारी इन्द्रियों का आपस मे बडा बाद बिवाद हो रहा है। कर्ण कहते है—कि रसना ने तो भगवान् का नामोच्चारण करके अमृत पान किया, पर हमतो तटस्थ होकर सुनते मात्र है उच्चारण नहीं कर सकते। हस्तपाद कहते है–हम तो कर्ण के समान ज्ञानेन्द्रिय नहीं है, हम तो कर्मेन्द्रिय है, निर्गुण भगवान् मे तो क्रिया का सम्बन्ध न होने से हम तो अकिंचित्कर है। ललाट कहता है–हम उच्च दर्जे के अवयव होते हुए भी बेकाम बने है। नेत्र कहते है–भाइयो ! ललाट को तो वृत्ति नही है। हस्तपाद को तो वृत्ति होने पर भी, रोकने से रुक सकती है और उनमे ज्ञान शक्ति न होने से, उनको इतना अफसोस भी नहीं, पर हाय हाय ! मेरी तो हालत मै क्या कहूं ? मै न रोकने से रुक सकता हूं, खुला होकर भटकता हूं, तो चारों तरफ मुझे दुकाल ही दुकाल मालूम पडता है। कि बहुना जो रूप (नश्वर का) मै नहीं देखना चाहता, वही चारों तरफ मुझे घेरता हुआ नजर आ रहा है। इससे बेहतर है, कि अब मैं इस संसार मे न रहूं। हाथ पैर और ललाट भी नेत्र को साथ देते हुए कहते है–केवल रसना और कान इन दो को इस संसार मे रहने दो, क्योंकि एक नामोच्चारण करता है और दूसरा सुनता है, हम लोगों का इससे कोई काम नही निकलता, तो अब संसार मे फजूल बन कर रहने की अपेक्षा, न रहना ही अच्छा। इतना सुन कर—तुकाराम जी कहते है—महाराज ! मेरी तो ऐसी दृढ वासना है, कि अब आप सगुण साकार बन जाइए, तब आपके रूप को देख देख कर नेत्र की भी पारणा हो जाएगी और हस्तपाद ललाट वगैरह भी अपना २ काम सभाल कर अपने जीवन को सफल बनावेगे।

ऐसी तुकाराम की अनन्य भाव से प्रार्थना सुन कर, भक्तवत्सल भगवान् को तुकाराम जी की वासना के अनुरूप सगुण रूप मे प्रगट होना पडा। किं बहुना तुकाराम जी के प्रबल और शुद्ध वासनाओं से अवछिन्न चैतन्य सगुण रूप बन गया। अब उसका लाभ केवल अपना ही नेत्रादीन्द्रिय मात्र उठावे, यह तुकाराम को अभीष्ट नहीं, किंतु सकल भक्त मात्र उसका लाभ उठावे।

तुकाराम जी जाति से अनुपनीत वैश्य (शूद्र) थे। इस पर कोई घृणा न करे अतः वे कहते है—

प्राक्तनाच्या योगे अलशावरी गंगा, स्नान काय जगा करू नये।

जरी कामधेनु मांगा चे अंगणी, तिसी काय ब्राह्मणी वन्दू नये।
कोडियांचे हाते परि से होय सोने, अपवित्र म्हणोन घेऊ नये।
याति हीन झाला गावी चा मोकासी, त्याचे वचना सी मानू नये।
भावारूढ तुका मुद्रा विठोबाची, न मनी तयाची तोएडे काले ॥ १० ॥

(भा) कोई अत्यन्त आलसी मनुष्य है, परन्तु उसका पूर्व पुण्य इतना प्रवल है, कि मानो उस के लिये साक्षात् गङ्गा उस पर स्वर्ग से अवतीर्ण हुई, तो क्या और लोग उस गङ्गा मे न्हा कर अपने को पुनीत न करे ? क्या भगीरथ के सिवा अन्य किसी के लिये अवतीर्ण गङ्गा जगत्पावनी नहीं हो सकती ? अथवा किसी अन्त्यज के अंगण मे मानों साक्षात् कामधेनु यदृच्छा से खडी हो गई। तो क्या ब्राह्मण क्षत्रियादि उच्च वर्ण के लोग उसे प्रणाम न करे ? अथवा किसी श्वेत कुष्टी आदमी के हाथ मे पारिस है, उसको लोहे का स्पर्श होने से वह सुवर्ण होगया, तो क्या उसको अपवित्र समझ कर न लिया जाय ? अथवा कोई हीन जाति का मनुष्य दैव वश से किसी ग्राम का जागीरदार बन गया, तो क्या उसके वचनों को गांव वाले लोग नहीं मानते ? इसी चाल से हमारा शरीर जाति हीन होने पर भी हमारे सम्बन्ध से आये हुवे भगवान्, अथवा उन्ही की प्रेरणा से हमारे मुख से निकले हुवे वेदार्थो के सिद्धान्त वाक्य दूसरे को उपादेय नहीं हो सकते ? किं बहुना हम इस स्थूल शरीर से पहिले ही मृत हो चुके है। अतः इस शरीर का और हमारा विलकुल तादात्म्याध्यास रहा नही। अतः हम भगवान् के सिवाय अन्य रूप मे जीवित नहीं है। यह बार बार भक्त जनों के सामने दृढ घोषणा कर के कहते आये है। इस पर भी हमारी बात का जो लोग विश्वास नही करते, उनका मुह काला। अर्थात् घोर अन्ध तामिस्र मे फसे है। उन को कौन समझा सकता है ?

तुकाराम को महान् निधि मिला है।

न सरे लुटिता मांगे बहुतानी, जुनाट हे खाणी उघडिली।
सिद्ध महामुनि साधक संपन्न, तिही हे जतन केले होते।
पाया ला चे गुणे पडले है ठाउके, जगा पुंडली के दाखविले।
तुका म्हणे तेथे हो तो मी दुबला, आले या कपाला थोडे बहु ॥ ११ ॥

(भा) यह बहुत पुरानी खान खोलदी गई है। इसे पहिले कई लोगों ने मन माने

लूट लिया, पर यह कभी कमती हुई नहीं दिखाई। भक्तवर प्रह्लाद, नारद, वशिष्ठ, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अंबरीष, शुकाचार्य, शौनक, भीष्माचार्य, हनूमान, अङ्गद, विभीषण, और अर्जुन प्रभृति महात्माओं ने अनन्य भक्ति बल से इस खान से अमूल्य रत्न पाकर ऐसा आनन्द लूटा है, कि जिस की गूंज के युग लौटने पर भी अभी तक सुनाई देती है। इस खान को बड़े २ तपस्वी सिद्ध मुनियों ने रक्षण कर रखा है, पर लुटाने के लिये खोलना, यह सब की सामर्थ्य नहीं होती। जैसे तल घर में गड़ा हुआ निधि किसी पादोत्पन्न पुरुष को (जो माता के उदर से निकलते समय शिरः पूर्वक न निकल कर पाद पूर्वक निकलता है) ही दिखाई देता है, अन्य को नहीं, ऐसा ही यह सच्चिदानन्दघन भगवान् की खान लुटाने का सामर्थ्य किसी पादोत्पन्न (अर्थात जो वहिर्मुख नहीं है अन्तर्मुख है) को ही होता है। यह खान बहुत पहिले (२८ महा युग पूर्व) भक्त वर पुण्डरीक ने खोल कर जगत में बांट दी। उस समय हम भी भाग्य वश वहां उपस्थित थे। उस समय जो हमने वहां लूटा, उसको आज इस जन्म में लोगों से भी लुटाने के लिये खोल बैठे हैं।

तुका राम को सगुण रूप का साक्षात्कार।

आलिंगन कण्ठा कण्ठी, पडे मिठी सर्वाङ्गे।
न घडे मागे परते मन, नारायण संभोगी।
वचना सी वचन मिले, रिघती डोळे डोलियात।
तुका म्हणे अन्तर्ध्यानी, जीव जीवनी विराल्या ॥ १२ ॥

(भा) भगवान् हमारे कण्ठ लगे है, हम भगवान् के कण्ठ से लगे है। पैर से लेकर मस्तक तक सर्वाङ्ग को परस्पर ने लपेट लिया है। इस सच्चिदानन्द भोग से दोनों में से किसी की भी मनोवृत्ति पीछे नहीं हटना चाहती। हम दोनों का उत्तर प्रत्युत्तर भी हो रहा है। परस्पर के नेत्र किरण परस्पर के नेत्र कनीनिका पर डट रहे हैं। तुका राम जी कहते है--कि बहुना जीवन शक्ति भी परस्पर के तादात्म्य को प्राप्त हो कर लीन सी होगयी।

इतनी देर तक तुकाराम ने अपनी सामर्थ्य के विश्वास पर जो कहा वह सुन कर किसी को उनके अभिमानिता की आशङ्का होगी अतः--

तुका राम जी का विनय देखिये—

नकतिका चे पायी माझी विन वणी, मस्तक चरणी ठेवीतस ।
अहो श्रोते वक्ते सकल ही जन, बरे पारखून बांधा गाठी ।
फोडिले भाण्डार धन्याचा हा माल, मी तव हमाल भारवाही ।
तुका म्हणे चाली झाली चहूं देशी, उतरला कसी खरा माल ॥ १३ ॥

(भा) सब आबाल वृद्धों के चरण कमलों मे मेरी यह नम्र अभ्यर्थना है, कि वे सब मेरे सादर प्रणाम को पहिले स्वीकार करे । श्रोता और वक्ता, ज्ञानी और अनजान सब लोगों से दूसरा मेरा यह विशिष्ट अनुरोध है, कि वे जिस विचार को अपनाने वाले है, उसे पहिले खूब परीक्षा कर लीजिये. मै जिन विचारों को आप के सामने रखना चाहता हूं, वे मेरे व्यक्ति के नही है, वे आप और हम सबका जो प्रभु है, उस के खजाने मे से लाये हुये अमूल्य रत्न है । उन पर मेरा स्वतन्त्र कोई हक्क नही । हम तो केवल उस बोझा को उठा कर ले चलने वाले मानों कूली (हमाल) है । पर बात इतनी ही है, कि सब देशों के ग्राहकों ने इस माल की पूरी २ जाच की है, और सब की परीक्षा मे यही माल सब से अव्वल दर्जा का ठहराया गया । अब आप भी यदि किसी चीज को उत्तम समझ कर सग्रह करना चाहते हों, तो इसी परीक्षित चीज को सग्रह मे रखिये । इस मे दो अपूर्व गुण है, एक तो यह चीज अपने ही मालिक की होने से इसके संग्रह के लिये कीमत (मूल्य) नहीं देनी पडेगी । दूसरा अतीत अनागत वर्तमान सब प्राणिमात्र के लिये यह चीज समान रूप मे बनी हुई है, अत: तरतम भाव के विना ही यह चिर से चिर तक स्थिर रहने वाली है, और ग़रीब तथा अमीर ज्ञानी तथा अनपढ सबको मिलने वाली है ।

विनय का दूसरा प्रकार ।

आपुलिया बले नाही मी बोलत, सखा कृपावन्त वाचा त्याची ।
सालुंकी मजुल बोलत से वाणी, शिकविता धनी वेगलाची ।
काय म्या पामरे बोलावी उत्तरे, परिमा विश्वंभरे बोलविले ।
तुका म्हणे त्याची कोण जाणे कला वागवी पागुला पाया विण ॥ १४ ॥

(भा) हम अपने बल से अथवा व्यष्टिभाव मन मे लाकर नही कुछ कहते । किंतु प्राणिमात्र का कृपासागर सखा भगवान उसी की यह वाणी बोल रही है । जैसे सारिका (मैना) अत्यन्त मधुर कण्ठ से सारवत्तर बातों को कहती है । पर

वह विवक्षा मैना की नहीं होती। वहा उसको सिखाने वाला मालिक अलग ही रहता है। उसी की वह विवक्षा होती है। वैसे ही पामर और अल्पज्ञ हम क्या कह सकते है। तथापि वही विश्वम्भर भगवान् हमारे मुख से कहवाता है। उस भगवान् की अपूर्व लीला को कौन पहिचानता है। जोकि पंगु को पैर के बिना ही चलाता है, अन्ध को आंख के बिना ही व्यवहार समर्थ करता है; तब हमारे मुख से कहवाने मे क्या भगवान् को अशक्य है।

विनय का तीसरा प्रकार

संतांची उच्छिष्ट बोलतो उत्तरे, काय भ्या गवारें जाणावे हे।
विठ्ठला चे नाम घेता नये शुद्ध, तेथे मज बोध काय कले ॥
करितो कवित्व बोबड्या उत्तरी, झणी मजवरी कोप धरा।
काय माझी याति नेणा हा विचार, काय मी ते फार बोलो नेणे ॥
तुका म्हणे मज बोलवितो देव, अर्थ गुह्यभाव तोचि जाणे ॥ १५ ॥

(भा) सन्त लोगों के उच्छिष्ट वचनों का ही हम अनुवाद कर रहे है, क्योंकि गवार और अशिक्षित हम इन बातों को क्या जाने और क्या नया बना सके। 'विठ्ठल' टि० * यह भगवान् का नाम भी जब हमारे मुख से शुद्ध नही निकलता, तब उसके अर्थ का यथार्थ बोध हमे होना कितना दूर है। तथापि हम मन्द और असंस्कृत अपनी वाणी से कविता भी करते है। इस बात को देख कर, कि 'कहा हमारी अयोग्यता और कहां हमारा साहस' कदाचित् आप हमारे ऊपर रुष्ट भी होंगे। तुका कहते है–तथापि हमारी हीन जाति और असंस्कृतता को देख कर यह आप निश्चय करें, कि हमको भगवान् ही बोलने की प्रेरणा करता है और इन वचनों के अर्थ की गम्भीरता और यथार्थता भी वही जानता है। मै तो मेरे ही मुख से निकले हुए वचनों के अर्थ को भी समझने के काबिल नही हूं।

क्रमशः

माधव शास्त्री भाण्डारी।

टि० * विदा ज्ञानेन ठान् मन्दान् लाति अनुगृह्णातीति विठ्ठलः।

अथर्व सूक्त ३-२७-१ पर मीमांसा *टि० ।
और
मीमांसा सामग्री विचार ।

(ले० माधवशास्त्री भाण्डारी प्रधानाध्यापक, ओरियण्टल कालेज, लाहौर ।
वेदान्त–व्याकरणाचार्य–मीमांसा–साहित्यतार्थ)

प्रिय पाठक महोदय की सेवा मे आज एक अत्यन्त उच्च दर्जा का विषय उपन्यास किए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह विषय है मीमांसा। हमारे सर्व तन्त्र स्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र महोदय जी ने मीमासा शब्द का अर्थ ब्रह्म सूत्र के शाकर भाष्य की टीका मे लिखा है, 'पूजित विचार वचनो मीमांसा शब्दः' अत्यन्त पूजित अर्थों का विचार करना यही मीमांसा पदार्थ है। वेदार्थ विचारों के सिवाय भारतीयों के लिए दूसरा पूजित विचार कौन सा हो सकता है ? अतः मीमांसा यह विषय सब की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है, इसमे सन्देह नही। तथापि जितनी इस विषय की महनीयता और गम्भीरता है, उतनी ही विद्वान् लोगों की इस तरफ से पराङ्मुखता है. यही आश्चर्य का कारण है। मैं इस विषय पर बहुत दिन से लेख लिखने के लिए सोचता था, परन्तु पाठकों की पराङ्मुखता को देख कर इस विषय का अभी समय नहीं आया अथवा पंजाब की साधारण जनता इस विषय के विचार करने योग्य भूमिका मे अभी तक पहुंची न होगी, ऐसा सोच कर मौन धारण करके बैठा था, परन्तु हमारे प्रिय सुहृद् पं० विश्वबन्धु जी ने इस विषय को जनता के सामने अमूल्य रत्न के रूप मे रखने का रास्ता एक दो लेख से शुरू किया है। यह बात अत्यन्त धन्यवादार्ह है।

सब के प्रथम वेदार्थ विचार करने की थोडी सी सामग्री पाठकों के सामने यह रक्खी जाती है।

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना ।
अध्याहारोऽनुषङ्गश्च व्याख्यानं षड्विधं स्मृतम् ॥

टि० * यह लेख गत नवम्बर मास के मेगजीन मे छपे हुए प० विश्वबन्धु जी के 'मीमांसा-त्मक वाक्य विचार' इस लेख के समालोचनार्थ लिखा है। पाठक महोदय उस लेख को देख कर इस लेख का विचार करे।

वैदिक मन्त्रादिकों के व्याख्यान करते समय इन छ प्रकारों का बड़े सावधानी से विचार करना चाहिए। १ पदच्छेद २ पदों के अर्थ का निर्वचन ३ समास-तद्धितादि वृत्तिस्थल मे विवक्षित स्पष्टार्थ ज्ञान के लिए विग्रह दिखलाना ४ वाक्य योजना इस वाक्य योजना के दो भेद है एक साकाक्षपदों के अन्वय से वाक्य योजना दूसरी साकांक्ष अनेक वाक्यों के अन्वय से महावाक्य योजना जैसे अभियुक्तों ने कहा है—

स्वार्थबोधे समाप्तानामङ्गाङ्गित्व-व्यपेक्षया।
वाक्यानामेकवाक्यत्व पुनः संहत्य जायते ॥

५ अध्याहार जहा मन्त्रो मे अन्वय के समय आकांक्षा शान्त करने लायक तात्पर्यानुकूल पद नहीं मिलता वहा तात्पर्य वश से लौकिक योग्य पदों से आकाक्षा शान्त करना अध्याहार कहा जाता है। इस अध्याहृत पद मे वैदिकत्व नही रहता है किन्तु लौकिकत्व समझा जाता है, 'अनाम्नातेष्व मन्त्रत्वम्' जै० सू० ऐसा जैमिन्यादि मीमासकों का सिद्धान्त है। ६ अनुषङ्ग किसी एक मन्त्रस्थ पद (अथवा वाक्य का) समीपस्थ वाक्य मे अन्वय होकर अन्वयाकांक्षा शान्त हो गयी, तथापि उसी प्रकरण के दूसरे आगे के या पीछे के वाक्य मे उसी पद का अन्वय किए विना उस वाक्य का वाक्यार्थ पूर्ण नही हो सकता, ऐसे स्थल मे उस शातांकांक्ष पद का पुनः अन्वय करना, इसको अनुषङ्ग कहते है। जैसे 'सं ते मनो मनसा, स प्राणः प्राणेन गच्छताम्' शु० य० स० ६-१८। सोमयाग मे अग्नीषोमीय पशु का हनन करके उस पशु का मन और प्राण मन्त्र बल से देवता के मन और प्राण मे मिलाया जाता है। उस समय का यह मन्त्र है। यहा 'ते प्राणः प्राणेन संगच्छताम्' इस वाक्य मे गच्छताम् इस एकवचनान्त का प्राणमे अन्वय हो कर आकाक्षा शान्त गयी है। तथापि उसी पद का 'ते मनः मनसा स(गच्छताम्')इस वाक्य मे भी अन्वय हुवा, यह हुआ पदानुषङ्ग का उदाहरण। अब वाक्यानुषङ्ग का देखिए—

'चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु, देवो मा सविता पुनातु,
अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः' शु० य० स० अ—४-४

सोमयज्ञ के आरम्भ में दीक्षित यजमान 'चित्पतिर्मा पुनातु' इत्यादि तीन मन्त्रों से सकल ज्ञान की अधिष्ठात्री, तथा वाणिओं की अधिष्ठात्री और आदित्य

देवता यह तीनों पृथक् २ मुझे पावन करें। ऐसी प्राथना करता है। यहां तीनों वाक्य पूर्ण होने पर भी 'अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः' यह भाग स्वयं साकाक्ष होने से समीपस्थ 'देवो मा सविता पुनातु' इस वाक्य मे पुनातु क्रिया मे करणत्व द्वारा जैसा अन्वित हुआ। वैसा ही 'चित्पतिर्मा पुनातु'। 'वाक्पतिर्मा पुनातु' इन पहिले दोनों वाक्यों मे भी 'पुनातु' क्रिया द्वारा अन्वित हुआ अतः यह पूर्व दो मन्त्रों के लिए वाक्यानुषङ्ग कहा जाता है।

इस चाल के पदच्छेदादि छ प्रकार वाक्य व्याख्यान के होने पर भी, अध्याहार और अनुषङ्ग यह दोनों सर्वत्र रहते है, यह बात नही है, किन्तु कहीं २ रहते है। पदच्छेदादि चार तो प्राय सब वाक्य विचार मे आते है।

अतः हमारे विश्वबन्धु जी ने 'असित पद के विचार के लेख मे पदार्थ मीमासा और प्रकृत लेख मे 'वाक्य योजना' पदोक्त वाक्य मीमांसा साधारणतः दिखलाई है। उसमे हम उसी का विशेष विचार करेंगे।

वाक्य योजना मे दो प्रकार दिखलाए, एक तो साकांक्ष पदों के अन्वय से वाक्य योजना और दूसरी साकांक्ष वाक्यों से महावाक्य योजना। पहिली तो सर्वसाधारण को ज्ञात ही है, इसी मे पदच्छेद पदार्थोक्ति विग्रह, अध्याहारादि देखे जाते है। मीमासकोक्त श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण स्थान और समाख्या इन छ प्रमाणो मे से पहिले तीन अर्थात् श्रुति, लिङ्ग और वाक्य भी इसी मे देखे जाते है—उनका यथावकाश लेखान्तर मे वर्णन करेंगे।

दूसरी वाक्य योजना मे वाक्यों का परस्पर सम्बन्ध आकाक्षा वश से अनेक प्रकार का होता है। कहीं उद्देश्य प्रति निर्देश्य भाव, कही स्तुत्यस्तावक भाव, क्वचित बाध्य बाधक भाव अन्यत्र सर्वत्र शेष शेषि भाव होता है। यत्तत्पदघटित वाक्यों का परस्पर उद्देश्य प्रति निर्देश्य सम्बन्ध कहा जाता है। विधिवाक्य और अर्थ वादो का स्तुत्यस्तावक भाव सम्बन्ध रहता है। उत्सर्ग अपवाद वाक्यों का (सामान्य विशेष वाक्यों का) और सामान्य विधि वाक्य और निषेध वाक्यों का बाध्य बाधक भाव सम्बन्ध होता है। अन्यत्र प्रायः शेषशेषि भाव रहता है। क्रमशः इनके उदाहरण देखिए----

यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु

यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव सकल्प मस्तु। शु० य०

सं० अ० ३४ मं० ३।

अर्थ—जो प्रकृष्ट ज्ञान का साधन है, स्मृति का साधन है, शरीर और इन्द्रियों का विधारक और प्रेरक प्रयत्न जिसके अधीन है, जो प्राणिमात्र के हृदय मे अजरामर ज्योति से प्रकाश करता है, कि बहुना जिसके बिना कायिक वाचिक अथवा मानस कर्म नहीं हो सकता वह मेरा मन शुद्ध और कल्याण—संकल्पशाली बने। इस मन्त्र मे यच्छब्द घटित पूर्व तीन वाक्यों का और 'तत' शब्द घटित अन्तिम वाक्य का परस्पर उद्देश्य प्रति निर्देश्यभाव सम्बन्ध है। अन्तिम वाक्य की त्रिवार आवृत्ति करके ही पहिले 'यत्' शब्द घटित तीनों वाक्यों के साथ पृथक् पृथक् त्रिवार अन्वय होकर आकांक्षा शान्त होगी, अन्यथा नहीं।

'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम' इत्यादि विधि वाक्यों का और वायुवै क्षेपिष्ठा देवता इत्यादि अर्थवाद वाक्यो का स्तुत्यस्तावक भाव संबन्ध है।

'चमसेनाऽऽपः प्रणयेत्' (दर्श पूर्णमा सेष्टी मे चमस नामके काष्ठमय पात्र में जल ग्रहण प्रोक्षणादि कार्य के लिए करें) इस सामान्य वाक्य का और 'गोदोहनेन पशु कामस्य (जिस यजमान को पशु की इच्छा है, वह गैया दोहने के पीतल के पात्र मे प्रोक्षणाद्यर्थ जल ग्रहण करें) इस विशेष विधि वाक्यका वाध्य वाधक भाव सम्बन्ध है। तथा 'न दीक्षितान्न मश्नीयात्' (सोम यज्ञ के लिए दीक्षा ग्रहण करने पर उस यजमान का अन्न ग्रहण करना नहीं) इत्यादि निषेध वाक्य का और 'अग्नीषोमीयवपाया हुतायां दीक्षितान्न मश्नीयात्' (सोम यज्ञ मे सोम कण्डन के पूर्व दिन अग्नीषोम देवता संबन्धि पशु का वपायाग हो जाने के बाद दीक्षितान्न ग्रहण मे दोष नहीं) इत्यादि अनुमति वाक्य का वाध्य वाधक सम्बन्ध है।

शेष शेषिभाव सम्बन्ध बहोत व्यापक है, जैसे यागों मे प्रधान याग वाक्य का और अङ्गयाग वाक्यों का शेष शेषि भाव सम्बन्ध है 'दर्श पूर्णमासाभ्या यजेत'। आग्नेययाग उपांशु याग और अग्नीषोमीय याग यह तीन याग पौर्णमासी में करे। और अग्नेययाग उपाँशुयाग, और ऐन्द्राग्नयाग यह तीन दर्श मे करें। यह प्रकरणार्थ है) इस प्रधान वाक्य की 'समिधो यजति, तनूनपातं यजति, इडो यजति, बर्हिर्यजति स्वाहाकारं यजति' इत्यादि प्रयाज आघार, आज्यभाग, स्विष्टकृत,

अनुयाजादि विधायक अङ्ग वाक्यों के साथ शेष शेषि भाव सम्बन्ध है।

'जामि वा एतद्यज्ञस्य क्रियते, यदन्वञ्चौ पुराडाशौ, उपांशुयाजमन्तरा यजति' (आग्नेययाग और अग्नीषोमीय याग यह दोनों पौर्णमासी के दिन करते समय इनकी याज्या और पुरोऽनुवाक्या वगैरे मन्त्र उच्च स्वर मे होता को कहने पड़ते है अतः ऐसे याग लगातार एक के पीछे एक करना, यह परिश्रम कारक है। अतः इन दोनों यागों के बीच मे उपांशुयाग करें। इस याग मे उच्च स्वर से मन्त्र नही कहे जाते। अतएव इसका नाम 'उपांशु'। यह याग बीच मे करने से ऋत्विजों को विश्रान्ति मिलेगी) यहा 'जामि वा एतद्यज्ञस्य क्रियते' इस वाक्य शेष का और 'उपांशु याजमन्तरा यजति'। इस प्रधान वाक्य का शेष शेषिभाव सम्बन्ध है। ऐसे ही जो तात्पर्य निर्णायक वाक्य है उनका और प्रधान वाक्यों का शेष शेषिभाव संबन्ध समझना।

अस्तु, यहा तक पदार्थ विचार की और वाक्यार्थ विचार की शास्त्र सिद्ध सामग्री सोदाहरण सक्षेपतः दिखलाई। इसके बिना प्रस्तुत विचार को शास्त्र मर्यादा मे नियन्त्रित करना अशक्य था। अतः यह सामग्री आवश्यक समझ कर उपस्थापित की गयी।

मीमांस्यमान सूक्त अथर्व ३। २७। १

प्राची दिगग्निरधिपति रसितो रक्षिता आदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ १॥ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपति स्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो० ॥ २॥ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्न मिषवः। तेभ्यो० ॥ ३॥ उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो० ॥ ४॥ ध्रुवा दिक् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो० ॥ ५॥ ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पति रधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्ष मिषवः। तेभ्यो० ॥ ६॥

यह छ मन्त्र है। प्रत्येक मन्त्र मे एक २ दिशा, तत्सम्बन्धी अधिपति, तथा रक्षिता और इषु (बाण) ऐसे चार २ उल्लेख है, प्रत्येक को अलग २ प्रणाम करके अपने साथ वैर भाव रखने वाले और वैर भाव अपना जिनके साथ है उन दोनों को पूर्वोक्त चारों के दावा मे देने की प्रार्थना है। छ मन्त्रों मे अलग २ चार वर्ग है। जैसे

दिशा	अधिपति०	रक्षिता०	इषु०
प्राची	अग्नि	असित	आदित्य
दक्षिणा	इन्द्र	तिरश्चिराजी	पितर
प्रतीची	वरुण	पृदाकु	अन्न
उदीची	सोम	स्वज	अशनि
ध्रुवा	विष्णु	कल्माषग्रीव	वीरुत्
ऊर्ध्वा	बृहस्पति	श्वित्र	वृष्टि

यहाँ छ दिशाओं के स्थान रूप उपाधि भेद से भेद होने के कारण प्रत्येक दिशाओंके अधिपति रक्षिता और बाण यह परस्पर से बिल्कुल अलग २ है। अतः प्रत्येक मन्त्र मे 'तेभ्यो नमः' इसमे केवल तत्तन्मन्त्रोक्त प्राच्यादि एक २ दिशा को प्रणाम किया है। तच्छब्द को बुद्धिस्थ पदार्थ परामर्शकत्व होने से प्रत्येक मन्त्र का 'तत्' शब्द अलग २ प्राच्यादि दिशा का बोधक होता है।

१ प्रश्न 'तेभ्यः' यह नपुंसकलिङ्गबहुवचनान्त शब्द एक वचनान्त स्त्री लिङ्ग प्राची शब्द का कैसा परामर्श करेगा।

१ उत्तर—विशेष्य विशेषण वाचकपदों से यदि समानहि संख्या-बोध कराने का वक्ता का तात्पर्य है तो समान वचन और समान लिङ्ग का नियम होता है। यदि विशेष्य वाचक पदार्थ की संख्या की अपेक्षा से विशेषण वाचक पदार्थ की सख्या को विरुद्ध कहने मे वक्ता का विशेष हेतु है, तो वहा विशेषण पद और विशेष्य पद भिन्न संख्या से आ सकते है। जैसे अग्नीषोमौ देवता इन्द्राग्नी देवता। यहा अग्नीषोम और इन्द्राग्नी पद द्विवचनान्त और देवतापद एकवचनान्त है। यहां अग्नि और सोम मिलित मे एक देवतात्व दिखलाना है, वैसा ही इन्द्र और अग्नि मिलित मे एक देवतात्व विवक्षित है। प्रत्येक मे नही।

ऐसा ही 'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि' इस गौतम सूत्र मे विशेष्य विशेषण मे समान बहु वचन होने पर भी 'वेदाः प्रमाण यदि' इस भारत श्लोक मे 'वेदाः' यह विशेष्य बहुवचनान्त और 'प्रमाणं' यह विशेषण एक वचनान्त है। इसका कारण यही है, कि गौतम सूत्र मे प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन प्रत्येक मे प्रमिति-करणतावच्छेदक-धर्म प्रत्यक्षत्व, अनुमानत्व, उपमानत्व और शब्दत्व यह चारों अलग २ है। यही दिखयाने के लिए प्रमाण शब्द

से वहुवचन किया और वेदाः 'प्रमाणम्' इस वाक्य मे तो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ऐसे तीन अथवा अथर्ववेद को पृथक् लेकर के चार वेद होने पर भी प्रमितिकरण तावच्छेदक धर्म वेदत्व एक ही है, ऋगुवेदत्व यजुर्वेदत्वादि चार धर्म अलग २ प्रमिति करणतावच्छेदक नहीं हैं। वह वेदत्व सब वेदों में एक होने से सब वेदों मे एक ही प्रमाकरणता है। प्रत्यक्ष–अनुमानादिक के तुल्य नाना प्रमाण नही। यह दिखलाने के लिए प्रमाण शब्द से बहु वचन न देकर एकवचन दिया।

वैसाही—

शक्तिर्निपुणता लोक-काव्य-शास्त्राद्यवेक्षणात।

काव्यज्ञ शिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥ का० प्र० का० २

इस का० प्र० कारिका मे पदवाक्य प्रमाण पारावारीण मम्मटाचार्य्य जी ने नैसर्गिक शक्ति लोक और काव्य शास्त्रादिके अनुभव से जन्य निपुणता और काव्यज्ञ के उपदेश का अभ्यास, यह तीनों काव्य बनाने मे हेतु हैं, यह अर्थ दिखलाते समय 'इति हेतुस्तदुद्भवे' यहा विशेषण वाचक 'हेतु' शब्द से एक वचन किया। शक्ति निपुणता और अभ्यास यह तीनों विशेष्य होने पर भी विशेषण हेतु' शब्द से बहुवचन नही किया। इसका उद्देश्य यही है, कि शक्ति, निपुणता और अभ्यास इन तीनों के समुदाय मे रहने वाला धर्म ही एक काव्योत्पत्ति का हेतुतावच्छेदक है। प्रत्येक गत शक्तित्व, निपुणत्वादि धर्म मे हेतुतावच्छेदकता नही। इसका मतलब यह निकलता है, कि जिस पुरुष मे यह तीनो अर्थात शक्ति निपुणता और अभ्यास विद्यमान हैं, उसी ने की हुई कविताए उपादेय होगी, अन्यथा नही।

प्रकृत सूक्त के तृतीय और षष्ठ मन्त्र मे भी 'अन्नम इषव', वर्षम् इषवः, यहां पर भी विवक्षा वश से विशेषण विशेष्य पदों मे समानवचनकत्व नहीं किया।

इसी चाल 'तेभ्यः' इस बहुवचनान्त शब्द से एक वचनान्त प्राची इत्यादि–पद वाच्यार्थों का परामर्श करना यह भी सहेतुक है। वह हेतु यह है—कि दिशा यह स्वरूपतः एक ही है। तथापि उपाधि भेद से वह प्राच्यादि नाम से भिन्न होती हैं। उसको प्रणामार्थ अञ्जलि निर्देश करते समय वह भी प्राच्यादि प्रत्येक दिशा अगुली के भेद से दश विध होती है 'दश वा अञ्जलेरंगुलयो दिशि दिश्येवैभ्य एतदञ्जलिं करोति' शतपथ ब्रा० ६–१–१–३६। इससे यह बात सिद्ध है। अतएव–

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्ष मिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु तेऽयं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषा जम्भे दध्मः । शु० य० स० अ० १६ मन्त्र ६४

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषा वात इषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दशप्रतीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्या नमो० । मन्त्र ६५

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा० । तेभ्यो नमो अस्तु० मन्त्र ६६ ।

इन तीन मन्त्रो मे स्वर्गस्थ अन्तरिक्षस्थ और पृथिवीस्थ भेद से तीन जगे दस दस प्राची का उपाधि भेद से उल्लेख किया है। उसी औपाधिक बहुत्व को लेकर यहा प्रकृत सूक्त मे तेभ्यः' यह बहुवचन निर्देश है। 'अधिपतिभ्यो नमः' रक्षितृभ्यो नमः इत्यादि बहुवचनान्तों का प्रक्रम भङ्ग न हों, इस हेतु से भी यहां बहुवचन आवश्यक है। ताभ्य' ऐसा स्त्रीलिङ्ग निर्देश न करके 'तेभ्यः' ऐसा 'सामान्ये नपुंसकम' इस सामान्य नियम से नपुंसक निर्देश किया है। विवेचक लोग पूर्णतया सोचेंगे कि यह एक शाखान्तर का मन्त्र पूर्णतया उसी अर्थ मे है।

इस मन्त्र मे रक्षितृगण और अधिपति गण को रुद्र शब्द से कह कर, उनकी वही प्राच्यादि दिशाएं स्थान रूप से दिखला कर, इषु भी वैसे ही दिखलाए है। केवल अन्य शाखा के मन्त्रों मे चारो दिशा व्यष्टि की और एक ऊर्ध्व दिशा (समष्टि ज्ञान की) दिखला कर ध्रुवादिक् सर्व सामान्य भी दिखलाई है। शुक्लयजुः शाखा मे केवल विशेष पाचों दिशाएं दिखलाई है। सर्व सामान्य होनेसे ही ध्रुवा दिक छोड दी हे।

दूसरी बात यह है, कि मुख्य अधिपति का सपरिवार उल्लेख करके मुख्य को प्रणाम करने से परिवार को भी प्रणाम हो जाता है। वैसा ही प्रकृत मे स्थान (दिशा) और इषु इत्यादि परिवार का उल्लेख करके मुख्य अधिपति (रुद्र) को प्रणाम करने से प्राच्यादि दिशा और इषु को भी प्रणाम हो गया। आरम्भ मे किया हुआ दिशा आदि का सहोच्चारण ही इसमे मुख्य गमक है।

यही प्रकार तै० सं० ५-५-१० मे भी समझना।

तीसरी बात यहां अधिपति का रुद्र शब्द से उल्लेख करने से हीं वे शाखान्तरोक्त भी अधिपति समूहात्मक है, एकैक व्यक्ति रूप नहीं है। अतएव

उनका अथर्व सू० ३-२७-१ में प्रत्येक मन्त्र में बहुवचनान्त शब्द से 'अधिपतिभ्यो नमः' इत्यादि उल्लेख किया है। कारण संवस्थलमें एकवचनान्त अथवा बहुवचनान्त शब्द से उभयविध प्रयोग करना, यह लौकिक प्रयोगों में भी दृष्ट है। जैसे सर्वो लोक आनन्दितः। सर्वे लोका आनन्दिताः' अर्थ दोनों का एक ही है। अतएव अथर्व० १२-३-५५ के सूक्त में इसी अर्थ में अधिपति शब्द का एकवचनान्त प्रयोग किया है। वह सूक्त आगे स्पष्ट होगा।

प्रश्न--अचेतन प्राच्यादि दिशा को प्रणाम कैसा हो सकता है?

उत्तर--अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम। ब्र० सू० २--१५ इस सूत्र में व्यास महर्षि ने अचेतन की भी अभिमानिनी देवता रहती है, यह स्पष्ट कहा है। अतएव पुराणों में--

'पृथिव्याद्यभिमानिन्यो देवताः प्रार्थितौजसः।
अचिन्त्याः शक्तय एतासां दृश्यन्ते मुनिभिःस्तुताः॥ १ ॥
ताश्च सर्वगता नित्यं वासुदेवैकसंश्रयाः।

पृथिव्यादि अचेतनों की भी अभिमानिनी देवता रहती हैं। समन्त्रक प्रार्थनादि करने से उनका तेज प्रकट होता है। उनकी शक्तियां भी अचिन्त्य रहती हैं। बड़े २ सिद्ध महर्षि को ही उनका पता लगता है। वह देवता नित्य और सर्वगत होती हैं। वे सब भगवान की ही अंशभूत रहती हैं।

इससे अचेतन दिशाओं की भी अभिमानिनी देवता निश्चित है। अतएव वेदों में अचेतन ओषधी और शस्त्रादिकों की भी प्रार्थना की जाती है। जैसे 'ओषधे त्रायस्व, स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः। शु० य० सं० ६-१५। यहां ओषधी और शस्त्र को सम्बोधन करके रक्षणादि करने की प्रार्थना की है। किं बहुना अचेतन के उद्देश्य से दान भी वेद में स्पष्ट उपलब्ध है। जैसे--अथर्व १२। ३--५५-६० में है।

अथर्व० १२।३-५५-६०

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते। एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः॥ ५५॥ दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते। एतं त्वा परिदद्मः० ॥ ५६॥ प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये०। एतं त्वा परिदद्मः० ॥ ५७॥ उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये०। एतं त्वा परिदद्मः० ॥ ५८॥ ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये०।

एतं त्वा परिदद्मः० ॥ ५९ ॥ ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये० । एतं त्वा परिदद्मः० ॥ ६० ॥

इस सूक्त मे अधिपति और रक्षिता यह चेतन होने से जैसा इन को दान दिया और रक्षण की प्रार्थना की है, वैसे ही अचेतन प्राच्यादि छ दिशाओं के उद्देश्य से भी दान दिया और रक्षण की प्रार्थना की है। कारण प्राच्यै, प्रतीच्यै, अधिपतये, रक्षित्रे इत्यादि चतुर्थी विभक्ति सर्वत्र समान और स्पष्ट है। एवं च, जैसे चेतन अधिपति और रक्षिता इन को प्रतिग्रहीतृत्व और सरक्षकत्व हो सक्ता है, वैसा ही अचेतन प्राच्यादि दिशाओं को भी प्रतिग्रहीतृत्व और सरक्षकत्व हो सक्ता है। तब उन को केवल प्रणामोद्देश्यत्व नही होगा-यह बात कोन मानेगा ? अतएव इस सूक्त के समान न्याय से पूर्वोक्त अथर्व सूक्त ३-२७-१ मे भी दिशाओं को अचेतन होने पर भी प्रणाम हो सक्ता है और वह आवश्यक है। कारण इसी सूक्त मे 'अन्नमिषवः' वर्ष मिषवः' वीरुध इषवः' अन्न, वर्षा, लता इन अचेतनों को इषु कह कर के प्रत्येक मन्त्र मे 'इषुभ्यो नमः' इस से उन को प्रणाम, तथा 'एषां जम्भे दध्मः' इस से शत्रुओं को उन के वश रखने की प्रार्थना है। तब दिशाओं को प्रणाम न करना यही भारी त्रुटि होगी। अतः प्रत्येक मन्त्र मे 'तेभ्यो नम अस्तु' इस से दिशाओं के प्रति विशेष नमस्कार है यह बात सिद्ध हुई।

इसके साथ 'अस्तु' पदार्थ की भी मीमासा आवश्यक है। 'सर्व वाक्य क्रियया परिसमाप्यते' सब वाक्यों मे तिङन्त (अर्थात् प्रधान क्रिया) अवश्य होनी चाहिए। उसके बिना वाक्य पूर्ति नही होती। अतएव 'एक तिङ् वाक्यम्' ऐसा वार्तिककार कात्यायन ने वाक्य का लक्षण किया है। अतएव वहा के 'अस्तु' पद का प्रत्येक पहिले तीनों वाक्यों मे अनुषङ्ग करना चाहिए। जैसे 'तेभ्यो नमो अस्तु' 'अधिपतिभ्यो नमोऽस्तु' 'रक्षितृभ्यो नमोऽस्तु'। 'इषुभ्यो नमोस्तु' इस वाक्य मे तो उसका प्रत्यक्ष उच्चारण होने से वह अनुषङ्ग नही कहा जाएगा, किन्तु पद प्रयोग इसका नाम होता है।

अब चतुर्थ वाक्य मे ('इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु' इस वाक्य मे) एभ्य पदार्थ की भी मीमांसा होनी चाहिए। कारण 'रक्षितृभ्यो नम' 'अधिपतिभ्यो नमः' इन वाक्यों मे 'एभ्यः' पद नही है और 'इषुभ्यो नमः' इस वाक्य मे दिया है, सो क्यों ? यह प्रश्न सहज उत्थित होता है।

इदं शब्द का सर्व साधारण अर्थ अभियुक्तों ने कहा है—

इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्ति चैतदो रूपम ।

अदसस्तु विप्रकृष्ट तदिति परोक्षे विजानीयात ॥ १ ॥

प्रत्यक्ष और समीपस्थ पदार्थ के निर्देश के लिए 'इद' शब्द का प्रत्यक्ष और अत्यन्त समीपस्थ के लिए 'एतत' शब्द का प्रत्यक्ष लेकिन दूरस्थ के लिए 'अदस्' शब्द का । और परोक्ष बुद्धिस्थ के निर्देश के लिए तत' शब्द का प्रयोग होता है । इस अभियुक्त वचन प्रमाण से इदं शब्द प्रत्यक्ष और निकट स्थित पदार्थ का बोध करने के लिए यहां प्रयुक्त है । इससे दिशाएं अधिपति और रक्षिता इनकी अपेक्षा से सूर्य किरण, अशनि (विद्युत का कडकडाना) वर्षा, अन्न, लताएं और उनके सूक्ष्मांशोपजीवी पितर ये छ इषु प्रत्यक्ष ही हैं, यह दिखलाने मे मन्त्र का तात्पर्य है । अतएव केवल इषुओं के निर्देश ही मे 'एभ्यः' यह इदं शब्द प्रयुक्त है । एवं च 'एभ्य इषुभ्यो नमोऽस्तु' ऐसा चतुर्थ वाक्य हुआ । निर्दिष्ट वचन से ही अप्रत्यक्ष दिशाओं का परामर्श करने के लिए 'तत' शब्द का प्रयोग दिशाओं के प्रणाम वाक्य से 'तेभ्यो नमोऽस्तु' ऐसा सुसङ्गत हुआ । दिशाएं किसी के भी मत मे प्रत्यक्ष नहीं है ।

यहा तक 'तेभ्यः' 'एभ्यः' और 'अस्तु' इनकी पदार्थ मीमासा सहित वाक्य मीमासा करके 'तेभ्यो नमोऽस्तु' अधिपतिभ्यो नमोस्तु 'रक्षितृभ्यो नमोऽस्तु' और 'एभ्य इषुभ्यो नमोऽस्तु' ऐसे चार वाक्य सिद्ध किए । वे भी सब विशेष वाक्य हैं । इनमे सामान्य वाक्य कोई नही है । यह भी सिद्ध हुआ । अनन्तर वाक्यार्थों का परस्पर सम्बन्ध विचार करेंगे । 'तेभ्यो नमोऽस्तु' इत्यादि चारों वाक्यो मे बहुवचन निर्देश होने से इस सूक्त के छ मन्त्रों मे जो छ प्राच्यादि दिशा एवं उनके अग्न्यादि छ अधिपति, असितादि छ रक्षिता और आदित्यादि छ इषु जो उल्लिखित हे, उनको सबका प्रत्येक मन्त्र मे प्रणाम करके छ बार प्रणाम मे तात्पर्य है, अथवा प्रत्येक मन्त्रोक्त एक दिशा, एक अधिपति, एक रक्षिता और एक इषु सब इनको प्रत्येक मन्त्रस्थ 'तेभ्यो नमोऽस्तु' इत्यादि वाक्य से एक बार प्रणाम करने मे तात्पर्य है । यह सन्देहाकार हुआ ।

पूर्व पक्ष

इसमे प्रत्येक मन्त्र मे छ छ प्राच्यादि दिशाएं और छ छ अधिपति प्रभृति

को प्रणाम करना अभीष्ट है। एवं च छ मन्त्र द्वारा प्रत्येक को छ बार प्रणाम होगा, यह पूर्व पक्ष हो सकता है। इसमें हेतु प्रत्येक वाक्य में 'तेभ्यः' अधिपतिभ्यः इत्यादि बहुवचन निर्देश यहीं हो सकता है। यह विश्ववन्धु जी का मत है।

उत्तर पक्ष

हमने 'मीमांसा विचार सामग्री' का निरूपण करते समय पहले यह कहा है कि आकांक्षा मूलक ही वाक्यों का अथवा पदों का परस्पर सम्बन्ध होता है। उसमें भी जहां 'यत' अथवा 'तत' अथवा दोनों शब्द अथवा तदर्थक कोई शब्द वाक्यों में उल्लिखित रहते हैं वहां वाक्यों का परस्पर उद्देश्य प्रति निर्देश्य भाव सम्बन्ध रहता है। प्रकृत में भी तत शब्द और इद शब्द यह प्रतिनिर्देशार्थक होने से पूर्व वाक्यों में 'यत शब्द का अध्याहार करना आवश्यक है। एवं च यह यच्छब्द यदि प्राची वाक्य में अध्याहृत हुआ तो उसका केवल प्राची ही के साथ सम्बन्ध होने से तच्छब्द भी केवल प्राची ही का प्रतिनिर्देशक होगा। तदनुसार प्राची मन्त्रस्थ अधिपत्यादिकों का ही बोध करेगा। वहां दक्षिणादि दिशाएं और उनके अधिपति प्रभृति का प्राची मन्त्र में उद्देश्य और प्रतिनिर्देश हो ही नहीं सकता। ऐसाही दक्षिणा-मन्त्र और प्रतीच्यादि मन्त्रों में भी समझना। तब सब मन्त्रों में छदिशा और छ अधिपत्यादि को प्रणाम वर्णन करना यह वकाय मीमासा नियामक उतदेश्य प्रति निर्देश भाव सम्बन्ध के विरुद्ध है। यह एक दोष हुआ।

दूसरा दोष—पूर्व पक्षी के मत में छओ मन्त्रोक्त अधिपति रक्षिता और इषुओं की उपस्थिति प्रथम मन्त्रार्थ के समय आवश्यक है, एवं च जब तक छ मन्त्रों का अनुसन्धान नही हुआ, तब तक एक भी मन्त्र का शाब्द बोध नहीं होगा। एवं च छ मन्त्र मिल कर एक शाब्द बोध होगा यही फलतः निकला। तब यह छ मन्त्र पृथक्-पृथक उतदेश्य प्रतिनिर्देशात्मक वाक्यों से घटित उच्चारण करना व्यर्थ होगा। केवल सर्वान्त में एक दफे 'तेभ्यो नमो अधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नम एभ्योस्तु' इतना कहने से वाक्यार्थ सिद्ध हो जाएगा। इस लिए यहां प्रथम मन्त्रार्थ के समय द्वितीय मन्त्रस्थ पद पदार्थों का अनुसन्धान सर्वथा अनिष्ट है।

तीसरा दोष—यदि पूर्व पक्षी के कथनानुसार वाक्यार्थ माना जाए, तो 'तेभ्यो नमः' इत्यादि प्रत्येक मन्त्रों में मिल कर छ बार आवृत्ति की है, उसमें

अन्तिम मन्त्र पाठ को तो प्रामाण्य होगा और अन्य पांच मन्त्र पाठ को अविशेषानुवादकत्व लक्षण अप्रामाण्य होगा। अप्रमाण्य पांच प्रकार का होता है। १—अबोधकत्व लक्षण अप्रामाण्य, २—सदिग्धत्व लक्षण, ३—बाधितत्व लक्षण, ४—अनुवादकत्व लक्षण, ५—पुरुषादि-सापेक्षत्व लक्षण। अतएव महर्षि जैमिनि ने इन पाचों दोषों को हठाने के लिए प्रामाण्य-लक्षण किया है—औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात् जै० सू० १-१-५। इस सूत्र मे ज्ञान' निश्चय कराने वाला यह 'उपदेश' इस विशेष्य पद का विशेषण देने से अबोधकत्व लक्षण और सन्दिग्ध बोधकत्व लक्षण दो दोष अप्रमाण्यापादक हटाए।

अनुपलब्धेऽर्थे यह विशेषण देने से अनुवादकत्व लक्षण दोष हटाया। 'अव्यतिरेक' इस विशेषण से बाधितत्व दोष हटाया। अनपेक्षत्वात' इससे पुरुषादि बुद्धि सापेक्षत्व रूप दोष हटाया। इन पाचों दोषों से रहित जो उपदेशवाक्य होगा वही प्रमाण है। यही व्यास जी महाराज (जैमिनी के गुरु) का मत है। शब्द अर्थ का परस्पर सम्बन्ध अकृत्रिम है और वेद-मन्त्रादिक के बनाने मे पुरुष स्वातन्त्र बिल्कुल नही। अतएव वे वेद पाचों दोषों से निर्मुक्त होने से उपदेश रूप हैं, अर्थात प्रमाण है। यह सूत्रार्थ हुआ।

इन निर्दिष्ट तीनों दोष से पूर्व पक्षी का मत ग्राह्य नहीं हो सकता। पूर्व पक्षके साधन के लिए'तेभ्य इत्यादि बहुवचन निर्देश जो दिखलाया था, उसका तो उत्तर पहले ही दे दिया गया है। कि वह प्रत्येक अधिपति प्रभृति सङ्घात्मक होने से उनके निर्देश के लिए सर्वो लोकः' सर्वे लोका' इत्यादि वत् एक वचन अथवा बहुवचन मे उभय था निर्देश हो सकता है। अतः वह हेतु अन्यथा सिद्ध है।

उपसंहार

सिद्धान्त मे हमारा मत	पूर्वपक्षी पं० विश्वबन्धु जी का मत
१—तेभ्योनमः' इससे प्राच्यादि दिशाओं को प्रणाम किया है। एक ही मन्त्र मे सामान्य और विशेष प्रणाम का कोई अनुष्ठान मे भेदनही हो सकता अतः सामान्य प्रणाम असम्भव है।	१—'तेभ्योनमः' यह अधिदत्या दिशों के लिए सामान्यरूप नमस्कार वाक्य है और 'अधिपतिभ्योनमः इत्यादि विशेष नमस्कार वाक्य है। अचेतन प्राच्यादिशों को प्रणाम नही हो सकता।

२—'तेभ्यो नमोअस्तु' अधिपतिभ्यो नमोऽस्तु' रक्षितृभ्यो नमोऽस्तु' एभ्य-इषुभ्यो नमोऽस्तु' ऐसे चार प्रणाम वाक्य है। और चारों के प्रणम्य देवता भिन्न भिन्न है। 'अस्तु' क्रिया चारों वाक्य मे सम्बन्ध है । एभ्यः पद इषुओं मे प्रत्यक्ष--योग्यता दिखलाता है। एवं च पञ्चम वाक्य खपुष्पायमान है। अर्थात नही है।

३—'तेभ्यः' और एभ्यः' यह दोनों पद भिन्न २ के निर्देशक है। कारण 'तत' पद परोक्षत्व धर्म को लेकर बोधक होता है और इदपद प्रत्यक्ष का बोधक है। अतः एक ही मन्त्र मे दोनों पद प्रत्यक्षत्व और परोक्षत्व का विरोध होने से एक के बोधक नही हो सकते।

४—'अधिपतिभ्यो' रक्षितृभ्यः इत्यादि पद प्रत्येक मन्त्र मे केवल तत्तद्दिशा सम्बन्धी अधिपत्यादि परिवार के बोधक होंगे । अन्य दिशा के अधिपत्यादि के बोधक नही।

५—छहों मन्त्रों मे तेभ्यो नम, इत्यादि वाक्यों मे अपूर्वार्थकत्व है किसी को अनुवादकत्व नहीं।

२—'तेभ्योनमः' 'अधिपतिभ्योनमः 'रक्षितृभ्योनमः' 'इषुभ्योनमः' एभ्यो नमोऽस्तु' ऐसे पांच वाक्य है उनमे प्रथम और अन्तिम यह सामान्य प्रणाम वाक्य है और मध्य के तीन विशेष वाक्य है । प्रणम्य देवता के केवल तीन ही वर्ग है । रक्षितृवर्ग, अधिपतिवर्ग और इषुवर्ग। दिग्वर्ग प्रणम्य है नही। पहिले चारों वाक्य क्रिया के बिना ही पूर्ण होते है। अन्तिम वाक्य मे केवल अस्तु क्रिया है, परन्तु यहां कर्तृवाचक नमः पद का अध्याहार करना है।

३—'तेभ्यः' यह भी उन अधिपतियों का परामर्शक और एभ्यः यह भी उन्हीं का परामर्शक है। परोक्षत्वाऽपरोक्षत्व का कोई विचार नहीं।

४—प्रत्येक मन्त्र मे अधिपत्यादि पद छ छ का बोधक है।

५—एक को अपूर्वार्थकत्व है अन्य पाचों को अगत्या अनुवादकत्व (अप्रामाण्य) है ।

विद्वज्जन निरुक्त विचार को शास्त्र दृष्टि से विचार करें। केवल स्वकपोल कल्पना से न करें। यही अन्त मे सादर अनुरोध है।

अनेक देवतात्व वाद

प्रिय विश्वबन्धु जी ने वेदों मे 'अनेक देवता वाद है' यह जो कहा, उसी बात की यथार्थता और पुष्टि के लिए एक ही वेद मन्त्र देकर लेख समाप्त करते है।

अग्निर्देवता व्वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता व्वसवो देवता रुद्रा देवता ऽऽदित्या देवता मरुतो देवता व्विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता व्वरुणो देवता। शु० य० स० १४--२०। इतिशम्।

स्कन्ददुर्गप्रणीतनिरुक्तटीकयोः—

समालोचना

(ले० नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य ।)

मङ्गलम्

अग्ने नयास्मान्सुपथा स्वराये
त्वं दीप्तिमान् कर्मफलेशितापि ।
यत्कौटिल्यं पापमिहास्मदीय
प्रध्वंसनीयं भवतैव सद्यः ॥ १ ॥

सद्ब्रह्मनिष्ठाः किल सम्भवन्तु
प्राणा मदीया ननु मे मनोपि ।
त्वद्भावनाभव्यधिया विचिन्तेत—
शब्दार्थसम्बन्धममष्टिरूपम् ॥ २ ॥

ब्रह्मैव विश्वं नच तत्समानसत्तातिरिक्तं यदिहास्ति किञ्चित ॥
तदात्मरूपं प्रणवस्वरूपं नाहं परास्या दर्शनेऽवुद्ध्या ॥ ३ ॥

विश्वात्मिका या च तदुत्तराख्या
परस्य पुंसो हृदयस्वरूपा ।
परादिरूपेण समुल्लसन्तीं
तां संविदं नौम्यपरप्रकाशाम् ॥ ४ ॥

हिरण्यगर्भं समवर्त्तयद् यो
वेदागमं तद्धृदि सन्निनाय ।
तमात्मदेवं शरणं प्रपद्ये
धियं स नश्चोदयताद्यथार्थाम् ॥ ५ ॥

उपक्रम

निरुक्तं नाम निघण्टोर्व्याख्यानभूतं वेदस्याङ्गेष्वन्यतममङ्गमिति सर्वेषां न सम्प्रतिपन्नोऽयमर्थः। श्रुतिश्च भवति "द्वे विद्ये वेदितव्ये" इत्यारभ्य "शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम्" इत्येवंरूपाऽस्यार्थस्य प्रतिपादिका। तदिदं 'समाम्नाय समाम्नात" इत्यारभ्य "तस्यास्तस्यास्तादूभाव्यमनुभवति"

इत्यन्तं द्वादशाध्यायात्मकं यास्कप्रणीतं निघण्टुभाष्यं, यदुपरि दौर्गी वृत्तिर्ग्रन्थश्च सर्वत्र सुप्रसिद्धा सुलभा चाऽभवद् वर्तते च। किन्त्वत्र स्कन्दमहेश्वरप्रणीता अपराऽपि कानन वृत्तिः याऽस्माभिरध्ययनकाले सत्तातः सम्यङ् नावधारिता। परन्तु—निघण्टुपदव्याख्यानग्रन्थे जीवानन्दपुस्तकालयात्सुलभे क्वचित् क्वचिद् दृष्टमासीद् "इति स्कन्दस्वामी" ति, तेन कदाचित् कदाचित् सम्भावना समुदेति स्म यद् भवेन्नाम स्कन्दकृतमपि किञ्चिद् व्याख्यानं नैरुक्तम्। गुरवस्तु कदाचित्तदीयदिदृक्षाकुलहृदयाः सन्तोऽपि न तदुपलम्भे सयत्ना अभूवन्।

अद्य तु विद्याव्यसनिना निरुक्तविषये विशेषतः कृतपरिश्रमाणां श्री-डाक्टरलक्ष्मणस्वरूपमहोदयानां गवेषणाफलभूत, तैरेव मदीयविद्याभ्याससंवर्धनाय मह्यं दत्तं भागत्रयात्मकं नैरुक्तं स्कन्दमहेश्वरप्रणीत वृत्तिग्रन्थमुपलब्धवानस्मि, यस्य सम्पादने स्वरूपमहोदयैर्महानेव परिश्रमो व्यधायि। अमीषां प्रबोधनैव चाहमद्यानयोर्द्वयोर्वृत्तिग्रन्थयोस्तुलनादृष्ट्या समालोचनायां प्रवर्ते। अत्र समालोचनायां स्कन्ददुर्गयोः कियान् वैदिके विषये परिश्रमः ? के के च विषयाः प्रस्फुटतरा द्वयोर्ग्रन्थयोरवलोकनेन सम्प्रधार्यन्ते ? कस्य वा वाक्यसमन्वयशैली सरला विशिष्टा च वर्तते ? कुत्र के सिद्धान्ताः शास्त्रान्तरप्रतिपाद्याः समुद्भासिता इवाभान्ति ? इत्येवमाद्या विषयाः समधिगता भवितुमर्हन्ति।

अत्रापि नैवास्ति सन्देहलेशो यद् यथा वर्तमानकाले वेदतदङ्गाध्ययनसम्प्रदायो विच्छेदं लब्ध्वाऽस्तमनवेलामेव प्राप्तः। तथा सति कथं दुरूहग्रन्थाभिसन्धिज्ञानं स्यात् ? कथं वाऽयमेव सम्प्रदायानुगतोऽर्थ इत्यभिमन्येत ? तदिदं दुर्घटमापन्नम्, अतएव तादृशां व्याख्याकर्तॄणां महानेवोपकारोऽस्माकमुपरि वर्तते, येषां कृपाकटाक्षलेशेन ग्रन्थलापनशैलीमनुसर्तुं शक्नुमः, नापि च तत्तच्छास्त्रीयसिद्धान्ताधिगमे भयमुपैम इत्येव जानता मया तावत्—"आगमावतरणप्रकरण" मारभ्यते।

---

* गुजरातजिलान्तर्गत "जम्बालपुर नड्डां" इत्याख्ये लघुपत्तने सनातनधर्मसभाया निरुक्तपुस्तकं समान्तिके बहुकालमस्थात्। एतद्विषये उपयुक्तविचारप्रकाशनसमर्था तत्रैका मद्धस्तलिखिता सूचिका निहिताऽभूत्, परमद्य यत्नेनापि सा नोपलब्धा। आसाच्च तत्रास्मद्गुरूणामपि छन्द — सम्बन्धः कश्चन विशिष्टो लेखः।

आगमावतरणम्

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः, तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्यः उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदञ्च वेदाङ्गानि च" (नि० १७ ख० २०) इत्याह यास्कः।

स्कन्ददुर्गयोरागमावतरणसङ्गतावैकमत्यम्

अस्य व्याख्यानावसरे—"आह कुतः पुनरिदमायात निरुक्तशास्त्रं प्रधानमितराणि चाङ्गानि इति ? उच्यते—"साक्षात्कृतधर्माण" इति दुर्गाचार्योऽवतरणमाचख्यौ। स्कन्दोपि—"एवमुक्तप्रयोजनस्य निरुक्तस्य परेणागमः कथ्यते—"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः" इति ग्रन्थसङ्गतिमुक्तवान्।

दुर्गमते फलविपरिणामदर्शनेनैव ऋषीणां धर्मसाक्षात्कारो धर्मस्य च वेदैकवेद्यत्वं मीमांसकसम्मतमेव मतम्।

एव द्वयोरागमावतरणस्वरूपसामान्ये न कश्चिद्विशेषो भाति। तत्र साक्षातकृतो यैर्धर्मः साक्षाद् दृष्टः प्रतिविशिष्टेन तपसा त इमे साक्षात्कृतधर्माणः" इत्युक्त्वा तदेतत्कर्मणः फलविपरिणामदर्शनमौपचारिक्या वृत्त्योक्तम्—साक्षात्कृतधर्माण इति। नहि धर्मस्य दर्शनमस्ति, अत्यन्तापूर्वो हि धर्म" इति चाभिधाय दुर्गो विरराम। एषाऽय धर्मस्यातीन्द्रियत्वरूपः सिद्धान्तो वैदिकाना जैमिन्यादिभिः पूर्वमीमांसादिषु सुनिरूपित एवेहोपात्तः। तथाहि धर्मप्रामाण्यपरीक्षाऽधिकरणे "किं चोदनैव निमित्तमुतान्यदपि। किं चोदना निमित्तं भवितुमर्हत्युत नेत्येवं परीक्षणं सुखग्रहणार्थं" प्रतिज्ञाय "सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणा बुद्धि जन्म"—(जै० पू० मी०) १ । १ । ४) इत्यस्मिन्नधिकरणे विद्यमानार्थावगाहिनः प्रत्यक्षस्य धर्माऽगोचरत्वप्रतिपादनेन तत्पूर्वकाणामनुमानोपमानार्थापत्त्यादीनामपि सुतरा तत्राऽप्रामाण्यं समर्थितम्।

उक्तेऽर्थे जैमिनिशवरयोरुद्धरणम्

तदित्थमस्मिन्नधिकरणे अनुमानत्रयं फलति—प्रत्यक्षं धर्माधर्मागोचरं विद्यमानोपलम्भनत्वात्, प्रत्यक्षं विद्यमानोपलम्भनं विद्यमानार्थोपलब्धिरूपं वर्त्तमानेन्द्रियार्थसम्प्रयोगजन्यत्वात्, प्रत्यक्षं सत्सम्प्रयोगजं प्रत्यक्षत्वात इति"। एष्वनुमानेषु योगिप्रत्यक्षस्यैव पक्षत्वमतोऽस्मदादिप्रत्यक्षदृष्टान्तेन सिद्धसाध्यतादिदोषो नास्ति।

परमेतादृशं मीमांसकसम्मतं सिद्धान्तमधिगत्यैव स्कन्दस्वामिना कृतं व्याख्यानं दुर्गव्याख्यानादुत्कृष्टमेवाभाति ।

दुर्गाचार्येण तु प्रकृते ऋषीणां धर्मसाक्षात्कारदृष्टिरौपचारिकयाश्रिता फलविपरिणामदर्शनमेव चार्षं दर्शनमङ्गीकृतम् । आगमपरम्परायाः परमं मूलन्तु न स्पृष्टम् ।

नत्वेव स्कन्दकृते व्याख्याने अत्यावश्यक-विषयविमर्शाल्पीयस्त्वमुपलभामहे, यथा दौर्गे वृत्तिग्रन्थे ।

तथाहि —

दुर्गव्याख्यानात् स्कन्दव्याख्याने विशेषता

धर्मस्यातीन्द्रियत्वात् साक्षात्करणस्यासम्भवात् धर्मशब्देनात्र * तदर्थं मन्त्रब्राह्मणमुच्यते । साक्षात्कृतो धर्मो यैस्ते साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः । कथं पुनस्तैः साक्षात्कृतम् । उच्यते । स्मृतिकारैश्चैतिहासिकैश्चाभ्युपगतत्वाच्छ्रुत्या चाऽविरोधादन्तरालप्रलयः पुनः सृष्टिश्चास्ति । तत्र सृष्ट्यादौ य ऋषयस्तेऽतीतसृष्टावधीतं सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन मन्त्रब्राह्मणं स्मरन्ति । कश्चित् किंचित् यो यत्स्मरति तत्तेन दृष्टं तेन साक्षात्कृतं तेन प्रोक्तं तस्यार्षमिति चोच्यते । यस्य यावदार्षं तेन तावदेव साक्षात्कृतम्, अन्यत्तु तेनापि यत्साक्षान्न कृतं तदुपदेशेनैवाधिगतम्" इत्यादिग्रन्थेन श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणप्रतिपादितसृष्टिप्रलयप्रवाहमभ्युपयन् स्कन्दस्वामी मन्त्रब्राह्मणात्मकस्य शब्दराशेर्वेदस्यागमत्वं स्पष्टीचकार नित्येऽपि च तस्यार्षव्यपदेशे साक्षात्करणत्वे च विरोधमपि पर्यहार्षीत् ।

स्कन्दमते प्रकृते धर्मशब्देन मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशेर्वेदस्य ग्रहणम्

प्रतिपादितश्चायमर्थ उत्तरमीमांसायां प्रथमाध्याये तृतीयपादे—"शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्" इत्यादिसूत्रेषु ।

उक्तेऽर्थे वैयासिकपरामर्शस्यानुकूल्यप्रदर्शनम्

ननु—विग्रहवत्त्वेऽभ्युपगम्यमानेऽपि देवानां सर्वाङ्गचोदनासु विरोधो मा भूत् शब्दे तु विरोधः प्रसज्यते, विग्रहयोगादस्मदादिवत् जननमरणवती देवताऽनित्या, नित्यस्य वेदरूपस्य शब्दस्य अनित्येनार्थेन सम्बन्धाभावे यद्वैदिकशब्दे

---

* धर्मप्रतिपादकत्वेन अर्थोऽस्य तत् धर्मप्रतिपादकं मन्त्रब्राह्मणरूपमित्यर्थः ।

प्रामाण्यं स्थापितं तस्य विरोधः स्यादिति चेन्नायमस्ति विरोधः वैदिकादेव शब्दात् देवादिसृष्टेरभ्युपगमात। तदेतत प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रुतिस्मृतिभ्यां सिध्यति।

ते हि श्रुतिस्मृती शब्दपूर्विकां सृष्टिं दर्शयतः—श्रुतिस्तावत्—"एत इति वै प्रजापतिर्देवानसृजतासृग्रमिति मनुष्यानिन्दव इति पितॄन् तिरः पवित्रम्" इत्यादिका।

तथा स्मृतिरपि—

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा। आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ इति। नाम रूपं च भूतानां कर्मणाञ्च प्रवर्त्तनम। वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥ इति च। (मनु० १।२१)

आकृतिरेव वेदशब्दार्थ इति वैदिकानां सम्मतोऽर्थः

नच प्रलये व्यक्तीनां विनाशादनित्येनार्थेन सम्बन्धे सति नोक्तदोष-परिहार इति वाच्यम्। आकृतिरूपेणार्थेन नित्येन शब्दसम्बन्धात। तदेतत—"समानरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च" (१।३।३०) इत्यत्र स्फुटीकृतम। ऋग्वेदे च—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्' ( )

अस्यार्थः—यज्ञेन पूर्वपुण्येन कर्मणा वाचो वेदलक्षणायाः पदवीयम् ग्रहण-योग्यतामायन् प्राप्तवन्तः तां वाचमृषिषु प्रविष्टां विद्यमानाम् अन्वविन्दन् उपलब्ध-वन्तो याज्ञिकाः। अस्यामृचि "अनुविन्नाम" इति पदेन पूर्वस्थिताया एव वाच उपलब्धिरिति ज्ञायते, अतो वाक्यरचना पश्चाज्जातेति वदन्तो व्युदस्ता वेदितव्याः।

वेदशब्दार्थ विषये स्कन्दः स्पष्टं व्यासानुगामी

इत्थममुं वेदाऽपौरुषेयत्वलक्षणरूपमाकृतिभिन्न शब्दसम्बन्धरूपमर्थं श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धमेव स्कन्दादार्योऽपि दर्शितग्रन्थेन "ते चर्षयो यद्यपि प्रतिसृ-ष्ट्यन्तरेऽन्य उत्पद्यन्ते, तथाप्यतीतसृष्टिकृतपुण्यविशेषवशात तत्कर्माणस्तन्ना-मानश्चोत्पद्यन्ते तेनैकस्यां सृष्टौ विश्वामित्रनाम्ना यत्स्मृतं सृष्ट्यन्तरेऽपि विश्वा-मित्रनामैव तत स्मरति" × × × × × एतदभिप्रायेणैव साक्षात्कृत-धर्माण ऋषयो बभूवुः" इत्यादिग्रन्थेन च स्पष्टं प्रतिपादितवान्, वेदञ्च मन्त्र-ब्राह्मणात्मकं शब्दराशिं मेने, नतु मन्त्राणां मुख्यं वेदत्वं ब्राह्मणानाञ्च गौणं तदि-त्याधुनिकानां केषाञ्चित् कल्पनामनुसस्मार। तस्मात

वेदस्वरूपविषये सत्यव्रतसामश्रमिप्रभृतीनां कल्पना स्कन्दविरुद्धैव॥

स्कन्दाद्यभिमते वेदावतरणविषये वाक्यपदीयकारसम्मतिप्रदर्शनम्

अयमेव चार्थः—

"प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च तस्य वेदो महर्षिभिः । एकोऽप्यनेकवर्त्मेव समाम्नातः पृथक् पृथक्" इति वाक्यपदीयस्य प्रथमे काण्डे भर्तृहरिणाऽपि वेदागमरूपो वर्णितः । व्याख्यानञ्च "पुण्यराजेन "या सूक्ष्मा नित्यामतीन्द्रिया वाचमृषयः साक्षात्कृतधर्माणो मन्त्रदृशः पश्यन्ति तामसाक्षात्कृतधर्मभ्यः परेभ्यः प्रतिवेदयिष्यमाणाः बिल्म समामनन्ति । स्वप्ने वृत्तमिव दृष्टश्रुतानुभूतमाचिख्यासन्ते इत्येष पुराकल्पमाह बिल्मः । वेदवेदाङ्गानि बिल्मः ।

स वेद एकोऽपि महर्षिभिरनेकवर्त्मेव समाम्नात । एकस्य वेदस्य स्वरूपेण भेदाभावाद् अभिव्यक्तिलक्षणशब्दक्रमरूपवागात्मत्व प्राप्य अध्येतॄणामध्ययननिमित्त चरणसमाख्याव्यवस्था ऋषिभिः कृता" इति ।

उक्तेऽर्थे पराशरवाक्यसंवादः

सवदति चामुमेवार्थं पराशरोऽपि—

वेदमेक चतुर्भेद कृत्वा शाखाशतैर्विभुः ।
करोति बहुलं भूयो वेदव्यासस्वरूपधृक् ॥
(वि० पु० अं० ३, अ० ३, ५८)

द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने ।
वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः ॥

\+ \+ \+ \+ \+ \+

यया ऽसौ कुरुते तन्वा वेदमेकं पृथक् प्रभुः ।
वेदव्यासा ऽभिधाना तु सा च मूर्त्तिर्मधुद्विप ॥ इति
(वि० पु० अ० ३, अ० ४, ७)

उक्तेऽर्थे तैत्तिरीयकश्रुतिसंवादः

तैत्तिरीयके यजुरारण्यके च—

"अजान् हवै पृश्नींस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्ष, त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम्" इत्यनया श्रुत्या स्वयम्भुपदेन प्रमाणान्तरनिरपेक्षतया स्वत प्रमाणभूतं वेदशास्त्रस्यागमं प्रतिपादयन्त्या प्रतिपन्नोऽर्थ एव यथा स्पष्टीकृतः स्कन्देन, न तथा कर्मफलदर्शनानुमितार्थज्ञातृत्वेनार्थेन ऋषीणामृषित्वं व्याकृतवता दुर्गेणेति क्षिप्यते ।

स्कन्दव्याख्याने विशेषान्तरम्

अपिचायमपरोऽत्रैव स्कन्दाचार्यस्य प्रज्ञापरोत्कर्ष आलोक्यताम ।

नित्यस्य वेदस्य साक्षात्कृतधर्मात्मकश्रुतर्षिद्वारागमं स्पष्टीकृत्यावरेभ्यो-ऽध्ययनोपदेशपरम्परया मन्त्रब्राह्मणात्मकवेदप्राप्त्यर्थबोधकं यास्कवाक्यं व्याख्याय च 'बिल्मग्रहणाय" इत्यत्र 'बिल्म" पदं संगतार्थं व्याकरोत् स्कन्द-स्वामी । तथाहि—"ग्लायन्तो ग्लै म्लै हर्षे हर्षक्षये" उपदेशमात्रेण ग्रहीतुमशक्नु-वन्तस्तदनुकम्पया क्षीयमाणहर्षास्ताननुकम्पमाना इत्यर्थः । "बिल्मग्रहणाय, बिल्म उपाय" इति बिल्मपदस्योपायरूपमर्थं हृदि कृत्वा वेदार्थज्ञानाय यद् यद् उपायभूतं व्याकरणादिवेदाङ्गं तत्तत्सर्वमेव समाम्नासिषुः, वेदश्चस्वयं बिल्मो यतो ऽसाविष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायबोधक आयुर्घृतमितिवद् बिल्मपदबोध्यो-ऽपि स्वीकृतः । तदनया भङ्ग्या—"बिल्मं भिल्म भासन मिति वा" इतीयं निगूढार्था यास्कफक्किका स्कन्दव्याख्याद्वारैव विशदार्था भवति, नतु—भिल्मं वेदानां भेदनम, भेदो व्यास । भासनमिति वा + + + वेदाङ्गविज्ञानेन भासते प्रकाशते वेदार्थ" इति कृतेनापि व्याख्यानेन, एकदेशार्थप्रकाशनात । वेदार्थ-ज्ञानोपायभूतेषु व्याकरणाद्यङ्गेषु बिल्मपदार्थतायाः स्पष्टा ऽप्रतिपत्तिर्भवन्त्यपि दुर्गव्याख्यानेन इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायबोधकत्वेन रूपेण वेद पदार्थे तु न सा स्फुटं भासत इति कृतधियो ऽन्तः प्रविश्य स्वयमालोचयन्तु महाभागाः ।

आगमावतरणप्रकरणोपसंहारः

एवञ्च—"यो वै ब्रह्माण विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै"

(श्वेता०)

'अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम" (मनु०)

"अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा" (म० भ०)

"औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः"—(पू० मी०)

"शास्त्रयोनित्वात्" (ब्र० सू० १ । १ । ६)

इत्यादिश्रुतिस्मृतिसूत्रादिप्रतिपादितमन्त्रब्राह्मणात्मकवेदाऽपौरुषेयत्व-रूपोऽर्थो द्वाभ्यामपि टीकाकाराभ्यामभ्युपगम्यात्र यथोचित विशदीकृत इति समाभाति ॥

वृन्द-विकाश

प० साहित्याचार्य सदाशिवदीक्षित आमा, गवर्मेन्ट इन्टरमिडियेट कालेज
मु० आमा।

श्री सदाशिव शरणम ॥

श्री गुरु नाथ प्रभाव ते होत मनोरथ सिद्धि।
घन ते ज्यों तरु-वेलि-दल फूल फलन की वृद्धि ॥

श्रीमान् कवीश्वर वृन्द जी ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये प्रारम्भ मे शास्त्रानुकूल शिष्ट सम्प्रदायानुमोदित श्री गुरुनाथ प्रभाव वर्णन रूप मङ्गलाचरण करते हैं। श्री गुरु जी के प्रभाव से, अथवा श्री (लक्ष्मी) गुरु (उपदेष्टा) और नाथ (ईश्वर) के प्रताप से, अथवा श्री (लक्ष्मी) उस के गुरु (पिता) उस के नाथ (प्रभु) अर्थात विष्णु भगवान् के ऐश्वर्य, अथवा श्री गुरु (समुद्र) वह है नाथ जिसका ऐसा जो पर्वत (क्योंकि पक्षच्छेद के समय इस ने पर्वतों की रक्षा की थी) उसका है प्रभाव है जिससे, ऐसे श्री शङ्कर भगवान् से, अथवा श्री गुरु-नाथ नानक मेरे गुरु जी की महिमा से अभिलाषित पदार्थों की प्राप्ति उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार मेघ से अथवा जल वृष्टि से वृक्ष और लताओं के पत्र पुष्प और फलों की वृद्धि होती है। यहा पर 'श्री गुरुनाथ' इस साभिप्राय विशेष्य से परिकरालङ्कार है, तथा श्री गुरुनाथ और घन से, मनोरथ और 'दलफूलफलन' के विम्ब प्रतिविम्ब भाव होने के कारण दृष्टालकार है। जिस प्रकार मेघों से वृक्ष आदि यह कहने नही जाते कि आप हमारे फूल फलों की वृद्धि रूप मनोरथ सिद्धि कीजिए, पर वह स्वयं ही बिना कहे उनके मनोरथों की पूर्ति किया करता है। उसी प्रकार मनोरथ सिद्धि के लिए श्री गुरुनाथ जी से यह कहने की आवश्यकता नही कि आप मनोरथ सिद्धि की चेष्टा कीजिए, परन्तु उनकी महिमा से इच्छित पदार्थों की प्राप्ति स्वत हो जाती है, जिससे उनकी महिमातिशय द्योतित होती है। श्री गुरुनाथ जी की महिमातिशय वर्णन करने के कारण उदात्तालङ्कार है। श्री गुरुनाथ विषयक रतिस्थायी भाव है। दल फूल फलन मे लकी आवृत्ति से छेकानुप्रास है। आदि मे भग प्रयोग से यशः प्राप्ति होती है और तिस पर श्री शब्द का प्रयोग मणिकाचन सयोग है। इसी आशय से मिलता जुलता एक कवित्त है:—

जैसे घनश्याम के प्रभाव से विपिनि राजि मुनि मन हारी पत्र पुष्प से जड़ी रहैं।
जैसे हरि महिमा से बलहीन पार्थसेना विजय पताका लिए समुख अड़ी रहैं ॥
जैसे हरि भावना से चतुर्वर्ग ऋद्धि आदि भावक के पीछे हाथ धोय के पड़ी रहैं।
वैसे गुरुनाथ के प्रताप से सकलसिद्धि साधक समीप कर जोड़ के खड़ी रहैं ॥

किए वृन्द प्रस्ताव के दोहा सुगम बनाय।
उक्ति अर्थ दृष्टान्त करि दृढ़ कै दिए बताय ॥
भाव मरम समझत सबै भले लगैं इह भाय।
जैसे अवसर की कही बानी सुनत सुहाय ॥
सरसुति के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचे त्यों त्यों बढ़ै बिन खरचे घटि जात ॥

'चाणक्यनीति, विदुरनीति आदि अनेक नीतिग्रन्थ के रहते हुए भी इस ग्रन्थ के निर्माण की आवश्यकता ही क्या थी'? इसका उत्तर यों है कि ये ग्रन्थ संस्कृत में होने के कारण सुगम तथा सर्वोपयोगी नहीं हो सकते, परन्तु मैंने-वृन्दने-सरल दोहाओं में नीति शास्त्र का वर्णन किया है और अतएव यह सर्वबुद्धिगम्य होगा, अथवा प्रस्तावों के वृन्द को (समूह को) सरल दोहाओं में लिखा है, अथवा अगम्य नीति शास्त्र को सुगम्य बना कर दोहाओं में उनका वर्णन किया है, जिसमें कि लोकोक्तितया दृष्टान्त बना कर ठीक २ (दृढ कै) बता दी गई है। अथवा उक्ति (व्यङ्गयोक्ति आदि) अर्थ (अर्थान्तरन्यास) दृष्टान्तालङ्कार तथा समर्थन स्वरूप (दृढकै) काव्यलिंग अलङ्कार द्वारा जिनका समर्थन किया गया है, अथवा यह बात पक्की है (दृढ कै दिए बताए) कि दृष्टान्त द्वारा उक्ति के अर्थ अर्थात् धनलब्धि होती है, क्यों कि जब दृष्टान्त द्वारा कोई बात समझाई जाएगी, तब श्रोता के हृदय पर अङ्कित होने के कारण धन याच्या में कोई कठिनता न होगी। यहा पर 'वृन्द' शब्द से वृन्द कवि का बोध होने के कारण मुद्रालङ्कार है। दृष्टान्त, दृढ कै और दिए में 'द' की आवृत्ति से छेकानुप्रास है।

एक बात और भी है कि बहुधा नीति विषयक ग्रन्थ नीरस होते है और अतएव वे रुचिकर नहीं प्रतीत होते, परन्तु यह दृष्टान्त सतसई वैसी नहीं है

क्योंकि सरस (रसीले) अथवा शृङ्गारादि रस समेत और सर्वबोधगम्य (सबै समझत) भाव इस प्रकार अच्छे लगते हैं जिस प्रकार समयानुकूल कही गई बात सुन कर हर्ष होता है। सबै समझत' कहने का आशय यह है कि यह ग्रन्थ केवल पण्डितों को रुचिकर न होगा, परन्तु सरल होने के कारण आबाल-वृद्ध को प्रिय लगेगा। इस बात को सीधे शब्दों मे न कह कर 'सबै समझत' कहने से पर्यायोक्ति अलङ्कार है, तथा 'सरस' और सबै समझत' इस साभिप्राय विशेषण से परिकर अलङ्कार है तथा इन पदों से भले लगै' इसका समर्थन करने के कारण काव्यलिगालङ्कार है, तथा पूर्वार्ध मे उपमेय वाक्य है उत्तरार्ध मे उपमान वाक्य है अच्छे लगना यह दोनों का एक धर्म है जो भले लगे और सुहाय इन दोनों एकार्थवाची शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है। अतः प्रति-वस्तूपमा अलङ्कार है। भले लगै' इसमे ल की और 'भले और भाय' मे 'भ' की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। तथा 'सरस समझत सबै, सुनत सुहाय' मे स की आवृत्ति से वृत्यनुप्रास है। तथा पूर्वार्ध के आदि मे भाव तथा अन्त मे भाय से सपुट करने से आद्यन्तयमक है परन्तु कुछ लोग व और य मे भेद मान कर पूर्वोक्त यमक का खण्डन करते है।

यह बात सर्वसम्मत है कि यदि किसी खजाने से कुछ खर्च किया जाएगा तो उसमे कुछ कमी आजाएगी परन्तु सरस्वती के कोष की बात ही निराली है (इसकी बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है) क्योंकि इसमे से प्रति दिन यदि कुछ खर्च किया जाता है तो दिन दूनी और रात चौगुनी इसकी वृद्धि होती है। और यदि इसमे से कुछ व्यय न किया जाए, तो बढने की बात कौन कहे, जितना पहले था उतना भी नही रहता और दिन पर दिन घटता ही चला जाता है। विद्या कोष की अन्य कोषों से उत्कृष्टता वर्णन करने के कारण व्यतिरेकालङ्कार है। व्ययरूप कारण रहते हुए भी क्षय रूप कार्य न होने के कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है तथा व्ययरूप प्रतिबन्धक होते हुए भी वृद्धि-रूप कार्य होने से विभावनालङ्कार है। एवं व्ययभाव रूप कारण रहते हुए भी क्षयभाव रूप कार्य न होने के कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है, तथा व्यय भाव रूप प्रतिबन्धक रहते हुए भी क्षय रूप कार्य होने से विभावनालंकार है। 'सरसुति' मे 'स' की बडी' बात' मे ब की और 'बढै बिन' मे व की आवृत्ति से

छेकानुप्रास है। यहा एक बार ज्यौं का और दो बार त्यौं का प्रयोग करने के कारण दोष है। इसी भाव का संस्कृत मे एक श्लोक है—

विद्या बिन न बिराजहीं यदपि सुरूप कुलीन।
ज्यों शोभा पावे नहीं टेसू वास विहीन॥
उत्तम विद्या लीजिए यदपि नीच पै होय।
पर्यो अपावन ठौर को कंचन तजत न कोय॥

अपूर्वः कोपि कोषोयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्॥

भारती भण्डार की अपूर्वता दिखाकर इसकी उपादेयता का वर्णन करते हैः—यदि ससार मे सम्मान पाना है तो इस विद्या धन का अर्जन करो, क्योंकि चाहे अत्यन्त रूपवान हो, चाहे उत्तम वंशज हो, परन्तु बिना विद्या के सुशोभित न होंगे, टेसू का पुष्प देखने मे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है, इसका जन्म भी एक उत्तम वृक्ष मे होता है (यदपि सुरूप कुलीन) परन्तु इसमे गन्ध न होने के कारण इसकी शोभा नही होती। जिस प्रकार पुष्प की शोभा सुगन्धि से होती है, उसी प्रकार मनुष्य की भी शोभा विद्या से होती है, बाह्याडम्बर से नहीं। यहा पर 'सुरूप और कुलीन' इन कारणों के रहते हुए भी 'विराजहीं' उस कार्य्य के न होने के कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है। 'विद्या बिन' और 'वास विहीन' यहा पर विनोक्ति अलङ्कार है। 'मनुष्य' और 'किंशुक' मे 'विद्या' और 'वास' मे बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्तालङ्कार है, तथा 'बिराजही' और 'शोभा पावै' इन एकार्थवाची पदों की आवृत्ति होने के कारण आवृत्ति दीपक अलंकार है। अथवा पूर्वार्ध मे मनुष्य मे विद्या राहित्य उपमेय वाक्य है। और उत्तरार्द्ध मे टेसू वास विहीनता उपमान वाक्य है और न सुशोभित होना एक साधारण धर्म है, जो कि 'न विराजही' और 'शोभा पावै नही' इन दो पदों द्वारा प्रकट किया गया है, अतः प्रतिवस्तूमालंकार है 'विद्या बिन न विराजहीं' यहा पर वि की आवृत्ति प्रत्यनुप्रास है। 'टेसू वास विहीन' स और व की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। इस दोहे से मिलता जुलता एक श्लोक है।

रूप यौवन सम्पन्ना, विशाल कुल सम्भवाः ।
विद्या हीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥

इस बात की चर्चा चलाना निष्फल है कि किसके पास से विद्या धन ग्रहण करना चाहिए और किसके पास से नहीं, क्योंकि चाहे यह सर्व श्रेष्ठ धन अधम अस्पृश्य अपावन पुरुष के भी पास हो, परन्तु उसके ग्रहण मे आना कानी नहीं करनी चाहिए। उदाहरणार्थ सुवर्ण को लीजिए चाहे यह (सुवर्ण) अपवित्र स्थान पर पडा हो परन्तु कोई भी उसे छोड नही देता। अर्थात् वस्तु की उदादेयता ही उसकी ग्राह्यता मे प्रधान कारण है। कवि ने उत्तम इस विद्या विशेषण द्वारा यह बात दरसाई है कि यदि नीच के पास उत्तम विद्या हो तो ग्रहण करो अन्यथा नहीं, परन्तु काचन मे उत्तम विशेषण न होने के कारण उसकी उपादेयता सदा उत्तम, मध्यम, अधम तीनों अवस्थाओं में—वर्णित है, अतः यह प्रतीत होता है कि 'उत्तम' यह विद्या विशेषण व्यर्थ है, स्वारस्य रहित है, परन्तु यदि इसका अर्थ यों करें कि विद्या धन उत्तम है, अत उत्तमता के नीच के पास से भी इसके ग्रहण करने मे आना कानी न करनी चाहिए, अर्थात्

जनि पंडित विद्या तजहु; धनि मूरख अवरेख ।
कुलजा शील न परिहरै, कुलटा भूषित देख ॥

अर्थात् यदि विद्या को उद्देश्य और उत्तम को विधेय बना लें तो उत्तम पद की सुसंगति प्रकट हो जाएगी, इस अर्थ मे भी विधेय विमर्श नामक दोष का सामना करना पडेगा। उत्तरार्ध मे भी पद की कमी होने के कारण 'अनभिहित' वाच्य नामक दोप है। उत्तरार्ध मे कांचन त्याग के कारण रहते हुए भी त्याग रूप कार्य न होने के कारण विशेशोक्ति अलंकार है। पूर्वार्ध मे उपमेय वाक्य है, उत्तरार्ध मे उपमान वाक्य है, तथा 'लीजिए' 'तज मन' इन पदों द्वारा एक धर्म वैधर्म्य द्वारा प्रगट किया गया है, अतः प्रतिवस्तूपमा अलकार है, पच्यो और अपावन मे पकार की आवृत्तिसे छेकानुप्रास है इसी आशय का एक नीति पद्य भी है:—

विपादप्यमृतं ग्राह्यम मेध्यादपि कांचनम् ।
नीचादप्युत्तमा विद्यां स्त्री रत्नं दुष्कुलादपि ॥

कुल दुष्कुल सब छोडि के गहिए कामिनि रत्न ।
नीच ऊंच सब त्यागि के, लो विद्या करि यत्न ॥

जब यह स्पष्टत विदित है कि लक्ष्मी के प्रेम पात्र विद्वान् नही होते, परन्तु मूर्ख होते है तब फिर इस विद्या धन के ग्रहण करने की आवश्यकता ही क्या है उसके उत्तर मे कवि का कहना है कि हे सद्विवेक बुद्धि सम्पन्न पुरुष ! मूर्ख को धनी देख कर विद्या को मत छोडो, अर्थात इसके ग्रहण करने से विमुख न हो, क्योंकि व्यभिचारिणी स्त्री को आभूषणों से भूषित देख कर उसके सदृश आभूषणवती बनने के लिए कुल कामिनी अपने सतीत्व का त्याग नही करती हैं। अर्थात् कुलटा सदृश आचरण नहीं करने लगती है। 'पण्डित' पद के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि सत् के ग्रहण और असत् के त्याग करने की तुम मे शक्ति है अतः स्वयं ही विद्वत्ता और मूर्खता के गुण और अवगुण जान कर विद्या का त्याग न करोगे। यहा पर पण्डित इस साभिप्राय विशेष्य से परिकरांकुर अलङ्कार है, तथा पूर्वार्ध मे उपमेय वाक्य है, और उत्तरार्ध मे उपनाम वाक्य है तथा समान धर्म 'जनि तजहु' और 'न परिहरै' इन एकार्थ वाची शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है, अतः प्रतिवस्तूपमा अलकार है। तथा 'कुलजा इस पद से शीलापहारा भाव के समर्थन करने के कारण काव्यलिङ्ग अलंकार है। तथा 'धनी मूर्ख से दरिद्र विद्वान् का सम्मान अधिक होता है' अथवा 'धनी मूर्ख की उस प्रकार निन्दा होती है जिस प्रकार आभूषणवती कुलटा की और दरिद्र विद्वान् का उस प्रकार सम्मान होता है जिस प्रकार आभूषण विहीन कुलाङ्गना की' इससे धन से विद्या के महिमातिशय वर्णन करने के कारण व्यतिरेकालङ्कार है तथा उत्तरार्ध मे 'कुलटा'–'कुलजा' इन पदों से पदादि यमक है। इसी आशय का एक श्लोक है—

निरक्षरे वीक्ष्य महाधनित्वं विद्यानवद्या विदुषा न हेया ।
रत्नावतंसाः कुलटाः समीक्ष्य किमार्य-नार्यः कुलटा भवन्ति ॥

कविवर रहीम जी का भी एक ऐसा ही दोहा है—

धन थोरो इज्जत बडी, कहु रहीम का बात ।
जैसे कुल की कुल वधू, चिथरन माहि समात ॥

विद्या गुरु की भक्ति सों, कै कीन्हे अभ्यास ।
भील द्रोण के बिन कहे, सीख्यो वचन विलास ॥

गुरु मुख पढ्यो न, कहतु है पोथी अर्थ विचारि ।
सो शोभा पावै नहीं, जार गर्भ युत नारि ॥

धन से विद्या की श्रेष्ठता सिद्ध कर इसकी प्राप्ति के साधन का वर्णन करते हे—यह विद्या धन शिक्षक की सेवा सुश्रूषा करने से अथवा अभ्यास करने से प्राप्त होता है 'कै' पद से गुरु भक्ति रूप प्रथम साधन मे अरुचि प्रतीत होती है, क्योंकि केवल गुरु की भक्ति से विद्या की प्राप्ति नहीं होती। परन्तु यह कहना निर्मूल है । कवि अभ्यास से गुरु भक्ति को विशेष महत्व देना चाहता है। और इसी बात का समर्थन 'गुरुमुख पढ्यो' इस दोहा से करता है। वस्तुतः विद्या प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन गुरु भक्ति है, और उससे उतर कर अभ्यास। अथवा गुरु भक्ति और अभ्यास इनके दोनों से विद्या प्राप्ति होती है, एक से नही। अतएव केवल एक ही उदाहरण दिया है। इस अर्थ मे 'कै' शब्द जरा खटकता है। इन पूर्वोक्त साधनों की सिद्धि मे इतिहास साक्षी है। एक लव्य नामक भील ने बिना द्रोण के सिखाये ही धनुर्विद्या सीख ली थी। महाभारत मे लिखा है कि एक लव्य नामक निषाद ने द्रोण की मूर्ति बना कर और उसी को गुरु मान कर उसके सामने धनुर्विद्या का अभ्यास किया था। वाण चलाने मे वह इतना निपुण हो गया था कि एक बार कुत्ते के भोंकने पर उसने बाणों से उसका मुंह भर दिया था। द्रोणाचार्य ने आश्चर्यान्वित होकर जब उसके गुरु का नाम पूछा तो उसने कहा 'मेरे गुरु जी का नाम द्रोणाचार्य है' इस पर द्रोणाचार्य ने कहा कि मै ही द्रोण हूं। अपने दोनों हाथों के अंगूठे गुरु दक्षिणा मे दे दो। यह सुन कर उसने तत्काल ही दोनों अंगूठे काट कर द्रोणाचार्य को दे दिए। यहा एक लव्य कथानक रूप विशेष द्वारा विद्या लब्धि रूप सामान्यत: समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'द्रोण' 'विन' मे न को 'कै कीन्हे' मे क की वाण विलास मे व की आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास है।

विद्या की प्राप्ति दो प्रकार से होती है गुरु-द्वारा और अभ्यास द्वारा। परन्तु अभ्यास द्वारा समुपलब्ध विद्या का महत्व नहीं क्योंकि जिस मनुष्य ने गुरु मुख द्वारा तो विद्या न पढ़ी हो परन्तु पुस्तकों का अर्थ विचार कर कहता हो अथवा यदि पुस्तक का स्वबुद्धि द्वारा अध्ययन कर (पोथी विचारि) अर्थ कहता हो (अर्थ कहतु है) वह मनुष्य शोभा नहीं पाता अर्थात उस मनुष्यों का आदर सम्मान नहीं होता। उदाहरणार्थ उस स्त्री को ले लीजिए जिसके जार से (उपपति से) गर्भ रह गया हो। स्त्री के यदि पति द्वारा गर्भ रह जाए तो उसका सम्मान होता है, पर यदि वह किसी अन्य के द्वारा रह गया हो तो उसकी निन्दा होती है, इसी प्रकार गुरु से पाई गई विद्या की प्रशंसा है, अन्यथा नहीं। यहां पर वह मनुष्य उपमान है, नारी उपमेय है और शोभा प्राप्यभाव साधारण धर्म है अतः वाचकलुप्तोपमा है। 'शोभा पावै नहीं इसका 'सो' और नारी' इन दोनों के साथ सम्बन्ध होने के कारण देहरी दीपक अलंकार है। सो शोभा में स की जार जुर में ज की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। इसी भाव का एक श्लोक है—

पुस्तक प्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरु सन्निधौ।
न शोभन्ते सभा मध्ये जारगर्भाइव स्त्रियः॥

बुद्धि बिना विद्या, कहो, कहा सिखावै कोय।
प्रथम गांव ही नाहिं, तो सींव कहां ते होय॥
विद्या याद किये बिना, बिसरत इह उनमान।
बिगर जात बिन खबर के ढोली कैसो पान॥

विद्या समुपलब्धि में बुद्धि का भी एक विशेष स्थान है, क्योंकि कोई भी अर्थात चतुर से चतुर शिक्षक भी बुद्धि-विहीन पुरुष को विद्या क्या सिखा सकता है अर्थात यदि विद्यार्थी निर्बुद्धि है तो उसे विद्या प्राप्ति न होगी। यह तो बताओ (कहो) कहा शब्द का आशय यह है कि बुद्धि-विहीन जन को विद्या सिखाना असम्भव है। उदाहरणार्थ ग्राम को ले लीजिये यदि पहिले ग्राम ही न हो, अर्थात यदि ग्राम का अभाव हो, तो उसकी सीमा कैसे हो सकती है, अर्थात यदि ग्राम होगा तो उसकी सीमा हो सकती है, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार यदि पुरुष बुद्धि

संयुत है तो विद्या की प्राप्ति होगी, अन्नथा नहीं। यहां पर बुद्धि का गांव से और विद्या का सीव से प्रतिबिम्ब भाव होने के काणण दृष्टान्तालङ्कार है। 'बुधि बिना' यहां पर विनोक्त्यलङ्कार है। 'बुद्धि बिना विद्या' मे व की, 'कहो कहां से क की 'गांव ही नाहिं' मे 'हि' की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। 'कहो' इस पद से गर्भित दोप है।

जब कि इस धन को न चोर चुरा सकता है, और न राजा छीन सकता है, तब इसका नाश कैसे होता है? इस बात का उत्तर यों है--विद्या-धन स्मरण विना, इस प्रकार भूल जाता है, जिस प्रकार पान की ढोली खबर लिये विना अर्थात् फेरे फारे बिना बिगड जाती है, अर्थात् जिस प्रकार तंबोली पान की ढोली प्रति दिन फेरा पलटा करता है, और सडने से उसे बचा लेता है, उसी प्रकार विद्वान् को भी प्रति दिन शास्त्रों का चिन्तन करना चाहिये, और विस्मरण होने से उसे बचा लेना चाहिए। यहां पर विद्या और पान की ढोली से बिम्ब प्रतिविम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्तालङ्कार है। 'याद किये बिना' इन पदों से 'विसरत' का, तथा 'बिन खबर के' इन पदों से 'बिगर जात' का समर्थन करने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। वि की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास है। बिगर खबर मे र की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। इहि उनमान और कैसो इन दो समनार्थ वाची शब्दों का प्रयोग करने से पुनरुक्ति-दोप है। यद्यपि ढोली के वे प्रसिद्ध पान (सो पान) इस अर्थ से उपर्युक्त दोष का परिहार हो जाता है, तथापि पूर्वोक्त अर्थ मे सो की सुसंगति निर्दोष नहीं है। इस से मिलता जुलता एक दोहा भी है—

तम्बोली ज्यों पान को पलटत बारंबार।
त्यों विद्या को फेरिये हर जपिये हर बार।

यद्यपि विद्या समुपलब्धि के लिये अनेक साधन है, परन्तु उन सब साधनों में उद्यम एक प्रधाग साधन है, क्योंकि यह तो कहिये कि उद्यम के बिना विद्या रूपी धन को अथवा विद्या और धन को कौन पा सकता है, अर्थात् कोई नहीं। इस में पङ्खा की पवन का दृष्टान्त साक्षी है। बिना डुलाये, अर्थात् हस्तचालनादि उद्यम किये बिना, पङ्खा की पवन भी नहीं मिलती, पूर्वार्ध

विद्या धन उद्यम विना, कहोजु, पावै कौन ।
विना डुलाए ना मिले, ज्यों पंखा की पौन ॥
करत २ अभ्यास के जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान ॥
एक एक आखर पढ़ैं, जानैं ग्रन्थ विचार ।
पैंड पैंड हू चलत जो, पहुंचै कोस हजार ॥

मे 'कहोजू' पद द्वारा यह व्यजित होता है कि विना उद्यम के विद्या पाना असम्भव है। यहा पर विद्या उपमेय है, 'पंखा की पौन' उपमान है, पूर्वार्ध मे काकु द्वारा 'पावै' और उत्तरार्ध मे 'ना मिलें' इन भिन्न २ शब्दों द्वारा 'अप्राप्ति रूप' धर्म प्रगट किया गया है अतः प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है। 'उद्यम विना' यहां पर विनोक्त्यलङ्कार है। 'विद्याधन' यहां पर रूपकालङ्कार है। 'विद्या विना' मे वि की, 'कहो कौन' मे क की और पंखा के पौन मे प की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। 'कहो जू' का वाक्य के मध्य मे प्रयोग होने के कारण गर्भित दोष है।

यह विद्या धन अभ्यास साध्य है, क्योंकि बार २ अभ्यास करने पर मूर्ख मनुष्य भी उस प्रकार विद्वान् हो जाता है, जिस प्रकार रस्सी के आवागमन से शिला पर भी अर्थात् शिला ऐसी कठिन वस्तु पर भी चिन्ह पड जाता है। अर्थात् शिला का अवलोकन कर यह बात असम्भव सी प्रतीत होती है कि रस्सी द्वारा इस पर निशान पड जायेगे, परन्तु रस्सी के आवागमन ने अर्थात् अभ्यास ने असम्भव को भी सम्भव कर दिया। इसी प्रकार अभ्यास द्वारा मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है। जडमति और शिला तथा सुजान और निशान से बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्तालङ्कार है द्वितीय चरण का प्रथम चरण मे तथा चतुर्थ का तृतीय मे कारण वर्णन करने के कारण हेतु अलंकार है। करत २ पुनरुक्ति प्रकाश है। चतुर्थ चरण मे 'पर' पद से यमक है। तकार की सकृत् आवृत्ति से वृत्यनुप्रास है ,

ग्रन्थ के विस्तार को देख कर व्याकुल हो ग्रन्थाध्ययन न छोड देना चाहिए, क्योंकि यदि मनुष्य एक ही एक अक्षर (श्लोकं श्लोकार्धं) प्रति दिन पढ़ा करै, तो कुछ दिनों के अन्तर वह सम्पूर्ण ग्रन्थ के विचारों को जान लेता

है, अथवा ग्रन्थ जानै इसे विचार, इसे सोचो, क्योंकि जो मनुष्य प्रतिदिन एक एक पग (कदम) भी चलता है, वह हजारों कोस अर्थात बहुत दूर पहुंच जाता है। कहने का आशय यह है यदि मनुष्य प्रति दिन कुछ चला करेगा तो अपने लक्ष्य पर पहुच जाएगा । इसी प्रकार यदि मनुष्य प्रतिदिन कुछ पढा करेगा तो कालान्तर मे पण्डित हो जाएगा। यहाँ पर पूर्वार्ध का उत्तरार्ध से से बिम्ब प्रतिबिम्ब होने के कारण दृष्टान्तालङ्कार है। एवं ग्रन्थ ज्ञान का 'एक २ अक्षर पढै' इससे समर्थन करने के कारण हेत्वलङ्कार है। 'एक एक' मे तथा पैंड पैंड मे पुनरुक्ति प्रकाश है। पैड शब्द का शुद्ध रूप पाद दण्ड है।

चलै जु पैंड पिपीलिका, उदधि पार ह्वै जाय।
जो न चलै, तो गरुड़ हू पैंड हु चलै न पाय।

पूर्वार्ध मे 'हू' (भी) की कमी होने के कारण अनभिहित वाच्य दोष है, क्योंकि इसका अर्थ होता है कि यदि एक एक अक्षर से अधिक पढै तो ग्रन्थ विचार नहीं जान सकता है। तथा उत्तरार्ध मे 'जो' इस यत् शब्द का प्रयोग कर 'सो' का प्रयोग होने के कारण विधेयाविमर्श दोष है। प्रथम चरण का निर्दोष पाठ 'इक इक अक्षर हू पढै' अथवा 'अक्षर अक्षर हू पढै'। इसी आशय से मिलते जुलते दो श्लोक है—

शनैर्विद्या शनैरर्थानारोहेत्पर्वतं शनैः।
शनैरध्वसु वर्तेत योजनान्न परं व्रजेत्।
शनैः पंथाः शनैः कन्था शनैः पर्वतमस्तके।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तं पञ्चैतानि शनैः शनैः॥

पूर्वोक्त आशय का समर्थन प्रकारान्तर से करते है। यदि चीटी (एक अत्यन्त क्षुद्र जीव) प्रति दिन एक एक पग भर भी चलै (अर्थात् चाहे वह थोडा ही चलै, परन्तु चलै अवश्य) तो वह समुद्र के भी पार हो जाती है, अर्थात् बहुत दूर चली जाती है, परन्तु भगवान् विष्णु का वाहन गरुड पक्षी भी (अत्यन्त वेग गामी पक्षी भी) यदि न चलै, (अर्थात् चलने की शक्ति तो हो परन्तु चलै नहीं) तो वह एक कदम भी नही चल पाता है। कहने का आशय यह कि एक अल्प साधन भी पुरुष अथवा जडमति भी प्रति दिन प्रयत्न करने पर विद्या-धन प्राप्त कर

सकता है, परन्तु महासाधन भी मनुष्य अथवा प्रज्ञावान् भी प्रयत्न न करने पर कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकता है। यहां अप्रस्तुत पिपीलिका तथा गरुड के द्वारा पूर्वोक्त आशय सूचित किया जाता है अतः अप्रस्तुत-प्रशंसा अलङ्कार है। पिपीलिका तथा गरुड इन साभिप्राय विशेष्यों से परिकराङ्कुर अलङ्कार है। पैंड पिपीलिका मे प की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। चलै का कई बार प्रयोग करने से अनवीकृत दोष है, एक ऐसा ही श्लोक है—

गच्छान्पिपीलिको याति योजनानां सहस्रकम्।

अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

किसी अंग्रेजी कवि ने भी कहा है—

Standing at the foot, boys,
Gazing at the sky,
How can you get up boys,
If you never try?

१

सुजन तजत नहिं सुजनता कीन्हे हू अपकार।
ज्यों चन्दन छेदै तऊ सुरभित करहि कठार॥ वृन्द।
सुजनो न याति वैरं परहित निरतो विनाशकालेऽपि।
छेदेऽपि चन्दनतरः सुरभयति मुखं कुठारस्य॥
उमा सन्त की यही बडाई। मन्द करत जो करइ भलाई।
सन्त असन्तन की अस करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसु मलय सुन भाई। निज गुन देइ सुगन्ध बसाई॥

२

होय कछू समुझै कछू जाकी मति विपरीत।
कनक भखी जैसे लखै श्याम सेल को पीत॥ वृन्द
निजदोषावृतमनसामतिसुन्दरमेव भाति विपरीतम्।
पश्यति पित्तोपहतः शशिशुभ्रं शङ्खमपि पीतम्।
नयन दोष जा कहं जब होई। पीत वरन शशि कहं कह सोई।

३

छाडि सबल, अरु निबल की कबहुं न गहिए ओट ।
जैसे टूटी डार को लगै बिलम्बे चोट ॥
रहिये लट पट काटि दिन बरु घामे मां सोय ।
छांह न वाकी बैठिये जो तरु पतरो होय ॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दै है ।
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जरसे जैहै ॥
कह गिरिधर कविराय छाह मोटे की गहिये ।
पाता सब झरि जाए तऊ छाया मां रहिए ॥

४

जाते रक्षा होतु है है ताही सों घात ।
कहा करे कोऊ जवै, बारि ककरिया खात ॥ वृन्द
सस्यानि स्वयमत्ति चेद्वसुमती माता सुतं हन्ति चेद् ।
वेलामम्बुनिधि विलङ्घयति चेद् चेद्भूमि दहेत् पावकः ।
आकाशं जनमस्तके पतति चेदन्नं विषं चेद्भवे—
दन्यायं कुरुते यदि क्षितिपति, कस्तं निरोद्धुं क्षमः ॥
नरहरि धरहरि को करै जननि सुतहिं विष देइ ।
वेडा हठि खेति चरै साधु पर धन लेइ ॥
साधु परधन लेइ नाव कटिया गहि बोरै ।
सोइ पहरू सोइ चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै ॥
नृपति प्रजहि दुख देइ कौन समरथ करै धरहरि ।
क्षिति पति अकबर शाह सुनो धर हरि कहै नरहरि ॥
दगा देइ यार, अरु माता उर बैर मानै, मारो चहै पिता तासों कौन विधि जीजिये
बसै जाकी बाह, सो न बाह को निवाह करै, जान के अजान बनै कैसे जान दीजिये
चढै जाकी नाव, सोइ जान बूझ बोरो चहै 'ठाकुर' अजानता पै दिनै दिन छीजिये
राजा ह्वैकै तजै न्याव, संगी ह्वैकै करै घाव बारी खेत खाए तो उपाय कहा कीजिये

५

भले बुरे सों एक सी मूढ़नि के परतीत ।
गुञ्जा सज तोलत कनक तुला पला की रीत ॥ वृन्द

अग्नि दाहेन मे दु:खं छेदे न निकषे न वा।
एतदेव महद्दुःखं गुञ्जया सह तोलनम् ॥
आह आह अज दस्ते मराष्टा गौहर नाश नान।
हर जवा खर मोहरा रावा दुर बराबर मे कुनन्द।

(हाफिज)

६

दुष्ट निकट बसिए नहीं बस न कीजिए बात।
कदरी बेर प्रसङ्ग ते छिदे कंटकन पात ॥ वृन्द
मारी मरै कुसंग की ज्यों केले ढिग बेर।
वह हालै वह चीरई साकट संग निबेर ॥ कबीर।
कहु रहीम कैसे बनै केर बेर को संग।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग ॥ रहीम।
कहियो जाय सूर के प्रभु सों केर पास ज्यों बेर ॥ सूरदास।
कदली बेर ढिग पछितात।
पवन परसत हलत ज्यो त्यों गडत कंटक गात ॥ नागरीदास।
नीच निरादर ही सुखद आदर दुखद विशाल।
कदरी बदरी विटप गति देखहु पनस रसाल ॥

७

ऊपर दरसै सुमिल सी अन्तर अनमिल आक।
कपटी जन की प्रीति है खीरा की सी फाक ॥ वृन्द।
रहिमन प्रीत न कीजिये जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फांके तीन ॥ रहीम।

८

प्रेमी प्रेम न छाडही हो तन प्रान विहीन।
मरे परे हू उदर मे ज्यों जल चाहत मीन ॥ वृन्द।
जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाडत छोह ॥ रहीम।

९

सुख दिखाय दुख दीजिये खल सों लरिए काहि ।
जो गुर दीन्हे ही मरै क्यों विष दीजै ताहि ।। वृन्द

सान्मैव यत्र सिद्धिर्न तत्र दण्डो बुधेन विनियोज्यः ।
पित्तं यदि शर्करया शाम्पति कोर्थः पटोलेन ।

१०

हलन चलन की सकति है तौ लौं उद्यम ठान ।
अजगर ज्यों मृगपति बदन मृग न परतु है आन ।।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगः ।।

चे खुरद शेर शाजादर बुन गार ।
बाज उफतादा राचे कत बवद ।।

११

अजुगत लखि नर नीच की काहू को न सुहात ।
दाख बिरानी खाल खर कोन देखि अनखात ।।

यद्यपि न भवति हानिः परकीयां चरति रासभो द्राक्षाम् ।
असमञ्जसमिति मत्वा तथापि खलु खिद्यते चेत ।।

देखि पराये खेत मे गदहा चरता घास ।
अपनो कछू न जात है अनहोनी न सुहात ।।

पुरातत्व सम्बन्धी पुस्तकों की सूची

(जगन्नाथ एम० ए०)

१ आचार्य प्रसन्नकुमार। (क) 'इन्डियन आर्कीटैकचर अकार्डिग टू दी मानसार शिल्पशास्त्र"।
(ख) 'हिन्दू आर्कीटैकचर"।
२ आचार्य, जी० वी०। "गाईड टू दी बुद्धिस्ट सैकशन आफ दी प्रिन्स आफ वेल्ज़ म्यूजियम आफ वैस्टर्न इन्डिया"
३ आपटे, वी० जी०। अशोक चरित (मराठी)।
४ आयङ्गर पी० टी० श्रीनिवास। (क) 'हिस्टरी आफ दी टामिलस्"
(ख) "दी स्टोन एज इन इन्डिया"
५ आयङ्गर, एस० कृष्णस्वामी। (क) 'सोर्सिज़ आफ विजयनगर हिस्टरी"
(ख) "एन्शेन्ट इन्डिया"
(ग) "बीगिनिंग्ज आफ साउथ इन्डियन हिस्टरी"
(घ) "स्टडीज़ इन गुप्त हिस्टरी"
(ङ) "वाकाटकास् इन इन्डियन हिस्टरी"
(च) 'मणि मेखला"
६ आपटे, दाजी० एन० हिन्दू-सुमेर संस्कृत (मराठी)
७ आर्यमूथन, टी० जी० "दी कावेरी, दी मौखरीस् ऐंड दी संगम एज"
८ आयमोनियर, ई० "हिस्टोरी डी ला एनशेन्न कम्बोज"
९ आय्यर, पी० वी० जगदीश "साउथ इन्डियन शराइन्ज़"
१० आय्यर ए० वी० टी० "इन्डियन आर्कीटैकचर"
११ इन्द्रजी, भगवानलाल (क) "ट्वैन्टी थ्री इन्सक्रिपशनज़ फ्राम नेपाल"
(ख) हाथी गुम्फा ऐण्ड अदर इन्सक्रिपशनज
१२. इण्गल, ऐलबर्ट "इन्डीशच कुन्स्ट अन्ड ट्रायम्फलविल्ड"
१३ इलियट, "कौइन्ज़ आफ सदरन इन्डिया"
१४. ऐलन, जौन (क) "केटालाग आफ दी कौइन्ज़ आफ गुप्त डाईनैस्टी"

(ख) "केटालाग आफ इन्डियन कौईन्ज इन दी ब्रिटिश म्यूजियम"

(ग) "केटालाग आफ कौइन्ज इन दी इन्डियन म्यूजियम कलकत्ता"

(घ) "इन्डियन कौइन्ज वैन्डनबर्ग गिफट"

१५. ऐन्डरसन, जे० — "केटालाग ऐण्ड हैन्ड बुक आफ दी आक्यौलौजीकल कौलैकशनज इन्डियन म्यूजियम"

१६ ऐङ्गलदे, रैव० ए० — "दी डोलमन्स आफ दी पुलमे हिल्स"

१७. ऐनरिक्येज मेजर, सी० — "सीलोन पास्ट ऐ ंड प्रैजेन्ट"

१८. ओझा, र० ब० गौरीशङ्कर, ऐच०
(क) प्राचीन लिपिमाला
(ख) अशोक की धर्म्मलिपियां
(ग) राजपूताने का इतिहास
(घ) उदयपुर राज्य का इतिहास
(ङ) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

१९. ओल्डैनबर्ग — "एन्शैन्ट इंडिया"

२० केब्रटन, ए० — "नौवलीस रिसर्वस् सुर लेस् चामस्"

२१ कारपौकस्, जे० — " ले रूईन ड" अङ्गकोर

२२. कैलनफैलस्, पी० वी० वैनस्टाईन
(क) "एपिग्रेयिया वालिका"
(ख) "रिपोर्ट ओन इन्सक्रिप्शनल टूर (सुमाटरा)"

२३ कारटर, जी० ई० ऐल० — "स्टोन एज इन कशमीर"

२४ केव, हैरी — "दी रूईन्ड सिटीज आफ सीलोन"

२५. क्लार्क, ई० — "हिन्दू अरेबिक न्यूमरलज (इंडियन सटडीज इन आनर आफ लैनमैन)

२६. क्लिफोर्ड, ऐच० — "फरदर इंडिया"

२७. कौडरिङ्गटन — "सीलोन कौइन्ज ऐ ंड करैन्सी"

२८. कौडरिङ्गटन के, ड' बी०
(क) "एन्शैन्ट इंडिया" (गुप्तकाल तक)
(ख) "शौर्ट हिस्टरी आफ सीलोन"
(ग) "ला इन्डे एन्शान डेस् ओरिजिनस् ए ला' ईपौक् गुप्त"

(घ) 'इन्टरोडकशन टू मीडीवल इंडियन स्कलपचर''

२९. कोडीस् जोर्ज — (क) 'ब्रौनजेस् खमेरस्''
(ख) इन्सक्रिप्शनज डु स्याम''
(ग) ''विवलियोग्रेफी रैसौनी डु कम्बोज एट चम्पा''
(घ) ''बास रीलीफस् ड' अङ्कोर वाट''
(ङ) 'इन्डेकस् अलफबेटीक पोर ले कम्बोज''
(च) लेस् कौलैकशनज आर्क्योलोजीक डु मुसे नैशनल डे बङ्काक''

३०. कोहन्, विलयम — 'बुद्ध इन डेर कुन्सट डेस ओसटेनस्'

३१ कोलार्ड, पाल — ''कम्बोज एट कम्बोजीनस्''

३२ कोइन वायनेर,अर्नेसट् — 'एशिया''

३३ कोलानी एम० मैडलीन — ''ल' अङ्ग' डी ला पीयर डान्स ला प्रौविन्स डि होआ-बिन्ह''

३४ कोल एच० एच० — (क) 'आर्कीटैकचर आफ एन्शैन्ट दहली''
(ख) 'मैमोरैंडम ओन एन्शैन्ट रीमेजन एट यूसफजई''

३५ कोलब्रुक, एच० टी० — ''ऐसेज (नं० ६, १०, ११, १२, १३)

३६. कौमैल, जे० — गाईड ओक्स रुइन्ज ड' अङ्कोर''

३७ कौन्टेनो, जोर्ज — (क) 'मैनुअल ड' आर्क्योलोजीक ओरिएएटेल''
(ख) ''लास् एन्टिकीटीज ओरिएएटेल''
(ग) 'ला आर्ट डी ला एसिआई ओरियएटेल एन्शैन''

३८. कुमारस्वामी, आनन्द, के — (क) ''हिस्टरी आफ इन्डियन ऐएड इन्डोनीसियन आरट''
(ख) ''बिवलियोग्रैफी आफ इन्डियन आर्ट''
(ग) ''पौर कौम्प्रेन्दरेल' आर्ट हिन्दोई''
(घ) ''केटालाग आफ इंडियन कोलैकशनस् बोसटन म्यूजियम''

३६. कुशनस् हैनरी	(क) "दी आर्कीटैक्चरल ऐन्टिक्विटीज आफ वैसटर्न इन्डिया"
	(ख) "ऐन्टिक्विटीज़ आफ सिन्ध"
	(ग) 'चालूक्यन आर्कीटैक्चर"
	(घ) "आर्कीटैक्चर आफ बीजापुर"
४०. कन्हिंह्वम, सर अलग्ज़ैन्डर	(क) "दी एन्शैन्ट ज्याग्रैफी आफ इंडिया"
	(ख) "कौइन्ज आफ अलग्ज़ैन्डरज सकसैसरज"
	(ङ) "दी भीलसा टोपस्"
	(च) "दी स्तूप आफ भरहूत"
	(छ) "बुक आफ इन्डियन ईराज"
	(ज) 'कौरपस इन्सक्रिप्शनम् इन्डीकेरम् " (प्रथम संस्करण)
	(झ) "लद्दाख"
	(ञ) "महाबोधी"
	(ट) "कौइन्ज आफ मैडीवियल इन्डिया"
४१ करौफोर्ड	"रिसर्विज़ आन एन्शैन्ट ऐण्ड मौडरन इन्डिया"
४२. काक, रामचन्द्र	(क) "एन्शैन्ट ऐण्ड मैडीवियल आकीटैकचर आफ कशमीर"
	(ख) "ऐण्टिक्विटीज आफ आरेव वादवान"
	(ग) "हैंडबुक आफ आर्क्यालोजीकल ऐण्ड न्यूमिसमैटिक सैकशनज श्रीनगर म्यूजियम'
	(घ) "केटालाग आफ दी म्यूजियम आफ आर्क्यालोजी (सांची)"
४३ काये, जी० आर०	"दी बक्षाली मैनूस्क्रिप्ट"
४४. करन, ऐच	"कोलैकटिड वर्कस् १५ "
४५ कीलहार्न	"ब्रूश्चटूके इन्डिश्चरे श्चौस्पल इन इन्स्क्रिफटैन ज़ु अजमेर"
४६. कौनो, स्टेन	"कौरपस् इन्सक्रिप्शनम इंडीकेरम" खण्ड २ (प्रथम भाग)

'क्लासीफाईड केटालाग आफ दी लायब्रेरी आफ दी डायरेक्टर जेनरल आफ आक्योलोजी इन इंडिया''

४७ क्रामरेश स्टेला — दी विष्णुधर्मोत्तरम'

४८ क्रामर आगस्टिन — वैस्ट इंडोनेशिय सुमात्रा, जावा बोर्न्यू

४९ कृष्णमचारलू सी आर — 'दी इन्स्क्रिप्शनज आफ नगर'

५० क्रोम एन० जे० — (क) ल' आर्ट जावार्नेज डान्स लेस म्यूसेस डी हॉलेन्ड एट दी जावा

(ख) डार्ट वारबुदूर फन्डे

(ग) हिन्दू जावार्नाश गेस्श्रीडेनिस

(घ) 'इंडीश ओडहैदकुण्डी वर्क'

(ङ) वारबुदूर

(च) 'दा ऑन्दरगङ्ग वान श्रीविजय

(छ) 'इनलायडीङ्ग टाट डा हिन्डोर्ड जावार्नाश कुन्स्ट'

(ज) 'वेग्चरिजविङ्ग वान वारबुदूर''

(झ) लाईफ आफ बुद्ध आन दी स्पतुप आफ वारबुदूर''

(ञ) टेल हिन्दोइजमे''

५१ कुन्दनगर, के० जी० — 'श्रीमहालक्ष्मी टैम्पिल कोल्हापुर''

५२. कुरैशी, मुहम्मद हमीद — गाईड टू बुद्धिसट रिमेनज ऐट नालन्द''

५३. कुन्सट, जे० — हिन्डई जावार्नाश्च म्यूज़ीक इन्सट्रूमेन्टिन''

५४ का, टी० एस० — 'आक्योलोजीकल नोटस आन पेगन''

५५ क्यूरोगा, जबराईल — 'रीलिशन दी ईवलैनटस टू कम्बोज''

५६ गङ्गूली, मनमोहन — (क) 'ओडीसा ऐंड हर रिमेन्ज''

(ख) 'हैंडबुक टू दी स्कलपचरज़ वङ्गीय साहित्य परिषद म्यूज़ियम''

५७ गङ्गूली, ओरधेन्द्र कुमार — (क) 'दी कल्ट आफ अगस्त्य एण्ड दी ओरिजन 'आफ इंडियन कोलीनियल आर्ट''

(ख) इंडियन आर्कीटैकचर''

(ग) "सदर्न इंडियत ब्रोनज़िज़"

(घ) "आर्ट आफ जावा"

(ङ) "कोलेकशन आफ इंडियन ब्रासिज ऐंड ब्रोनज़िज़"

५८. गार्डनर, पी० — "कौइन्ज आफ ग्रीक ऐण्ड स्किथियन किङ्गज"

५६ गैटी, ऐलिस — "दी गाडज़ आफ नार्दरन बुद्धिजम"

६० ग्लुक, हैनरीश् — "डाई इंडीश्चेन मिनिस्टूरेन डेस होयमजो रोमनेस्"

६१ ग्लैसनिप एच वी — "हायलीज स्टाटेन इंडियनस्"

६२ गोडारड, ऐ — ' ऐन्टिक्टिीज बोधीक् दे बामियान"

६३ गोपलन, आर — "हिसटरी आफ दी पल्लवाज आफ कांची"

६४ गोसलिङ्गस् वी एम — "बाली एन लोम्बोक"

६५ गोलोव्यू, विकटर — "डाक्यूमैन्टस् पौर सेरवीर अ'ल' एटूड द' अजन्ता"

६६. ग्रियरसन, सर जार्ज — "इङ्गलिश ट्रानसलेशान आफ सेनार्ट स' 'इन्सक्रिप-"शनज द' पियदसि"

६७ ग्रिफिथस — (क) "अजन्ता केवज"

(ख) "दी पेण्टिङ्गज इन दी बुद्धिस्ट केव टैम्पिल्ज़ "आफ अजन्त"

६८. ग्रोने मैन — (क) "चण्डी परम्बनम्"

(ख) "चण्डी बूरबोडूर इन सैन्टिरल जावा"

६६. ग्रोसलियर जार्ज — (क) "रिसर्चिज़ सुर ल' कम्पोजीनस्"

(ख) "अङ्गकोर"

(ग) "आरटस् ऐण्ड आरक्योजी खमेरस"

(घ) "ल स्कलपचर खमेर एनशैन"

(ङ) "अ. ल' ओम्बरे द' अङ्गकोर"

(च) "दान्सयूसेस कम्बोजीनस्"

७०. ग्राउसे, रेने. — (क) "डिसकवरीज़ इन इण्डोचायना"

७१ ग्रुनवेडल ए. — "बुद्धिश्चीस कुन्सठ इन इंडीन"

७२ ग्राउस एफ एस — "इण्डियन अर्कीटैकचर आफ टू डे" "मथुरा"

७३. गुप्ते. वाई. आर. कराड (मराठी)

७४ घोपाल, यू एन. 'एनशेंट इण्डियन कलचर इन अफगानिस्तान''

७५. चक्रवर्ती, सुरेन्द्रकिशोर "ए स्टडी आफ एनूशेन्ट इंडियन न्यूमिसमै-'टिकस''

७६. चक्रवर्ती. एन पी "इंडिया इन सेन्ट्रल एशिया''

७७. चकलदार, हरनचन्द्र. सोशल लाइफ इन एनशेंट इंडिया''

७८ चटर्जी, बीजनराज (क) इंडियन कलचर इन जावा एण्ड सुमाटरा''

७९ चाइल्ड, वी जी. "दी मोसट एनशेन्ट ईस्ट''

८०. जेकब, एस. एस "जयपुर पोर्ट फोलियज़ आफ आर्कीटेकचरल डीटेल्ज''

८१. जायस्वाल. के पी "हिस्टरी आफ इंडिया १५० ए. डी --३५० ए ड.''
(छप रहा है)

८२ जिनविजय मुनि. प्राचीन जैन लेख सग्रह

८३ जोव, डुबरील. जी (क) आक्यॉलोजी डू सूड दे ल' इन्डी''
(ख) पल्लव एन्टीक्विटीज''
(ग) "ड्रविडियन आर्कीटेकचर''
(घ) "ऐन्शेन्ट हिस्टरी आफ डेकन''
(ड) "दी पल्लवास''
(च) "वैदिक ऐन्टि क्वीटीज''

८४. टाकाकुसु, जे. "बुद्धिस्ट रैलिकस''

८५ टामसन, डी. वी "प्रीलिमनरी नोटस आन अर्ली हिन्दू पेन्टिङ्गज़ एट एलोरा''

८६ टामसन, एच 'पेगन''

८७ टोयर, ऐच ऐफ "ए हिस्टरी आफ एनशन्ट ज्याग्रफी'

८८ टोज़्ज़िर. ए. ऐम (क) "इंडियन आक्यॉलोज़ी''

८९. ट्रोट्ज़, एफ "सीलोन''

९० टिङ्कलर, ई "थ्रू दी हार्ट आफ अफगानिस्तान''

९१ डे, नन्दूलाल "ज्याग्रैफीकल डिकशनरी आफ एन्शेंट एण्ड मैडि-इण्डिया''

९२ तारानाथ — "हिस्टरी आफ बुद्धिज़्म"

९३ थीओम्मन एन ई — "लि रौग टू कम्बोज"

९४ थर्सटन ई — (क) "ऐन्थरो पौलोजी"

(ख) "कौइन्ज़ केटालाग"

(ग) "ऐथनोग्रैफिक नोटिसिज़ इन सदर्न इण्डिया"

९५ डाल्मान, जोजिफ — "इण्डिश्च फाहर्टन"

९६ डाल्टन, ओ ऐम — "दी ट्रैयरस् आफ दी आक्सस्"

९७ देव ऐच के — "अशोक की धर्म लिपियां"

९८ दीक्षितार, बी एस एस — "एन्शैन्ट हिस्टरी आफ दी डकिन" (अनुवाद)

९९ दिस्कैलकर डी बी — "सीलैक्शनज़ फ्राम संस्कृत इन्सक्रिप्शनज़"

१००, दत्त बिनोद बिहारी — "टाउन पलैनिङ्ग इन ऐन्शन्ट इंडिया"

१०१ धामा, बी ऐल — "गाइड टू खजूराहो"

१०२ नाहर, पूरनचंद — "जैन शिला लेख संग्रह"

१०३ नरसिंहाचार्य, आर — "बोधान स्टोन इन्स्क्रिपशन् आफ दी रेन आफ त्रैलोक्यमल्ल"

१०४ नम्ब्यन, वी राघवन — (क) "ऐनल्ज ऐण्ड एन्टीक्वटीज़ आफ तुवुल्ल"

(ख) "केटालाग आफ कौइन्ज़ इण्डियन म्यूज़ियम कैलकटा"

१०५ न्योगी, पंचानन — "कापर इन एन्शैंट इण्डिया"

१०६ न्योवेन कम्प, ओ जे — (क) "इन्लैण्डश्च कुनस्ट बोन नीदर लैंडश्चउसर हिंडी (दो जिल्दें)

१०७ पेज, जे ए — (क) "हिस्टारिकल मिमोयर आन कुतुब"

(ख) "गाइड टू दी कुतुब"

१०८ पारकर ऐच — "एन्शैन्ट सीलोन"

१०९ पारमैन्तीयर, हिनरी, — (क) "इनवैन्टेर डिसक्रिपटिफ देस् मोनूमैन्टस् चामस् दे ल' अन्नाम"

(ख) 'ल' आरट खमेर प्रिमिटिफ"

(ग) "लेस् स्कलपचरज़ चमेसओ म्यूसे डी टोरने"

११०. पे. मॉग, टिन — "सिलैकशनज फराम इन्सक्रिपशनज़ आफ पेगन"

१११. स्टेयटे. सी एम — "डाई बुद्ध लीजैंड इन डेन स्कलपचूरिन वान बोरबूडूर"

११२ पूरटेनार जान. — "बोरबूडोर"

११३. प्रधान, सीताराम — "क्रौनोलोजी आफ एनशन्ट इंडिया"

११४, प्रीजलुस्कि जे, — "अन एनशेन पीपल डू पंजाब ले उदम्बरास्"

११५ फोगल जे पी — (क) आक्यालोजी आफ कागडा परौपर"

(ख) 'इंडियन सरपैन्ट लोर"

(ग) 'बाग केवज़"

(घ) "ल स्कलपचर दि मथुरा"

(ङ) "कैटालाग आफ दी दहलीम्यूजियम आफ अक्यालोजी"

(च) एन्टिकिटीज आफ चम्बा

(छ) "हिसटरी आफ चम्बा सटेट"

(जरनल पंजाब हिसटारिकल सोसाइटी खंड १०)

११६, फरगूसन, जेमज — (क) "हिस्टरी आफ इडियन एंड ईसटर्न आर्कीटैकचर

(ख) "टरी एंड सरपैन्ट वरशिप"

(ग) "केव टैम्पलज आफ इंडिया"

(घ) "आक्यालोजी इन इंडिया"

(ङ) "हिसटरी आफ एन्शैन्ट ऐन्ड मैडीवियल आर्कीटैकचर

(च) "इलस्टरेशनज आफ दी रौक कटटैम्पलज आफ इंडिया

(छ) "इलस्टरेशनज आफ एन्शैन्ट आर्कीटैकचर आफ हिन्दुस्तान"

(ज) "दी इलस्टरेटिड हैडबुक आफ आर्कीटैकचर

११७, फैरेन्ड, जवराईल, — "ले एमपायर सुमाटरनैस, डी श्रीविजय

११८, फिक, रिचर्ड' — "करजे लिसटे डेर कीलहोर्नज शेग इन्सखिपटन"

११९, फिलचनर विलहैल्म, 'ओम् मनीपद्मे हुम मैन चायना अंड डिबट"

१२०, फिशर आटो 'डाई कुन्सट इन्डीनस्, चायनस अण्ड जापान"

१२१ फाईनो लूई. (क) इन्सक्रिपशन डु कम्बोज"

(ख) "नोटस ड' एपीग्रैपी इन्डोचायनीज़"

(ग) "ल टैम्पल द, ईश्वरपुर"

(घ) "ल ओरिजिन ड' अङ्कोर'

(ङ) "ला टैम्पल ड' अङ्कोर वाट"

१२२, फलीट, जान फेथफुल. "कार्पस इन्क्रिशनम् इंडीकेरम वाल्यूम ३"

१२३. फूटे, आर ब्रूस, (क) फूटे कौलैकशन आफ इंडियन ऐन्टिक्विटीज"

(ख) केटालाग आफ प्रीहिस्टारक ऐन्टिक्वीटीज आफ मद्रास म्यूजियम"

१२४, फोरचमर, ई, "रिपोर्ट आन दी ऐटिकटीज आफ अराकन"

१२५. फ्रैन्क, आर, ओ, "पाली एंड संस्कृत'

१२६. फ्रैंच, जे, सी, "दी आर्ट आफ दी पाल एम्पायर आफ बङ्गाल"

१२७ फौचर ए, (क) "सोर ल फरन्टियर इंडो अफगान'

(ख) 'ल ज्याग्राफी एनशैन डू गन्धार"

(ग) "दी बिगिन्निङ्गज आफ बुद्धिस्ट आर्ट"

(घ) "ल आर्ट ग्रीको बुद्धीक डु गन्धार"

(ङ) "ई टूडे सोर ल' आईकोनोग्राफी बोधीक डे ल, इन्डे

(च) "ल आर्ट बुद्धीक डु गन्धार

१२८, फौचर, एम, 'ल पौर्ट ओरियन्टले डु स्तूप द सांची"

१२९, फौरनेरऊ, एल, (क) "लेस रूयीनज खमेरस"

(ख) "ल स्याम एनशैन्"

१३०, फ्रेङ्क, ए, ऐच, (क) "ऐन्टिक्वीटीज आफ इंडियन टिबिट"

(ख) "हिस्टरी आफ वैसटर्न टिबिट"

१३१, फूहरर, ए, "मोनोग्राफ आन बुद्ध ज बर्थप्लेस"

१३२, बार्थ, एम, आगस्टे, "इन्सक्रिपशनज डु कम्बोज"

१३३. बरुआ, बेनी माधव (क) "बर्हुत इन्सिक्रिपशनज"
(ख) 'ओल्ड ब्राह्मी इन्सिक्रिपशनज"
१३४. बारवैल एन्ना, 'वैरिड ट्रैयरस आफ चायनीज टर्किस्टान'
१३५, बार्थोलड, डबल्यु "टर्किस्टान डाउन टू दी मुगल इनवेयन"
१३६, बेबली, ई, "मैनुअल आफ ओरियन्टल ऐन्टिक्वीटी"
१३७, बागची, प्रधानचन्द्र 'प्री आरयन एंड प्री डै विडियन'
१३८. बैनर्जी, राखलदास (क) "हिस्टरी आफ ओडीसा"
(ख) "बासरिलीफस आफ बादामी'
१३९, बार्नेट, ऐल, डी, "ऐन्टिक्वीटीज आफ इंडिया"
१४०, बरनल, ए. सी, "दी एलीमैन्टस आफ साउथ इंडियन पेलियोग्राफी"
१४१, बरोज, ऐस, एम 'वैरीड साईट्स आफ सीलोन
१४२, बर्गेस, जेमज, (क) "बुद्धिस्ट स्तूप आफ अमरावती"
(ख) " ऐ-शैन्ट मानुमैन्टस आफ इंडिया"
(ग) "केव टैम्पलज आफ इंडिया"
(घ) "गाईड टू एलोरा केव टैम्पलज़"
(ङ) "दिगम्बर-जेन आईकोनोग्राफी"
१४३.बरनूक, ई. "इन्ट्रोडकशन ए,ल,हिस्टरीड़ बुद्धिज़म"
१४४, बनबरी, ई, एच, "हिसटरी आफ ए-शैएट ज्याग्रेफी"
१४५, क्लार्क ज़ (क) "ऐक्सकवेशनज ऐट लौरीय"
(ख) "केवज़ ऐड इन्सक्रिपशनज़ इन राम गढ हिल्ज"
१४६, ब्लाक, टी. "सप्लीमैंटरी केटालाग आफ आर्क्योलोजीकल कौलेकशनज़ इंडियन म्यूज़ियम केलकटा"
१४७.बोस, फणीन्द्रनाथ, (क) "हिन्दू कोलोनी आफ कम्बोडिया"
(ख) प्रिन्सीपलज़ आफ इंडियन शिल्पशास्त्र"
(ग) "इंडियन कालोनी आफ स्याम"
१४८, बोरोवका गिरौगरी, "स्किथयन आर्ट"
१४९, बोयर, ए, ऐम, खरोष्ठी इन्सक्रिपशनज़"
१५०, ब्राउन, ए, कौगिन, "केटालाग आफ प्रीहिस्टोरिक एन्टिक्वीटीज़ इन दी

इंडियन म्यूज़ियम"

१५१ ब्रीकस् जे, डब्ल्यु "प्रिमिटिव ट्राईबस ऐड मौनूमैटस आफ नीलगिरि

१५२ ब्रउन परसी "इडियन पेटिङ्ग"

१५३ ब्रहलर जार्ज, (क) इन्डीश्च पेलियोग्राफी"

(ख) "भवगानलाल इन्द्रजी नीपाल इन्सक्रिपशनज़'

१५४ बन्दरे वी एस साधन चिकित्सा (मराठी)

१५५ बेलली डे (क) "ला पेलेस ड' आङ्कोर वाट

"ल, आर्कीरटैकचर हिन्दोइ"

१५६ ब्लैगडन, सी ओ 'मौन इन्सक्रिपनज़"

१५७ विनयन लारैन्स ऐक्साम्पलज आफ इंडियन स्कलपचर ऐट दी ब्रिशि म्यूजियम"

१५८ बिनोद, विद्या "केटालाग आफ कौइन्ज इनदी इंडियन म्यूजियम"

१५६ भाओ दा, जी, "लिटरेरी रिमेन्ज आफ"

१६० भट्टाचार्य, बिनोयतोष, "दी इंडियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्रफी,"

१६१, भण्डारकर, डी, आर (क) "अशोक"

(ख) 'इन्सक्रिपशनज़ आफ अशोक"

१६२ भण्डारकर, सर, आर जी, (क) "अरली हिस्टरी आफ डैकन"

(देखो "कौलैकटिड वर्कस)

१६३, भट्टसाली, नलिनीकान्त, आइकोनोग्रैफी आप बुद्धिस्ट ऐएड ब्राह्मैनैनीकल स्कलपचरज़ इन डाका म्यूजियम"

१६४, मैकडानलड, ए, " इंडियाज़ पास्ट"

१६५, मैडरोली, सी (क) इंडो चायना ड सूद"

(ख) "वेर्स अग्डकोर"

१६६, मेवल, सी डफ "दी क्रानौलोजी आफ इंडिया"

१६७ मेजी, एफ, सी, "सांची ऐड इट्स रिमेनज़"

१६८, मैत्र ए के गौड-माला"

१६६ मजुमदार, ननि गोपाल "इन्सक्रिपशनज़ आफ बग्ङाल"

१७० मजूमदर, आर सी (क) चम्पा"

(ख) "आउटलाइनज आफ इंडियिन हिस्टरी एंड सिवलीजशज"

१७१ मारशल हिनरी (क) 'गाईड औ टैम्पल ड अङ्कोर"

(ख) गाइड आर्क्योलोर्जाक औ टैम्पलस अङ्कोर'

१७२ मारशल सेफो "कौस्टयूमस् औरूरेस् ख्मेर"

१७३ मारशल सरजान, (क) 'गाईड टू सांची'

(ख) 'गाईड टू टैकसला'

(ग) "मोहनजोदरो एंड दी इन्डस सिवीलीजेशन'

(घ) "कौनजरवेशन मैनुअल"

(ङ) 'मौनूमैंटस आफ सांची'

१७४, मैसपिरो, जोर्ज "ले रौयमे दि चम्पा"

१७५, मैहता, नानालाल चमनलाल "स्टडीज इन इंडियन पेन्टिङ्ग"

१७६ मित्र, राजेन्द्रलाल (क) 'एन्टिक्वीटीज आफ ओरीसा"

(ख) "बुद्ध गया"

(ग) "इंडो आरयनज'

१७७, मित्र, पंचानन 'प्रीहिस्टारिक इंडिया'

१७८, मूजन, पी, ए, जे, 'कुन्सट आफ बाली"

१७९, मुकर्जी, राधा, के (क) अशोक'

(ख) "हर्ष"

(ग) "मैन ऐंडथ थौट इन एनशेन्ट इन्डिया"

१८०, मोरियास, "मंगलौर"

१८१, रामनाय्य, पेन, वेङ्कट, (क) ओरिजन आफ साउथ इन्डियन टैम्पलज"

(ख) "कामपिलि ऐंड विजयनगर"

१८२, रामावतार, "पियदसि प्रशस्तिया"

१८३, रंगाचार्य, वी, (क) "इन्सक्रिपशन आफ दी मदरास प्रेजीडैन्सी"

(ख) "प्रीहिस्टारक इन्डिया"

१८४, राइ, गोपीनाथ, "एलीमैन्टस आफ हिन्दू आईकौनोग्रेफी"

१८५ राश्री वी वेनकोबा. "आर्कीटेकचर एंड स्कलपचर आफ मैसूर"

१८६. रैपसन, ई जे, (क) "एनशेन्ट इन्डिया"
(ख) "कैम्ब्रिज हिस्टरी आफ इन्डिया
(प्रथम खंड)
(ग) 'केटालाग आफ कौइन्ज आफ अन्ध्र
डायनैस्टी"
(घ) "इंडियन कौइन्ज"
(ङ) "खरोष्टी इन्सक्रिपशनज"

१८७, रौलिनसन, ऐच, जी, 'इन्टर्कोर्स बीटवीन इन्डिया एंड दी वैसटर्न वर्लड"

१८८ रायचौधरी हेमचन्द्र, (क) "पोलीटीकल हिस्टरी आफ एनशैंट इंडिया'
(ख) "डायनैसटिक हिस्टरी आफ नार्दरन इंडिया"

१८९ री, अलगजेण्डर, (क) चालूक्यान आर्कीटेकचर"

१९०, लांगहर्स्ट ए, ऐच, 'पाल्लव आर्कीटैकचर (दो खण्ड)"

१९१ लूडरज. ऐच, "लिस्ट आफ ब्राह्मी इन्सक्रिपशनज (ईसा की
चतुर्थ शताब्दी पर्यन्त)

१९२, ल्यूगन ए, सी, "ओलड चिपड स्टोनज आफ इन्डिया"

१९३, लाल रायबहादुर हीरा "इन्सक्रिपशनज आफ सी, पी, ऐंड बरार'

१९४, लाजोनकेर, ई, एल, (क) इनवैन्टेर डिस्क्रिफटेफ डेस मौनूमैन्टस डू
कम्बोज"
(ख) "ऐसे द, इनवैन्टेर आर्क्योलोजीक डु स्याम"

१९५, लीकौक. (क) "बैरीड ट्रैयरस आफ चायनीज टर्किस्टान"
(ख) "बिलडर ऐटलस जूर कुन्स्ट अण्ड कुलटूर
गेजीखठे मिटेलसीनस"
(ग) "डाई बुद्धिस्टीच स्पाटनीक इन मिटेलसीन"
(घ) "वोन लैंडण अण्ड लीटन इन ऊस्टूरकिस्टान"
(ङ) " आफ हिलास स्पुरेन इन ऊस्टूरकिस्टन"

१९६, वुलनर ए. सी, 'अशोकन टैकस्ट एंड ग्लोसरी"

१९७, विद, के, "जावा"

१९८, वुड ए, आर "हिस्टरी आफ स्याम"

१९९, वसु ऐन ऐन 'आर्क्यालोजीकल सर्वे आफ मयूरभंज'

२०० वेङ्कटेश्वर एस वी इन्डियन कलचर थ्रू दी एजिज़"

२०१, वेंकटराम, एयर, "टाउन प्लैलिंग आफ एनशैन्ट डेकन"

२०२, वर्नल, ऐम, पी, (क) "ले टैम्पिल डे ल. पीरिड क्लासिक' इंडो जावानीज़'

(ख) "ल आर्ट जावा"

२०३, वैद्य, सी, वी, 'हिस्टरी आफ मैडीवियल इन्डिया

२०४. वकील, कनैयालाल, "ऐट अजन्ता

२०५, वाडल, एल, ए, (क) "दी आर्यन ओरिजन आफ दी ऐलफेबैट"

(ख) "इडो सुमेरियन सीलज"

(ग) "डिसकवरी आफ दी ऐगजैकट साईट " आफ पाटलीपुत्र"

२०६, वारमिङ्गटन, "दी कोमरस विटवीन दी रोमन ऐम्पायर ऐंड इंडिया

२०७, विलसन, ऐच, ऐच, "एरैना एन्टीका"

२०८, वीटक्रोफट, आर, "स्याम ऐंड कम्बोदिया इन पैन ए ड पेस्टल"

२०९, वायटहैढ, "इ डो ग्रीक कौइन्ज लाहौर म्यूजियम केटालाग"

२१०, शास्त्री, के, ए, नील्कान्त "दी पाण्डयन किगडम"

२११, शास्त्री, ए, बनर्जी, (क) "अरली इन्सक्रिपशनज़ आफ विहार ऐड ओडीसा

(ख) एन्टिक्विटीज आफ बिहार

२१२, शास्त्रि, टी, गणति, "समराङ्गन"

२१३, शास्त्री, ऐच, कृष्ण, (क) "साउथ इन्डियन इन्सक्रिपशनज़"

(ख) साउथ इंडियन इमेजेज"

२१४, श्रीनिवासचरी, सी, एम, "ए हिस्टरी आफ इन्डिया"

२१५, स्मिथ, वी, ए, (क) "अरली हिस्टरी आफ इन्डिया"

(ख) "अशोक"

(ग) "हिस्टरी आफ फाईन आर्ट इन इन्डिया" ऐंड सीलोन"

(क) 'केटालाग आफ कौइन्ज इन इन्डियन म्यूजियम कलकत्ता

(ड) "जैन स्तूप आफ मथुरा।

२१६. स्पूनर, डी. वी (क) "हैडबुक टू दी स्कलपचरज इन पेशावर म्यूजियम'

(ख) "ऐक्सकवेशनज ऐट पाटलीपुत्र"

२१७, शीतलप्रसाद ब्रह्मचारी "प्राचीन जैन स्मारक"

२१८ सेनार्ट, ई, (क) "लेस् इन्स्क्रिपशनज डु पियदसि"

(ख) "खरोष्ठी इन्सक्रिपशनज़

२१९, सीवल ए, "ए फौरगौटन ऐम्पायर"

२२०. सीवल. राबर्टस् (क) "दी अमरावती टोप"

(ख) "ऐन्टिकीटीज आफ मद्रास"

२२१ साहनी, दयाराम (क) "गाईड टू बुद्धिस्ट रूइन्ज आफ सारनाथ"

(ख) "कैटालाग आफ म्यूजियम आफ आर्क्यालोजी (सारनाथ)"

२२२ समादार जे. एन "दी ग्लोरीज आफ मगध'

२२३ सान्याल निरबन्धु (क) लिस्ट आफ इन्सक्रिपशनज इन दी म्यूजियम आफ वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी राजशाही"

(ख) "लिस्ट आफ गोलड कैइन्ज' वरेन्द्र रिसर्च सोसायटी' म्यूजियम"

२२४. स्टाईन, सर, ओरेल. (क) "इनरमोस्ट एशिया"

(ख) "अलगजेण्डर'ज ट्रैक टू दी इन्डस"

२२५ स्टाईन, एम ए. (क) "एनशैन्ट खोतन"

(ख) "रूईन्ज आफ डैजर्ट कैथे"

(ग) "मिमोयर ओन मैपस (एनशैन्ट ज्याग्रेफी आफ कश्मीर"

(घ) "रिपोर्ट आफ आर्क्यालोजीकल टूर विद बुनेर फीलड फोर्स"

२२६ स्टर्न फिलिप — "ले बयोन द' अंगकोर एटल' गेवोल्यूशन दे ल' आर्ट खमेर"

२२७ स्टौन्नर, ऐच — "संस्कृतटैक्सट इन व्राह्मीस्क्रिफट औ डदकुरसाहर्रा चायनीज टर्किस्टान"

२२८ स्थुतरहेम, एफ — (क) "पोलीटीकल हिस्टरी आफ जावानीज़ कलचर"

(ख) "पिकटोरियल हिस्टरी आफ सिवलीजेशन ड जावा"

(ग) "राम लीजेण्ड ऐण्ड राम रिलीफस"

२२९ हार्ग्रीविज' ऐच — (क) "वुद्ध स्टोरी इन स्टोन"

(ख) "ऐकसकवेशनज़ इन बलोचस्तान"

२३०. हारटन ई — "कोनिग अशोक"

२३१ हेवल, ई बी — (क) "इन्डियन आर्कीटैकचर"

(ख) "एनशैण्ट ऐण्ड मेडीवल आर्कीटैकचर"

(ग) "फन्डेमैण्डलज़ आफ इन्डियन आर्ट"

(घ) "इन्डियन स्कलपचर ऐंड पेंटिंग"

(ङ) "हैण्डबुक आफ इन्डियन आर्ट"

(च) "हिस्टरी आफ आर्यन रूल इन इन्डिया"

२३२ हेरास, रैव ऐच — (क) "दी अरविदु डानैसटी आफ विजयनगर"

(ख) "बिगिनिगज़ आफ विजयनगर हिस्टरी"

२३३ होकरैट, ए एम — "नोटस् आन दी ओरिजन आफ दी टोप"

२३४ होयनिंग, ऐच — "दा फोरम्प्रौलम दे बोरबूदूर"

२३५ हर्नले, आर. एफ. — "हिस्टरी आफ एनशैन्ट इडिया"

२३६ हुर्लीमैन, मार्टिन — (क) "ल' इन्डी आर्कीटैकचर"

(ख) "इन्डियन बन्कुसट' लैण्डडिस्क्रिफट"

(ग) "सीलोन' इन्डोचायना' बर्मा"

२३७ हुल्श, ई — (क) "कोर्पस इन्सक्रिपशनम इन्डीकेरम वाल्यूम १" (नवीन संस्करण)

(ख) "साउथ इन्डियन इन्सक्रिपशनज़"

——:०:——

ਕਲਾ (Art) ਪੁਰ ਵਿਚਾਰ।

(ਉਲੱਥਾ ਸਾਹਿਤਯਾਲੋਚਨ ਵਿੱਚੋਂ)

ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਦੀ ਉਪਯੋਗਿਤਾ ਅਰ ਸੁੰਦਰਤਾ

ਦਿਸਦੇ ਸੰਸਾਰ ਵਿੱਚ ਜੋ ਕੁਝ ਦੇਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਉਹ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਅਜਹੀ ਇਕ ਵੀ ਵਸਤੂ ਨਹੀਂ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਖੇ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਵਨ ਦਾ ਗੁਣ ਵਰਤਮਾਨ ਨਾ ਹੋਵੇ। ਇਹ ਗਲ ਹੋ ਸਕਦੀ ਹੈ ਕਿ ਅਸੀਂ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਵਸਤੁਆਂ ਦਿਆਂ ਗੁਣਾਂ ਨੂੰ ਹੁਣ ਤੀਕ ਨਾ ਜਾਨ ਸਕੇ ਹੋਈਏ, ਪ੍ਰੰਤੂ ਜਿਓਂ ੨ ਸਾਡਾ ਗਿਆਣ ਵਧਦਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਸੀਂ ਓਨ੍ਹਾਂ ਦਿਆਂ ਗੁਣਾਂ ਨੂੰ ਵਧੇਰੇ ਜਾਨਦੇ ਜਾਂਦੇ ਹਾਂ। ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤਕ ਪਦਾਰਥਾਂ ਵਿਖੇ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਵਨ ਤੋਂ ਉਰੰਤ ਹੋਰ ਭੀ ਗੁਣ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਰ ਉਹ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਹੈ। ਫਲ ਫੁਲ, ਪਸ਼ੂ ਪੰਛੀ, ਕੀੜੇ ਮਕੌੜੇ, ਨਦੀ ਨਾਲੇ, ਨਖਜ਼ਤ੍ਰ ਤਾਰੇ ਆਦਿਕ ਸਾਰਿਆਂ ਵਿੱਚ ਅਸੀਂ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਪ੍ਰਤੀਤ ਕਰਦੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਦਾ ਇਹ ਭਾਵ ਨਹੀਂ ਕਿ ਸੰਸਾਰ ਵਿੱਚ ਨਾ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਣਾ ਅਰ ਕੋਝਾਪਕ ਹੈ ਹੀ ਨਹੀਂ। ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਣਾ ਤੇ ਨਾ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਨਾ, ਸਰੂਪਤਾ ਤੇ ਕਰੂਪਤਾ ਇਕ ਦੂਜੇ ਦੇ ਨਿਰਭਰ ਹਨ। ਇਕ ਦੀ ਹੋਂਦ ਤੋਂ ਹੀ ਦੂਸਰੇ ਦੀ ਹੋਂਦ ਦਾ ਪਤਾ ਲਗਦਾ ਹੈ। ਇਕ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਦੂਜੇ ਗੁਣ ਦਾ ਭਾਵ ਹੀ ਮਨ ਵਿਖੇ ਉਤਪੰਨ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ ਪਰੰਤੂ ਸਾਧਾਰਣ ਤੌਰ ਤੇ ਜਿੱਥੋਂ ਤੀਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਮਝ ਕੰਮ ਕਰ ਸਕਦੀ ਹੈ, ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਚਾਰੇ ਪਾਸੇ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਨਾ ਅਰ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ-ਗੋਚਰ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ॥

ਇਸ ਤਰਾਂ ਮਨੁਖ ਦਵਾਰਾ ਬਨਾਏ ਪਦਾਰਥਾਂ ਵਿਖੇ ਭੀ ਅਸੀਂ ਲਾਭਕਾਰ ਹੋਨਾ ਅਰ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦੇਖਦੇ ਹਾਂ। ਇਕ ਝੌਂਪੜੀ ਨੂੰ ਹੀ ਲਵੋ,

ਉਹ ਠੰਡ ਤੋਂ, ਗਰਮੀਂ ਤੋਂ, ਵਰਸਾ ਤੋਂ, ਹਵਾ ਤੋਂ ਸਾਡੀ ਰਖਿਆ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਹੀ ਉਸ ਦਾ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਣਾ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਅਸੀਂ ਝੌਂਪੜੀ ਦੇ ਬਨਾਉਣ ਵਿਖੇ ਅਕਲ ਦੇ ਜੋਰ ਨਾਲ ਅਪਨੇ ਹੱਥ ਦੀ ਕਾਰਾਗਰੀ ਦਿਖਾਉਣ ਵਿੱਚ ਸਮ੍ਰੱਥ ਹੁੰਦੇ ਹਾਂ ਤਾਂ ਉਹ ਹੀ ਝੌਂਪੜੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦਾ ਗੁਣ ਵੀ ਧਾਰਨ ਕਰ ਲੈਂਦੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਕਾਰਨ ਉਸ ਦੇ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਵਨ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਨਾਲ ਉਸ ਵਿੱਚ ਸੁੰਦਰਤਾ ਭੀ ਆ ਜਾਂਦੀ ਹੈ॥

ਕਲਾ ਅਰ ਉਸ ਦੀ ਵੰਡ

ਜਿਸ ਗੁਣ ਯਾ ਚਤੁਰਾਈ ਦੇ ਕਾਰਨ ਕਿਸੇ ਵਸਤੁ ਵਿੱਚ ਉਪਯੋਗਿਤਾ (ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੋਣਾ) ਅਰ ਸੁੰਦਰਤਾ ਆ ਜਾਂਦੀ ਹੈ, ਉਸ ਦਾ ਨਾਉਂ "ਕਲਾ" ਹੈ। ਕਲਾ ਦੋ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਹੈ ਇਕ ਉਪਯੋਗੀ ਕਲਾ, ਦੂਜੇ ਲਲਿਤ ਕਲਾ। ਉਪਯੋਗੀ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਤਰਖਾਨ, ਲੁਹਾਰ, ਸੁਨਾਰ, ਕੁਮਹਾਰ, ਰਾਜ, ਜੁਲਾਹੇ ਆਦਿਕ ਦੇ ਪੇਸ਼ੇ ਗਿਨੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਵਾਸਤੁ-ਕਲਾ (ਮੰਦਰ ਆਦਿ ਬਨਾਉਣੇ), ਮੂਰਤਿ-ਕਲਾ (ਪੱਥਰ ਤੇ ਕੁਝ ਉਕਰਨਾ), ਚਿਤ੍ਰ-ਕਲਾ (ਤਸਵੀਰ ਕਸੀ), ਸੰਗੀਤ-ਕਲਾ ਤੇ ਕਾਵਜ-ਕਲਾ, ਇਹ ਪੰਜ-ਕਲਾ ਭੇਦ ਹਨ। ਪੈਹਲੀਆਂ ਅਰਥਾਤ ਉਪਯੋਗੀ ਕਲਾ ਦ੍ਵਾਰਾ ਮਨੁਖ ਦੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਅਤੇ ਦੂਸਰੀ ਅਰਥਾਤ ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਦ੍ਵਾਰਾ ਉਸ ਦੇ ਅਲੌਕਿਕ ਆਨੰਦ ਦੀ ਸਿੱਧੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਦੋਵੇਂ ਹੀ ਉਸ ਦੀ ਉਨੱਤੀ ਅਰ ਵਿਕਾਸ ਦੀਆਂ ਦਯੋਤਕ ਹਣ। ਭੇਦ ਇਤਨਾ ਹੀ ਹੈ। ਕਿ ਇਕ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਮਨੁਖ ਦੀ ਸ਼ਰੀਰਕ ਅਰ ਆਰਥਿਕ ਉਨਤੀ ਨਾਲ ਹੈ ਅਰ ਦੂਜੀ ਦਾ ਉਸ ਦੇ ਮਾਨਸਿਕ ਵਿਕਾਸ ਨਾਲ॥

ਇਹ ਜ਼ਰੂਰੀ ਨਹੀਂ ਕਿ ਜੇਹੜੀ ਵਸਤੂ ਉਪਯੋਗੀ ਹੋਵੇ ਉਹ ਸੁੰਦਰ ਭੀ ਹੋਵੇ, ਪਰੰਤੂ ਮਨੁਖ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦਾ ਪੁਜਾਰੀ ਹੈ। ਉਹ ਸਾਰੀਆਂ ਉਪਯੋਗੀ

ਵਸਤੂਆਂ ਨੂੰ ਅਪਨੀ ਤਾਕਤ ਮੂਜਬ ਸੁੰਦਰ ਬਨਾਉਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਪਦਾਰਥ ਅਜਹੇ ਹਨ ਜੇਹੜੇ ਉਪਯੋਗੀ ਭੀ ਹਨ ਅਰ ਸੁੰਦਰ ਭੀ। ਅਰਥਾਤ ਉਹ ਦੋਵਾਂ ਵੰਡਾਂ ਵਿਖੇ ਆ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਕੁਝ ਪਦਾਰਥ ਅਜਹੇ ਭੀ ਹਨ ਜੋ ਉਪਯੋਗੀ ਤਾਂ ਨਹੀਂ ਕਹੇ ਜਾ ਸਕਦੇ, ਪਰ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸੰਦਰ ਹੋਵਨ ਵਿੱਚ ਸੰਦੇਹ ਨਹੀਂ।

ਖਾਨ, ਪੀਨ, ਪੈਹਨੱਣ, ਰਹਿਣ, ਬਹਿਣ, ਆਨ, ਜਾਨ ਆਦਿਕ ਦੇ ਸੁਭੀਤੇ ਲਈ ਮਨੁਖ ਨੂੰ ਕਈਆਂ ਚੀਜਾਂ ਦੀ ਲੋੜ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਲੋੜ ਦੇ ਪੂਰੇ ਕਰਨ ਦੇ ਲਈ ਉਪਯੋਗੀ ਕਲਾ ਦੀ ਹੋਂਦ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਮਨੁਖ ਜਿਉਂ ਜਿਉਂ ਸਭਜਤਾ ਦੀ ਪੌੜੀ ਦੇ ਉਪਰ ਚੜਦਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਤਿਓਂ ੨ ਉਸਦੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਵਧਦੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਉਨਤੀ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਨਾਲ ਮਨੁਖ ਦਾ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦਾ ਗਿਆਨ ਭੀ ਵਧਦਾ ਹੈ ਅਰ ਉਸ ਨੂੰ ਅਪਨੀ ਮਾਨਸਿਕ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਦੇ ਲਈ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦੀ ਉਤਪਤਿ ਕਰਨੀ ਪੈਂਦੀ ਹੈ। ਬਿਨਾ ਅਜਿਹਾ ਕੀਤੇ ਉਸ ਦੇ ਮਨ ਦੀ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦੀ। ਜਿਸ ਪਦਾਰਥ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਤੋਂ ਮਨ ਪ੍ਰਸੰਨੱ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਉਹ ਸੁੰਦਰ ਨਹੀਂ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਇਹ ਹੀ ਕਾਰਨ ਹੈ ਕਿ ਭਿੰਨ ੨ ਦੇਸਾਂ ਦੇ ਲੋਗ ਅਪਨੀ ੨ ਸਭਜਤਾ ਦੀ ਕਸੌਟੀ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਹੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦਾ ਆਦਰਸ਼ ਕਾਇਮ ਕਰਦੇ ਹਨ।ਕਿਓਂ ਜੋ ਸਾਰਿਆਂ ਦਾ ਮਨ ਇੱਕੋ ਜਿਹਾ ਨਹੀ ਬਨਿਆ ਹੁੰਦਾ॥

ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਦਾ ਆਧਾਰ

ਲਲਿਤ ਕਲਾਂ ਦੋ ਵੱਡੇ ਭਾਗਾਂ ਵਿਖੇ ਵੰਡੀਆਂ ਜਾ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ ਇਕ ਤਾਂ ਓਹ ਜੋ ਅੱਖਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਨੇੜੇ ਹੋਵਨ ਤੇ ਮਾਨਸਿਕ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਦੇਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਅਰ ਦੂਜੇ ਓਹ ਜੋ ਕੰਨਾਂ ਦੇ ਮੇਲ ਕਰਕੇ ਉਸ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਦਾ ਸਾਧਨ ਬੰਨਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਵਿਚਾਰ ਤੋਂ ਵਾਸਤੁ (ਮੰਦਰ ਆਦਿ ਬਨਾਉਣਾ)

ਮੂਰਤਿ (ਅਰਥਾਤ ਤਛਣ ਕਲਾ) ਅਤੇ ਚਿਤ੍ਰ ਕਲਾ ਤਾਂ ਅੱਖਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਦੇਣ ਵਾਲੀਆਂ ਹਨ ਅਰ ਸੰਗੀਤ ਅਥਵਾ ਕਾਵ੍ਯ ਕੰਨਾਂ ਰਾਹੀਂ। ਪੈਹਲੀ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਪਰ ਦੂਸਰੀ ਵਿੱਚ ਉਤਨੀ ਲੋੜ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ। ਇਸ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੇ ਆਸਰੇ ਹੀ ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਦੀਆਂ ਸ੍ਰੈਣੀਆਂ, ਉੱਤਮ ਅਤੇ ਮਧ੍ਯਮ, ਕਾਇਮ ਕੀਤੀਆਂ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਜਿਸ ਕਲਾ ਵਿੱਚ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਜਿੰਨਾ ਵੀ ਘਟ ਰਹੇਗਾ ਉਹ ਉਤਨੀ ਹੀ ਉਚੱ ਕੋਟੀ ਦੀ ਸਮਝੀ ਜਾਵੇਗੀ। ਇਸੇ ਭਾਵ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਅਸੀਂ ਕਾਵ੍ਯ-ਕਲਾ ਨੂੰ ਸਭ ਤੋਂ ਉਚੱਾ ਅਸਥਾਨ ਦੇਂਦੇ ਹਾਂ, ਕਿਉਂ ਜੋ ਉਸ ਵਿੱਚ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦਾ ਇਕ ਤਰਾਂ ਨਾਲ ਪੂਰਾ ਅਭਾਵ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਅਤੇ ਇਸੇ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਅਸੀਂ ਵਾਸਤੁ-ਕਲਾ ਨੂੰ ਸਭ ਤੋਂ ਨੀਵਾਂ ਅਸਥਾਨ ਦਿੰਦੇ ਹਾਂ। ਕਿਓਂ ਜੋ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਉਸ ਦੀ ਹੋਂਦ ਹੀ ਸੰਭਵ ਨਹੀਂ। ਸੱਚ ਪੁੱਛੋ ਤਾਂ ਇਸ ਆਧਾਰ ਨੂੰ ਭਲੀ ਪ੍ਰਕਾਰ ਸਜਾਉਨ ਦੇ ਕਾਰਨ ਹੀ ਵਸਤੂ ਕਲਾ ਨੂੰ ਕਲਾ ਦੀ ਪਦਵੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਖੇ ਦੂਜਾ ਅਸਥਾਨ ਮੂਰਤਿ ਕਲਾ ਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਦਾ ਆਧਾਰ ਭੀ ਮੂਰਤਿ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਮੂਰਤਿਕਾਰ ਕਿਸੇ ਪੱਥਰ ਦੇ ਟੁਕੜੇ ਨੂੰ ਅਜਿਹਾ ਰੁਪ ਦੇ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਉਸ ਆਧਾਰ ਤੋਂ ਹਮੇਸ਼ਾ ਭਿੰਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਉਸ ਪੱਥਰ ਦੇ ਟੁਕੜੇ ਜਾਂ ਧਾਂਤ ਦੇ ਪਤਰੇ ਵਿਚ ਜਾਨ ਜਹੀ ਪਾ ਦੇਂਦਾ ਹੈ। ਮੂਰਤਿ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਤੀਸਰਾ ਸਥਾਨ ਚਿਤ੍ਰ ਕਲਾ ਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਦਾ ਭੀ ਆਧਾਰ ਮੂਰਤਿ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਹਰ ਇਕ ਮੂਰਤਿ ਅਰਥਾਤ ਆਕਾਰ ਸਹਿਤ ਪਦਾਰਥ ਵਿੱਚ ਲੰਬਾਈ, ਚੋੜਾਈ ਅਤੇ ਮੁਟਾਈ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਵਾਸਤੁਕਾਰ ਨੂੰ ਅਰਥਾਤ ਮੰਦਰ ਬਨਾਉਣ ਵਾਸਤੇ ਅਪਨਾ ਕੌਸ਼ਲ ਦਿਖਾਉਣ ਦੇ ਲਈ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੇ ਉਪਰ ਕਥਨ ਤਿੱਨਾ ਗੁਨਾਂ

ਦਾ ਆਸਰਾ ਲੈਣਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਚਿਤ੍ਰਕਾਰ ਨੂੰ ਅਪਨੇ ਚਿਤ੍ਰ ਪਟ ਦੇ ਲਈ ਲੰਬਾਈ ਚੌੜਾਈ ਦਾ ਹੀ ਆਸਰਾ ਲੈਣਾਂ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਮੁਟਾਈ ਤਾਂ ਚਿਤ੍ਰ ਵਿਖੇ ਨਾਮ ਮਾਤਰ ਹੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਭਾਵ ਇਹ ਕਿ ਜਿਓਂ ੨ ਅਸੀਂ ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਅੱਗੇ ਅੱਗੇ ਉਤਮਤਾ ਵਲ ਵਧਦੇ ਹਾਂ। ਤਿਵੇਂ ਤਿਵੇਂ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦਾ ਤਿਆਗ ਹੁੰਦਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਚਿਤ੍ਰਕਾਰਅਪਨੇ ਚਿਤ੍ਰਪਟ ਪੁਰ ਕਿਸੇ ਮੂਰਤ ਪਦਾਰਥ ਦਾ ਪ੍ਰਤਿਬਿੰਬ ਅੰਕਤ ਕਰ ਦੇਂਦਾ ਹੈ। ਜੋ ਅਸਲੀ ਵਸਤੂ ਦੇ ਰੂਪ ਰੰਗ ਆਦਿਕ ਦੇ ਸਮਾਨ ਹੀ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ॥

ਹੁਣ ਸੰਗੀਤ ਕਲਾ ਦੇ ਬਾਰੇ ਵਿਚਾਰ ਕਰੀਏ। ਤੇ ਸੰਗੀਤ ਵਿੱਚ ਨਾਦ ਦੀ ਮਿਨਤੀ ਅਥਵਾ ਸੁਰਾਂ ਦਾ ਉਤਾਰ ਚੜ੍ਹਾਓ ਹੀ ਉਸਦਾ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਨੂੰ ਭਲੀ ਪ੍ਰਕਾਰ ਰਖਨ ਤੇ ਭਿੰਨ ੨ ਰਸਾਂ ਅਤੇ ਭਾਵਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਅਖੀਰਲਾ ਅਰਥਾਤ ਸਭ ਤੋਂ ਉੱਤਮ ਅਸਥਾਨ ਕਾਵ੍ਯ ਕਲਾ ਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਹੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ। ਉਸ ਦੀ ਉਤਪਤੀ ਸ਼ਬਦਾਂ ਦਿਆਂ ਸਮੂਹਾਂ ਜਾਂ ਵਾਕਾਂ ਤੋਂ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਜੇਹੜੇ ਮਨੁਖ ਦਿਆਂ ਭਾਵਾਂ ਦੇ ਜਨਾਊ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਕਾਵ੍ਯ ਵਿਖੇ ਜਦ ਕੇਵਲ ਅਰਥ ਦੀ ਹੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੀ ਹੋਂਦ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦੀ ਪਰ ਸ਼ਬਦਾਂ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਆਓਨ ਕਰਕੇ ਸੰਗੀਤ ਨਿਆਈਂ ਹੀ ਨਾਦ ਸੰਦਰਤਾ ਰੂਪ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੀ ਉਤਪਤੀ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਦੀ ਕਾਵ੍ਯ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਪਛਮੀ ਕਾਵ੍ਯ ਕਲਾ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਨਾਦ ਰੂਪ ਮੂਰਤਿ-ਆਧਾਰ ਨਾਲੋਂ ਵੱਧ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਇਹ ਅਰਥ ਦੀ ਸੰਦਰਤਾ ਦੇ ਸਮਾਨ ਕਾਵ੍ਯ ਦਾ ਜਰੂਰੀ ਅੰਗ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਅਰਥ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਕਾਵ੍ਯ ਕਲਾ ਦਾ ਜਰੂਰੀ ਗੁਣ ਹੈ ਅਰ ਨਾਦ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਉਸ ਦਾ ਦੂਜਾ ਗੁਣ ਹੈ।

ਉਪਰ ਜੋ ਕੁਝ ਕਹਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਉਸ ਤੋਂ ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਦੇ ਸੰਬੰਦ ਵਿੱਚ ਹੇਠ ਲਿਖੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਗਜਾਤ ਹੁੰਦੀਆ ਹਣ। (੧) ਸਾਰੀਆਂ ਕਲਾ ਵਿਖੈ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਆਸਰੇ ਦੀ ਲੋੜ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਆਧਾਰ ਇੱਟ ਪੱਥਰ ਦੇ ਟੁਕੜੇ ਤੋਂ ਲੈਕੈ ਸ਼ਬਦ-ਸੰਕੇਤਾਂ ਤੀਕ ਹੋ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਲਛਨ ਵਿੱਚ ਭੇਦ ਇਤਨਾ ਹੀ ਹੈ ਕਿ ਅਰਥ-ਸੁੰਦਰਤਾ ਵਾਕਜ-ਕਲਾ ਵਿੱਚ ਇਸ ਆਧਾਰ ਦੀ ਹੋਂਦ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦੀ। (੨) ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਸਾਧਨਾ ਦ੍ਵਾਰਾ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕਲਾਂ ਦਾ ਮਨ ਨਾਲ ਨੇੜ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਅੱਖ ਅਰ ਕੰਨ ਹਨ। (੩) ਇਹ ਆਧਾਰ ਅਤੇ ਉਪਕਰਣ ਕੇਵਲ ਇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਕੈਂਦਰ ਦਾ ਕੰਮ ਦੇਂਦੇ ਹਨ। ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਕਲਾ ਦੇ ਉਤਪਾਤਕ ਦਾ ਮਨ ਦੇਖਨ ਯਾ ਸੁਨਣ ਵਾਲੇ ਦੇ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧ ਕਾਇਮ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਨੇ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਉਸ ਤੀਕ ਪਹੁੰਚਾ ਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਫ (ਰੋਸ਼ਨ) ਕਰਦਾ ਹੈ। ਅਰਥਾਤ ਸੁਨਣ ਜਾਂ ਦੇਖਨ ਵਾਲੇ ਦਾ ਮਨ ਆਪਣੇ ਮਨ ਦੇ ਸਮਾਨ ਕਰ ਦੇਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਇਹ ਸਿਧਾਂਤ ਨਿਕਲਿਆ ਕਿ ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਉਹ ਵਸਤੂ ਜਾਂ ਉਹ ਕਾਰੀਗਰੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਇੰਦ੍ਰੀਆਂ ਰਾਹੀਂ ਮਨ ਨੂੰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਜੋ ਉਨ੍ਹਾਂ ਬਾਹਰਲੀਆਂ ਵਸਤੂਆਂ ਤੋਂ ਭਿੰਨ ਹੈ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਠੀਕ ਗਯਾਨ ਇੰਦ੍ਰੀਆਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਲਈ ਅਸੀਂ ਆਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਲਲਿਤ ਕਲਾਂ ਮਾਨਸਿਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਵਿਖੇ ਸੁੰਦਰਤਾ ਲਿਆਉਂਦੀਆਂ ਹਨ ॥

ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਦੇ ਆਧਾਰ ਵਸਤੂ

ਇਸ ਲਛਣ ਨੂੰ ਸਮਝਨ ਦੇ ਲਈ ਇਹ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ ਕਿ ਅਸੀਂ ਹਰ ਇਕ ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਬਾਰੇ ਹੇਠ ਲਿਖੀਆਂ ਤਿੰਨ ਗਲਾਂ ਪੁਰ ਵਿਚਾਰ ਕਰੀਏ (੧) ਉਸ ਦਾ ਮੂਰਤ ਆਧਾਰ ; (੨) ਉਹ ਸਾਧਨ ਜਿਸ ਦ੍ਵਾਰਾ ਇਹ ਆਧਾਰ ਗੋਚਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ; ਅਰ (੩) ਮਾਨਸਿਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਵਿਖੇ ਪਦਾਰਥ

ਦਾ ਜੋ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਗੋਚਰ ਹੋਣਾ ਹੈ, ਉਹ ਕੀਕਰ ਦਾ ਅਰ ਕਿਤਨਾ ਹੈ।

ਵਾਸਤੁ-ਕਲਾ

ਵਾਸਤੁ ਕਲਾ ਵਿੱਚ ਮੂਰਤ ਆਧਾਰ ਬਹੁਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਰਥਾਤ ਇੱਟ, ਪੱਥਰ, ਲੋਹਾ, ਲਕੜੀ ਆਦਿਕ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਇਮਾਰਤਾਂ ਬਨਾਈਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਭਾਵ ਇਹ ਜੋ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅੱਖਾਂ ਪੁਰ ਉਕਰ ਹੀ ਪੈਂਦਾ ਹੈ ਜਿਕਰ ਕਿਸੇ ਹੋਰ ਮੂਰਤ ਪਦਾਰਥ ਦਾ ਪੈ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਕਾਸ਼, ਛਾਯਾ, ਰੰਗ, ਆਦਿਕ ਸਾਧਨ ਕਲਾ ਦਿਆਂ ਸਾਰਿਆਂ ਉਤਪਾਦਕਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਉਹ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਇਸਤਮਾਲ ਹੁਸ਼ਿਆਰੀ ਨਾਲ ਕਰਕੇ ਅੱਖਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਦਰਸ਼ਕ ਦੇ ਮਨ ਤੇ ਆਪਨੇ ਕੰਮ ਦਾ ਸਿੱਕਾ ਜਮਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਦੇ ਦੋ ਕਾਰਨ ਹਨ। ਇਕ ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਜੀਵਤ ਪਦਾਰਥਾਂ ਦੀ ਗਤਿ ਆਦਿਕ ਦਿਖਾਉਣ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ। ਦੂਜੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਕੰਮ ਵਿਖੇ ਰੂਪ, ਰੰਗ, ਆਕਾਰ ਆਦਿਕ ਦੇ ਉਹ ਹੀ ਗੁਣ ਵਰਤਮਾਨ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ ਜੋ ਹੋਰ ਨਿਰਜੀਵ ਪਦਾਰਥਾਂ ਵਿਖੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਇਹ ਗਲ ਹੋਵਨ ਪੁਰ ਭੀ ਜੋ ਕੁਝ ਉਹ ਦਿਖਾਉਂਦੇ ਹਨ, ਉਸ ਵਿੱਚ ਸੁਭਾਵਿਕ ਹੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਹੁੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਭੀ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਾਂ ਦਾ ਅਕਸ (ਪ੍ਰਤਿਬਿੰਬ) ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਕਿਸੇ ਇਮਾਰਤ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਸਿਆਨੇ ਪੁਰਸ਼ ਆਸਾਨੀ ਨਾਲ ਕਹ ਸਕਦੇ ਹਨ ਕਿ ਇਹ ਮੰਦਰ, ਮਸਜਿਦ ਜਾਂ ਗਿਰਜਾ ਹੈ ਅਥਵਾ ਇਹ ਮਹੱਲ ਜਾਂ ਮਕਬਰਾ ਹੈ॥ ਅਧਿਕ ਜਾਨਣ ਵਾਲੇ ਇਹ ਭੀ ਦੱਸ ਸਕਦੇ ਹਨ ਕਿ ਇਸ ਵਿਖੇ ਹਿੰਦੂ, ਮੁਸਲਮਾਨ ਅਥਵਾ ਯੁਨਾਨੀ ਵਾਸਤੁ ਕਲਾ ਦੀ ਪ੍ਰਧਾਨਤਾ ਹੈ। ਧਰਮ ਅਸਥਾਨਾਂ ਵਿਖੇ ਭਿੰਨ ੨ ਜਾਤੀਆਂ ਦੇ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿਸ਼ਵਾਸਾਂ ਦੇ ਦਸਨ ਵਾਲੇ ਕਲਸ਼, ਗੁੰਬਦ, ਮਿਹਰਾਬ, ਜਾਲੀਆਂ, ਝਰੋਖੇ ਅਦਿਕ ਬਨਾ ਕੇ

ਵਾਸਤੁਕਾਰ ਆਪਨੇ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਸਪਸ਼ਟ ਕਰ ਵਿਖਾਂਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਹੀ ਉਸ ਦੇ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਅੱਖਾਂ ਸਾਹਮਣੇ ਲਿਆਉਣਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਇਸ ਕਲ਼ਾ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤ ਪਦਾਰਥਾਂ ਦੀ ਇਤਨੀ ਅਧਿਕਤਾ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਦਰਸ਼ਕ ਉਸ ਨੂੰ ਸਾਮਨੇ ਵੇਖ ਕੇ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਅਤੇ ਆਨੰਦਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਪਦਾਰਥ ਵਾਸਤੁਕਾਰ ਦੇ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਭਲੀ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦਸ ਸਕਦੇ ਹੋਵਨ ਜਾਂ ਨਾਹ; ਅਥਵਾ ਦਰਸ਼ਕ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਮਝਣ ਵਿਖੇ ਸੱਮਰਥ ਹੋਵੇ ਜਾਂ ਨਾ ਹੋਵੇ।

ਮੂਰਤਿ-ਕਲਾ

ਮੂਰਤਿ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਪੱਥਰ, ਧਾਤੂ, ਮਿਟੀ ਜਾਂ ਲਕੜੀ ਆਦਿਕ ਦੇ ਟੁਕੜੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮੂਰਤਿਕਾਰ ਕੱਟ ਛੰਡ ਕੇ ਜਾਂ ਢਾਲ ਕੇ ਜਿਕਰ ਉਹ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤਿਆਰ ਕਰ ਲੈਂਦਾ ਹੈ। ਮੂਰਤਿਕਾਰ ਦੀ ਛੈਨੀ ਵਿਖੇ ਠੀਕ ਸਜੀਵ ਜਾਂ ਨਿਰਜੀਵ ਪਦਾਰਥ ਦੇ ਸਾਰੇ ਗੁਣ ਧਾਰਨ ਕੀਤੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਸਭ ਕੁਝ, ਅਰਥਾਤ ਰੰਗ, ਰੂਪ, ਆਕਾਰ ਆਦਿ ਤੀਕਰ ਦਿਖਾ ਸਕਦਾ ਹੈ; ਕੇਵਲ ਗਤਿ ਦੇਣਾ ਤਦੋਂ ਤੀਕ ਉਸ ਦੀ ਤਾਕਤ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ, ਜਦ ਤਕ ਉਹ ਕਿਸੇ ਕਲ ਜਾਂ ਪੁਰਜ਼ੇ ਦਾ ਠੀਕ ਇਸਤਿਮਾਲ ਨਾ ਕਰੇ। ਪਰੰਤੂ ਅਜਿਹਾ ਕਰਨਾ ਉਸ ਦੀ ਕਲਾ ਦੀ ਸੀਮਾਂ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਵਾਸਤੁ-ਕਾਰ ਤੋਂ ਮੂਰਤਿ ਕਾਰ ਦੀ ਹੋਂਦ ਬਹੁਤੀ ਉਚੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਵਿਖੇ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਾਂ ਦਾ ਸਾਮਣੇ ਲਿਆਉਣਾ ਵਾਸਤੁਕਾਰ ਦੇ ਕੰਮ ਨਾਲੋਂ ਅਧਿਕਤਾ ਨਾਲ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਮੂਰਤਿ-ਕਾਰ ਆਪਨੇ ਪੱਥਰ ਦੇ ਟੋਟੇ ਜਾਂ ਧਾਤੂਖੰਡ ਵਿੱਚ ਜੀਵਧਾਰੀਆਂ ਦੀ ਪ੍ਰਤਿਛਾਯਾ (ਅਕਸ) ਆਸਾਨੀ ਨਾਲ ਦਸ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਹੀ ਕਾਰਨ ਹੈ ਕਿ ਮੂਰਤਿ-ਕਲਾ ਦਾ ਵੱਡਾ ਕੰਮ ਸ਼ੀਰਕ ਜਾਂ ਪ੍ਰਾਕ੍ਰਿਤਕ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦਿਖਾਉਣਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ॥

ਚਿਤ੍ਰ ਕਲਾ

ਚਿਤ੍ਰ ਕਲਾ ਦਾ ਆਧਾਰ ਕਪੜੇ, ਕਾਗਜ, ਲਕੜੀ ਆਦਿ ਦਾ ਚਿਤ੍ਰਪਟ ਹੈ, ਜਿਸ ਪੁਰ ਚਿਤ੍ਰਕਾਰ ਆਪਨੇ ਬੁਰਸ਼ ਜਾਂ ਕਲਮ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਨਾਲ ਭਿੰਨ ੨ ਪਦਾਰਥਾਂ ਜਾਂ ਜੀਵਧਾਰੀਆਂ ਦੇ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤਕ ਰੂਪ, ਰੰਗ ਅਤੇ ਆਕਾਰ ਆਦਿ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਕਰਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਮੂਰਤਿ-ਕਾਰ ਨਾਲੋਂ ਉਸ ਲਈ ਮੂਰਤਿਆਧਾਰ ਘਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਲਈ ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਨੀ ਕਲਾ ਦੀ ਖੂਬੀ ਦਿਖਾਉਣ ਦੇ ਲਈ ਬਹੁਤ ਚਤੁਰਾਈ ਤੋਂ ਕੰਮ ਲੈਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਅਪਨੇ ਬੁਰਸ ਜਾਂ ਕਲਮ ਨਾਲ, ਸਮਤਲ ਜਾਂ ਪੱਧਰੀ ਥਾਂ ਪੁਰ ਸਥੂਲਤਾ, ਲਘੂਤਾ, ਦੂਰ ਤੇ ਨੇੜ-ਪਨ ਆਦਿ ਦਿਖਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਅਸਲੀ ਪਦਾਰਥ ਨੂੰ ਦਰਸ਼ਕ ਜਿਸ ਹਾਲਤ ਵਿਖੇ ਦੇਖਦਾ ਹੈ ਉਸੇ ਅਨੁਸਾਰ ਅੰਕੁਨ (ਲਿਖਾਈ ਜਾਂ ਖੋਦਨਾ) ਦ੍ਵਾਰਾ ਉਹ ਆਪਨੇ ਚਿਤ੍ਰਪਟ ਪੁਰ ਅਜਿਹਾ ਚਿਤ੍ਰ ਲਿਖਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਦਰਸਕ ਨੂੰ ਚਿਤ੍ਰੀ ਹੋਈ ਵਸਤੂ ਅਸਲ ਜਹੀ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੋਵਨ ਲਗਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਵਾਸਤੁਕਾਰ ਅਰ ਮੂਰਤਿਕਾਰ ਨਾਲੋਂ ਚਿਤ੍ਰਕਾਰ ਨੂੰ ਆਪਨੀ ਕਲਾ ਦ੍ਵਾਰਾ ਹੀ ਮਾਨਸਿਕ ਸ੍ਰਿਸਟੀ ਉਤਪੱਨ ਕਰਨ ਦਾ ਜਿਆਦਾ ਸਮਾਂ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਦੇ ਕਾਰਜ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤਤਾ ਘਟ ਅਰ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਜਿਆਦਾ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ। ਕੋਈ ਇਤਹਾਸਿਕ ਘਟਨਾ ਜਾਂ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤਕ ਨਜਾਰਾ ਅੰਕਿਤ ਕਰਨ ਵਿਖੇ ਚਿਤ੍ਰਕਾਰ ਨੂੰ ਕੇਵਲ ਓਸ ਘਟਨਾ ਜਾਂ ਨਜਾਰੇ ਦੇ ਬਾਹਰੀ ਅੰਗਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਜਾਨਣਾਂ ਅਤੇ ਅੰਕਿਤ ਕਰਨਾ ਜਰੂਰੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ, ਤਾਂ ਭੀ ਓਸ ਨੂੰ ਆਪਨੇ ਵਿਚਾਰ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਓਸ ਘਟਨਾ ਜਾਂ ਨਜ਼ਾਰੇ ਨੂੰ ਸਜੀਵਤਾ ਦੇਨਾ ਅਰ ਮਨੁਖ ਜਾਂ ਵਸਤੂ ਦੀ ਭਾਵ ਭੰਗੀ ਦਾ ਨਕਸ਼ਾ ਅੱਖਾਂ ਦੇ ਸਾਮਨੇ ਖੜਾ ਕਰਨ ਦੇ ਲਈ, ਆਪਨਾ ਬੁਰਸ਼ ਚਲਾਨਾ ਅਰ ਬਾਹਰੀ ਰੂਪ ਨਾਲ ਆਪਨਿਆਂ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਾਂ ਦਾ

ਸਜੀਵ ਚਿਤ੍ਰ ਜਿਹਾ ਬਨਾਉਂਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਇਹ ਸਪਸ਼ਟ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਕਲਾ ਵਿੱਚ ਮੂਰਤਿ ਦਾ ਅੰਸ਼ ਥੋੜਾ ਅਰ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦਾ ਬਹੁਤ ਜ਼ਿਆਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।

ਇੱਥੋਂ ਤੀਕ ਤਾਂ ਓਨ੍ਹਾਂ ਕਲਾ ਦੇ ਬਾਰੇ ਵਿਚਾਰ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ ਜਿਹੜੀਆਂ ਨੇਤ੍ਰਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਮਾਨਸਿਕ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਦੇਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਹੁਣ ਬਾਕੀ ਦੋ ਲਲਿਤ ਕਲਾਂ, ਅਰਥਾਤ ਸੰਗੀਤ ਅਰ ਕਾਵ੍ਯ ਪੁਰ ਵਿਚਾਰ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇਗੀ, ਜੋ ਵਰਣਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਮਾਨਸਿਕ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਦੇਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੋਵਾਂ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੀ ਨਯੂਨਤਾ ਅਰ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਨਾ ਦੀ ਬਹੁਲਿਤਾ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ॥

ਸੰਗੀਤ ਕਲਾ

ਸੰਗੀਤ ਦਾ ਆਧਾਰ ਨਾਦ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਮਨੁਖ ਜਾਂ ਤਾਂ ਆਪਨੇ ਕੰਠ ਤੋਂ ਜਾਂ ਕਈ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦਿਆਂ ਯੰਤਰਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਓਤਪੰਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਦ ਦਿਆਂ ਨੇਮਾਂ ਨੂੰ ਕੁਝਕੁ ਨਿਸਚਤ ਸਿਧਾਂਤ ਮੂਜਬ ਵੰਡਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਿਦਾਂਤਾਂ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਕਰਨ ਲਗਿਆਂ ਮਨੁਖ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਢੇਰ ਸਮਾਂ ਲੱਗਾ ਹੈ। ਸੰਗੀਤ ਦੀਆਂ ਸਤ ਸੁਰਾਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਦੇ ਆਧਾਰ ਪੁਰ ਹੀ ਹਨ। ਓਹ ਹੀ ਸੰਗੀਤ ਕਲਾ ਦੇ ਪ੍ਰਾਣ ਰੂਪ ਜਾਂ ਮੂਲ ਕਾਰਨ ਹਨ। ਇਸ ਤੋਂ ਸਿੱਧ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸੰਗੀਤ ਕਲਾ ਦਾ ਆਧਾਰ ਨਾਦ ਹੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਨਾਧ ਦ੍ਵਾਰਾ ਅਸੀਂ ਆਪਨੇ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦੇ ਹਾਂ। ਸੰਗੀਤ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਇਸ ਗਲ ਵਿੱਚ ਹੈ ਕਿ ਓਸ ਦਾ ਭਾਵ ਬਹੁਤ ਵਿਸਤ੍ਰਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਰ ਓਹ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਨਾਦਿ ਕਾਲ ਤੋਂ ਮਨੁਖ ਮਾਤ੍ਰ ਦੀ ਆਤਮਾ ਪੁਰ ਪੈਂਦਾ ਚਲਾ ਆਇਆ ਹੈ। ਜੰਗਲੀ ਤੋਂ ਜੰਗਲੀ ਮਨੁਖ ਤੋਂ ਲੈਕੇ ਸਭ੍ਯਤਾ ਸੰਪੱਨ ਮਨੁਖ ਤੀਕ ਓਸ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਦੇ ਵਸ ਆ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਮਨੁਖਾਂ ਨੂੰ ਛੱਡ ਕੇ ਪਸ਼ੂ

ਪੰਛੀ ਤੀਕ ਓਸ ਦਾ ਹੁਕਮ ਮੰਨਦੇ ਹਨ। ਸੰਗੀਤ ਸਾਨੂੰ ਰੁਲਾ ਸਕਦਾ ਹੈ, ਸਾਨੂੰ ਹਸਾ ਹਕਦਾ ਹੈ, ਸਾਡੇ ਹਿਰਦੇ ਵਿੱਚ ਆਨੰਦ ਦੀਆਂ ਲੈਹਰਾਂ ਉਤਪੰਨ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ, ਸਾਨੂੰ ਸ਼ੋਕ-ਸਮੁੰਦਰ ਵਿਖੇ ਡੁਬਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਸਾਨੂੰ ਕ੍ਰੋਧ ਅੰਧਕਾਰ ਦੇ ਵਸ ਕਰਕੇ ਮਸਤ ਬਨਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਸਾਂਤ ਰਸ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਵਗਾ ਕੇ ਲਗਾਤਾਰ ਸਾਡੇ ਅੰਦਰ ਸ਼ਾਂਤਿ ਦੀ ਧਾਰਾ ਲਿਆ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਜਿਕਰ ਹੋਰ ਕਲਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਦੀ ਸੀਮਾਂ ਹੈ। ਓਕਰ ਹੀ ਸੰਗੀਤ ਦੀ ਭੀ ਸੀਮਾ ਹੈ। ਸੰਗੀਤ ਦ੍ਵਾਰਾ ਭਿੰਨ ੨ ਭਾਵਾਂ ਜਾਂ ਨਜ਼ਾਰਿਆਂ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਕੰਨਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਮਨ ਨੂੰ ਕਰਵਾਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਓਸ ਦੇ ਰਾਹੀਂ ਤਲਵਾਰਾਂ ਦੀ ਝਨਕਾਰ, ਪਤਿਆਂ ਦੀ ਖੜਕੜਾਹਟ, ਪੰਛੀਆਂ ਦਾ ਸ਼ਬਦ, ਸਾਡੇ ਕੱਨਾਂ ਤੀਕ ਪਹੁੰਚਾਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਜੇ ਕਰ ਕੋਈ ਚਾਹੇ ਕਿ ਹਵਾ ਦਾ ਪ੍ਰਚੰਡ ਵੇਗ, ਬਿਜਲੀ ਦੀ ਚਮਕ, ਬਦਲਾਂ ਦੀ ਗਰਜ ਤਥਾ ਸਮੁੰਦਰਾਂ ਦੀਆਂ ਲੈਹਰਾਂ ਦਾ ਟਕਰਾ ਭੀ ਅਸੀਂ ਸਾਮਨੇ ਦੇਖੀਏ ਜਾਂ ਸੁਨ ਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪਹਿਚਾਨ ਲਈਏ। ਤਾਂ ਇਹ ਗਲ ਸੰਗੀਤ ਦੀ ਸੀਮਾਂ ਤੋਂ ਪਰੇ ਹੈ। ਸੰਗੀਤ ਦੀ ਹੋਂਦ ਸਾਡੀ ਆਤਮਾ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਤ ਕਰਦੀ ਹੈ; ਅਤੇ ਇਸ ਵਿਖੇ ਇਹ ਕਲਾ ਇਤਨੀ ਸਫਲ ਹੋਈ ਹੈ, ਜਿਤਨੀ ਕਿ ਕਾਵਜ ਕਲਾ ਨੂੰ ਛੱਡ ਕੇ ਹੋਰ ਦੂਜੀ ਕਲਾ ਨਹੀਂ ਹੋਨ ਪਾਈ। ਸੰਗੀਤ ਸਾਡੇ ਮਨ ਨੂੰ ਆਪਨੀ ਇਛਾ ਅਨੁਸਾਰ ਚੰਚਲ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ ਅਰ ਓਸ ਵਿਖੇ ਵਧੇਰੇ ਭਾਵ ਪੈਦਾ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚਾਰ ਨਾਲ ਇਹ ਕਲਾ ਵਾਸਤੂ, ਮੂਰਤਿ ਅਰ ਚਿਤ੍ਰਕਲਾ ਤੋਂ ਵਧ ਕੇ ਹੈ। ਇੱਥੇ ਇਕ ਗਲ ਹੋਰ ਵੀ ਜਾਨ ਲੈਨੀ ਬਹੁਤ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ। ਓਹ ਇਹ ਕਿ ਸੰਗੀਤ ਕਲਾ ਅਰ ਕਾਵਜ ਕਲਾ ਦਾ ਆਪਸ ਵਿੱਚ ਬੜਾ ਡੂੰਗਾ ਸੰਬੰਧ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਵਿਖੇ ਇਕ ਦੂਜੇ ਪੁਰ ਨਿਰਭਰ ਰਹਿਣ ਦੇ ਭਾਵ ਹਨ। ਅਕਲਿਆਂ ਹੋਵਨ ਪੁਰ

ਦੋਵਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਘਟ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ॥

ਕਾਵਜ-ਕਲਾ

ਲਲਿਤ ਕਲਾਂ ਵਿਖੇ ਸਾਰਿਆਂ ਤੋਂ ਉਚੱਾ ਅਸਥਾਨ ਕਾਵਜ ਕਲਾ ਦਾ ਹੈ। ਇਸਦਾ ਆਧਾਰ ਕੋਈ ਮੂਰਿਤ ਪਦਾਰਥ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ। ਇਹ ਆਪਨੀ ਹੋਂਦ ਸ਼ਬਦਾਂ ਦਿਆਂ ਸੰਕੇਤਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਇਸਥਿਤ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਮਨ ਨੂੰ ਇਸ ਦਾ ਗਯਾਨ ਅੱਖਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਜਾਂ ਕੰਨਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਦਿਮਾਗ਼ ਤੀਕ ਆਪਨਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਹੁੰਚਾਨ ਵਿਖੇ ਇਸ ਕਲਾ ਦੇ ਲਈ ਕਿਸੇ ਦੂਜੇ ਸਾਧਨ ਦੇ ਆਸਰੇ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ। ਕੰਨਾਂ ਜਾਂ ਅੱਖਾਂ ਨੂੰ ਸ਼ਬਦਾਂ ਦਾ ਗਿਆਨ ਸਹਿਜ ਹੀ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਇਹ ਧਿਆਨ ਰਖਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜੀਵਨ ਦੀਆਂ ਘਟਨਾਵਾਂ ਅਰ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਦਿਆਂ ਬਾਹਰਲੇ ਨਜ਼ਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਜੋ ਕਲਪਨਾ ਰੂਪ ਇੰਦ੍ਰਿਆਂ ਰਾਹੀਂ ਦਿਮਾਗ਼ ਜਾਂ ਮਨ ਪਰ ਅੰਕਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਓਹ ਕੇਵਲ ਭਾਵ ਰੂਪ ਹੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ; ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਕੁਝ ਸੰਕੇਤਿਕ ਸ਼ਬਦ ਹਨ। ਅਥਵਾ ਭਾਵ ਜਾਂ ਮਾਨਸਿਕ ਚਿਤ੍ਰ ਹੀ ਅਜਹੀ ਸਾਮਗ੍ਰੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਦੇ ਰਾਹੀਂ ਕਾਵਜ ਕਲਾ ਦੇ ਜਾਨਣ ਵਾਲਾ ਆਪਨਾ ਸੰਬੰਧ ਦੂਜੇ ਦੇ ਮਨ ਨਾਲ ਕਾਇਮ ਕਰਦਾ ਹੈ ਇਸ ਸੰਬੰਧ ਦੇ ਕਾਇਮ ਕਰਨ ਵਿਖੇ ਭਾਸ਼ਾ ਸਹਾਈ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦਾ ਕਵੀ ਲਾਭ ਉਠਾਉਂਦਾ ਹੈ॥

ਲਲਿਤ ਕਲਾਂ ਦਾ ਗਿਆਨ

ਆਪ ਨੂੰ ਛੱਡ ਕੇ ਅਥਵਾ ਆਪਨੇ ਆਪ ਤੋਂ ਭਿੰਨ ਸੰਸਾਰ ਵਿਖੇ ਜਿੱਨੇ ਵਾਸਤਵਿਕ ਪਦਾਰਥ ਆਦਿ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਵਿਚਾਰ ਅਸੀਂ ਦੋ ਪ੍ਰਕਾਰ ਨਾਲ ਕਰਦੇ ਹਾਂ।

ਅਰਥਾਤ ਅਸੀਂ ਅਪਨੀ ਜਾਗ੍ਰਿਤ ਅਵਸਥਾ ਵਿਖੇ ਸਾਰੇ ਸੰਸਾਰਿਕ ਪਦਾਰਥਾਂ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਦੋ ਪ੍ਰਕਾਰ ਨਾਲ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦੇ

ਹਾਂ-ਇਕ ਤਾਂ ਗਿਆਨ ਇੰਦ੍ਰੀਆਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਾਮਨੇ ਆਉਨ ਪੁਰ; ਅਰ ਦੂਜੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਭਾਵ ਚਿਤ੍ਰਾਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਦੋ ਸਾਡੇ ਦਿਮਾਗ ਜਾਂ ਮਨ ਤੀਕ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਪਹੁੰਚਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਮੈਂ ਆਪਨੇ ਬਗੀਚੇ ਦੇ ਬਰਾਂਡੇ ਵਿੱਚ ਬੈਠਾ ਹਾਂ। ਇਸ ਵੇਲੇ ਜਿੱਥੋਂ ਤੀਕ ਮੇਰੀ ਨਜਰ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਜਗ੍ਹਾ ਦਾ, ਦਰਖਤਾਂ ਦਾ, ਫੁਲਾਂ ਦਾ, ਫਲਾਂ ਦਾ, ਅਰਥਾਤ ਮੇਰੀ ਨਜਰ ਦੇ ਰਾਹ ਵਿੱਚ ਜੋ ਕੁਝ ਆਉਂਦਾ ਸੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰਿਆਂ ਦਾ, ਮੈਨੂੰ ਸਾਖਿਆਤ ਅਨੁਭਵ ਜਾਂ ਗਿਆਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਸਮਝ ਲਵੋ ਕਿ ਇਸੇ ਵੇਲੇ ਮੇਰਾ ਧਿਆਨ ਕਿਸੇ ਹੋਰ ਸੁੰਦਰ ਬਗੀਚੇ ਵਲ ਚਲਾ ਗਿਆ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਮੈਂ ਕੁਝ ਦਿਨ ਪੈਹਲੇ ਕਿਤੇ ਡਿੱਠਾ ਸੀ ਅਥਵਾ ਜਿਸ ਦੀ ਕਲਪਨਾ ਮੈਂ ਆਪਨੇ ਮਨ ਵਿਖੇ ਹੀ ਕਰ ਲਈ। ਉਸ ਹਾਲਤ ਵਿੱਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਬਗੀਚਿਆਂ ਵਿਖੇ ਮੇਰੇ ਪੈਹਲੇ ਅਨੁਭਵਾਂ ਜਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਉਤਪੰਨ ਭਾਵਾਂ ਦਾ ਮੇਲ ਰਹੇਗਾ। ਅਥਵਾ ਪੈਹਲੀ ਕਿਸਮ ਦੇ ਗਿਆਨ ਨੂੰ ਅਸੀਂ ਬਾਹਰੀ ਗਿਆਨ ਕਹਾਂਗੇ, ਕਿਉਂ ਜੋ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਠੀਕ ਸੰਬੰਧ ਉਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰਿਆਂ ਪਦਾਰਥਾਂ ਜਾਂ ਜੀਵਾਂ ਨਾਲ ਹੈ। ਜੋ ਮੈਥੋਂ ਉਪਰੰਤ ਵੀ ਵਰਤਮਾਨ ਹਨ ਅਤੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਠੀਕ ੨ ਅਨੁਭਵ ਮੈਨੂੰ ਆਪਨੀਆਂ ਗਿਆਨ ਇੰਦ੍ਰੀਆਂ ਦ੍ਵਾਰਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਦੂਜੀ ਕਿਸਮ ਦੇ ਗਿਆਨ ਨੂੰ ਅਸੀਂ ਅੰਦਰਲਾ (ਜਾਂ ਆਂਤਰਿਕ) ਗਿਆਨ ਕਹਾਂਗੇ, ਕਿਉਂ ਜੋ ਉਸ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਮੇਰੇ ਪੈਹਲੇ ਇਕੱਠੇ ਕੀਤੇ ਅਨੁਭਵਾਂ ਜਾਂ ਮੇਰੀ ਕਲਪਨਾ ਸ਼ਕਤੀ ਨਾਲ ਹੈ। ਗਿਆਨ ਦਾ ਪੈਹਲਾ ਵਿਸਤਾਰ ਮੇਰੀ ਦੇਖਨ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀ ਦੇ ਅੰਦਰ ਹੈ, ਪਰ ਦੂਜਾ ਵਿਸਤਾਰ ਉਸਤੋਂ ਢੇਰ ਦੂਰ ਹੈ। ਉਸ ਦੀ ਹਦਬੰਦੀ ਲਭਨੀ ਬਹੁਤ ਕਠਿਨ ਹੈ। ਇਹ ਮੇਰੇ ਪੈਹਲੇ ਅਨੁਭਵ ਕਰਨ ਪੁਰ ਹੀ ਆਸ੍ਰਿਤ ਨਹੀਂ, ਉਸ ਵਿਖੇ ਦੂਜੇ ਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਕਰਨਾ ਭੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ; ਇਸ ਵਿਖੇ ਕੇਵਲ ਮੇਰੀ ਵੀ ਕਲਪਨਾ ਸ਼ਕਤਿ ਸਹਾਇਕ ਨਹੀਂ

ਹੁੰਦੀ ਦੂਜਿਆਂ ਦੀ ਕਲਪਨਾ ਸਕਤਿ ਭੀ ਸਹਾਇਕ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਪੈਹਲੇ ਹੋਏ ਪੁਰਸਾਂ ਨੇ ਆਪਨੇ ੨ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਅੰਕਤ ਕਰਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਰਖਿਆ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਓਹ ਇਮਾਰਤ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਹੋਵਨ, ਭਾਵੇਂ ਮੂਰਤਿ ਦੇ, ਭਾਵੇਂ ਚਿਤ੍ਰ ਦੇ, ਅਰ ਭਾਵੇਂ ਪੁਸਤਕਾਂ ਦੇ, ਸਭ ਤੋਂ ਸਹਾਇਤਾ ਲੈਕੇ ਮੈਂ ਆਪਨੇ ਗਿਆਨ ਨੂੰ ਵਧਾ ਸਕਦਾ ਹਾਂ। ਪੁਸਤਕਾਂ ਰਾਹੀਂ ਜੇਹੜਾ ਇਕੱਠਾ ਹੋਇਆ ਗਿਆਨ ਮੈਂਨੂੰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਰ ਜੇਹੜਾ ਢੇਰ ਚਿਰ ਲਈ ਮਨੁਖ ਦੇ ਹਿਰਦੇ ਤੇ ਆਪਨਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਜਮਾਈ ਰਖਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਦੀ ਗਿਨਤੀ ਅਸੀਂ ਕਾਵ੍ਯ ਜਾਂ ਸਾਹਿਤਯ ਵਿੱਚ ਕਰਦੇ ਹਾਂ। ਸਾਹਿਤਯ ਤੋਂ ਸਾਡਾ ਮਤਲਬ ਉਸ ਗਿਆਨ ਸਮੂਹ ਤੋਂ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਸਾਹਿਤਯ ਸਾਸਤ੍ਰਾਂ ਨੇ ਸਾਹਿਤਯ ਦੀ ਹਦ ਵਿਖੇ ਮੰਨਿਆ ਹੈ।

ਕਾਵ੍ਯ-ਕਲਾ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ

ਅਸੀਂ ਪੈਹਲੇ ਭੀ ਇਸ ਗਲ ਪੁਰ ਵਿਚਾਰ ਕਰ ਚੁੱਕੇ ਹਾਂ ਕਿ ਲਲਿਤ ਕਲਾ ਵਿੱਚ ਕਿੰਨਾ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਹੈ ਅਰ ਕੌਨ ਕਿਸ ਮਾਤ੍ਰਾ ਵਿਖੇ ਮਾਨਸਿਕ ਆਧਾਰ ਪਰ ਸਿਥਰ (ਕਾਇਮ) ਹੈ। ਉਪਰ ਜੋ ਕੁਝ ਕਹਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਉਸ ਤੋਂ ਸਪਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕਾਵਯ ਕਲਾ ਨੂੰ ਛਡਕੇ ਬਾਕੀ ਲਲਿਤ ਕਲਾਂ ਬਾਹਰਲੇ ਗਿਆਨ ਦਾ ਆਸਰਾ ਲੈਕੇ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਉਤਪੰਨ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ, ਕੇਵਲ ਕਾਵਯ ਕਲਾ ਪੂਰਨ ਰੂਪ ਦ੍ਵਾਰਾ ਅੰਦਰਲੇ ਗਿਆਨ ਪੁਰ ਨਿਰਭਰ ਹੈ। ਅਥਵਾ ਕਾਵਯ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਜਾਂ ਆਧਾਰ ਕੇਵਲ ਮਨ ਹੈ। ਇਕ ਉਦਾਹਰਣ ਦੇਕੇ ਇਸ ਭਾਵ ਨੂੰ ਸਪਸ਼ਟ ਕਰ ਦੇਨਾ ਹੱਛਾ ਹੋਵੇਗਾ। ਮੇਰੇ ਸਾਮਨੇ ਇਕ ਇਤਹਾਸਿਕ ਘਟਨਾ ਦਾ ਚਿਤ੍ਰ ਵਿਰਜਮਾਨ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਇਕ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਚਿਤ੍ਰਕਾਰ ਨੇ ਅੰਕਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਮੰਨ ਲਵੋ ਕਿ ਇਹ ਚਿਤ੍ਰ ਕਿਸੇ ਵੱਡੇ ਯੁੱਧ ਦੀ ਕਿਸੇ ਮੁਖ ਘਟਨਾ

ਦਾ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਮੈਂ ਉਸ ਘਟਨਾ ਦੇ ਸਮੇਂ ਆਪ ਉੱਥੇ ਹੁੰਦਾ, ਤਾਂ ਜੋ ਕੁਝ ਮੇਰੀਆਂ ਅੱਖਾਂ ਦੇਖ ਸਕਦੀਆਂ, ਉਹ ਸਭ ਕੁਝ ਉਸ ਚਿਤ੍ਰ ਵਿਖੇ ਮੈਂਨੂੰ ਦੇਖਨ ਲਈ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਮੈਂ ਉਸ ਚਿਤ੍ਰ ਵਿਖੇ ਸਿਪਾਹੀਆਂ ਦੀਆਂ ਸ੍ਰੇਣੀ-ਯੁਕਤ ਪੰਗਤੀਆਂ, ਰਿਸਾਲਿਆਂ ਦਾ ਇਕੱਠ, ਫੌਜਾਂ ਦੀਆਂ ਤਲਵਾਰਾਂ ਦੀ ਚਮਚਮਾਹਟ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਅਫਸਰਾਂ ਦੀਆਂ ਝੜਕੀਆਂ, ਵਰਦੀਆਂ, ਤੋਪਾਂ ਦੀ ਅਗਨ ਵਰਸ਼ਾ, ਸਿਪਾਹੀਆਂ ਦਾ ਮਰਕੇ ਡਿਗਨਾ ਇਹ ਸਭ ਮੈਂ ਉਸ ਚਿਤ੍ਰ ਵਿਖੇ ਦੇਖਦਾ ਹਾਂ; ਅਤੇ ਮੈਂਨੂੰ ਅਜਿਹਾ ਅਨੁਭਵ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਕਿ ਮੈਂ ਉਸ ਘਟਨਾ ਦੇ ਸਮੇਂ ਆਪ ਉਥੇ ਹੋਕੇ ਜੋ ਕੁਝ ਦੇਖ ਸਕਦਾ ਸਾਂ, ਉਹ ਸਭ ਕੁਝ ਉਸ ਚਿਤ੍ਰਪਟ ਪੁਰ ਮੇਰੀਆਂ ਅੱਖਾਂ ਦੇ ਸਾਮਣੇ ਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਪਰ ਜੇਕਰ ਮੈਂ ਉਸ ਘਟਨਾ ਦਾ ਹਾਲ ਇਤਿਹਾਸ ਦੀ ਕਿਸੇ ਪ੍ਰਸਿਧ ਪੁਸਤਕ ਵਿੱਚ ਪੜ੍ਹਦਾ ਹਾਂ, ਤਾਂ ਠੀਕ ਪਤਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਤਹਾਸ ਲੇਖਕ ਦੀ ਨਜ਼ਰ ਕਿਸੇ ਇਕ ਸਥਾਨ ਜਾਂ ਸਮੇਂ ਦੀ ਸੀਮਾਂ ਦੁਆਰਾ ਘਿਰੀ ਹੋਈ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਉਹ ਸਾਰੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਦਾ ਵਰਣਨ ਮੇਰੇ ਸਾਮਨੇ ਲਿਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਮੈਂਨੂੰ ਦਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉੱਥੇ ਲੜਾਈ ਹੋਈ, ਲੜਨ ਵਾਲੀਆਂ ਦੋਵੇਂ ਫੌਜਾਂ ਕਿਸ ਕਿਸ ਦੇਸ ਅਰ ਜਾਤ ਦੀਆਂ ਸਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਵਿਖੇ ਲੜਾਈ ਕਯੋਂ ਅਰ ਕੀਕਰ ਹੋਈ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਫੌਜਾਂ ਦਿਆਂ ਸਰਦਾਰਾਂ ਨੇ ਆਪਨੇ ਪੱਖ ਦੀ ਜਿੱਤ ਦੀ ਇੱਛਾ ਨਾਲ ਕੀਕਰ ਦੀ ਲੜਾਈ-ਨੀਤੀ (ਰਣ-ਨੀਤੀ) ਦਾ ਆਸਰਾ ਲਿਆ, ਕਿੱਥੋਂ ਤੀਕ ਉਹ ਨੀਤੀ ਸਫਲ ਹੋਈ, ਯੁਧ ਦਾ ਉਸ ਸਮੇ ਕੀਹ ਪਰਭਾਵ ਪਿਆ, ਉਸਦਾ ਨਤੀਜਾ ਕੀਹ ਨਿਕਲਿਆ ਅਰ ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਉਸ ਯੁਧ ਵਿੱਚ ਲੜਨ ਵਾਲੀਆਂ ਦੋਵੇਂ ਜਾਤਾਂ, ਅਥਵਾ ਹੋਰ ਦੇਸਾਂ ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਭਾਵੀ ਜੀਵਨ ਪੁਰ ਕੀਹ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਾਇਆ। ਪਰੰਤੂ ਉਹ ਇਤਹਾਸ ਲੇਖਕ

ਉਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦਾ ਹਿਰਦੇ ਦੇ ਜਮ ਜਾਨ ਵਾਲਾ ਅਰ ਮਨ ਨੂੰ ਮੁਗਧ ਕਰ ਦੇਨ ਵਾਲਾ ਠੀਕ ਚਿਤ੍ਰ ਮੇਰੇ ਸਾਮਨੇ ਲਿਆਉਨ ਵਿਖੇ ਉਤਨਾ ਸਫਲ ਨਹੀਂ ਹੋਇਆ, ਜਿਤਨਾ ਕਿ ਚਿਤ੍ਰਕਾਰ ਹੋਇਆ। ਪਰ ਇਹ ਭਾਵ, ਇਹ ਚਿਤ੍ਰਣ ਮੈਂਨੂੰ ਤਦ ਤੀਕ ਹੀ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਜਦ ਤੀਕ ਮੈਂ ਉਸ ਚਿਤ੍ਰ ਦੇ ਸਾਮਨੇ ਖੜਾ ਜਾਂ ਬੈਠਾ ਹੋਇਆ ਉਸ ਨੂੰ ਦੇਖ ਰਿਹਾ ਹਾਂ। ਉਹ ਮੇਰੀਆਂ ਅੱਖਾਂ ਅੱਗੋਂ ਦੂਰ ਹੋਇਆ ਕਿ ਉਸ ਦੀ ਸਪਸ਼ਟਿ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਮੇਰੀਆਂ ਅੱਖਾਂ ਤੋਂ ਹਟਨ ਲੱਗਾ। ਇਤਹਾਸਕਾਰ ਦੇ ਕੰਮ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਕਰਨ ਲਈ ਮੈਂਨੂੰ ਸਮਾਂ ਤਾਂ ਭਾਵੇਂ ਬਹੁਤ ਲਗਾਨਾ ਪਿਆ, ਪਰ ਮੈਂ ਜਦੋਂ ਚਾਹਵਾਂ, ਤਦੋਂ ਆਪਨੀ ਕਲਪਨਾ ਜਾਂ ਸਿਮ੍ਰਣ ਸ਼ਕਤਿ ਨਾਲ ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਨੇ ਹਿਰਦੇ ਦੇ ਸਾਮਨੇ ਲਿਆ ਸਕਦਾ ਹਾਂ। ਅਥਵਾ ਸਾਹਿਤਯ ਜਾਂ ਕਾਵਯ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਚਿਤ੍ਰ ਨਾਲੋਂ ਜਿਆਦਾ ਦੇਰ ਠੈਹਰਨ ਵਾਲਾ ਅਰ ਪੂਰਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਦਾ ਕਾਰਨ ਇਹ ਹੀ ਹੈ ਕਿ ਚਿਤ੍ਰ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਵਰਤਮਾਨ ਹੈ ਅਰ ਉਹ ਬਾਹਰਲੇ ਗਿਆਨ ਪੁਰ ਆਸ਼ਰਿਤ ਹੈ, ਪਰੰਤੂ ਸਾਹਿਤਯ ਵਿਖੇ ਮੂਰਤਿ ਆਧਾਰ ਦੀ ਅਨਹੋਂਦ ਹੈ ਅਰ ਉਹ ਅੰਤਰਗਿਆਨ ਦੇ ਆਸਰੇ ਹੈ। ਸੰਖੇਪ ਵਿੱਚ, ਅਸੀਂ ਚਿਤ੍ਰ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਇਹ ਕਹਿੰਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਮੈਂ ਲੜਾਈ ਦੇਖੀ, ਪਰ ਉਸ ਦਾ ਵਰਣਨ ਪੜ੍ਹ ਕੇ ਅਸੀਂ ਕਹਿੰਦੇ ਹਾਂ ਕਿ "ਮੈਂ ਉਸ ਲੜਾਈ ਦਾ ਵਰਣਨ ਪੜ੍ਹਿਆ ਹੈ" ਜਾਂ "ਉਸ ਲੜਾਈ ਦਾ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰ ਲਿਆ ਹੈ"।

ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚਾਰਾਂ ਮੂਜਬ ਕਾਵਯ ਜਾਂ ਸਾਹਿਤਯ ਨੂੰ ਅਸੀਂ ਮਹਾਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦੇ ਖਿਆਲਾਂ, ਵਿਚਾਰਾਂ ਅਰ ਕਲਪਨਾਵਾਂ ਦਾ ਇਕ ਲਿਖਤ ਭੰਡਾਰ ਕਹ

ਸਕਦੇ ਹਾਂ, ਜੋ ਢੇਰ ਚਿਰ ਤੋਂ ਭਰਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਜੇਹੜਾ ਬਹੁਤ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਭਰਦਾ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ ਅਰ ਅੱਗੋਂ ਭਰਦਾ ਰਹੇਗਾ। ਮਨੁਖ ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਦੇ ਸ਼ੁਰੂ ਵਿੱਚ ਜੋ ਕੁਝ ਦੇਖਦਾ, ਅਨੁਭਵ ਕਰਦਾ ਅਰ ਸੋਚਦਾ ਵਿਚਾਰਦਾ ਆਇਆ ਹੈ, ਉਸ ਸਾਰੇ ਦਾ ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਅੰਸ਼ ਇਸ ਵਿਖੇ ਭਰਿਆ ਪਿਆ ਹੈ। ਅਥਵਾ ਇਹ ਸਪਸ਼ਟ ਹੈ ਕਿ ਮਨੁਖ ਜੀਵਨ ਦੇ ਲਈ ਇਹ ਭੰਡਾਰ ਕਿੰਨਾਂ ਕੁ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੈ।

ਕਾਵਯ ਕਲਾ ਵਿਖੇ ਪੁਸਤਕਾਂ ਦਾ ਮਹਤਵ

ਮਨੁਖ ਦੇ ਕਾਵਯ ਰੂਪੀ ਮਾਨਸਿਕ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਪੁਸਤਕਾਂ ਦੀ ਹੋਂਦ ਬਹੁਤ ਹੀ ਜਰੂਰੀ ਹੈ। ਬਿਨਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਕਾਵਯ ਦੀ ਹੋਂਦ ਹੀ ਲੁਪਤ ਹੋ ਗਈ ਹੁੰਦੀ। ਜੇਕਰ ਪੁਸਤਕਾਂ ਨਾ ਹੁੰਦੀਆਂ, ਤਾਂ ਅਜ ਅਸੀਂ ਮਹਾਂਰਿਸ਼ੀ ਬਾਲਮੀਕ, ਮਹਾਂਕਵੀ ਕਾਲੀਦਾਸ ਭਵਭੂਤਿ, ਭਾਰਵਿ, ਭਗਵਾਨ ਬੁਧ ਦੇਵ, ਮਹਾਰਾਜ ਰਾਮਚੰਦ੍ਰ ਆਦਿ ਨਾਲ ਕੀਕਰ ਗਲ ਬਾਤ ਕਰਦੇ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਜਸ ਦਾ ਗਿਆਨ ਕੀਕਰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦਾ, ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਜਾਨਦੇ ਹੋਏ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਗਰ ਲੱਗ, ਲਾਭ ਉਠਾ ਕੇ ਆਪਨੇ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਉਚੱਾ ਅਰ ਆਦਰਸ਼ਿਕ ਬਨਾਉਣ ਵਿਖੇ ਕਿਕਰ ਸਮਰਥ ਹੁੰਦੇ?

ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਜੋ ਕੁਝ ਗਿਆਨ ਅਸੀਂ ਆਪਨੇ ਪੈਹਲੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਅਰ ਕਾਵਯ ਸਾਹਿਤਯ ਦ੍ਵਾਰਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦੇ ਹਾਂ, ਉਹ ਸਾਨੂੰ ਇਸ ਯੋਗ ਬਨਾਉਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਅਸੀਂ ਇਸ ਮੂਰਤਿ ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਬਾਹਰਲਾ ਗਿਆਨ ਭਲੀ ਪ੍ਰਕਾਰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰੀਏ ਅਰ ਕਈ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀਆਂ ਕਲਾਂ ਦੀ ਲੋੜ ਜਾਂ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਦੇ ਸ਼ੀਸ਼ੇ ਤੋਂ ਅਸਲੀ ਆਨੰਦ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰੀਏ ਤਥਾ ਉਸ ਦਾ ਭੇਦ ਜਾਨੀਏਂ। ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਹੀ ਸਾਨੂੰ ਉਸ ਦੇ ਬਾਹਰਲੇ ਸਰੂਪ ਦੀ ਮੂਰਤਿ ਨੂੰ ਪੂਰਾ ੨ ਸਮਝਨ ਵਿਖੇ ਸਮ੍ਰਥ ਕਰਦੀ ਹੈ॥

ਕਾਵਯ ਨੂੰ ਅਸੀਂ ਮਨੁਖ ਜਾਤਿ ਦੇ ਭੋਗੇ ਹੋਏ ਕੱਮਾਂ ਅਥਵਾ ਉਸ ਦਿਆਂ ਅੰਦਰਲਿਆਂ ਭਾਵਾਂ ਦਾ ਸਮੂਹ ਆਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਜਿਕਰ ਇਕ ਜੀਵ ਦਾ ਹਿਰਦਾ ਉਸਦੇ ਅਨੁਭਵ, ਉਸ ਦੀ ਭਾਵਨਾ, ਉਸ ਦੇ ਵਿਚਾਰ ਅਰ ਉਸਦੀ ਕਲਪਨਾ ਨੂੰ, ਅਰਥਾਤ ਉਸਦੇ ਸਭ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਗਿਆਨ ਦੀ ਰਖਿਆ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਰ ਉਸ ਸੰਭਾਲੇ ਹੋਏ ਭੰਡਾਰ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਨਾਲ ਉਹ ਨਸ਼ਟ ਹੋਏ ਖਿਆਲ ਅਰ ਨਵਿਆਂ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਸੱਚ ਜਾਂਨਦਾ ਹੈ, ਉਸੇ ਤਰਾਂ ਕਾਵਯ ਕਿਸੇ ਜਾਤਿ ਦਾ ਦਿਮਾਗ ਜਾਂ ਹਿਰਦਾ ਹੈ, ਜੇਹੜਾ ਉਸ ਦੇ ਪੈਹਲੇ ਭਾਵਾਂ, ਖਿਆਲਾਂ, ਵਿਚਾਰਾਂ, -ਕਲਪਨਾਵਾਂ ਅਰ ਗਿਆਨ ਨੂੰ ਸੰਭਾਲ ਰਖਦਾ ਹੈ ਅਰ ਉਸੇ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਨਾਲ ਹੀ ਉਸ ਦੀ ਵਰਤਮਾਨ ਹਾਲਤ ਨੂੰ ਜਾਨਦਾ ਹੈ। ਜਿਕਰ ਗਿਆਨ ਇੰਦ੍ਰੀਆਂ ਦੇ ਸਾਰੇ ਸੰਦੇਸੇ ਬਿਨਾਂ ਦਿਮਾਗ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਅਰ ਮੇਲ ਦੇ ਅਸਪਸ਼ਟ ਅਰ ਅਰਥ-ਰਹਿਤ ਹੁੰਦੇ, ਉਕਰ ਹੀ ਸਾਹਿਤਯ ਦੇ ਬਿਨਾਂ, ਪੈਹਲੇ ਇਕਤ੍ਰ ਕੀਤੇ ਗਿਆਨ ਭੰਡਾਰ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਮਾਨੁਖੀ ਜੀਵਨ ਪਸ਼ੂ ਜੀਵਨ ਦੇ ਤੁਲਯ ਹੁੰਦਾ। ਉਸ ਵਿਖੇ ਉਹ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਹੀ ਨਾ ਰਹਿ ਜਾਂਦੀ, ਜਿਸ ਦੇ ਕਾਰਨ ਮਨੁਖ "ਮਨੁਖ" ਕਹਾਉਨ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰੀ ਹੈ॥

(ਬ. ਸ.)

ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਰਾਜਧਾਨੀ ਲਾਹੌਰ ਦੇ

ਗੁਰ ਅਸਥਾਨਾ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ॥

(ਵੱਲੋਂ-ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਗਯਾਨੀ ਖਜਾਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਐਮ. ਸੀ., ਔਰੀਐਂਟਲ ਕਾਲਜ)

ਜਿੱਥੇ ਜਾਇ ਬਹੇ ਮੇਰਾ ਸਤਿਗੁਰੂ ਸੋ ਥਾਨ ਸੁਹਾਵਾ।
ਗੁਰ ਸਿੱਖਾਂ ਸੋ ਥਾਨ ਭਾਲਿਆ ਲੈ ਧੂੜ ਮੁਖ ਲਾਵਾ॥

ਉਪ੍ਰੋਕਤ ਪਵਿਤ੍ਰ ਮਹਾਂ ਵਾਕ ਤੋਂ ਪ੍ਰਗਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸਤਿਗੁਰੂ ਸਚੇ ਪਾਤਸਾਹ ਜੀ ਨੇ ਜਿਸ ਥਾਂ ਤੇ ਚਰਨ ਪਾਏ ਓਹ ਸੁਭਾਗ ਅਤੇ ਪਵਿਤ੍ਰ ਹੋ ਗਿਆ, ਤੇ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨ ਕੰਵਲਾਂ ਤੇ ਮੋਹਤ ਭੌਰੇ ਗੁਰ ਸਿਖਾਂ ਨੇ ਓਸ ਥਾਂ ਦੀ ਭਾਲ ਕਰਕੇ ਗੁਰ ਚਰਨਾ ਦੀ ਧੂੜ ਅਪਨੇ ਮਸਤਕ ਪਰ ਲਗਾਈ ਤੇ ਅਪਨੇ ਧੰਨ ਭਾਗ ਸਮਝੇ, ਇਹੀ ਭਾਵ ਹੈ ਜਿਸ ਤੋਂ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨ ਪਰਸਨ ਵਾਂਲੀ ਥਾਂ ਨਾਲ ਗੁਰ ਸਿਖਾਂ ਦਾ ਅਨਿਨ ਪ੍ਰੇਮ ਪ੍ਰਗਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ॥

ਇਤਹਾਸ ਤੋਂ ਤਾਂ ਇੱਥੋਂ ਤਕ ਸਿੱਧ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸ੍ਰੀ ਦਰਬਾਰ ਸਾਹਿਬ ਅਮ੍ਰਤਸਰ ਜੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਸਮੇ ਓਸ ਕਰਤਾਰ ਸਿਰਜਨਹਾਰ ਨੇ ਆਪ ਸਾਕਾਰ ਰੁਪ ਵਿੱਚ ਹਿੱਸਾ ਲਿਆ ਅਤੇ ਦੀਨ ਦੁਨੀ ਦੇ ਵਾਲੀ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਭੀ ਅਪਨੇ ਪਵਿਤ੍ਰ ਹਸਤ ਕੰਵਲਾਂ ਨਾਲ ਸੇਵਾ ਕੀਤੀ, ਫੇਰ ਗੁਰ ਸਿਖਾਂ ਨੇ ਇਨਾ ਹੀ ਪਵਿਤ੍ਰ ਗੁਰਦੁਆਰਿਆਂ ਦੀ ਸੇਵਾ ਬਦਲੇ ਅਪਨੇ ਤਨ, ਮਨ, ਧਨ, ਬਲਕੇ ਸ੍ਰਬੰਸ ਕੁਰਬਾਨ ਕਰਨੋਂ ਭੀ ਸੰਕੋਚ ਨਹੀ ਕੀਤੀ॥ ਪੰਥ ਵਾਲੀ ਸ੍ਰੀ ਦਸਮੇਸ਼ ਪਿਤਾ ਜੀ ਦੇ ਅੰਤਮ ਸਥਾਨ

ਸ੍ਰੀ ਹਜ਼ੂਰ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਅਰੰਭ ਕਰਨ ਲਗਿਆਂ ਕਿਸੇ ਨੇ ਮਹਾਰਾਜਾ ਰੰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਵਾਕ ਹੈ ਕਿ ਜੋ ਸਖਸ਼ ਸਾਡੀ ਸਮਾਧ ਬਨਾਏਗਾ ਜਾਂ ਇਥੇ ਕੋਈ ਯਾਦਗਾਰ ਕਾਇਮ ਕਰੇਗਾ ਓਸਦਾ ਸੂਬੰਸ ਮਿਟ ਜਾਏਗਾ ਜਾਂ ਨਾਮ ਨਿਸ਼ਾਨ ਉਡ ਜਾਏਗਾ, ਅਗੋਂ ਮਹਾਰਾਜਾ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਉਤ੍ਰ ਦਿਤਾ ਕਿ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰਦਿਆਂ ਅਗਰ ਮੇਰਾ ਨਾਮ ਨਿਸ਼ਾਨ ਮਿਟਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਮੈਂ ਅਪਨੇ ਧੰਨ ਭਾਗ ਸਮਝਾਂਗਾ, ਇਹੋ ਭਾਵ ਹੈ ਜਿਸ ਤੋਂ ਗੁਰ ਸਿਖਾਂ ਦਾ ਗੁਰ ਅਸਥਾਨਾਂ ਨਾਲ ਅਧਕ ਪ੍ਰੇਮ ਪ੍ਰਗਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ॥ ਅਜ ਕਲ ਦੇ ਗਏ ਗੁਜਰੇ ਜਮਾਨੇ ਵਿੱਚ ਭੀ ਜਦ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਿਆਂ ਦੀ ਪਵਿਤ੍ਰਤਾ ਕਾਇਮ ਰਖਣ ਲਈ ਕੁਰਬਾਨੀਆਂ ਦੀ ਲੋੜ ਭਾਸੀ ਤਾਂ ਸਾਰੇ ਸੰਸਾਰ ਪਰ ਸਚਾਈ ਅਤੇ ਧਰਮ ਦਾ ਚਾਨਣ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਗੁਰ ਅਸਥਾਨ ਰੂਪੀ ਸ਼ਮਾ ਤੋਂ ਨਿਛਾਵਰ ਹੋਨ ਲਏ। ਹਜਾਰਾਂ ਗੁਰ ਸਿਖ ਰੂਪੀ ਪਤੰਗੇ ਮੈਦਾਨ ਵਿਚ ਆ ਨਿਤ੍ਰੇ॥

ਲਾਹੌਰ ਸ਼ੈਹਰ ਜਿਥੇ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਰਾਜਧਾਨੀ ਹੈ ਓਥੇ ਓਪ੍ਰੋਕਤ ਭਾਵ ਅਨਸਾਰ ਭੀ ਇਕ ਮਹਾਨ ਮਾਨਨੀਯ ਸਥਾਨ ਹੈ, ਕਿਉਂਕਿ ਇਥੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਅਵਤਾਰ ਧਾਰਿਆ ਅਰ ਇਥੇ ਹੀ ਸ਼ਹੀਦਾਂ ਦੇ ਸ਼ੈਹਨਸ਼ਾਹ ਸਤਿਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਪੈਹਲੀ ਸ਼ਾਂਤ ਮਈ ਕੁਰਬਾਨੀ ਦੇਕੇ ਜਰਨ ਸਕਤੀ, ਆਪਾ ਵਾਰਨ, ਆਤਮਕ ਬਲ, ਤੇ ਸਥਿਰਤਾ ਦੀ ਸੰਥਾ ਦਿਤੀ, ਇਸੇ ਤ੍ਰਾਂ ਇਥੇ ਨਿਰੰਕਾਰੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਸ੍ਰੀਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਅਤੇ ਖੜਗ ਧਾਰੀ ਛੇਵੇਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਨੇ ਭੀ ਚਰਨ ਪਾਏ, ਅਰ ਅਨੇਕ ਗੁਰ ਸਿਖ ਅਤੇ ਸਿਖਨੀਆਂ ਧਰਮ ਦੀ ਖਾਤ੍ਰ ਕੁਰਬਾਨ ਹੋ ਗਈਆਂ ਤਾਂ ਤੇ ਐਸੇ ਪਵਿਤ੍ਰ ਸਥਾਨਾਂ ਦੇ ਹਾਲਾਤ ਤੋਂ ਜਾਣੂ ਹੋਣਾ ਹਰ ਇਕ ਗੁਰ ਸ੍ਰਧਾਲੂ ਲਈ ਜਰੂਰੀ ਹੈ, ਇਸੇ ਭਾਵ ਨੂੰ ਮੁਖ ਰਖਕੇ ਇਸ ਲੇਖ

ਚ ਲਿਖਨ ਦਾ ਉਦਮ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਅਹੋ ਧੰਨ ਭਾਗ ਜੇ ਇਸ ਤੋਂ ਕਿਸੇ ਸੱਜਨ ਨੂੰ ਕੋਈ ਲਾਭ ਪੁੱਜ ਸਕੇ ॥

ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਗੁਰਦੁਆਰਿਆਂ ਅਤੇ ਧਰਮ ਸਾਲਾਂ ਦੀ ਸੂਚੀ ॥

ਅਸੀਂ ਭਾਵੇਂ ਇਤਹਾਸਿਕ ਗੁਰਦੁਆਰਿਆਂ ਦੇ ਹਾਲ ਲਿਖਣੇ ਹਨ ਪਰ ਨਾਲ ਹੀ ਬਾਕੀ ਧਾਰਮਕ ਸਥਾਨਾ ਦੀ ਸੂਚੀ ਦਿੰਦੇ ਹਾਂ ਤਾਕਿ ਇਨੇ ਦੇ ਨਾਮ ਤੇ ਪਤੇ ਤਾਂ ਯਾਦ ਰੈਹਨ, ਕਿਉਂਕਿ ਕਈ ਇਕ ਤਾਰੀਖੀ ਅਸਥਾਨ ਐਸੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਕੋਈ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਲਗਦਾ, ਜੇਹਾ ਕਿ ਕਲਗੀ ਧਰ ਜੀ ਦੇ ਮੈਹਲ ਮਾਤਾ ਸੁੰਦ੍ਰੀ ਜੀ ਦੇ ਪੇਕਿਆਂ ਦਾ ਘਰ, ਪਰਉਪਕਾਰੀ ਭਾਈ ਲੱਧਾ ਜੀ ਦਾ ਮਕਾਨ, ਪੰਜਾਂ ਪਿਆਰਿਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਭਾਈ ਧਰਮ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਆਦ, ਇਹ ਯਾਦਗਾਰਾਂ ਸਮੇ ਦੀ ਵਿਥ ਅਤੇ ਪੰਥ ਦਾ ਹੋਰ ਕੰਮਾਂ ਵਿੱਚ ਰੁੱਝੇ ਰੈਹਨ ਜਾਂ ਕਿਸੇ ਹੋਰ ਕਾਰਨ ਕਰਕੇ ਬਿਲਕੁਲ ਅਲੋਪ ਹੋਗਈਆਂ ਹਨ ਇਸ ਲਈ ਅਸੀਂ ਤਾਰੀਖੀ ਅਸਥਾਨਾਂ ਦੇ ਹਾਲਾਤ ਅਤੇ ਹੁਨ ਤਕ ਮੌਜੂਦ ਸਾਰੇ ਧਾਰਮਕ ਅਸਥਾਨਾ ਦੀ ਸੂਚੀ ਪਤੇ ਸਮੇਤ ਦਿੰਦੇ ਹਾਂ ਤਾਕਿ ਯਾਦ ਰੈਹਨ ਅਤੇ ਪ੍ਰੇਮੀ ਯਾਤ੍ਰੀਆਂ ਨੂੰ ਸੌਖ ਰਹੇ ॥

(੧) ਗੁਃ ਪੈਹਲੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ, ਚੁਹੱਟਾ ਮੁਫਤੀ ਬਾਕਰ ॥
(੨) ਗੁਃ ਨਾਨਕ ਗੜ੍ਹ, ਬਾਦਾਮੀ ਬਾਗ ਰੇਃ ਸਟੇਸ਼ਨ ਪਾਸ ॥
(੩) ਗੁਃ ਜਨਮ ਅਸਥਾਨ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ, ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ ॥
(੪) ਗੁਃ ਧਰਮਸਾਲ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ, ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ ॥
(੫) ਗੁਃ ਦੀਵਾਨ ਖਾਨਾ ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ, ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ ॥
(੬) ਗੁਃ ਲਾਲ ਖੂਹ ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ, ਵਾਟਰ ਵਰਕਸ ਦੇ ਪਿੱਛੇ ॥
(੭) ਗੁਃ ਬਾਵਲੀ ਸਾਹਿਬ, ਡੱਬੀ ਬਾਜ਼ਾਰ ॥

(੮) ਗੁ: ਡੇਹਰਾ ਸਾਹਿਬ ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ, ਸ਼ਾਹੀ ਕਿਲੇ ਦੇ ਪਾਸ॥
(੯) ਗੁ: ਛੇਵੀਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਮਹੱਲਾ ਚੁਮਾਲਾ, ਭਾਟੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ॥
(੧੦) ਗੁ: ਛੇਵੀਂ ਪਾਦਸ਼ਾਹੀ, ਟੈਂਪਲ ਰੋਡ ਮੁਜੰਗ॥
(੧੧) ਗੁ: ਬੁਧੂ ਦਾ ਆਵਾ, ਸ਼ਾਲਾ ਮਾਰ ਰੋਡ॥
(੧੨) ਗੁ: ਸ਼ਹੀਦ ਗੰਜ ਸਿੰਘਨੀਆਂ, ਨੌਲੱਖਾ ਬਾਜ਼ਾਰ॥
(੧੩) ਗੁ: ਸ਼ਹੀਦ ਗੰਜ ਭਾਈ ਤਾਰੂ ਸਿੰਘ, ਨੌਲੱਖਾ ਬਾਜਾਰ॥
(੧੪) ਗੁ: ਸ਼ਹੀਦ ਗੰਜ ਭਾਈ ਮਨੀ ਸਿੰਘ, ਮਸਤੀ ਦਰਵਾਜ਼ਾ॥
(੧੫) ਗੁ: ਭਾਈ ਜਵਾਹਰ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਰੇ: ਸਟੇਸ਼ਨ ਦੇ ਪਾਸ॥
(੧੬) ਗੁ: ਸਮਾਧ ਮਹਾਰਾਜਾ ਰੰਜੀਤ ਸਿੰਘ, ਸ਼ਾਹੀ ਕਿਲੇ ਦੇ ਪਾਸ॥
(੧੭) ਗੁ: ਭਾਈ ਵਸਤੀ ਰਾਮ, ਮੈਦਾਨ ਭਾਈਆਂ ਭਾਟੀ ਦਰਵਾਜਾ॥
(੧੮) ਗੁ: ਸ਼ਕਾਰ ਗੜ੍ਹ, ਤਲਾ ਮਲ ਰਾਏ ਫੀਰੋਜ਼ ਪੁਰ ਰੋਡ॥
(੧੯) ਗੁ: ਸ਼ਹੀਦ ਅਸਥਾਨ ਭਾਈ ਤਾਰੂ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਗੁਮਟੀ ਬਾਜ਼ਾਰ॥
(੨੦) ਸਮਾਧ ਮਹਾਰਾਜਾ ਸ਼ੇਰ ਸਿੰਘ, ਪਿੰਡ ਖੂਹੀ ਮੀਰਾਂ॥
(੨੧) ਸਮਾਧ ਭਾਈ ਹਕੀਕਤ ਰਾਏ ਸ਼ਹੀਦ, ਪਿੰਡ ਖੂਹੀ ਮੀਰਾਂ॥
(੨੨) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਭਾਈ ਗੁਪਾਲ ਸਿੰਘ ਜੀ ਚਾਵਲੇ, ਮ: ਸਥਾਂ॥
(੨੩) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸ: ਪ੍ਰਤਾਪ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਬਾਜਾਰ ਸੈਦ ਮਿੱਠਾ॥
(੨੪) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸੰਤ ਬੇਲੀ ਰਾਮ ਜੀ, ਸੈਦ ਮਿੱਠਾ ਬਾਜ਼ਾਰ॥
(੨੫) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਮਿਸਤ੍ਰੀ ਈਸ਼ਰ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਨਾਨਕ ਫਲਾ ਲੋਹਾਰੀ ਮੰਡੀ॥
(੨੬) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਕੰਬੋਆਂ, ਬਾਜ਼ਾਰ ਮੋਰੀ ਦਰਵਾਜ਼ਾ॥
(੨੭) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸੰਤ ਪ੍ਰੇਮ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਮਹੱਲਾ ਮੋਹਲਿਆਂ॥
(੨੮) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਰਾਮ ਗੜ੍ਹੀਆਂ, ਮਹੱਲਾ ਮੋਹਲਿਆਂ॥
(੨੯) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਕੰਬੋਆਂ, ਕੂਚਾ ਮੁੰਜ ਕੁੱਟਾਂ ਲੋਹਾਰੀ ਦਰਵਾਜ਼ਾ॥

(੩੦) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਪਾਪੜਾਂ ਵਾਲੀ, ਚੌਕ ਚੱਕਲਾ ਲੋਹਾਰੀ ਦਰਵਾਜਾ॥

(੩੧) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸੰਤ ਪ੍ਰੇਮ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਕੂਚਾ ਵਾਟਰ ਵਰਕਸ॥

(੩੨) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਬਾਬਾ ਪਹੌੜੀ ਵਾਲਾ, ਮਸਤੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ॥

(੩੩) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸੰਤ ਬਾਬਾ ਖੁਦਾ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ॥

(੩੪) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਰਾਜਾ ਹਰਬੰਸ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ॥

(੩੫) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸੂਦਾਂ, ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ॥

(੩੬) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਨਾਮ ਧਾਰੀਆਂ, ਮੋਤੀ ਬਾਜ਼ਾਰ॥

(੩੭) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਭਾਈ ਸੁਰਜਨ ਸਿੰਘ ਹਲਵਾਈ, ਛੱਤਾ ਬਾਜ਼ਾਰ॥

(੩੮) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਕੂਚਾ ਬਿਲਾ ਕਬੂਤ੍ਰ ਬਾਜ਼ ਡੱਬੀ ਬਾਜ਼ਾਰ॥

(੩੯) ਧਰਮ ਸਾਲਾ, ਪਾਸ ਕੂਚਾ ਸੋਢੀਆਂ ਮਹੱਲਾ ਸਰੀਨ॥

(੪੦) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਰਾਏ ਸਾਹਿਬ ਹਰਨਾਮ ਦਾਸ, ਸ਼ੇਰਾਂ ਵਾਲਾ ਗੇਟ॥

(੪੧) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਭਾਈ ਬੁਧ ਸਿੰਘ, ਕੂਚਾ ਕੰਧਰਾਵਾਂ ਯਕੀ ਦਰਵਾਜ਼ਾ॥

(੪੨) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸੁਥਰਿਆਂ, ਸ਼ਾਹੀ ਕਿਲੇ ਦੀ ਬਾਹੀ ਨਾਲ॥

(੪੩) ਸਮਾਧ ਭਾਈ ਵਸਤੀ ਰਾਮ ਜੀ, ਸ਼ਾਹੀ ਕਿਲੇ ਦੀ ਬਾਹੀ ਨਾਲ॥

(੪੪) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਅਕਬਰੀ ਮੰਡੀ॥

(੪੫) ਧਰਮ ਸਾਲਾ, ਕੂਚਾ ਠਾਕਰਾਂ ਮੋਚੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ॥

(੪੬) ਧਰਮ ਸਾਲਾਂ ਪਿੱਪਲ ਵੇਹੜਾ, ਮੋਚੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ॥

(੪੭) ਛੱਜੂ ਭਗਤ ਦਾ ਚੁਬਾਰਾ, ਬਾਜਾਰ ਸ਼ਹਾਲਮੀ ਦਰਵਾਜਾ।;

(੪੮) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸੰਤ ਇਛਰ ਸਿੰਘ, ਸ਼ਹਾਲਮੀ ਦਰਵਾਜੇ ਦੇ ਬਾਹਰ॥

(੪੯) ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਟਾਹਲੀ ਸਾਹਿਬ, ਕੂਚਾ ਪਸ਼ੌਰੀਆਂ ਸੂਤਰ ਮੰਡੀ॥

(੫੦) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਅਮੋਲਕ ਸਿੰਘ, ਨੌਲੱਖਾ ਬਾਜ਼ਾਰ॥

(੫੧) ਸ਼ਹੀਦ ਗੰਜ ਭਾਈ ਧਰਮ ਸਿੰਘ, ਪਾਸ ਕੁੱਕੜ ਗਿਰਜਾ ਹਾਲ ਰੋਡ॥

(੫੨) ਗੁ: ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਤ ਸੰਗ ਸਭਾ, ਗਵਾਲ ਮੰਡੀ ॥

(੫੩) ਗੁ: ਰਾਮ ਗੜ੍ਹੀਆਂ, ਗਵਾਲ ਮੰਡੀ ॥

(੫੪) ਗੁ: ਪ੍ਰੇਮ ਗਲੀ, ਗਵਾਲ ਮੰਡੀ ॥

(੫੫) ਗੁ: ਭਾਟੜਿਆਂ, ਗਵਾਲ ਮੰਡੀ ॥

(੫੬) ਗੁ: ਸੰਗਤ, ਕਿਲਾ ਗੁਜਰ ਸਿੰਘ ॥

(੫੭) ਗੁ: ਸਤਸੰਗ ਸਭਾ, ਪੁਰਾਨੀ ਅਨਾਰ ਕਾਲੀ ॥

(੫੮) ਗੁ: ਨਿਹੰਗ ਸਿੰਗ, ਧੋਬੀ ਮੰਡੀ ਪੁਰਾਨੀ ਅਨਾਰ ਕਲੀ ॥

(੫੯) ਗੁ: ਖਾਲਸਾ ਗੜ੍ਹ, ਕਰਿਸ਼ਨਾ ਨਗਰ ॥

(੬੦) ਗੁ: ਸ੍ਰਦਾਰ ਸ਼ਾਮ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਰਾਜ ਗੜ੍ਹ ਚਬੁਰਜੀ ॥

(੬੧) ਗੁ: ਭਾਈ ਸਤੀ ਦਾਸ ਜੀ, ਬੜਾ-ਬਾਜ਼ਾਰ ਮੁਜੰਗ ॥

(੬੨) ਗੁ: ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ, ਰਾਮ ਗੜ੍ਹ ॥

(੬੩) ਗੁ: ਰਾਮ ਗੜ੍ਹੀਆਂ, ਰਾਮ ਗੜ੍ਹ ॥

(੬੪) ਗੁ: ਸ੍ਰੀ ਖੁਰੂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ, ਬਾਗਵਾਨ ਪੁਰਾ ॥

(੬੫) ਗੁ: ਭਾਈ ਸੌਦਾਗਰ ਮਲ ਜੀ, ਬਾਗਵਾਨ ਪੁਰਾ ॥

(੬੬) ਗੁ: ਸ੍ਰੀ ਅੁਰੂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ, ਸਿੰਘ ਪੁਰਾ ॥

(੬੭) ਗੁ: ਰਾਮ ਗੜ੍ਹੀਆਂ, ਸਿੰਘ ਪੁਰਾ ॥

(੬੮) ਗੁ: ਰੇਲਵੇ ਪੱਕੇ ਕਵਾਟਰ ॥

(੬੯) ਗੁ: ਚੁਬੱਚਾ ਰਾਮ ਰਾਏ ਜੀ, ਮੀਆਂ ਮੀਰ ॥

(੭੦) ਗੁ: ਧਰਮ ਪੁਰਾ, ਪਾਸ ਸਦਰ ਬਾਜ਼ਾਰ ॥

(੭੧) ਗੁ: ਖਾਲਸਾ ਦੀਵਾਨ, ਸਦਰ ਬਾਜ਼ਾਰ ॥

(੭੨) ਗੁ: ਸੰਗਤ, ਸਦਰ ਬਾਜ਼ਾਰ ਛਾਵਨੀ ਲਾਹੌਰ ॥

(੭੩) ਗੁ: ਗੁਰੂ ਮਾਂਗਟ, ਛੇਵੀਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਪਿੰਡ ਗੁਰੂ ਮਾਂਗਟ ॥

(੭੪) ਗੁਃ ਰੇਲਵੇ ਟਰੇਨਿੰਗ ਸਕੂਲ, ਪਾਸ ਗੁਰੂ ਮਾਂਗਟ॥
(੭੫) ਗੁਃ ਭਾਈ ਜੀਵਨ ਸਿੰਘ, ਘੜ੍ਹੀ ਸਾਜ਼ ਦਰਿਆ ਰਾਵੀ॥
(੭੬) ਗੁਃ ਸ਼ਸਤ੍ਰ ਧਾਰੀ ਜੱਥਾ, ਬਾਦਾਮੀ ਬਾਗ॥
(੭੭) ਗੁਃ ਸ੍ਰ: ਤ੍ਰਲੋਕ ਸਿੰਘ ਜੀ ਚਾਵਲੇ, ਕੂਚਾ ਗਯਾਨੀ ਖਜ਼ਾਨ ਸਿੰਘ॥
(੭੮) ਗੁਃ ਸ੍ਰਦਾਰ ਬਹਾਦੁਰ ਭਗਤ ਸਿੰਘ, ਖਾਲਸਾ ਹਾਈ ਸਕੂਲ॥
(੭੯) ਗੁਃ ਬਾਬਾ ਰਾਮ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਧਯਾਨ ਸਿੰਘ ਬਿਲਡਿੰਗ॥
(੮੦) ਰਾਧਾ ਕੁੰਡ, ਟਕਸਾਲੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਬਾਹਰ॥
(੮੧) ਗੁਃ ਕਿਲਾ ਲਛਮਨ ਸਿੰਘ, ਰਾਵੀ ਰੋਡ॥
(੮੨) ਧਰਮ ਸਾਲ਼ਾ ਭਾਈ ਰਾਮ ਸਿੰਘ, ਗਵਾਲ ਮੰਡੀ॥
(੮੩) ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਭਾਈ ਸਾਧੂ ਰਾਮ, ਸ਼ੇਰਾਂ ਵਾਲਾ ਦਰਵਾਜ਼ਾ॥
(੮੪) ਗੁਃ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ, ਅਮਰ ਗੜ੍ਹ॥

ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਿਆਂ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ॥

ਪੁਰਾਤਨ ਸਮੇ ਤੋਂ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਿਆਂ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਮਹੰਤਾਂ ਅਤੇ ਪੁਜਾਰੀਆਂ ਪਾਸ ਸੀ ਪ੍ਰੰਤੂ ੧੯੨੨ ਵਿੱਚ ਇਹ ਲੈਹਰ ਚਲੀ ਕਿ ਸਖਸ਼ੀ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਿੱਚ ਕਈ ਊਣਤਾਈਆਂ ਰੈਹ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ ਬਲਕੇ ਕਈ ਵਾਰੀ ਹਾਨੀ ਕਾਰਕ ਭੁਲਾਂ ਭੀ ਹੋ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ ਇਸਲਈ ਸਾਰੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਪੰਥਕ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਿੱਚ ਲਿਆਂਦੇ ਜਾਣ, ਚੁਨਾਚਿ ਇਸਦਾ ਅਸਰ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਗੁਰ ਅਸਥਾਨਾਂ ਪਰ ਭੀ ਪਿਆ, ਇਥੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਕਾਇਮ ਹੋਈ ਤੇ ਉਸਨੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਛੇਵੀਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਚੁਮਾਲਾ, ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਲਾਲ ਖੂਹ ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ, ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਦੀਵਾਨ ਖਾਨਾ, ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਸਹੀਦ ਗੰਜ ਭਾਈ ਮਨੀ ਸਿੰਘ, ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਪੈਹਲੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ, ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਬੁਧੂ ਦਾ ਆਵਾ, ਆਦ

ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਆਪਣੇ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਲੈਲਿਆ, ਜੋ ੧੯੨੭ ਵਿੱਚ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਐਕਟ ਅਨੁਸਾਰ ਬਣੀ ਕਮੇਟੀ ਦੇ ਸਪੁਰਦ ਕਰ ਦਿਤਾ ਗਿਆ॥

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਲਾਹੌਰ ਨੇ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਭਾਈ ਜਵਾਹਰ ਸਿੰਘ, ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਸ਼ਹੀਦ ਗੰਜ ਸਿੰਘਣੀਆਂ, ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਸ਼ਕਾਰ ਗੜ੍ਹ ਤਲਾ ਮਲ ਰਾਏ ਦਾ ਮੁਕੱਦਮਾ ਕੀਤਾ ਜੋ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਦੇ ਹੱਕ ਵਿੱਚ ਹੋਇਆ ਅਰ ਤਿੱਨੇ ਅਸਥਾਨ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਨੂੰ ਮਿਲ ਗਏ, ਪਿਛੋਂ ਸ਼ਹੀਦ ਗੰਜ ਸਿੰਘਣੀਆਂ ਅਤੇ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਭਾਈ ਜਵਾਹਰ ਸਿੰਘ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਕਮੇਟੀ ਪਾਸ ਆ ਗਿਆ॥

ਸ੍ਰੋਮਣੀ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਬੰਧਕ ਕਮੇਟੀ ਨੇ ਸੰ: ੧੯੨੫ ਵਿੱਚ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਡੇਹਰਾ ਸਾਹਿਬ ਅਤੇ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਛੇਵੀਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਮੁਜੰਗ ਦੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਲਈ ਲੋਕਲ ਸਜਣਾ ਦੀ ਇਕ ਕਮੇਟੀ ਬਨਾਈ ਜਿਸਦਾ ਸਕੱਤ੍ਰ ਇਸ ਲੇਖ ਦਾ ਲਿਖਾਰੀ ਥਾਪਿਆ ਗਿਆ ਤੇ ਇਸ ਕਮੇਟੀ ਨੇ ੧੯੨੭ ਵਿੱਚ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਐਕਟ ਅਨੁਸਾਰ ਬਣੀ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਕਮੇਟੀ ਨੂੰ ਇਹ ਪ੍ਰਬੰਧ ਸੌਂਪ ਦਿੱਤਾ, ਤੇ ਬਾਕੀ ਗੁਰ ਅਸਥਾਨ ਭੀ ਐਕਟ ਅਨੁਸਾਰ ਬਣੀ ਕਮੇਟੀ ਦੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਿੱਚ ਆ ਗਏ॥

ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਪੈਹਲੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ॥

ਇਹ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਦਿੱਲੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ ਵਜੀਰ ਖਾਂ ਦੀ ਮਸਜਿਦ ਦੇ ਪਿੱਛੇ ਚੁਹੱਟਾ ਮੁਫਤੀ ਬਾਕਰ ਸਿਰੀਆਂ ਵਾਲੇ ਬਾਜ਼ਾਰ ਵਿੱਚ ਹੈ॥

ਨਿਰੰਕਾਰੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਉਧਾਰ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਲਾਹੌਰ ਸ਼ੈਹਰ ਵਿੱਚ ੧੫੬੭ ਬਿ: ਨੂੰ ਭਾਈ ਦੁਨੀ ਚੰਦ

ਦੇ ਘਰ (ਜੋ ਹੁਣ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਹੈ) ਠੈਹਰੇ, ਅਮ੍ਰਿਤ ਵੇਲੇ ਹੀ ਨਾਲ ਦੇ ਬਾਜਾਰ ਵਿੱਚ ਕਸਾਈਆਂ ਦੀਆਂ ਦੁਕਾਨਾਂ ਪਰ ਹਲਾਲ ਕੀਤੇ ਹੋਏ ਬਕਰਿਆਂ ਦੇ ਢੇਰ ਅਤੇ ਸਿਰੀਆਂ ਦੇ ਅੰਬਾਰ ਲਗੇ ਹੋਏ ਵੇਖਕੇ ਉਚਾਰਨ ਕੀਤਾ॥ "ਲਾਹੌਰ ਸ਼ੈਹਰ ਸਵਾ ਪੈਹਰ ਜ਼ੈਹਰ ਕੈਹਰ" ਦੂਜੇ ਦਿਨ ਭਾਈ ਦੁਨੀ ਚੰਦ ਜੀ ਨੇ ਆਪਨੇ ਘਰ ਕਈ ਬ੍ਰਾਹਮਨਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਸ਼ਾਦ ਛਕਾਇਆ, ਜਦ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਇਸਦਾ ਕਾਰਨ ਪੁੱਛਿਆ ਤਾਂ ਉਸ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੈਂ ਆਪਣੇ ਪਿਤਾ ਦਾ ਸਰਾਧ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਫਰਮਾਇਆ ਕਿ ਕਿਸੇ ਲੋੜ ਵੰਦ ਨੂੰ ਪ੍ਰਸ਼ਾਦ ਛਕਾਉਨਾ ਬਸਤਰ ਦੇਣੇ ਅਥਵਾ ਹੋਰ ਕੋਈ ਲੋੜ ਪੂਰੀ ਕਰਨੀ ਬਹੁਤ ਅਛਾ ਹੈ ਪ੍ਰੰਤੂ ਪਿਤ੍ਰਾਂ ਦੀ ਤ੍ਰਿਪਤੀ ਜਾਂ ਪਿਤ੍ਰਾਂ ਤਕ ।ਇਨਾਂ ਵਸਤੂਆਂ ਦਾ ਪੁੱਜਨਾਂ ਨਿਰੀ ਕਲਪਨਾ ਹੈ, ਕਿਉਂਕਿ ਇਕ ਤਾਂ ਇਹ ਪੁੱਜਦੇ ਨਹੀਂ ਦੂਜੇ ਤੈਨੂੰ ਪਤਾ ਹੋਵੇ ਕਿ ਤੇਰਾ ਪਿਤਾ ਬਘਿਆੜ ਦੀ ਜੂਨ ਵਿੱਚ ਹੈ ਜੇ ਤੇਰੀਆਂ ਪੂੜੀਆਂ ਪੁੱਜ ਭੀ ਜਾਨ ਤਾਂ ਓਸ ਨੂੰ ਕੋਈ ਆਧਾਰ ਨਹੀਂ ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਉਸਦਾ ਭੋਜਨ ਨਹੀਂ, ਦੁਨੀ ਚੰਦ ਨੇ ਗਲ ਪਲਾ ਪਾ ਅਤੇ ਹੱਥ ਜੋੜ ਕੇ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਕਿ ਹੇ ਸੱਚੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਮੈਨੂੰ ਭੀ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰਾਓ ਤਾਂ ਦੂਜੇ ਦਿਨ ਜੰਗਲ ਵਿੱਚ ਜਾਕੇ ਦੁਨੀ ਚੰਦ ਨੂੰ ਉਸਦਾ ਪਿਤਾ ਬਘਿਆੜ ਦੀ ਜੂਨੀ ਵਿੱਚ ਦਿਖਾਇਆ ਤੇ ਉਸਦੀ ਮੁਕਤੀ ਕੀਤੀ, ਸੋ ਦੁਨੀ ਚੰਦ ਨੇ ਅਪਨੇ ਮਕਾਨ ਨੂੰ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਬਨਾ ਦਿੱਤਾ, ਇਸ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਪੈਹਲਾਂ ਤੋਂ ਹੀ ਪੁਰਾਤਨ ਗ੍ਰੰਥੀ ਕਰ ਰਹੇ ਸਨ ਸੰਨ ੧੯੨੨ ਵਿੱਚ ਇਸਦੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਲਈ ਸ਼ੈਹਰ ਦੇ ਪਤਵੰਡੇ ਸੱਜਨਾ ਦੀ ਇਕ ਕਮੇਟੀ ਬਨੀ ਜੋ ਸੇਵਾ ਕਰਦੀ ਰਹੀ ੧੯੨੪ ਤੋਂ ਪੁਰਾਨੀ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਪਾਸ ਇਸ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਰਿਹਾ ਤੇ ੧੯੨੭ ਵਿੱਚ ਨਵੀਂ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਨੂੰ ਇਸ ਦਾ ਚਾਰਜ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ॥

ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਗੜ੍ਹ ॥

ਇਹ ਅਸਥਾਨ ਛੋਟੇ ਰਾਵੀ ਦਰਿਆ ਦੇ ਪਾਸ ਬਾਦਾਮੀ ਬਾਗ ਰੇਲਵੇ ਸਟੇਸ਼ਨ ਕੋਲ ਬੰਗਾਲੀਆਂ ਦੇ ਬਾਗ ਦੇ ਪਾਸ ਹੀ ਹੈ॥

ਇਸ ਥਾਂ ਪਰ ਹੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਦੁਨੀ ਚੰਦ ਨੂੰ ਉਸ ਦਾ ਪਿਤਾ ਬਘਿਆੜ ਜੂਨੀ ਵਿੱਚ ਦਿਖਾਇਆ ਤੇ ਉਸ ਦੀ ਮੁਕਤੀ ਕੀਤੀ ਜਿਸ ਤੋਂ ਦੁਨੀ ਚੰਦ ਨੂੰ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋਇਆ ਤੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੀ ਚਰਨੀ ਢੈ ਪਿਆ ਅਰ ਇਹ ਥਾਂ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਮੱਨੀ ਗਈ ॥

ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਜਨਮ ਅਸਥਾਨ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ॥

ਇਹ ਪਵਿਤ੍ਰ ਅਸਥਾਨ ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ ਵਿੱਚ ਹੈ ਜੋ ਰੇਲ ਦੇ ਸਟੇਸ਼ਨ ਤੋਂ ਉਤ੍ਰ ਕੇ ਦਿੱਲੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ ਪੁਰਾਣੀ ਕੋਤਵਾਲੀ ਦੇ ਚੌਕ ਤੋਂ ਸੱਜੇ ਹਥਵਾਲੇ ਰਸਤੇ ਪਰ ਥੋੜੀ ਵਿੱਥ ਤੇ ਹੈ॥

ਇਸ ਮਹਾਂ ਪਵਿਤ੍ਰ ਪੂਜਨੀਯ ਸਥਾਨ ਵਿਖੇ ੧੦ ਕਤੱਕ ਵਦੀ ੧ ਸੰਮਤ ੧੫੯੧ ਬਿ: ਅਰ ੧੫੩੪ ਈ: ੬੭ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸ਼ਾਹੀ, ਵੀਰ ਵਾਰ ਚਾਰ ਘੜੀ ਦਿਨ ਚੜੇ ਸੋਢੀ ਹਰ ਦਾਸ ਮਲ ਜੀ ਦੇ ਗ੍ਰੈਹ ਅਤੇ ਸ੍ਰੀ ਮਤੀ ਮਾਤਾ ਦਯਾ ਕੌਰ ਜੀ ਦੀ ਕੁਖ ਤੋਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਅਵਤਾਰ ਧਾਰਿਆ ਤੇ ਸਤ ਵਰ੍ਹੇ ਇਸ ਅਸਥਾਨ ਨੂੰ ਅਪਣੇ ਚਰਨ ਕਵਲਾਂ ਨਾਲ ਪਾਵਨ ਕੀਤਾ॥

ਸਭ ਤੋਂ ਪੈਹਲਾਂ ਮਹਾਰਾਜਾ ਰੰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਮਹਾਰਾਣੀ ਨਕੈਣ ਨੇ ਮਹਾਰਾਜਾ ਖੜਕ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਜਨਮ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਵਿੱਚ ਇਸ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ

ਦੀ ਮੌਜੂਦਾ ਇਮਾਰਤ ਬਨਵਾਈ ਤੇ ਮੌਜੂਦਾ ਗ੍ਰੰਥੀ ਦੇ ਪਿਤਾ ਪਿਤਾਮਾ ਸੋਢੀ ਖਾਨਦਾਨ ਹੀ ਸੇਵਾ ਕਰਦੇ ਰਹੇ॥ ਸੰਨ ੧੮੮੩ ਈ: ਵਿੱਚ ਜਦ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਲੈਹਰ ਚਲੀ ਤਾਂ ਪੁਰਾਣੇ ਪੰਥ ਸੇਵਕ, ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਲੈਹਰ ਦੇ ਮੋਢੀ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਗਿਆਨੀ ਦਿਤ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਡਾਕਟਰ ਜੈ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਤੇ ਸ੍ਰਦਾਰ ਮਈਆ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਇਥੇ ਹੀ ਪ੍ਰਚਾਰ ਅਰੰਭ ਕੀਤਾ ਤੇ ਦੀਵਾਨ ਸਜਦੇ ਰਹੇ, ਅਰ ਪੰਥ ਉਨਤੀ ਦੀਆਂ ਵਿਚਾਰਾਂ, ਹੁੰਦੀਆਂ ਰਹੀਆਂ, ਇਥੇ ਹੀ ਇਨਾ ਪੰਥ ਆਗੂਆਂ ਨੇ ਸ਼ੁੱਧੀ ਫਿਰ ਅਰੰਭ ਕੀਤੀ, ਜੇ ਅਸੀਂ ਇਥੇ ਇਹ ਗਲ ਲਿਖ ਦੇਈਏ ਕਿ ਮੌਜੂਦਾ ਪੰਥਕ ਉੱਨਤੀ ਦਾ ਅਰੰਭ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਹੀ ਅਰੰਭ ਹੋਇਆ ਤਾਂ ਐਨ ਠੀਕ ਹੈ॥ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਗਯਾਨੀ ਦਿਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਗੁਰ ਪੁਰੀ ਸਧਾਰਨ ਪਿਛੋਂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਦੇ ਦੀਵਾਨ ਕਿਸੇ ਹੋਰ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਲਗਣ ਲਗ ਪਏ ਤੇ ਇਥੇ ਮਹਾਂਰਾਜ ਜੀ ਦਾ ਨਿਤ ਨੇਮ ਨਾਲ ਪ੍ਰਕਾਸ਼, ਦਿਨ ਦਿਹਾਰਾਂ ਪਰ ਦੀਵਾਨ ਸਜਦੇ ਰਹੇ, ਹੁਣ ੧੯੨੭ ਤੋਂ ਇਸਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਜਦ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਪਾਸ ਆਇਆ ਤਾਂ ਕੁਛ ਮਾਨਨੀਯ ਬਜੁਰਗਾਂ ਦੇ ਉਦਮ ਨਾਲ ਅਮ੍ਰਤ ਵੇਲੇ ਨਿਤ ਨੇਮ ਨਾਲ ਆਸਾ ਜੀਦੀ ਵਾਰ ਦੇ ਦੀਵਾਨ ਤੇ ਦਿਨ ਦਿਹਾਰਾਂ ਅਰ ਗੁਰ ਪੁਰਬਾਂ ਪਰ ਖਾਸ ਭਰਵੇਂ ਦੀਵਾਨ ਲਗਣੇ ਆਰੰਭ ਹੋਗਏ ਤੇ ਛੱਤਾਂ ਪਰ ਸੋਨੇ ਦੀ ਸੇਵਾ ਅਰ ਫਰਸ਼ ਪਰ ਸੰਗਮਰਮਰ ਦੀ ਸੇਵਾ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ॥

ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ॥

ਇਹ ਅਸਥਾਨ ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ ਵਿੱਚ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਦੀਵਾਨ ਖਾਨੇ ਦੇ ਵਿੱਚ ਹੀ ਹੈ, ਇਹ ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਦੇ ਬਜੁਰਗਾਂ

ਦੀ ਸੀ ਤੇ ਜਦ ਭੀ ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਲਾਹੌਰ ਆਇਆ ਕਰਦੇ ਸਨ ਤਾਂ ਅਕਸਰ ਇਥੇ ਹੀ ਰਿਹਾ ਕਰਦੇ ਸਨ, ਇੱਥੇ ਇਕ ਪੁਰਾਤਨ ਖੂਹ ਹੈ, ਹੁਣ ਇਹ ਅਸਥਾਨ ਵਖਰਾ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ ਬਲਕੇ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਦੀਵਾਨ ਖਾਨੇ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਮਿਲ ਗਿਆ ਹੈ॥

ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਦੀਵਾਨ ਖਾਨਾ॥

ਇਹ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਚੂਨੇ ਮੰਡੀ ਵਿੱਚ ਜਨਮ ਅਸਥਾਨ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਦੇ ਪਾਸ ਹੀ ਹੈ॥ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਦੇ ਤਾਏ ਸਹਾਰੀ ਮਲ ਜੀ ਦੇ ਪੁਤ੍ਰ ਦਾ ਲਾਹੌਰ ਵਿੱਚ ਵਿਆਹ ਸੀ ਤੇ ਉਸਨੇ ਸੰਮਤ ੧੬੩੫ ਵਿੱਚ ਸ੍ਰੀ ਅਮ੍ਰਿਤਸਰ ਜੀ ਪੁਜਕੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੂੰ ਵਿਆਹ ਪਰ ਆਉਣ ਲਈ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਤੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀਨੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਇਸ ਵਿਆਹ ਪਰ ਜਾਣ ਦਾ ਹੁਕਮ ਦਿਤਾ ਅਰ ਨਾਲ ਹੀ ਇਹ ਭੀ ਕਿਹਾ ਕਿ ਜਦ ਤਕ ਅਸੀਂ ਬੁਲਾਈਏ ਨਾ ਇਥੇ ਨਾ ਆਉਣਾ ਮਹਾਰਾਜ ਇਹ ਹੁਕਮ ਮੰਨਕੇ ਲਾਹੌਰ ਆ ਗਏ, ਵਿਆਹ ਹੋ ਗਿਆ ਬਲਕੇ ਕਈ ਮਹੀਨੇ ਹੋਰ ਭੀ ਬੀਤ ਗਏ ਪਰ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਸੱਦਾਂ ਨਾ ਪੁੱਜਾ ਜਿਸ ਤੋਂ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੇ ਮਨ ਅੰਦਰ ਸਤਿਗੁਰਾਂ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਦੀ ਤੀਬਰ ਇੱਛਾ ਹੋਈ ਤੇ ਇੱਸੇ ਥਾਂ ਤੇ ਬੈਠਕੇ "ਮੇਰਾ ਮਨ ਲੋਚੈ ਗੁਰ ਦਰਸ਼ਨ ਤਾਈਂ" ਵਾਲੇ ਸ਼ਬਦ ਦੀਆਂ ੩ ਪਤ੍ਰਕਾਂ ਲਿਖੀਆਂ ਜਿਸ ਤੋਂ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੂੰ ਸ੍ਰੀ ਅਮ੍ਰਿਤਸਰ ਜੀ ਸੱਦਿਆ ਤੇ ਗੁਰਆਈ ਦੀ ਗੱਦੀ ਬਖਸ਼ੀ, ਇਹ ਉਹੀ ਪਵਿਤ੍ਰ ਅਸਥਾਨ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਬੈਠ ਕੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੇ ਪ੍ਰੇਮ ਪਤ੍ਰਕਾਂ ਲਿਖੀਆਂ॥

ਹੁਣ ਵਾਲਾ ਹਾਲ ਸੰਨ ੧੯੦੬ ਈ: ਵਿੱਚ ਸੰਗਤਾਂ ਦੇ ਉਦਮ ਨਾਲ ਬਣਿਆ ਤੇ ਹੁਣ ਵਾਲੇ ਸੁੰਦਰ ਨਿਸ਼ਾਨ ਸਾਹਿਬ ਅਰ ਬਿਜਲੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਬਾਵਾ ਫਕੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਉਦਮ ਨਾਲ ਇਸਤ੍ਰੀ ਸਤ ਸੰਗ ਸਭਾ ਨੇ ਕਰਾਈ, ਇਥੋਂ ਹੀ ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕਾਣੇ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਮੇਲੇ ਪਰ ਸੰਗਤਾਂਦੇ ਪੈਦਲ ਚਲਕੇ ਜਾਣ ਦਾ ਉਦਮ ਅਰੰਭ ਹੋਇਆ ਤੇ ਇਸ ਸੰਗਤ ਦਾ ਨਾਮ ਗੋਬਿੰਦ ਸੰਗਤ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਹੋਇਆ, ਤੇ ਇਸ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਨਾਲ ਸ੍ਰ: ਚਰਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਲਾਹੌਰ ਵਾਲਿਆਂ ਨੇ ਇਕ ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਪਿੰਡ ਰਾਣਾ ਭੱਟੀ ਜ਼ਿਲਾ ਸ਼ੇਖ਼ੂਪੁਰੇ ਵਿੱਚ ਗੋਬਿੰਦ ਸੰਗਤ ਦੇ ਪੜਾ ਲਈ ਲਗਾ ਦਿਤੀ ਜਿਸ ਨਾਲ ਕੁਛ ਜਮੀਨ ਭੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਕ ਮਾਤਾ ਜੀ ਨੇ ਇਥੇ ਖੂਹ ਲਗਵਾਇਆ ਹੋਇਆ ਹੈ॥

ਇਸ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਪੈਹਲਾਂ ਪੁਰਾਂਣੀ ਗੁ: ਕਮੇਟੀ ਨੇ ਮਹੰਤ ਪਾਸੋਂ ਲਿਆ ਤੇ ਫੇਰ ੧੯੨੭ ਵਿੱਚ ਨਵੀਂ ਕਮੇਟੀ ਦੇ ਸਪੁਰਦ ਕਰ ਦਿਤਾ॥

ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਲਾਲ ਖੂਹ॥

ਇਹ ਅਸਥਾਨ ਵਾਟਰ ਵਰਕਸ ਦੇ ਪਿਛਲੇ ਪਾਸੇ ਬਰੂਦ ਖਾਨੇ ਵਿਚ ਹੈ ਤੇ ਸ਼ਹੀਦ ਗੰਜ ਭਾਈ ਮਨੀ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਜ਼ਦੀਕ ਹੀ ਹੈ॥

ਇਸ ਥਾਂ ਚੰਦੂ ਸ੍ਵਾਈ ਦੀ ਹਵੇਲੀ ਸੀ ਜਦ ਚੰਦੂ ਸ੍ਵਾਈ ਨੇ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਪਾਸੋਂ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੂੰ ਅਪਣੀ ਹਵੇਲੀ ਵਿਚ ਲੈ ਆਂਦਾ ਤਾਂ ਇਸੇ ਸਥਾਨ ਪਰ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੂੰ ਕਸ਼ਟ ਦਿਤੇ ਗਏ, ਉਬਲਦੀਆਂ ਦੇਗਾਂ ਵਿੱਚ ਤੇ ਤੱਤੀਆਂ ਲੋਹਾਂ ਪਰ ਬੈਠਾਇਆ ਗਿਆ, ਤੱਤੀ ਰੇਤ ਪਾਈ ਗਈ ਤੇ ਅਨੇਕ ਤਸੀਹੇ ਦਿੱਤੇ ਗਏ, ਇੱਥੇ ਇਕ ਪੁਰਾਤਨ ਖੂਹ ਭੀ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੇ ਇਸ਼ਨਾਨ ਭੀ ਕੀਤਾ ਸੀ, ॥ ਜਦ ਖੜਗ ਧਾਰੀ ਛੇਵੇਂ

ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ੧੬੭੬ ਬਿ: ਵਿੱਚ ਬਾਦਸਾਹ ਪਾਸੋਂ ਚੰਦੂ ਸ੍ਵਾਈ ਨੂੰ ਲੈਕੇ ਲਾਹੌਰ ਪੁੱਜੇ ਤਾਂ ਲਾਹੌਰ ਦੀਆਂ ਸੰਗਤਾਂ ਨੇ ਉਸ ਦੇ ਨੱਕ ਵਿੱਚ ਨਕੇਲ ਪਾਕੇ ਹੱਟੀ ਹੱਟੀ ਫੇਰਿਆ, ਤੇ ਜਦ ਇਸੇ ਥਾਂ ਪਰ ਪੁੱਜਾ ਤਾਂ ਉਸੇ ਭੜਭੂੰਜੇ ਨੇ (ਜਿਸ ਨੂੰ ਚੰਦੂ ਨੇ ਮਜਬੂਰ ਕਰਕੇ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਪਰ ਰੇਤਾ ਪਵਾਈ ਸੀ) ਚੰਦੂ ਸ੍ਵਾਈ ਦੇ ਸਿਰ ਪਰ ਬੜੇ ਗੁੱਸੇ ਨਾਲ ਐਸਾ ਜੋਰ ਦਾ ਕੜਛਾ ਮਾਰਿਆ ਕਿ ਉਹ ਉੱਥੇ ਹੀ ਤੜਫ ਤੜਫ ਕੇ ਮਰ ਘਿਆ॥

ਇਹ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਬੜਾ ਛੋਟਾ ਜੇਹਾ ਹੈ ਇਸਦੇ ਨਾਲ ਦਾ ਮਕਾਨ ਪੰਥ ਪਾਸੋਂ ਜਾ ਚੁੱਕਾ ਸੀ ਅਰ ਇਸਤੋਂ ਬਿਨਾ ਹੋਰ ਕੋਈ ਮਕਾਨ ਮਿਲਦਾ ਨਹੀਂ ਸੀ ਇਸ ਲਈ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਨੂੰ ਵੱਢਾ ਕਰਨ ਲਈ ਇਸਦਾ ਖ੍ਰੀਦਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਸਮਝਿਆ ਗਿਆ, ਜਿਸ ਲਈ ਪੰਥ ਪਾਸ ੪੫੦੦) ਦੀ ਅਪੀਲ ਕੀਤੀ ਕਈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਸੁਣ ਕੇ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸਰਦਾਰ ਭਗਵਾਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਸਪੁਤ੍ਰ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸਰਦਾਰ ਹਰਦਿਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਆਹਲੂਵਾਲੀਏ ਗੁਰਾਲਾ ਜਿਲਾ ਗੁਰਦਾਸ ਪੁਰ (ਹੁਣ ਪਰਸਤ ਮਲਾਯਾ) ਨੇ ਤਾਰ ਦੀ ਰਾਹੀਂ ਇਹ ਭਾਰੀ ਰਕਮ ਭੇਜ ਕੇ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੀ ਐਨ ਸਮੇ ਸਿਰ ਸੇਵਾ ਕੀਤੀ॥

ਇਸ ਦੀ ਸੇਵਾ ਮਹੰਤ ਪਾਸੋਂ ਪੁਰਾਣੀ ਗੁ: ਕਮੇਟੀ ਨੇ ਲੈ ਲੀਤੀ ਸੀ ਤੇ ੧੯੨੭ ਵਿੱਚ ਨਵੀਂ ਦੇ ਸਪੁਰਦ ਕਰ ਦਿਤੀ॥

ਡੇਹਰਾ ਸਾਹਿਬ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ॥

ਇਹ ਪਵਿਤ੍ਰ ਯਾਦਗਾਰ ਸ਼ਾਹੀ ਕਿਲੇ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਮਹਾਰਾਜਾ ਰੰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਸਮਾਧ ਦੇ ਪਾਸ ਹੀ ਹੈ॥

ਜਦ ਚੰਦੂ ਸੂਾਈ ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਨੂੰ ਅਪਣ। ਹਵੇਲੀ ਵਿੱਚ (ਜਿੱਥੇ ਹੁਣ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਲਾਲ ਖੂਹ ਹੈ) ਅਨੇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਕਸ਼ਟ ਦੇ ਚੁੱਕਾ ਤਾਂ ਇਕ ਦਿਨ ਮਹਾਰਾਜ ਅਪਣੇ ਕੁਛ ਪ੍ਰੇਮੀਆਂ ਸਮੇਤ ਦਰਿਆ ਰਾਵੀ ਪਰ (ਜੋ ਉਦੋਂ ਡੇਹਰਾ ਸਾਹਿਬ ਵਾਲੀ ਥਾਂ ਵਗਦਾ ਸੀ) ਇਸ਼ਨਾਨ ਕਰਨ ਲਈ ਗਏ ਤੇ ਸ੍ਰੀ ਜਪਜੀ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦਾ ਪਾਠ ਕਰਕੇ ੧੬੬੩ ਬਿ:, ਜੇਠ ਸੁਦੀ ਚੌਥ, ਦਿਨ ਸੁਕਰਵਾਰ ਅਮ੍ਰਤ ਵੇਲੇ ਦਰਿਆ ਰਾਵੀ ਵਿੱਚ ਅਲੋਪ ਹੋ ਗਏ ਤੇ ਅਪਣੀਆਂ ਪ੍ਰੇਮੀ ਸੰਗਤਾਂ ਨੂੰ ਸਦਾ ਲਈ ਵਿਛੋੜਾ ਦੇ ਗਏ ॥

ਮੀਰੀ ਪੀਰੀ ਦੇ ਮਾਲਕ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਹਰਗੋਬਿੰਦ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ੧੬੭੬ ਬਿ: ਵਿੱਚ ਲਾਹੌਰ ਆਏ ਤਾਂ ਸਾਰੇ ਗੁਰ ਅਸਥਾਨਾਂ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕੀਤੇ ਅਰ ਪੰਚਮ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਦੇ ਇਸ ਅੰਤਮ ਅਸਥਾਨ ਪਰ ਪੁੱਜਕੇ ਅਪਣੇ ਹੱਥੀਂ ਯਾਦਗਾਰ ਕਾਇਮ ਕੀਤੀ ਅਰ ਭਾਈ ਲੰਗਾਹਾ ਜੀ ਨੂੰ ਇਸਦਾ ਸੇਵਾਦਾਰ ਮੁਕਰੱਰ ਕੀਤਾ ਤੇ ਵਰ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਇੱਥੇ ਕਦੀ ਸਤਸੰਗ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਚਲੇਗਾ, ਸੁੰਦਰ ਮੰਦਰ ਬਣਨਗੇ, ਤੇ ਸੂਰਨ ਦੀ ਜੜਤ ਹੋਵੇਗੀ, ਸੰ: ੧੮੩੮ ਈ: ਵਿੱਚ ਮਹਾਰਾਜਾ ਰੰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਜੀਨੇ ਇਸ ਗੁਰਦੁਆਰੇ ਅਤੇ ਬਾਵਲੀ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰਾਈ, ਫੇਰ ਸੰ: ੧੯੦੫ ਈ: ਵਿੱਚ ਸਚਖੰਡ ਵਾਸੀ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸਰਦਾਰ ਮੇਹਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਬੜੇ ਪ੍ਰੇਮ ਤੇ ਉਤਸ਼ਾਹ ਨਾਲ ਸੰਗਤ ਪਾਸੋਂ ਮਾਇਆ ਇਕਤ੍ਰ ਕਰਕੇ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਅਸਥਾਨ ਬਨਵਾਇਆ, ਅਪਣੇ ਪਾਸੋਂ ਭੀ ਇਕ ਤਕੜੀ ਰਕਮ ਦਿੱਤੀ ਤੇ ਆਸਾ ਜੀ ਦੀ ਵਾਰ ਤੇ ਸੋਦਰ ਦੇ ਦੀਵਾਨ ਅਰੰਭ ਹੋਗਏ ਅਰ ਸਤਿ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਲੰਗਰ ਭੀ ਜਾਰੀ ਹੋਇਆ, ਸੰਗਤਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰੇਮ ਦਿਨੋ ਦਿਨ ਵਧਦਾ ਗਿਆ ਤੇ ਸੰਗਮਰਮਰ ਦੀਸੇਵਾ ਅਰੰਭ ਹੋਈ ਜੋ ਹੁਣ ਤਕ ਜਾਰੀ ਹੈ॥ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਮੂਵਮਿੰਟ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਣ ਪਰ ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਗੁਰਦੁਆਰਾ

ਪ੍ਰਬੰਧਕ ਕਮੇਟੀ ਨੇ ਸੰ: ੧੯੨੫ ਈ: ਵਿੱਚ ਇਸਦੇ ਅਰ ਗੁ: ਛੇਵੀਂ ਪਾਤਸਾਹੀ ਮੁਜ਼ੰਗ ਦੇ ਪ੍ਰਬੰਧ ਲਈ ਇਕ ਬੋਰਡ ਮੁਕਰੱਰ ਕੀਤਾ ਜਿਸਦੇ ਸਕਤ੍ਰ ਦੀ ਸੇਵਾ ਦਾਸ (ਇਸ ਲੇਖ ਦੇ ਲਿਖਾਰੀ) ਨੂੰ ਦਿੱਤੀ ਗਈ ਇਸ ਬੋਰਡ ਨੇ ਸੇਵਾ ਨੂੰ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਲੈਕੇ ਇਮਾਰਤ ਵਲ ਰੁਚੀ ਫੇਰੀ, ਇਸਤੋਂ ਪੈਹਲ਼ਾਂ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੇ ਅੰਦਰ ਦਾਖਲ ਹੁੰਦਿਆਂ ਹੀ ਸੱਜੇ ਪਾਸੇ ਜੋੜੇ ਰਖੇ ਜਾਂਦੇ ਸਨ ਤੇ ਖੱਬੇ ਪਾਸੇ ਹਰਟ ਚਲ਼ਦਾ ਸੀ ਅਰ ਸੰਗਤਾਂ ਅੰਦਰ ਹੀ ਦਾਤਨ ਕੁਰਲਾ ਤੇ ਇਸ਼ਨਾਨ ਕਰਦੀਆਂ ਸਨ ਇਹ ਦੋਵੇਂ ਚੀਜ਼ਾਂ ਸਤਸੰਗ ਵਿਚ ਰੌਲੇ ਦਾ ਕਾਰਨ ਸਨ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਬੋਰਡ ਨੇ ਇਜਲੀ ਦੀ ਮੋਟਰ ਲਗਾਕੇ ਹਰਟ ਬੰਦ ਕਰ ਦਿਤਾ ਤੇ ਟੂਟੀਆਂ ਬਾਹਰ ਕਰ ਦਿਤੀਆਂ, ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਜੋੜੇ ਵਾਲ਼ੇ ਕਮਰਿਆਂ ਦੇ ਬੂਹੇ ਬਾਹਰ ਕੱਢ ਦਿਤੇ ਅਰ ਸਾਰੀ ਜਮੀਨ ਉਚੀ ਕਰਕੇ ਵੇਹੜੇ ਅਰ ਪਰਕਰਮਾਂ ਨਾਲ਼ ਮਿਲ਼ਾ ਦਿਤੀ ਜਿਸ ਨਾਲ ਰੌਲਾ ਬੰਦ ਅਤੇ ਥਾਂ ਖੁੱਲ਼ੀ ਹੋਗਈ॥ ਸੰ: ੧੯੨੭ ਵਿੱਚ ਐਕਟ ਅਨੁਸਾਰ ਬਣੀ ਕਮੇਟੀ ਦੇ ਸੇਵਾ ਸਪੁਰਦ ਹੋਗਈ ਜਿਸਨੇ ੨੬ ਅਪ੍ਰੈਲ ਸੰ: ੧੯੩੦ ਵਿੱਚ ਗੁੰਬਜ ਪਰ ਸੋਨੇ ਦੀ ਸੇਵਾ ਅਰੰਭ ਕਰਾਈ ਇਸ ਸੇਵਾ ਵਿੱਚ ਭਾਈ ਜ੍ਵਾਲਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ੫੨ ਤੋਲ਼ੇ ਸੋਨਾ ਅਤੇ ੪੦੦) ਰੁਪਏ ਨਕਦ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕੀਤੀ ਜੋ ਸਭ ਤੋਂ ਵਢੀ ਰਕਮ ਹੈ ਬਾਕੀ ਅਨੇਕ ਪ੍ਰੇਮੀਆਂ ਨੇ ਨਕਦ ਅਤੇ ਸੋਨਾ ਦੇਕੇ ਇਸ ਵਿੱਚ ਹਿੱਸਾ ਲਿਆ, ੧੯੩੩ ਦੀ ਜੇਠ ਸੁਦੀ ਚੌਥ ਤਕ ਸੰਗਤਾਂ ਵਲੋਂ ਆਇਆ ਹੋਇਆ ੧੦੦੦੦) ਨਕਦ ਤੇ ੪੩੦ ਤੋਲੇ ਸੋਨਾ ਲਗ ਚੁਕਾ ਹੈ, ਗੁੰਬਜ਼ ਪਰ ਸੋਨੇ ਦੇ ਛਤ੍ਰ ਦੀ ਸੇਵਾ ਧਰਮ ਪਤਨੀ ਲਾਲਾ ਮੋਤੀ ਰਾਮ ਜੀ ਅਮ੍ਰਿਤਸਰ ਵਾਲਿਆਂ ਕਰਾਈ, ਡੇਹਰਾ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਅੰਦਰ ਛੋਟੇ ਗੁੰਬਜ ਪਰ ਸੋਨੇ ਦੀ ਸੇਵਾ ਭਾਈ ਸੁਰਜਨ ਸਿੰਘ ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਕੀਤੀ ਤੇ ਕੂਚਾ ਪਟਪਟੀਆਂ ਵਿੱਚ ਮਾਈ ਟਿਕਾ ਦੇਵੀ ਜੀ ਨੇ ਇਕ ਮਕਾਨ ਅਰਦਾਸ ਕਰਾਇਆ॥

ਇਥੇ ਅਮ੍ਰਿਤ ਵੇਲੇ ਆਸਾ ਜੀ ਦੀ ਵਾਰ ਤੇ ਸਾਮ ਨੂੰ ਸੋਦਰ ਦੇ ਭਰਵੇਂ ਦੀਵਾਨ ਸਜਦੇ ਹਨ ਅਰ ਦਿਨ ਦਿਹਾਰ ਤੇ ਗੁਰਪੁਰਬਾਂ ਪਰ ਬੇਅੰਤ ਸੰਗਤਾਂ ਜੁੜਦੀਆਂ ਹਨ, ਹਰ ਸਾਲ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੇ ਜੋਤੀ ਜੋਤ ਸਮਾਉਣ ਪਰ ਬੜਾ ਭਾਰੀ ਮੇਲਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਤੇ ਅਨੇਕ ਛਬੀਲਾਂ, ਲੰਗਰ ਅਤੇ ਦੀਵਾਨ ਸਜਦੇ ਹਨ, ਪ੍ਰੇਮੀ ਸੱਜਨ ਸੰਗਤਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰਦੇ ਹਨ॥ ਇੱਥੇ ਇਹ ਲਿਖਣਾ ਭੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੇ ਸੇਵਾਦਾਰਾਂ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਆਗੂ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਭਾਈ ਤੇਜਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਹਨ ਨੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਮੂਵਮਿੰਟ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਣ ਤੋਂ ਪੈਹਲਾਂ ਹੀ ਐਲਾਨ ਕਰ ਦਿਤਾ ਸੀ ਕਿ ਪੰਥ ਚਾਹੇ ਤਾਂ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੀ ਸੇਵਾ ਅਪਣੇ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਲੈ ਸਕਦਾ ਹੈ, ਅਰ ਜਦ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਬਣੀ ਤਾਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਆਪ ਹੀ ਸਾਰਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਕਮੇਟੀ ਦੇ ਸਪੁਰਦ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਇਹ ਭੀ ਲਿਖਣਾ ਯੋਗ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੀ ਉਨੱਤੀ ਅਤੇ ਵਾਧੇ ਲਈ ਪੁਰਾਣੇ ਸੇਵਾਦਾਰਾਂ ਨੇ ਵਿਤੋਂ ਵਧਕੇ ਹਿਸਾ ਲਿਆ ਇਸਦਾ ਸਾਰਾ ਸੇਹਰਾ ਗੁਰਪੁਰ ਨਿਵਾਸੀ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਭਾਈ ਕਿਸਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਅਤੇ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਭਾਈ ਸੰਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਸਿਰ ਪਰ ਹੈ॥

ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਬਾਵਲੀ ਸਾਹਿਬ ਡੱਬੀ ਬਾਜ਼ਾਰ॥

ਇਹ ਅਸਥਾਨ ਲਾਹੌਰ ਸ਼ੈਹਰ ਦੀ ਪ੍ਰਸਿਧ ਬਿਉਪਾਰੀ ਮੰਡੀ ਡੱਬੀ ਬਾਜਾਰ ਵਿੱਚ ਹੈ, ਇਸਦੇ ਇਕ ਪਾਸੇ ਡੱਬੀ ਬਾਜ਼ਾਰ, ਦੂਜੀ ਤਰਫ ਕਸੇਰਾ ਬਾਜ਼ਾਰ, ਤੀਜੀ ਬਾਹੀ ਲੋਹਾ ਬਾਜਾਰ ਅਰ ਅਗਲਾ ਪਾਸਾ ਬਾਵਲੀ ਸਾਹਿਬ ਬਾਜ਼ਾਰ ਨਾਲ ਲਗਦਾ ਹੈ॥ ਇਸ ਥਾਂ ਪਰ ਪੈਹਲਾਂ ਇਕ ਧਰਮ ਸਾਲਾ ਸੀ ਜਿੱਥੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਦੀਵਾਨ ਸਜਾਕੇ ਸੰਗਤਾਂ ਨੂੰ ਤਾਰਿਆ ਕਰਦੇ ਸਨ, ਸੰਮਤ ੧੬੫੬ ਬਿ: ਵਿੱਚ ਜਦ ਸੱਚੇ

ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਜੀ ਲਾਹੌਰ ਆਏ ਅਰ ਇਸੇ ਥਾਂ ਦੀਵਾਨ ਸਜਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ ਤਾਂ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਹਰੀ ਭਗਤ ਭਾਈ ਛਜੂ ਰਾਮ ਜੀ ਇਕ ਪਠਾਣ ਸਮੇਤ ਦੀਵਾਨ ਵਿੱਚ ਪੁੱਜੇ ਅਤੇ ੧੪੨ ਮੋਹਰਾਂ ਦੀ ਥੈਲੀ ਰਖਕੇ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਕਿ ਇਹ ਮਾਇਆ ਕਿਸੇ ਧਰਮ ਦੇ ਕੰਮ ਪਰ ਖ਼ਰਚ ਕਰ ਲਵੋ ਜਿਸਤੇ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਬਚਨ ਕੀਤਾ ਕਿ ਇਹ ਮੋਹਰਾਂ ਕਿਥੋਂ ਲਿਆਏ ਹੋ ਤਾਂ ਅਗੋ ਛਜੂ ਭਗਤ ਜੀ ਨੇ ਇਸਦੀ ਵਾਰਤਾ ਇਸਤ੍ਰਾਂ ਸੁਣਾਈ ॥

ਕੁਛ ਸਮੇ ਦੀ ਗਲ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਪਠਾਣ ਬੌਹਤ ਸਵੇਰਸਾਰ ਹੀ ਮੋਹਰਾਂ ਦਾ ਬਟੂਆ ਮੇਰੇ ਪਾਸ ਇਮਾਨਤ ਰਖਣ ਲਈ ਆਇਆ, ਉਸ ਵੇਲੇ ਮੁਨੀਮ ਦੁਕਾਨ ਪਰ ਨਹੀਂ ਆਇਆ ਸੀ ਇਸ ਕਰਕੇ ਇਮਾਨਤ ਖਾਤੇ ਵਿੱਚ ਦਰਜ ਕਰਨ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਹੀ ਮੈਂ ਉਹ ਮੋਹਰਾਂ ਸੰਦੂਕ ਦੇ ਇਕ ਖਾਨੇ ਵਿੱਚ ਰੱਖ ਦਿਤੀਆਂ ਤੇ ਪਠਾਣ ਚਲਾ ਗਿਆ, ਮੁਨੀਮ ਦੇ ਆਉਣ ਪਰ ਭੀ ਮੋਹਰਾਂ ਦਰਜ ਕਰਾਉਣੀਆਂ ਭੁਲ ਗਈਆਂ, ਕੁਛ ਸਮੇ ਬੀਤਣ ਪਿੱਛੋਂ ਇਹ ਪਠਾਣ ਇਮਾਨਤ ਲੈਣ ਲਈ ਮੇਰੇ ਪਾਸ ਪੁਜਾ ਮੈਂ ਜਦ ਵਹੀਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇਮਾਨਤ ਖਾਤਾ ਵੇਖਿਆ ਤਾਂ ਉੱਥੇ ਇਸਦੀ ਕੋਈ ਰਕਮ ਦਰਜ ਨਹੀਂ ਸੀ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਨਾਂਹ ਕਰ ਦਿਤੀ, ਇਹ ਮੈਨੂੰ ਸਖਤ ਸੁਸਤ ਬੋਲਦਾ ਹੋਇਆ ਨਵਾਬ ਸਾਹਿਬ ਪਾਸ ਫਰਆਦੀ ਹੋਇਆ ਜਿੱਥੇ ਮੈਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਹੋਣਾ ਪਿਆ, ਪਠਾਣ ਅਪਣਾ ਸਬੂਤ ਪੇਸ਼ ਨਾ ਕਰ ਸਕਣ ਕਰਕੇ ਮੁਕੱਦਮਾ ਹਾਰ ਗਿਆ ॥ ਉਪ੍ਰੰਤ ਦੀਵਾਲੀ ਪਰ ਜਦ ਮੈਂ ਦੁਕਾਨ ਦੀ ਸਫਾਈ ਕੀਤੀ ਤਾਂ ਉਸੇ ਸੰਦੂਕ ਦੇ ਇਕ ਖਾਨੇ ਦੀ ਨੁਕਰ ਵਿੱਚੋਂ ਇਹ ਮੋਹਰਾਂ ਦੀ ਥੈਲੀ ਲਭ ਪਈ ਜਿਸਤੋਂ ਮੈਨੂੰ ਚੇਤਾ ਆਗਿਆ ਤੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਬੜਾ ਪਛਤਾਇਆ, ਅੰਤ ਮੈਂ ਇਸ ਥੈਲੀ ਨਾਲ ਇਕ ਦੁਸ਼ਾਲਾ ਤੇ ੧੦੦) ਲੈਕੇ ਇਸ ਪਠਾਨ ਪਾਸ ਪੁੱਜਾ ਤੇ ਅਗੇ ਰਖ ਕੇ ਖਿਮਾ ਮੰਗੀ, ਇਸ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਜਦ ਮੈਂ

ਅਦਾਲਤ ਵਿੱਚ ਅਪਣਾ ਮੁਕੱਦਮਾ ਹਾਰ ਚੁੱਕਾ ਹਾਂ ਤਾਂ ਹੁਣ ਇਹ ਰਕਮ ਨਹੀਂ ਲੈ ਸਕਦਾ, ਅੰਤ ਅਸਾਂ ਦੋਹਾਂ ਸਲਾਹ ਕਰਕੇ ਆਪ ਪਾਸ ਇਹ ਰਕਮ ਹਾਜ਼ਰ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਹੈ ਆਪ ਜਿੱਥੇ ਚਾਹੋ ਖਰਚ ਕਰ ਸਕਦੇ ਹੋ, ਮਹਾਰਾਜ ਜੀਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੋਹਾਂ ਪ੍ਰੇਮੀਆਂ ਦੀ ਸਲਾਹ ਨਾਲ ਇਸ ਧਰਮ ਸਾਲ ਵਿੱਚ ਬਾਵਲੀ ਲਗਾਉਣੀ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤੀ, ਜਦ ਸੈਹਰ ਦੇ ਨਵਾਬ ਨੂੰ ਇਸ ਦਾ ਪਤਾ ਲਗਾ ਤਾਂ ਉਹ ਭੀ ਇਸ ਸੇਵਾ ਲਈ ਮਾਇਆ ਲੈਕੇ ਹਾਜ਼ਰ ਹੋਇਆ ਅਰ ਹੋਰ ਪ੍ਰੇਮੀ ਸੰਗਤਾਂ ਨੇ ਭੀ ਪ੍ਰੇਮ ਕੀਤਾ ਅਰ ਸੇਵਾ ਸਿਰੇ ਚੜ੍ਹ ਗਈ ॥

ਸੂਬਾ ਖਾਨ ਬਹਾਦੁਰ ਦੇ ਸਮੇ ਇਸ ਬਾਵਲੀ ਨੂੰ ਮਿੱਟੀ ਨਾਲ ਭਰਕੇ ਉਪਰ ਮਕਾਨ ਬਣਾਕੇ ਨਿਸ਼ਾਨ ਹੀ ਗੁੰਮ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ॥

ਸ਼ੇਰੇ ਪੰਜਾਬ ਮਹਾਰਾਜਾ ਰੰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਸੰ: ੧੮੭੮ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਵਾਰੀ ਬੀਮਾਰ ਹੋ ਗਏ ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸੁਫਨੇ ਵਿੱਚ ਹੁਕਮ ਹੋਇਆ ਕਿ ਇੱਥੇ ਇੱਕ ਗੁਰੂ ਕੀ ਬਾਵਲੀ ਹੈ ਉਸਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਕੇ ਉਸਦਾ ਜਲ਼ ਛਕੋਗੇ ਤਾਂ ਆਰਾਮ ਆਵੇਗਾ ਮਹਾਰਾਜੇ ਨੇ ਕਈ ਆਦਮੀ ਇਸਦੀ ਖੋਜ ਪਰ ਲਗਾਏ ਅੰਤ ਇੱਕ ਬ੍ਰਿਧ ਬਾਬੇ ਤੋਂ ਪਤਾ ਲਗਾ ਤਾਂ ਉਪ੍ਰੋਂ ਮਕਾਨ ਢਾਹਕੇ ਬਾਵਲੀ ਪ੍ਰਗਟ ਕੀਤੀ ਗਈ ਤੇ ਮਹਾਰਾਜੇ ਨੇ ਜਲ਼ ਛਕਿਆ ਤਾਂ ਦੇਹ ਅਰੋਗ ਹੋਈ, ੭000 ਫੋਜ ਦੀ ਤਨਖਾਹ ਵਿੱਚੋਂ ਅਤੇ ਇਕ ਤਕੜੀ ਰਕਮ ਅਪਣੇ ਪਾਸੋਂ ਪਾਕੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੀ ਹੁਣ ਵਾਲ਼ੀ ਇਮਾਰਤ ਸੰ: ੧੮੭੮ ਵਿੱਚ ਬਨਵਾਈ ਅਰ ਲੰਗਰ ਦੀ ਸੇਵਾ ਲਈ ਇਰਦ ਗਿਰਦ ਦੁਕਾਨਾ ਬਨਾਈਆਂ ਗਈਆਂ, ਇਸਦੀ ਸੇਵਾ ਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਨਿਹਾਲ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੂੰ ਸੌਂਪਿਆ ਗਿਆ ਤੇ ਫੇਰ ਸੋਢੀ ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਜੀ ਕਰਤਾਰ ਪੁਰ ਵਾਲਿਆਂ ਪਾਸ ਆ ਗਿਆ, ਪ੍ਰੰਤੂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪਿੱਛੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੰਤਾਨ ਨੇ ਦੁਕਾਨਾਂ ਦੀ ਆਮਦਨ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੀ ਬ੍ਰਿਧੀ ਦੀ ਥਾਂ ਅਪਨੇ ਨਿਜਦੇ ਕੰਮਾਂ ਵਿੱਚ ਖ਼੍ਰਚਣੀ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਤੇ

ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਅਨਗੈਹਲੀ ਦੇ ਕਾਰਨ ਕਈ ਦੁਕਾਨਾ ਅਰ ਮਕਾਨਾਂ ਪਰ ਹੋਰ ਲੋਗ ਭੀ ਕਾਬਜ ਹੋਗਏ, ਸੰ: ੧੯੦੩ ਈ: ਤੋਂ ਸੀ ਗੁਰੂ ਸਿੰਘ ਸਭਾ ਲਾਹੌਰ ਨੇ ਇੱਥੇ ਸਪਤਾਹਕ ਦੀਵਾਨ ਤੇ ਗੁਰਪੁਰਬ ਮਨਾਉਣੇ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤੇ ਸੰ: ੧੯੨੧ ਈ: ਵਿੱਚ ਧਰਮ ਮੂਰਤਿ ਗੁਰਖੁਖ ਪਿਆਰੇ ਸੱਚ ਖੰਡ ਵਾਸੀ ਸੰਤ ਅਤ੍ਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਇੱਥੇ ਆਏ ਤੇ ਕਈ ਦਿਨ ਆਸਾ ਜੀ ਦੀ ਵਾਰ ਦਾ ਦੀਵਾਨ ਸਜਾਂਦੇ ਰਹੇ ਅਰ ਜਾਂਦੀ ਵਾਰੀ ਹੁਕਮ ਦੇ ਗਏ ਕਿ ਇੱਥੇ ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਿਤਾ ਪ੍ਰਤੀ ਦੀਵਾਨ ਸਜਿਆ ਕਰੇ, ਜੋ ਹੁਣ ਤਕ ਸਜਦਾ ਹੈ, ੧੯੨੭ ਵਿੱਚ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਇਸਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਆਗਿਆ ਅਤੇ ੧੯੩੧ ਵਿੱਚ ਬਾਹਰ ਦੀਆਂ ਦੁਕਾਨਾਂ ਦਾ ਮੁਕੱਦਮਾ ਭੀ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਦੇ ਹੱਕ ਵਿੱਚ ਹੋ ਗਿਆ॥

ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਛੇਵੀਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਮੁਜੰਗ॥

ਇਹ ਅਸਥਾਨ ਮੁਜੰਗਾਂ ਵਿਖੇ ਟੈਂਪਲ ਰੋਡ ਪਰ ਹਾਈਕੋਰਟ ਦੇ ਪਾਸ ਸਿਵਲ ਸਟੇਸ਼ਨ ਦੀ ਘੁੱਗ ਵਸੋਂ ਵਿੱਚ ਵਾਕਿਆ ਹੈ॥

ਖੜਗ ਧਾਰੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਹਰਗੋਬਿੰਦ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਜਦ ਦਿੱਲੀ ਤੋਂ ਚੰਦੂ ਸੂਾਈ ਨੂੰ ਲੈਕੇ ਲਾਹੌਰ ਪੁੱਜੇ ਤਾਂ ਇੱਥੇ (ਜਿੱਥੇ ਹੁਣ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਹੈ) ਆਕੇ ਠੈਹਰੇ, ਇੱਥੇ ਹੀ ਲਾਹੌਰ ਵਾਸੀ ਕਿਦਾਰੇ ਖਤ੍ਰੀ ਦੀਆਂ ਦੋ ਬੀਬੀਆਂ "ਰੱਜੋ" ਅਤੇ "ਧਰਮੋਂ" (ਜੋ ਬਾਲ ਅਵਸਥਾ ਵਿੱਚ ਹੀ ਵਿੱਧਵਾ ਹੋ ਗਈਆਂ ਸਨ) ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਵਿੱਚ ਪੁਜੀਆਂ ਤੇ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਕਿ ਹੇ ਸੱਚੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਆਪ ਜਦ ਪੈਹਲੇ ਜਾਮੇ ਵਿੱਚ ਸੀ ਤਾਂ ਅਸੀਂ ਆਪਦੇ ਚਰਨਾ ਵਿੱਚ ਹਾਜ਼ਰ ਹੋਈਆਂ ਸਾਂ ਤਾਂ ਆਪਨੇ ਹੁਕਮ ਦਿੱਤਾ ਸੀ ਕਿ ਹਰੀ ਨਾਮ ਜਪੋ ਤੇ ਅਪਣਾ ਜਨਮ ਸਫਲਾ ਕਰੋ ਸੋ ਅਸੀਂ ਮੌਜੂਦਾ ਰਾਜਦੇ ਭੈ

ਕਰਕੇ ਅਪਣੇ ਮਕਾਨ ਅੰਦਰ ਹੀ ਹਰੀ ਭਜਨ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਇੱਨਾਂ ਲੰਮਾ ਸਮਾ ਬਤੀਤ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਹੁਣ ਅਵਸਥਾ ਬੌਹਤ ਹੋ ਗਈ ਹੈ ਤਾਂ ਤੇ ਸਾਨੂੰ ਮੁਕਤੀ ਦਾਨ ਬਖਸ਼ੋ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਹੁਕਮ ਕੀਤਾ ਅਕਾਲ ਪੁਰ ਤੁਹਾਡੀ ਇੱਛਾ ਪੂਰੀ ਕਰੇਗਾ, ਸੋ ਇਹ ਬੀਬੀਆਂ ਇਸਤੋਂ ਕੁਛ ਸਮਾਂ ਪਿੱਛੋਂ ਸੁਰਗ ਵਾਸ ਹੋ ਗਈਆਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਭਾਟੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ ਮਹਾਰਾਜਾ ਨੌਨਿਹਾਲ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਹਵੇਲੀ ਦੇ ਪਾਸ ਭਾਈਆਂ ਦੇ ਮੈਦਾਨ ਵਿਚ "ਰੱਜੋ ਧਰਮੋਂ" ਦੇ ਨਾਮ ਨਾਲ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਹੈ ਤੇ ਹਰ ਸਾਲ ਮੇਲਾ ਲਗਦਾ ਹੈ॥

ਇਸ ਸਮੇਂ ਹੀ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਲਾਹੌਰ ਸ਼ੈਹਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਿਆਂ ਦੇ ਦਰਸਨ ਕੀਤੇ ਅਤੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਡੇਹਰਾ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਯਾਦਗਾਰ ਕਾਇਮ ਕੀਤੀ, ਸੋ ਇਸ ਵੇਰੀ ਮੁਜੰਗਾਂ ਵਿਖੇ ਜਿਸ ਅਸਥਾਨ ਤੇ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਚਰਨ ਪਾਏ ਉਥੇ ਇਹ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਬਨਾਇਆ ਗਿਆ, ਇਸਦੀ ਪੈਹਲੀ ਸੇਵਾ ਮਹਾਰਾਜਾ ਰੰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਕਰਾਈ ਤੇ ਹੁਣ ਵਾਲਾ ਵਡਾ ਅਤੇ ਸੁੰਦਰ ਹਾਲ ਸੱਚ ਖੰਡ ਵਾਸੀ ਪੰਥ ਰਤਨ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸਰਦਾਰ ਮੇਹਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ੧੯੨੬ ਵਿੱਚ ੧੫੦੦) ਅਪਨੇ ਪਾਸੋਂ ਅਤੇ ੨੯੦੦) ਦੀ ਰਕਮ ਗੁਰਪੁਰ ਨਿਵਾਂਸੀ ਭਾਈ ਬਿੱਲੂ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਰਕਮ ਵਿੱਚੋਂ ਖ਼੍ਰਚ ਕੀਤੀ (ਇਸ ਧਰਮ ਖਾਤੇ ਦੀ ਇਤਨੀ ਹੀ ਰਕਮ ਭਾਈ ਪ੍ਰਤਾਪ ਸਿੰਘ ਹਰਨਾਮ ਸਿੰਘ ਜੀਦੇ ਬੈਂਕ ਵਿੱਚ ਗੁਗਲ਼ ਹੋ ਗਈ) ਅਰ ਬਾਕੀ ਆਪ ਉਦਮ ਕਰਕੇ ਸੰਗਤਾਂ ਪਾਸੋਂ ਲਗ ਗਭ ੧੪੦੦੦ ਮਾਇਆ ਇਕਤ੍ਰ ਕੀਤੀ ਅਰ ਇਹ ਆਲੀ ਸ਼ਾਨ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਬਨਾਇਆ ਤੇ ਆਪ ਹੀ ਉਦਮ ਕਰਕੇ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਦੀਵਾਨ ਅਰੰਭ ਕੀਤੇ ਜੋ ਹੁਣ ਤਕ ਲਗਦੇ ਹਣ ਅਤੇ ਗੁਰਪੁਰਬਾਂ ਪਰ ਖਾਸ ਦੀਵਾਨ ਸਜਦੇ ਹਨ ਅਰ ਜੇਠ ਸੁਧੀ ਪੰਚਮੀ ਨੂੰ ਬੜਾ ਭਾਰੀ ਸਾਲਾਨਾ ਮੇਲਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਇਸਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਹੈ ॥

ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਛੇਵੀਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਚੁਮਾਲਾ॥

ਇਹ ਅਸਥਾਨ ਭਾਟੀ ਦਰਵਾਜੇ ਦੇ ਅੰਦਰ ਮਹੱਲਾ ਚੁਮਾਲਾ ਵਿੱਚ ਹੈ ਸੰਮਤ ੧੬੬੯ ਬਿ: ਵਿੱਚ ਲਾਹੌਰ ਦੀ ਸੰਗਤ ਨੇ ਮੀਰੀ ਪੀਰੀ ਦੇ ਮਾਲਕ ਖੜਗ ਧਾਰੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਹਰਗੋਬਿੰਦ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਦਰਬਾਰ ਵਿੱਚ ਹਾਜਰ ਹੋਕੇ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਕਿ ਹੇ ਸੱਚੇ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਲਾਹੌਰ ਵਿੱਚ ਚਰਨ ਪਾਕੇ ਅਤੇ ਸੰਗਤਾਂ ਨੂੰ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇਕੇ ਜਨਮ ਜਨਮਾਤ੍ਰਾਂ ਦੇ ਕਲੇਸ਼ ਦੂਰ ਕਰੋ, ਜਿਸ ਪਰ ਮਹਾਰਾਜ ਦਿਆਲ ਹੋਕੇ ਲਾਹੌਰ ਆਏ ਤੇ ਅਪਣੇ ਪ੍ਰੇਮੀ ਭਾਈ ਜੀਵਨ ਜੀ (ਜੋ ਭਾਟੀ ਦਰਵਾਜ਼ੇ ਦੇ ਅੰਦਰ ਮਹੱਲਾ ਚੁਮਾਲਾ ਵਿੱਚ ਰੈਹਿੰਦੇ ਸਨ) ਦੇ ਘਰ ਨਿਵਾਸ ਕੀਤਾ ਤੇ ਇੱਥੇ ਲਗਾਤਾਰ ਤਿੰਨ ਮਹੀਨੇ ਸੰਗਤਾਂ ਨੂੰ ਤਾਰਦੇ ਰਹੇ, ਇਸ ਸਮੇ ਵਿੱਚ ਹੀ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਹਰੀਜਨ ਛਜੂ ਭਗਤ ਜੀ, ਪੀਲੋ ਜੀ, ਭੈਰੋਂ ਨਾਥ ਜੀ, ਸੋਭਾ ਗਿਰ ਜੀ, ਸ਼ਾਹ ਹੁਸੈਨ, ਆਦ ਸਤਿ ਮਾਰਗ ਦੇ ਖੋਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਪਾਸ ਆਉਂਦੇ ਰਹੇ ਅਤੇ ਪ੍ਰੇਮ ਅਰ ਸ਼ਰਧਾ ਭਰੀ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਕਰਦੇ ਰਹੇ॥ ਕੁਛ ਸਮੇ ਪਿੱਛੋਂ ਭਾਈ ਜੀਵਨ ਜੀ ਨੇ ਅਪਣੇ ਇਸ ਮਕਾਨ ਨੂੰ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਬਨਾ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਸਤਿਸੰਗ ਜਾਰੀ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਇਸਤੋਂ ਬਾਦ ਕੁਛ ਸਮਾ ਬੀਤਣ ਪਰ ਇਸ ਗੁਰਦੁਆਰੇ ਦੀ ਸੇਵਾ ਲਈ ਗ੍ਰੰਥੀ ਦੀ ਲੋੜ ਪਈ ਤਾਂ ਭਾਈ ਜੀਵਨ ਜੀ ਨੇ ਪੁਰਾਣੇ ਗ੍ਰੰਥੀ ਭਾਈ ਨੱਥਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਬਜੁਰਗਾਂ ਨੂੰ ਇਹ ਸੇਵਾ ਸੌਂਪੀ ਜੋ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਰ ਪੀੜ੍ਹੀ ਬੜੇ ਪ੍ਰੇਮ ਨਾਲ ਸੰਗਤਾਂ ਦੇ ਹੁਕਮ ਅਨੁਸਾਰ ਕਰਦੇ ਰਹੇ ਤੇ ਸੰਗਤਾਂ ਪ੍ਰਸ਼ਾਦ ਪਾਣੀ ਅਰ ਮਾਇਆ ਦੁਆਰਾ ਸੇਵਾ ਕਰਦੀਆਂ ਰਹੀਆਂ॥ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਵਾਲੀ ਥਾਂ ਛੋਟੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਸੰਗਤਾਂ ਨੇ ਵੱਡਾ ਹਾਲ ਬਨਾਉਣ ਦਾ ਗੁਰਮਤਾ ਕੀਤਾ ਤਾਂ ਉਸ ਸਮੇ ਦੇ ਉਦਮੀ ਸੇਵਾਦਾਰ

ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਭਾਈ ਤੇਜਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਸੰਗਤਾਂ ਪਾਸੋਂ ਮਾਇਆ ਇਕਤ੍ਰ ਕੀਤੀ ਤੇ ੧੯੧੫ ਵਿੱਚ ਹੁਣ ਵਾਲਾ ਹਾਲ ਤਿਆਰ ਹੋਇਆ, ਪ੍ਰੰਤੂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪਿੱਛੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਭਤੀਜਾ ਹਰੀ ਸਿੰਘ ਨਾ ਤਜਰਬੇਕਾਰੀ ਅਤੇ ਗੁਰਮਤ ਵਿੱਦਿਆ ਤੋਂ ਅਗਯਾਤ ਹੋਣ ਦੇ ਕਾਰਨ ਸੇਵਾ ਦੀ ਥਾਂ ਮਾਲਕੀ ਦੇ ਅਹੰਕਾਰ ਵਿੱਚ ਆਗਿਆ ਤੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਅੰਦਰ ਮੁੰਡਨ ਸੰਸਕਾਰ ਅਦਿ ਮਨਮਤਾ ਕਰਨ ਲਗ ਪਿਆ॥

੧੯੧੯ ਵਿੱਚ ਗੁਹਮਤ ਪ੍ਰਚਾਰਕ ਜੱਥੇ ਵਲੋਂ (ਜਿਸਦਾ ਸਕੱਤਰ ਇਸ ਲੇਖ ਦਾ ਲੇਖਕ ਸੀ) ਇੱਥੇ ਦੀਵਾਨ ਰਖਿਆ ਗਿਆ ਪ੍ਰੰਤੂ ਭਾਈ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੈਂ ਦੀਵਾਨ ਨਹੀਂ ਲਗਣ ਦੇਣਾ ਅਰ ਕਿਸੇ ਨੂੰ ਅੰਦਰ ਨਹੀਂ ਆਉਣ ਦਿਆਂਗਾ, ਦੀਵਾਨ ਸਮੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਦੇ ਬੂਹੇ ਅੱਗੇ ਪੈਹਰੇ ਲਗਾ ਦਿੱਤੇ ਗਏ ਤੇ ਸੰਗਤ ਨੂੰ ਰੋਕਿਆ ਗਿਅ, ਜਿਸ ਪਰ ਸੰਗਤਾਂ ਵਿੱਚ ਜੋਸ਼ ਫੈਲ ਗਿਆ ਤੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਵਿੱਚ ਦੀਵਾਨ ਲਗਾਇਆ, ਜਿਸ ਤੇ ਭਾਈ ਜੀ ਦੀਵਾਨ ਵਿੱਚ ਆਗਏ ਤੇ ਕੀਰਤਨੀਏ ਸਿੰਘਾਂ ਦੀ ਜੋੜੀ ਬਾਹਰ ਸੁਟ ਦਿੱਤੀ ਅਰ ਵਾਜਾ ਤੋੜ ਦਿੱਤ, ਜਿਸਤੋਂ ਭਾਈ ਜੀ ਦੀ ਮੂਰਖਤਾ ਪ੍ਰਗਟ ਹੋਈ ਤੇ ਸੰਗਤਾਂ ਨੇ ਰੋਜਾਨਾ ਦੀਵਾਨ ਲਗਾਉਣੇ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤੇ ਅੰਤ ੧੯੨੩ ਵਿੱਚ ਸਿਖ ਲੀਗ ਦੇ ਸਮਾਗਮ ਸਮੇ ਸੰਗਤ ਜੁੜੀ ਤੇ ਸਰਬ ਸੰਪਤੀ ਨਾਲ ਉਸ ਸਮੇ ਦੀ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰਾ ਕਮੇਟੀ ਦੇ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਇਸਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਆਗਿਆ, ਤੇ ਹੁਣ ਵਾਲੀ ਕਮੇਟੀ ਬਣਨ ਸਮੇ ਉਸਨੂੰ ਚਾਰਜ ਦੇ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ, ਇਮਾਰਤ ਵਿੱਚ ੧੯੨੬ ਵਿੱਚ ਭਾਈ ਗੁਦਿੱਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਪਥਰਾਂ ਵਾਲਿਆਂ ਦੀ ਮੈਨੇਜਰੀ ਸਮੇ ਗੁਰਦ੍ਵਾਰੇ ਅੰਦਰ ਗੈਲਰੀਆਂ ਬਣੀਆਂ ਸਾਰੇ ਰੰਗ ਕੀਤਾ ਗਿਆ, ਫਰਸ਼ ਪਰ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸਰਦਾਰ ਤਰਲੋਕ ਸਿੰਘ ਜੀ ਚਾਵਲੇ ਨੇ ਸੰਗਮਰਮਰ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕੀਤੀ, ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੇ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਲਈ ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸਰਦਾਰ ਗੁਰਸਨ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਸੰਗਮਰਮਰ ਦਾ ਥੜਾ ਬਨਵਾਇਆ॥

ਇੱਥੇ ਪੈਹਲਾਂ ਚੌਂਹ ਮਾਲ੍ਹਾ ਵਾਲਾ ਖੂਹ ਚਲਦਾ ਸੀ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਇਸ ਮਹੱਲੇ ਦਾ ਨਾਮ ਚੁਮਾਲਾ ਪੈ ਗਿਆ॥

हैमलेट

अंक पहला

दृश्य पहला

[**स्थान**-एलसिनोर । किले के आगे का चबूतरा]

[*फ्रान्सिस्को पहरा दे रहा है । बर्नार्डो का प्रवेश*]

बर्नार्डो—कौन है ?

फ्रान्सिस्को—नहीं, ठहरो, तुम जवाब दो और बतलाओ तुम कौन हो ?

बर्नार्डो—महाराज की जय हो । †

फ्रान्सिस्को—बर्नार्डो ?

बर्नार्डो—हा वही हूं ।

फ्रान्सिस्को—तुम बहुत ठीक अपने समय पर आए ।

बर्नार्डो—बारह का घण्टा बज गया है । जाओ फ्रान्सिस्को विश्राम करो ।

फ्रान्सिस्को—इस कृपा के लिए अनेक धन्यवाद । कडाके की सर्दी है, और मेरा दिल भी उक्ता गया है । ‡

बर्नार्डो—पहरा तो शान्ति से बीता ?

फ्रान्सिस्को अपने पहरे पर खडा था इसलिए यह उसका अधिकार था कि वह चैलज करे न कि नए आगन्तुक बर्नार्डो का, इस लिए वह कहता है कि तुम मुझे उत्तर दो ।

† Lit महाराज चिरञ्जीवी हों ।

‡ And I am sick at heart-which means I am heartily weary, thoroughly exhausted

फ्रान्सिस्को—चुहिया तक ने पैर नहीं निकाला ।

बर्नार्डो—ठीक ! अच्छा नमस्कार † । यदि तुम्हें मेरे पहरे के साथी होरेशो और मार्सिलस मिलें तो उन्हें जल्दी आने को कह देना ।

फ्रान्सिस्को—ऐसा मालूम होता है वे आ ही रहे हैं । ग, ठहरो ! कौन है ?

[होरेशो और मार्सिलस का प्रवेश]

होरेशो—इस भूमि के हितचिन्तक ।

मार्सिलस—और महाराज के सेवक ।

फ्रान्सिस्को—नमस्कार ‡ भाई ।

मार्सिलस—भले सिपाही, विदा ! तुम्हारी जगह किसने ली है ?

फ्रान्सिस्को—बर्नार्डो ने । अच्छा नमस्कार (जाता है)

मार्सिलस—अरे बर्नार्डो !

बर्नार्डो—कौन, होरेशो है क्या ?

होरेशो—कुछ कुछ है ही ।

बर्नार्डो—स्वागत होरेशो, स्वागत भले मार्सिलस ।

मार्सिलस—वह वस्तु आज की रात मे फिर दिखाई दी क्या ?

बर्नार्डो—मुझे कुछ दिखाई नहीं दिया ।

मार्सिलस—होरेशो कहता है कि यह सब हमारा भ्रम है । जिस भयानक दृश्य को हम स्वयं दो बार देख चुके है उसके सम्बन्ध मे उसे विश्वास ही नहीं होता । इसलिए मैंने इसे अपने साथ रात को पहरा देने के लिए कह सुन कर मनाया है, जिससे यदि वह भूत फिर प्रकट हो तो इसे हमारे देखे पर विश्वास हो और इससे बात चीत भी करे ।

Lit चुहिया तक नहो सरकी ।

† Good night—तुम्हारे लिए रात्रि शुभ हो । ऐसी आशीर्वाद और सम्बोधन की प्रथा पश्चिमी देशों मे ही है । हिन्दी मे नमस्कार आदि ही कहा जाता है ।

‡ Give you good night—i e God give you good night पूर्ववत इस का अनुवाद नमस्कार ही किया गया है ।

होरेशो—जाने भी दो, वह प्रकट होने से रहा।

बर्नार्डो—अच्छा ज़रा बैठो तो सही। जिस बात को हम स्वयं दो बार देख चुके है उसकी ओर से वैसे तो तुमने अपने कानों मे डाट लगा ही ली है पर हम एक बार फिर इन पर आक्रमण कर देखे।

होरेशो—अच्छा, आओ बैठे और बर्नार्डो से उसकी चर्चा सुने।

बर्नार्डो—कल रात ही की बात है वह तारा जो ध्रुव से पश्चिम की ओर है जहा पर वह अब आकाश के भाग को प्रकाशित कर रहा है वहा पर प्रकाश करने को पहुचा और एक का घण्टा बजा तो मार्सिलस ने और मैंने —

[भूत का प्रवेश]

मार्सिलस—चुप, बात चीत बन्द करो, देखो वह फिर आ पहुचा।

बर्नार्डो—बिल्कुल वही रंग-ढंग है जो हमारे स्वर्गीय महाराज का था।

मार्सिलस—होरेशो तुम विद्वान् हो, तुम्ही इससे बात करो।

बर्नार्डो—बिल्कुल महाराज के सदृश दिखाई देता है न? होरेशो, ध्यान से देखना।

होरेशो—बिलकुल वही है। इसने तो मुझे भय और आश्चर्य से विकल कर दिया।

बर्नार्डो—इस की इच्छा है हम से कोई बात चीत करे।

मार्सिलस—इस से पूछ ताछ करो न होरेशो।

होरेशो—तुम कौन हो जो इतनी रात को ऐसे समय ऊपर अधिकार जमा रहे हो। इसी सुन्दर और वीर-वेश मे डेनमार्क के स्वर्गीय महाराज कभी घूमा करते थे। तुम्हे परमात्मा की क़सम देता हू, बोलो।

Lit मृत।

† जादू आदि में लातनी (Latin) भाषा प्रयुक्त की जाती थी इस लिए मार्सिलस होरेशो से कहता है कि तुम विद्वान हो इस लिए भूत के साथ लातीनी मे वार्तालाप कर सकते हो।

‡ Lit दफनाया जा चुका।

by heaven, I charge thee

मार्सिलस—वह रुष्ट हो गया है।

बर्नार्डो—देखो, वह धीरे धीरे जा रहा है।

होरेशो—ठहरो ! बोलो, बोलो ! तुम्हे सौगध है, बोलो !

(भूत जाता है)

मार्सिलस—वह चला गया और उत्तर न दिया।

बर्नार्डो—अब बताओ होरेशो ! तुम तो काप रहे हो और तुम्हारा मुखडा पीला पड गया है। क्या यह केवल भ्रम ही है या कुछ अधिक ? कहिए, क्या विचार है ?

होरेशो—ईश्वर मेरा साक्षी है, यदि मेरी आंखों की जीती जागती और सच्ची गवाही न होती तो मै कभी न मानता।

मार्सिलस—है न महराज के सदृश ?

होरेशो—हां, जैसे तुम अपनी तरह हो। ठीक ऐसा ही कवच महाराज ने उस समय पहना था जब उन्हों ने अभिमानी नारवे के राजा से युद्ध किया था। इसी प्रकार की त्योडी उन्हों ने उस समय चढाई थी जब कि संधि-सभा * मे क्रोध से उन्होंने बरफ पर तख्तों द्वारा यात्रा करने वाले पोलक † लोगों को मारा था। आश्चर्य ?

मार्सिलस—ऐसे ही दो वेर इस से पहले और ठीक इसी आधी रात के समय शूरवीरों जैसी चाल से चलता हुआ वह हमारे पहरे के समय निकला है।

होरेशो—मै नहीं जानता कि कौन से विचार-विशेष का अनुसरण करूं परन्तु मेरी साधारण राय है कि हमारे देश के लिए यह किसी असाधारण विपत्ति का बुरा शगुन है।

मार्सिलस—अच्छा अब बैठ जाओ। यदि किसी को मालूम हो तो बताओ कि क्या बात है ? हर रात इतनी चौकसाई की जाती है और इतना कडा पहरा

---

* हेमलट के पिता स्वर्गीय महाराज ने पोल लोगों के साथ शीत काल मे सधि संवाद के लिए बुलाई गई कोई कानफ्रेन्स क्रोध के साथ तोड दी होगी और पोल सेना पर भयानक आक्रमण किया होगा।

† पोलेंड (रूस और जर्मनी के मध्यवर्ती एक देश) के रहने वाले।

प्रजा को कष्ट दे रहा है। प्रति दिन पीतल की तोप ढाली जाती है। विदेशों से लडाई के शस्त्र खरीदे जा रहे है। बलात्कार समुद्री सेना मे भरती की जा रही है और रविवार को भी बाकी दिनों की तरह भारी काम करना पडता है क्या होने वाला है जो ऐसा परिश्रम और इतनी जल्दी* हो रही है कि रात दिन की सहकारी बन गई है। कौन है जो मुझे बतला सकता है ?

होरेशो—मै बतलाता हूं, जैसे मैंने लोगों से सुना है। यह तो तुम जानते ही हो कि नारवे के राजा फोर्टिन्ब्रास ने बडे द्वेष और अभिमान के कारण हमारे स्वर्गीय महाराज के साथ,—जिस के सदृश रूप अभी हमारे सामने प्रकट हुआ था,—युद्ध करने का साहस किया था। उस सग्राम मे संसार-प्रसिद्ध शूरवीर हमारे हेमलट (स्वर्गीय महाराज) ने फोर्टिन्ब्रास को मार डाला। वह अपने जीवन के साथ ही साथ सारी उस भूमि को जिस पर उसका अधिकार था खो बैठा। वह सारी की सारी भूमि राज-आज्ञा की मोहर लगी हुई प्रतिज्ञा से तथा आचार और युद्ध-धर्म के अनुसार विजेता के हाथ आई। उतनी ही भूमि का भाग हमारे महाराज ने रण-विजय के शुल्क के लिए पृथक् कर दिया था। जिस प्रतिज्ञा और धार्मिक नियम से उसकी भूमि हमारे महाराज को मिली है उसी प्रतिज्ञा और नियम से वह भूमि यदि वह जीत जाता तो उस के अधिकार मे हो जाती।

प्राक्रमी शूरवीर राजकुमार फोर्टिन्ब्रास ने नार्वे की सीमा के बहुत से प्रदेशों से उद्दण्ड नौजवानों का एक दल केवल भोजन वेतन पर किसी साहस-पूर्ण उद्योग के लिए भरती कर लिया है, और जैसा कि हमारे अधिकारियों को भली भांति प्रतीत होता है इस उद्योग का केवल मात्र अभिप्राय हम से बल पूर्वक उन भूमि-भागो को वापिस लेना है जो भूमि-भाग उस के पिता ने उक्त प्रकार से हार दिये थे। मेरे विचार मे हमारी तय्यारियों का यही बडा कारण है। हमारे इस पहरे की आयोजना तथा देश मे ऐसी शीघ्रकार्यता और मारा-मारी की आवश्यकता भी इसी लिए हुई है।

---

* sweaty haste—Lit पसीने से भरी शीघ्रता।

बर्नार्डो—मैं भी कहता हूं कि यही एक कारण है। दूसरा और कोई हेतु नहीं। इन लडाइयों के कारण हमारे स्वर्गीय महाराज थे और इस मनहूस छाया का शस्त्रबद्ध हो कर हमारे पहरे के समय आना इसी कारण के साथ ठीक बैठता है।

होरेशो—रज-कण की भांति यह छाया हृदय-चक्षु को पीडा देने वाली है। समृद्धि के शिखर पर पहुंचे हुए विजयी रोम राज्य मे, महारथी सीजर की मृत्यु से थोडी देर पहले कबरें खाली हो गई थीं और कफन-लिपटे हुए मुर्दे रोम की गलियों मे चिल्लाते और शोर मचाते हुए सुने गए थे। अग्निज्वाला जिनकी पूंछ थी ऐसे तारे प्रकट हुए। ओस रुधिर-मयी थी। सूर्य-ग्रहण हुआ था। चन्द्र देव जिस के प्रभाव से वरुण का राज्य खडा है प्रलय रात्रि की तरह ग्रहण-रोग से पीडित थे। जिस प्रकार भयानक उपद्रवों के पूर्व-लक्षण भावी दुर्घटनाओं का सदा पहले पता देते है उसी प्रकार आकाश और पृथ्वी दोनों ने हमारे देश और देश-निवासियों के प्रति आने वाली विपत्ति की भूमिका को प्रकट कर दिया है।

(भूत पुनः प्रवेश करता है)

पर, धीरे, लो देखो, वह फिर आ रहा है। मैं इस के सामने जाऊंगा चाहे वह मेरा नाश ही करदे। ठहरो, माया, ठहरो, यदि तुम्हें शब्दों का ज्ञान है या वाणी का प्रयोग कर सकती हो तो बोलो। यदि कोई ऐसा शुभ कार्य्य हो जिस के करने से तुझ को शान्ति और मुझ को यश मिले तो कहो। यदि तुम को अपने देश के भाग्य का भावी ज्ञान है जिस का पहले ज्ञान होने से शायद † बचाव हो सके, तो बताओ। अथवा यदि तुमने अपने जीवन काल मे अन्याय से

पुराने विचार के अनुसार जो भूत के सामने जाता है वह उस के प्रभाव के नीचे आ जाता है।

† happily—haply, per chance कई लेखकों ने इसका साधारण अर्थ happy, fortunate (सौभाग्ययुक्त), भी किया है परन्तु होरेशो के शक्की दिमाग़ के अनुसार per chance (शायद) अर्थ ही ठीक बैठता है।

संञ्चित धन को भूमि में गाड़ा हो तो कहो। लोग कहते हैं कि ऐसे धन के कारण, तुम जैसी मृत-आत्माओं को प्रायः घूमना पड़ता है।

[मुर्गा बोलता है]

ठहरो ठहरो, बोलो। इसे रोको मार्सिलस।

मार्सिलस—अच्छा तो मैं अपनी कुल्हाड़ी से वार करूं ?

होरेशो—जो यह न रुके तो बेशक करो।

बर्नार्डो—यह यहां है!

होरेशो—नहीं यहां है!

मार्सिलस—वह भाग गया! (भूत चला जाता है)

वह ऐसा प्रतापी है कि उस पर वार कर और बल का दिखावा कर हम उस की अवहेलना कर रहे हैं वह तो वायु के समान अवेध्य है और हमारे प्रहार व्यर्थ और द्वेष से पूर्ण उपहास हैं।

बर्नार्डो—वह बोलने वाला ही था कि इसी समय मुर्गा बोल पड़ा।

होरेशो—उसी दम वह चल पड़ा जैसे कोई अपराधी भयानक आह्वानपत्र (सम्मन) मिलने पर (चल पड़ता है)। मैंने सुना है कि मुर्गा उषा का ढोल है और अपनी ऊंची और कर्कश कण्ठ ध्वनि से दिन के देवता को जगा देता है। इसी मुर्गे की बोली मानो सूचना है जिस पर दूर गए और इधर उधर घूम रहे

Lit भूमि के गर्भ में।

† partisan—एक लम्बे दस्ते वाला कुल्हाड़ा। इसी प्रकार का एक शस्त्र जिस को छवि कहते हैं पंजाब में जाट लोग परस्पर लड़ाई के समय प्रयुक्त करते हैं।

extravagent—यह शब्द यहां पर अपने मौलिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। Lat *extra*, beyond (परे, दूर) + *vagari* 'to wander' (भ्रमन करना)।

erring—यह भी अपने मौलिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। Lat *errare*, to 'wander'

भूत, चाहे वह समुद्र मे हों अथवा अग्नि मे हों, चाहे पृथिवी पर हों चाहे वायु मे हों, जल्दी से अपने स्थान को चल देते है। इस बात की सचाई का प्रमाण अभी जो वस्तु हमारे सम्मुख थी उस ने दिया है।

मार्सिलस—मुर्गे की बांग पर वह अन्तर्धान हो गया। कुछ लोग कहते है कि जब वह ऋतु आता है जिस मे हमारे उद्धारक † का जन्म दिन मनाया जाता है तब प्रातःकाल का पक्षी सारी रात गाता रहता है। उस समय लोगो का कहना है कि कोई भी भूत प्रेत इधर उधर नही घूम सकता, राते सुखकारी होती है, ग्रह किसी को कष्ट नही देते, परी किसी को रुग्न नहीं कर सकती और न कोई चुडेल किसी पर जादू कर सकती है, ऐसा पवित्र और शुभ वह समय है।

होरेशो—मैंने भी ऐसा ही सुना है और मेरा कुछ कुछ विश्वास भी है। परन्तु देखो, भगवती ऊषा अपनी रक्तवर्ण की साढी ओढ़े उदयगिरि के ऊचे शिखर की ओस पर से आ रही है। आओ, हम अपने पहरे को समाप्त करें ‡ और मेरी राय है कि जो कुछ हमने आज रात को देखा है वह सब कुमार हेमलेट को बता दे। मै दावे ' से कहता हू कि यह भूत जो हमारे साथ मौन धारण किए रहा है उस के साथ अवश्य बोलेगा। क्या तुम सहमत हो कि यह वृत्तान्त उसे

यह एक पुराना विचार है जो कि मिल्टन मे भी बहुधा पाया जाता है कि चार प्रकार के भूत क्रम से चार प्रकार के महाभूतों (Elements) से सम्बन्ध रखते है। Salamanders अग्नि से, Sylphs वायु से, Nymphs जल से और Gnomes भूमितल से।

† Saviour *i e* Jesus Christ—हज़रत ईसा।

‡ Break we our watch up—"This, let the grammarians say what they will, is a clear instance of the first person plural, in the imperative mood The same has occurred once before 'Well, *sit we down*, and *let us hear* Bernardo speak of this'" (Hudson)

' Lit मुझे अपने जीवन की सौगध है।

बता दिया जाय ? हमारा प्रेम इस बात के लिए हमें विवश करता है और हमारे कर्तव्य के यह अनुकूल है।

मार्सिलस—मेरा भी यही अनुरोध है कि उसे अवश्य बताना चाहिए। आज प्रात काल जिस स्थान पर हम बहुत आसानी से उस से भेंट कर सकते है वह मै जानता हूं।

दृश्य दूसरा

[स्थान—किले मे बारहदरी]

[बाजा बजता है। राजा, रानी, हेमलेट, पोलोनिअस, लायरटीज, वोल्टिमण्ड, कोर्नीलिअस, सरदार और सेवक वर्ग प्रवेश करते हैं]

राजा—यद्यपि हमारे प्रिय भ्राता हेमलेट की मृत्यु की स्मृति अभी ताज़ी है और हमारे लिए उचित था कि हमारे हृदय शोक से भरे रहते और सारा राज्य सताप की भृकुटि मे सिकुड जाता पर ज्ञान † का प्रकृति ‡ के साथ ऐसा युद्ध होता रहा है कि अब हम दार्शनिक शोक के साथ उसका स्मरण करते है और अपने आपको भी स्मरण रखते है । इसलिए हमने अपनी भूतपूर्व भ्रातृदारा से विवाह कर लिया है, वह अब हमारी रानी और इस वीर देश के राज्य मे भाग लेने वाली सराज्ञी है। यह विवाह एक प्रकार से पराजित आनन्द के साथ, एक आंख प्रफुल्ल और दूसरी भरी हुई—मानो सोग मे आनन्द और विवाह मे प्रलाप के साथ, प्रसन्नता और सताप की मात्रा को समान तराज़ू मे तोलते हुए हुआ है ।

आप लोग स्वतन्त्रता पूर्वक इस सारे कार्य्य मे सहकारी रहे है। इस विषय मे आप लोगों की उत्तम बुद्धि की हमने उपेक्षा नही की † । सब का धन्यवाद ।

कुमार हेमलेट का पिता।

† नैतिक अथवा राज्य कार्य्य का विचार।

‡ हृदय के भाव।

* अर्थात् अपनी (प्रजा की) हितचिन्ता भी नही भूलते है।

†† अर्थात हम इस कार्य्य मे आपकी सम्मति से कार्य्य करते रहे है।

अब मै जिस विषय को छेडने लगा हूं वह आपको मालूम ही है। कुमार फोर्टिन्ब्रास हमारे बल और बुद्धि को तुच्छ समझता हुआ अथवा इस विचार से कि हमारे स्वर्गीय प्रिय भ्राता की मृत्यु से हमारे राज्य मे फूट पड गई है और वह सुसंगठित नही रहा, अपने लाभ की स्वप्न-कल्पना कर लगातार दूत भेज कर हमको खिन्न करने से नहीं चूका। उसके पिता ने जो भूमिप्रदेश हमारे महारथी वीर भ्राता के सम्मुख धर्म के अनुसार हार दिए थे उनको लौटा लेने के लिए अग्रसर हो रहा है। यह तो हुआ उसके सम्बन्ध मे। अब कुछ अपने विषय मे और समिति की इस समय की बैठक के विपय मे। कार्य्य यह है कि हमने कुमार फोर्टिन्ब्रास के चाचा नार्वे के वृद्ध राजा को जो रोगी और नपुसिक सा है और जिसको अपने भतीजे के इन उद्देशो का कुछ भी पता नहीं है, अपने भतीजे की इस विपय मे अधिक बढती को रोकने के लिए लिखा है। फौज मे जो सैनिक भरती किए जा रहे है जो नई सेनाएं बनाई जा रही है वे सब—कुल की कुल सख्या—वृद्ध राजा की प्रजा मे से ली जाती है। भद्र कोर्नीलिअस और वोल्टीमण्ड, हम तुम दोनों को इस कार्य्य पर भेजते है। नार्वे-पति के पास हमारा सन्देश ले जाओ। इन विस्तारपूर्वक लिखित बातों से परे नार्वेपति के साथ किसी प्रकार का कोई भी समझौता करने का तुमको कोई अधिकार नहीं है। बिदा, तुम्हारी शीघ्रकारिता तुम्हारी कर्तव्य प्रियता की सूचक होगी।

कोर्नीलिअस, वोल्टिमण्ड—शीघ्रता तथा अन्य सब कार्य्यों मे हम अपनी कर्तव्य-परायणता दिखलायेंगे।

राजा—हमे किसी प्रकार से इस मे सन्देह नहीं। हार्दिक बिदा।

[वाल्टिमण्ड और कोर्नीलिअस जाते है]

और अब, लायर्टीज़ (कहो), क्या समाचार लाए हो। तुम कुछ प्रार्थना करना चाहते थे। क्या बात है लायर्टीज़! यह असम्भव है कि तुम डेनमार्क के स्वामी को कोई युक्ति-युक्त बात कहो और तुम्हारा कथन वृथा हो। लायर्टीज़, कहो वह क्या है जो तुम मागोगे और मै सहर्ष स्वीकार न करूंगा? क्या तुम्हारा कहना (ही) मेरी स्वीकृति नही है? मस्तक का हृदय से इतना

स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं है, हाथ मुख का इतना सहकारी नहीं है जितना डेनमार्क के सिंहासन का तुम्हारे पिता के साथ (सम्बन्ध) है। लायर्टीज, कहो तुम क्या चाहते हो ?

लायरटीज—मेरे पूज्य स्वामी फ्रांस जाने के लिए आप की आज्ञा और अनुग्रह।* यद्यपि अपनी इच्छा से मैं आप के सिंहासन पर बैठने के समय अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए आया था परन्तु अब मेरा कर्तव्य समाप्त हो चुका है और मुझे कहना पडता है कि मेरी इच्छा और मेरे विचार फिर उसी फ्रांस की ओर झुकते है। इनको आपकी अनुमति और आज्ञा के सम्मुख नत करता हूं।

राजा—क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हें आज्ञा दे दी है ? पोलोनिअस क्या कहते हो ?

पोलोनिअस—महाराज ! इसने वारम्बार आग्रह-पूर्वक प्रार्थना करके मुझ से बलात मेरी कुनठिन अनुमति को प्राप्त कर लिया है और अन्त को इसके दृढ संकल्प पर मुझे अपनी अनिच्छित अनुज्ञा की मुहर लगानी पडी। आप से मैं प्रार्थना करता हू कि इसे जाने की आज्ञा दीजिए।

राजा—लायर्टीज, अपने जाने की शुभ घडी निश्चय कर लो। तुम अपने समय के स्वामी हो, अपनी इच्छा के अनुसार, अपने उत्तम गुणों के अनुसार, उसका उपयोग करो। मेरे बन्धु हेमलेट और बेटे—

हेमलेट—[अपवारित] बन्धुत्व के भाव से कुछ अधिक पर हृदय के भाव से कुछ कम।

राजा—यह क्या बात है कि अब भी तुम पर (शोक के) मेघ छाए हुए है।

हेमलेट—नहीं, महाराज, मुझ पर तो सूर्य्य का खूब प्रकाश है।†

---

* pardon—meaning little more than leave permission As in IV, 7 46 and A C III 6 60, 'Where on I begg'd His pardon for return '

† I am much in the sun—'Hamlet's delight in ambiguous and double meanings makes it probable that a play is intended on "sun" and "son" He is too much in the

रानी—वत्स हेमलेट, (अब) अपने (शोक-चिन्ह) काले वस्त्र उतार फैको और डेनमार्क के महाराज को बन्धु की दृष्टि से देखो। शोक से भारी नेत्रों से सदा अपने आर्य्य पिता को क़बर की मिट्टी मे न ढूंढो। तुम जानते हो मनुष्य मात्र के लिए यह साधारण धर्म है। जिस का जन्म हुआ है उस की मृत्यु अवश्य होगी। अमर बनने के लिए इस भौतिक शरीर को अवश्य छोडना पडेगा।

हेमलेट—हा! देवी, यह साधारण धर्म है।

रानी—यदि ऐसा ही है तो फिर तुम क्यों उसको एक विशेष रूप देते हुए प्रतीत होते हो।

हेमलेट—प्रतीत होता हूं! नही देवी, वास्तव मे हू। मैं 'प्रतीत होना' नही जानता। पूज्य माता! यह केवल स्याही के समान चोगा ही नही, न ही काले रंग के प्रथा के अनुसार वस्त्र और न ही ज़ोर जोर से लम्बे लम्बे श्वास द्वारा वायु का बाहिर निकालना, न नेत्रों मे से निरन्तर बहने वाली नदी और न ही मुख पर लाई हुई उदासी और सब प्रकार की शोक प्रकट करने की विधिएं, रूप और चिन्ह मेरा वास्तविक रूप दिखाती है। य सब "प्रतीत होते है" क्योंकि यह ऐसे कार्य्य है जिनको कोई भी दिखलावे के लिए कर सकता है। परन्तु मेरे हृदय मे एक अग्नि है जो दिखलावे—शोक के चिन्ह-भूत काले वस्त्र और प्रक्रिया—से परे है।

राजा—हेमलेट! अपने पिता का इतना शोक करना तुम्मारी प्रकृति का

---

sun-shine of the court, and too much in the relation of son—son to a dead father, son to an incestuous mother, son to an uncle-father It was suggested by Johnson that there is allusion to the proverbial expression (See Lear, II ii, 168) 'Out of heaven's blessing into the warm sun," which means to be out of house and home, Hamlet is deprived of the throne Schmidt takes it to mean merely, "I am more idle and careless than I ought to be" (Dowden)

अर्थात् दिखलावा।

मधुर तथा प्रशंसनीय गुण है। पर याद रक्खो कि तुम्हारे पिता का पिता भी मृत्यु को प्राप्त हुआ और उस मृत पिता का पिता भी। पीछे रहने वाले नामलेवा का कर्तव्य है कि पुत्र-उचित स्नेह के कारण कुछ समय तक मृत्यु शोक मनावे पर हठ-पूर्वक शोक मे लगे रहना अधर्म का कठोर मार्ग है। ऐसा शोक वीरो को उचित नही है। ऐसी बुद्धि परमात्मा के प्रतिकूल है। ऐसा शोक दुर्बल हृदय अस्थिर चित्त तथा मूढ और अशिक्षित मन का विकार है। जो अवश्य होना है, जिस की भवितव्यता का हमे ज्ञान है और जिस का अनुभव इन्द्रियगोचर स्थूल से स्थूल पदार्थ के समान सर्वसाधारण है तो हमारा रूठना, ऐंठना, द्वेप या क्रोध से हृदय को भर लेना मूर्खता है। धिक्कार ! यह दैव को दोप देना है, मरे हुए की अवहेलना है, प्रकृति को कलङ्कित करना है, विचार के विरुद्ध है। पिताओं की मृत्यु होती आई है। यह विचार का सहजसिद्ध विषय है। आदि काल की प्रथम मृत्यु से लेकर अभी मरे हुए को देख कर विचार पुकारता है— यह अनिवार्य है"। हम तुम से अनुरोध करते है कि इस निर्मर्याद शोक को पृथ्वी मे गाड दो। हम को पिता के समान जानो। ससार को विदित है कि हमारे पीछे सब से पहले इस सिंहासन† के तुम ही समीप हो। जो परम वात्सल प्रेम पिता को अपने पुत्र के प्रति होता है उसी उत्कृष्ट वात्सल प्रेम से मैं यह शिक्षा तुम्हे देता हू। फिर विट्टन्वर्ग अध्ययन के लिए जाने का जो तुम्हारा सकल्प है वह हमारी इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल है। तुम हमारे सबसे मुख्य दरबारी, बन्धु और पुत्र हो। हमारा अनुरोध

जो सब के अनुभव मे आता है।

† डेनमार्क का राज्यपद चुनाओं से मिलता था परन्तु जैसा कि अंतिम अंक के अन्तिम दृश्य से मालूम होता है पूर्वशासक की सिफारिश भी काम देती थी।

‡ In Going back to school in Wittenberg—विट्टनवर्ग का यहा पर ज़िकर एक प्रकार का कालगणना मे प्रमाद (anachronism) है क्योंकि विट्टन्वर्ग की यूनीवर्सिटी १५०२ ईसवी से पहिले नहीं बनी थी। school—यह आवश्यक नहीं कि यह उसी अर्थ मे हो जिस मे आज कल प्रयोग करते है क्योंकि वहा यूनीवर्सिटी थी।

है कि तुम यहीं रहो और हमारे नेत्रों को सुख और आनन्द प्रदान करो।*

रानी—हेमलेट! तुम्हारी माता की प्रार्थनाएं व्यर्थ न जायें। मैं तुम से प्रार्थना करती हूं कि हमारे पास रहो, विट्टन्बर्ग मत जाओ।

हेमलेट— देवी, मैं आप की आज्ञा का अपनी पूरी शक्ति से पालन करूंगा।

राजा—खूब, यह उत्तर स्नेह का द्योतक है, प्रिय है। हमारी (ही) प्रकार डेनमार्क मे रहो। देवी, आओ, हेमलेट के इस विनयपूर्वक और स्वेच्छा से मान जाने से मेरे हृदय मे बहुत आनन्द है। इस के उत्सव मे डेनमार्क के स्वामी के प्रमोद भरे शराब के प्रत्येक प्याले के पीने की सूचना बडी तोपे मेघों को देगी। राजा के इस उत्सव की वार्ता आकाश वायु मण्डल मे चारों तरफ फैला देगा। इस की प्रतिध्वनि की गरज फिर पृथ्वी पर पहुंचेगी। आओ

[हेमलेट को छोड सब चले जाते है]

हेमलेट–ओह, मेरी उत्कट इच्छा है कि यह अत्यन्त स्थूल शरीर पिघल जाए, ओस के सदृश द्रव या पानी बन कर बह जाए।† । या ऐसा होता कि अविनाशी प्रभु ने

---

* हमारे सदृश अधिकार और आदर रखते हुए।

† O! that this too too solid flesh would melt, Thaw and resolve itself into a dew,—यहा पर too too की द्विरुक्ति अवधारण (emphasis) के लिए है। melt, thaw, resolve=melt, melt, melt, तीनोंका एकही अर्थ है और केवल अवधारणके लिए प्रयुक्त किए गये है।

हेमलेट के इस आत्मगत भाषण का यहा नाटकीय अभिप्राय यह है कि हेमलेट के करेक्टर (चरित्र) के सम्बन्ध मे जो सूचना और उसके भावों का जो ज्ञान हमे अभी तक प्राप्त हुआ है उसको विस्तार पूर्वक कहा जाए। इस स्थल पर यह आवश्यक भी है क्योंकि हेमलेट को ऐसी सूचना मिलने वाली है जो उसके जीवन को उन्नत कर देगी या भ्रष्ट कर देगी।

नाटककारों की यह साधारण युक्ती (natural expedient) होती है कि पात्र उस मानसिक दशा मे दिखलाया जावे जिसमे वह किसी सूचना या घटना से विशेष प्रकार से प्रभावित होवे। इस आत्मगत भाषण को पढने के पश्चात् हम अधिक स्पष्टता से जान सकते है कि हेमलेट पर होरेशो के वृत्तान्त का क्या प्रभाव होगा।

शास्त्र मे आत्महत्या के विरुद्ध नियम न बनाया होता। परमात्मन्! परमात्मन्! इस संसार की सारी रीतियां मुझे कैसी दुःखदायी, नीरस, फीकी, निष्प्रयोजन प्रतीत होती है! पर धिक्कार! सौ बार धिक्कार! यह ससार एक ऐसा उद्यान है जहां घास फूस की कभी काट छांट नहीं होती और जिस मे लता आदि बेढब उग आते है † और जो काटों वाली विषैली झाडिओं से भर जाता है। शोक है इसकी ऐसी बुरी दशा है! केवल दो ही महीने मरे को हुए है! नही, इतना भी नही दो कहा हुए। सर्वश्रेष्ठ राजा, वर्तमान राजा के साथ तुलना मे ऐसा जैसे किसी जङ्गली आधे घोडे आधे मनुष्य के शरीर वाले प्राणी के मुकाबले मे देदीप्यमान सूर्य्य भगवान् ‡। मेरी माता से उसका इतना प्रेम था कि उसके मुख पर अन्तरिक्ष की पवन के प्रबल स्पर्श को भी सहन नही कर सकता था। हे आकाश और पृथिवी! क्या यह सब बाते मेरी

---

canon—law, *i e*, the Sixth Commandment "Unless it be the sixth commandment, the 'canon' must be one of natural religion (Wordsworth, Shakespeare's Knowledge and use of Bible p 149)

† "Hamlet's brooding melancholy leads him to take a morbid pleasure in making things worse than they are"—(Hudson)

हेमलेट अपनी विमनस चिन्ताशीलता के कारण अवस्था को यथार्थ से अधिक बुरी दशा मे दिखा कर कुछ अस्वस्थ (अनुचित) आनन्द सा लेता प्रतीत होता है। (हडसन)

‡ Hyperion to a Satyr—Hyperion, 'which literally means sublimity was one of the names of Apollo, the most beautiful of all the gods, and much celebrated in classic poetry for his golden locks —दिन का देवता—वह अपने सौन्दर्य और सुनहरी बालों के लिए युनानी और लातीनी कविता मे प्रसिद्ध था। Satyr—बनदेवता जो आधा मनुष्य और आधा घोडा था।

स्मृति मे गडी रहेंगी ? क्या कहूं वह स्त्री उस से ऐसी लिपटी रहती थी जैसे तृष्णा शांति-साधन मिलने से और भी अधिक बढ गई हो। और अब, एक महीने के अन्दर ही--ओहो यह बात मेरे मन से किसी तरह निकल जाए*— चंचलता † तेरा ही नाम स्त्रीत्व है। एक छोटा सा महीना! और अभी उन जूतों की धूली भी नहीं उतरी थी जिनको पहरे नीओबी ‡ की तरह शोक की मूर्ति बनी आंसू बहाती हुई वह मेरे पिता के शव के पीछे गई थी।

एक पशु भी जो ज्ञान तथा बुद्धि विहीन होता है अधिक समय तक शोक करता है पर उसने ** मेरे बाप के भाई मेरे चचा के साथ विवाह कर लिया। मेरा चचा मेरे पिता के ऐसे ही समान है जैसे मै हरक्यूलीज़ †† के समान हू। एक ही महीने मे ? उसके कपट के† आंसुओं की लवणता ‡‡ उसके दुखते हुए नेत्रों की लालिमा को अभी छोडने न पाई थी कि विवाह हो गया।

---

* Let me not think on't--काश ! मै इसे भूल सकता !

† Frailty, thy name is woman! चलचित्तता तू स्त्रीरूप मे मूर्तिमान् है।

‡ Like Niobe, all tears--Niobe, daughter of Tantalus, and wife of Amphion Proud of the number of her children, she boasted her superiority over Lito, mother of Apollo and Artemis, who, indignant at the insult, slew all her children, she herself, according to one tradition, being changed by Zeus at her own request into a stone, which during the summer always sheds tears

** Why she, even she—उसी ने जो शोक की मूर्ति बनी थी।

†† युनान का एक बडा बलवान् और विख्यात योद्धा।

†* Unrighteous—धर्म रहित, कपट पूर्ण। क्यों कि उस के विचार में राज्ञी का शोक झूठा था।

‡‡ आंसू स्वाद में कुछ कुछ नमकीन होते है।

गे अनार्य शीघ्रता, इतनी चतुरता से अनिर्मर्याद शय्या की ओर दौड़ना ! न यह शुभ है न होगी। हृदय तू टकटक † हो जा क्योंकि जिह्वा को रोके रखना मेरे लिए अनिवार्य है।

(होरेशो, मार्सिलस और बर्नार्डो प्रवेश करते हैं)

होरेशो—राजकुमार की जय हो !

हेमलेट—मैं तुम्हे कुशलपूर्वक देख कर प्रसन्न हुआ हूं। होरेशो,—मैं भूल तो नही रहा।

होरेशो—नहीं राजकुमार, मैं वही आपका सदैव का तुच्छ सेवक हूं।

हेमलेट—नहीं जी, मेरे प्रिय मित्र, मैं उस नाम को तुम्हारे विषय मे बदल दूंगा ‡। होरेशो भला विट्टनबर्ग से यहा क्या करने आए हो ? मार्सिल्लस !

मार्सिलस—देव।

हेमलेट—तुम्हे देख कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हू।—(बर्नार्डो को) श्रीमन् कुशलपूर्वक हो ॥। पर सच बताओ, विट्टनबर्ग से तुम क्या करने आए हो।

होरेशो—भ्रमण की इच्छा से, राजकुमार।

हेमलेट—तुम्हारे शत्रु को भी यह कहना उचित न होगा। मेरे कानों के साथ ऐसा बलात्कार मत करो कि तुम अपने ही विरुद्ध सूचना दो और ये मान जाएं। मे जानता हूं कि तुम वृथा भ्रमण नहीं किया करते। एलसिनोर मे तुम्हारा

---

* Incestuous—अविवाहित सम्बन्ध।

† But break my heart— break—"A subjunctive, not an imperative, and 'heart' is a subject and not a vocative" (Corson)

‡ I'll change that name with you अर्थात् मैं तुम्हें मित्र नाम से पुकारना पसन्द करूंगा। Johnson explains "I'll be your servant, and you shall be my friend"

‖ Good even sir—सायं समय शुभ हो।

क्या काम है *? बिदा होने से पहले हम तुम्हें खूब शराब पीना सिखला देंगे।

होरेशो—राजकुमार मैं आपके पिता की उत्तरक्रिया (श्राद्ध) में सम्मिलित होने के लिए आया था।

हेमलेट—सहपाठी! कृपा कर मेरी हंसी न उडाओ। मै समझता हूं तुम मेरी माता का विवाह देखने आए होगे।

होरेशो—निस्सन्देह राजकुमार, यह विवाह झटपट ही हो गया।

हेमलेट—मितव्यय, मितव्यय † होरेशियो! श्राद्ध के लिए पके हुए मास से ही विवाह के सहभोज के लिए शीतल खाद्य पदार्थ प्राप्त हो गए। होरेशो, वह दिन देखना मेरे भाग्य मे न होता! उसके स्थान मे मेरे घोर से घोर शत्रु ‡ से स्वर्ग मे भेंट हो जाती। पिता जी! मुझे मेरे पिता जी के दर्शन हो रहे है।

होरेशो—कहा राजकुमार?

हेमलेट—मेरे मन के नेत्रों मे, होरेशो।

होरेशो—मैंने एक बार उनके दर्शन किए थे। वे तो राज ऋषि थे।

हेमलेट—वह पुरुष-विशेष थे। उन के किसी भी गुण को देखो, ऐसा पुरुप न हुआ न होगा।

होरेशो—राजकुमार, मेरा विचार है कि मैं ने उन के कल रात को दर्शन किए है।

---

* But what is youı affaıı ın Elsınore? 'Peıhaps the sound of ıevellıng should be heaıd from behınd' (Verıty).

† हेमलेट विवाह करने मे अनुचित जल्दी की बात छुपाने के लिए कहने लग जाता है कि सिवाए खर्च कम करने के और कोई कारण न था। the funeıal baked meats—मृत पुरुष के सम्बन्धियों तथा मित्रों को भोजन कराने की रीति प्रचलित थी और आधुनिक समय तक चली आई है। डौस (Douce) के विचार में यह रीति रोमन लोगों (Romans) की उस रीति के कारण से चली है जिसमें वह मृत पुरुषों की आत्माओं को दूध, शहद आदि भेट किया करते थे।

‡ deaıest foe—deadlıest foe.

हेमलेट--दर्शन ? किस के ?

होरेशो--राजकुमार, आप के पूज्य पिता महाराज के।

हेमलेट--मेरे पूज्य पिता महाराज के!

होरेशो--अपने विस्मय को क्षण भर के लिए रोको और मन लगा कर इन दोनों सज्जनों के साक्ष्य से जो अदभुत बात हमने देखी है वह सुनो।

हेमलेट--परमात्मा तुम्हारा भला करे, जल्दी कहो।

होरेशो--इन दोनों सज्जनों मार्सिलस और बर्नार्डो को मृत्यु की तरह प्रशान्त आधी रात के समय बराबर दो रात पहरा देते हुए सामना करना पडा है:- आप के पिता जैसा एक व्यक्ति सिर से लेकर पाओं तक पूर्णतया शस्त्र धारण किए इन के सम्मुख प्रकट होता है और गम्भीर तथा प्रभावशाली गति के साथ धीरे २ घूम कर चला जाता है। इस प्रकार वह तीन दफ़ा घूमा। इन के नेत्र आश्चर्य से व्याकुल थे। केवल राज-दण्ड (की लम्बाई) का ही इन मे अन्तर था पर उस समय भय के प्रभाव से ये प्राणरहित से हो गए। गूंगों की तरह खडे रहे और उससे कुछ न बोले। यह भयानक रहस्य इन्हों ने मुझे बताया। तीसरी रात मैं इन के साथ पहरे पर रहा। वहां पर, जैसा कि इन्हों ने मुझे बतलाया था ठीक उसी समय पर उसी रूप मे, वह भूत प्रकट हुआ-इन का एक एक अक्षर सत्य था। मैं आप के पिता को जानता हूं। ये हाथ एक दूसरे के अधिक समान नही है †।

हेमलेट--पर यह किस स्थान पर हुआ ?

मार्सिलस--देव, उसी चबूतरे पर जहां हम पहरा दे रहे थे।

हेमलेट--तुम उस से बोले नही ?

होरेशो--राजकुमार, मैं बोला पर उस ने कोई उत्तर न दिया। पर मुझे

---

* With attentive ear—सावधान कानों के साथ अर्थात् दत्तचित्त हो कर सुनो।

† These hands are not more like—जैसे यह मेरे दोनों हाथ बिल्कुल एक दूसरे के सदृश है इसी तरह वह रूप आप के पिता के बिल्कुल सदृश था।

ऐसा प्रतीत हुआ कि एक बार इस ने अपना सिर उठाया और कुछ कहने का यत्न किया मानो वह बोलेगा । उसी क्षण प्रातः काल के मुर्गे ने ऊंची आवाज़ से शब्द सुनाया । इस शब्द के सुनते ही वह जल्दी से चला गया और दृष्टि से अन्तर्धान हो गया ।

हेमलेट—यह तो बहुत ही विचित्र है ।

होरेशो—मेरे पूज्य स्वामी जैसे मैं जीता हूं यह सत्य है वैसे ही यह भी सत्य है । आप को इस बात की सूचना देना हमने अपना कर्तव्य समझा ।

हेमलेट—निस्सन्देह, (ऐसा करना चाहिए था) पर मेरा हृदय व्याकुल है । क्या आज भी तुम पहरे पर हो ?

मार्सिलस, बर्नार्डो—हां राज कुमार ।

हेमलेट—'सशस्त्र' तुमने यही कहा था न ?

मार्सिलस, बर्नार्डो—'सशस्त्र' राजकुमार ।

हेमलेट—सिर से पैर तक ?

मार्सिलस, बर्नार्डो—राजकुमार चोटी से पैर के अगूठे तक ।

हेमलेट—तो फिर तुमने उसका मुख नहीं देखा ?

होरेशो—क्यों नही राजकुकार, उस ने अपना मुखावरण † ऊपर उठाया हुआ था ।

हेलेमट—क्या क्रोध की सूचक भृकुटि चढी हुई थी ?

होरेशो—क्रोध की अपेक्षा विषाद के चिन्ह मुख पर दिखाई देते थे ।

हेमलेट—मुख पीला था या लाल ?

---

writ down in our duty—अपनी कर्तव्यपरायणता में लिखा हुआ ।

† he wore his beaver up—मध्यकालीन समय मे शिरस्त्रान के उस भाग को जो मुख के निचले हिस्से को ढापता था बीवर (Beaver) कहते थे और ऊपर के भाग के आवरण को जिस मे आंखों के देखने के लिए छेद भी होते थे विज़र (Visor) कहते थे । बाद मे ऊपर नीचे हो सकने वाले बीवर को विज़र से गडबड कर दिया गया ।

होरेशो—बहुत ही पीला।

हेमलेट—और उसने अपनी दृष्टि को तुम्हारे ऊपर जमाया।

होरेशो—बडी स्थिरता से।

हेमलेट—काश मै वहा पर होता।

होरेशो—आपको बहुत ही आश्चर्य होता *।

हेमलेट—सम्भवत: सम्भवत.। वह देर तक ठहरा ?

होरेशो—इतनी देर जितनी देर मे कोई जल्दी २ सौ गिने।

मार्सिलस बर्नार्डो—नही इससे अधिक देर तक।

होरेशो—जब मै ने देखा तब तो उसने इतनी देर नही लगाई।

हेमलेट—उसकी डाढी के बाल सफेद थे. नही ?

होरेशो—हां सफेद थे जैसा कि मैने उनके जीवनकाल मे देखा था। कुछ २ काले सफैद् थे।

हेमलेट—आज की रात मै भी पहरा दूंगा शायद वह फिर घूमे।

होरेशो—मै निश्चय से कहता हू वह अवश्य आवेगा।

हेमलेट—यदि उसने मेरे पूज्य पिता जी का रूप धारण किया तो मै इससे अवश्य बोलूंगा चाहे नरक शोर मचाए † और मुझे चुप रहने को कहे। मै तुमसे प्रार्थना करता हू कि यदि तुमने अब तक इस दृश्य (की बात) को छुपाए रखा है तो अब भी इसको अपनी मौनता मे स्थिर रक्खो। जो कुछ और भी घटना आज रात्रि को होवे उसके प्रति अपनी बुद्धि प्रदान करो पर जिह्वा नहीं ‡।

---

* amazed—'a stronger word in Elizabethan English than now, confounded into astonishment' (Verity)

† though hell itself should gape, And bid me hold my peace—Staunton suggests that perhaps 'gape' signifies yell, howl, roar, rather than *yawn* or *open*, citing Henry VIII V iv 3

‡ अर्थात बेशक उसके विषय मे सोचो सही पर वाणी से उसके सम्बन्ध मे किसी को कुछ न कहो।

मै तुम्हारे प्रेम का ऋण उतारूंगा। अच्छा! फिर दर्शन होंगे। ग्यारह और बारह के बीच मे मैं तुमसे चबूतरे पर मिलूंगा।

सब—हम सब आप के आज्ञाकारी है।

हेमलेट—यह तुम्हारा प्रेम है जैसा मेरा तुम्हारे प्रति, बिदा।

(होरेशो, मार्सिलस और बर्नार्डो चले जाते है)

मेरे पिता की आत्मा सशस्त्र! कुछ न कुछ बुरी बात है। मुझे किसी पाप कर्म का सन्देह होता है*। रात अभी आ जाए! तब तक मेरे हृदय धीरज धरो, शान्ति से बैठो। पाप कर्म अवश्य प्रगट होंगे चाहे सारी पृथिवी भी उन्हें मनुष्यों की आंखों से ढाप देवे।

दृश्य तीसरा

[स्थान—पोलोनिअस के गृह मे एक कमरा]

[लायर्टीज़ और ओफ़ीलिया प्रवेश करते है।]

लायर्टीज़—मेरा आवश्यक सामान जहाज़ पर पहुंच चुका है, बिदा। बहिन जब (जहाज़ों के जाने के लिए) वायु अनुकूल हो और पत्र भेजा जा सके तो सोई न रहना, मुझे अवश्य पत्र भेजना।

ओफ़ीलिआ—इसमे तुम्हे सन्देह है ?

लायर्टीज़—हेमलेट और उसके साधारण से प्रेम को एक तरह का व्यवहार (रीति) समझना †—रजवाडों का खेल, प्रकृति की युवावस्था-बसन्त-का पाटल शीघ्र खिलने वाला पर अनित्य, मधुर पर अस्थायी—क्षणिक सुगन्धि और मनोरंजन, बस इतना ही।

ओफ़ीलिआ—बस इतना ही ?

---

* कपट क्रिया की और हेमलेट का यह पहला सकेत है।

† अर्थात् फ़ैशन की तरह जल्द बदल जाने वाला समझो। अथवा लायर्टीज़ कहता है कि हेमलेट के विचार मे युवक के लिए यह उचित है कि वह किसी न किसी के प्रति अपना प्रेम प्रकट करे।

लायर्टीज़—इससे अधिक न समझो। जब वृद्धि होती है तो केवल प्रकृति ही बल और परिणाम मे नहीं बढती बल्कि जैसे २ इस (शरीर रूपी) मन्दिर का प्रसार होता है वैसे २ मन और आत्मा का भी आभ्यन्तरिक विकास होता है। सम्भव है कि इस समय उसका तुमसे सच्चा प्रेम हो और कोई मलिनता और कपट उसके हृदय के भाव की पवित्रता को दूपित न करता हो पर उसके उच्च पद को विचार मे रखते हुए तुमको डरना चाहिए। वह अपनी इच्छा का स्वामी नहीं है। वह अपने श्रेष्ठ जन्म के आधीन है। साधारण मनुष्यों की तरह वह अपनी इच्छा के अनुसार यथेष्ट मार्ग पर नहीं चल सकता। सारे राज्य की रक्षा और कल्याण उसके चुनाव * पर निर्भर है। इसलिए उसका चुनाव उस जनसमूह की, जिसका वह शिरोमणि है, इच्छा और अनुमति से अवश्य नियमित होनी चाहिए। तब यदि वह कहे † कि वह तुमसे प्रेम करता है तो तुम्हारी बुद्धि को उचित है कि इस बात पर उसी अवस्था मे विश्वास करे जब कि वह अपने बचन को अपनी पदवी और कर्तव्य के अनुसार ‡, कार्य रूप मे परिणत कर सके. और वह उसकी इच्छा डेनमार्क के लोगों की सहानुभूति से आगे नही जा सकती। इसलिए यदि तुम मुग्ध और निशाक होकर उसके प्रेम-राग को विश्वासपूर्वक सुनोगी या अपना हृदय उसे सौंप दोगी या उसके उच्छृंखल अनुनय के सम्मुख अपने पवित्र निधि को खोल दोगी तो तुम्हारे यश और कीर्ति मे कितना बट्टा लगेगा। इसका भली प्रकार विचार करना। ओफ़ीलिया इस * बात से डरना, मेरी प्यारी बहिन,

---

* अर्थात किस स्त्री को वह अपनी अर्धाङ्गी बनाने के लिए चुनता है।

† Then if he says—तब, इस अवस्था मे जब कि उसकी इच्छा प्रजा की इच्छा के आधीन है।

‡ As in his particular act and deed—'So far only as he, in his public and official character' shall make his promise good—उसी हद्द तक जहां तक कि वह अपने सार्वजनिक और आधिकारक रूप मे अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कर सके।

* उसके प्रेम को स्वीकार कर अपने प्रणय को उसके प्रति अर्पण करने के हानिपूर्ण कार्य से।

इससे डरना। अपने आपको प्रेम के पिछवाडे मे, वासना के भयंकर निशाने की चोट से परे रखना। अधिक से अधिक लज्जा शील युवती भी यदि चन्द्र देव को अपना सौन्दर्य दिखलाती है तो उसे भी काफी असावधान समझना चाहिए। स्वयं पवित्रता भी प्रवाद के आक्रमण से नही बच सकती। अनेक बेर बसन्त ऋतु के नन्हे २ फूलों को उनकी कलिया खिलने से पहले ही यम रूप कीडे भ्रष्ट कर देते हैं। यौवन के प्रभात और उषाकाल मे प्रेम-प्रवात छूत के रोगों की तरह बहुत ही भयानक होते हैं। इसलिए सावधान रहो। भय सब से उत्तम रक्षा है। कोई भी निकट न हो तो भी युवावस्था अपने आप अशृंखल हो जाती है। एकाकी होने पर भी यौवन क्रातिकारी होता है।

ओफीलिया—(तुम्हारे) इस हितकारी उपदेश का प्रभाव मेरे हृदय पर पहरा देगा। पर मेरे अच्छे भाई, ऐसा न करना जैसे कुछ पाखण्डी उपदेशक लोग किया करते है कि मुझे तो दुर्गम और काटों से भरा स्वर्ग का मार्ग दिखलाओ और आप एक उद्दण्ड विचार शून्य व्यभिचारी की तरह, अपने ही उपदेश को ठुकरा कर, भोग विलास के प्रिय मार्ग पर चलो।

लायर्टीज़—ओ, मेरी चिन्ता मत करो। मैने बहुत देर लगा दी है। लो, पिता जी इधर ही आ रहे है।

[पोलोनिअस प्रवेश करता है]

दो बार का आशीर्वाद † दुगना कल्याण करेगा। दैवयोग से दूसरी बार बिदा होने का अवसर मिल गया है।

पोलोनिअस—लायर्टीज़, अभी यहा ही हो। शरम करो और जल्दी २ जहाज़ पर जाओ। (अनुकूल) वायु ने बादबानों ‡ को कन्धों तक भर दिया है और

---

* दुर्मार्ग की ओर आकृष्ट करने वाला कोई दूसरा न भी हो तो भी।

† पोलोनिअस पहले एक बार उसे बिदा कर चुका है।

‡ The wind sits in the shoulder of your sail,—पवन तुम्हारे नौ-वस्त्र अर्थात बादबान के कधे को भर रही है। बादबान जब वायु से भर जाता है तो झुके हुए कंधे की भांति प्रतीत होता है।

होरशो—कुमार हमे यह बात जतलाने के लिए किसी भूत को कबर से (उठकर) आने की आवश्यकता नही ।

हेमलेट—क्यों, ठीक, तुम ठीक कहते हो और इस लिए अधिक शिष्टाचार को बिल्कुल न करते हुए मैं यह उचित समझता हूं कि हस्तपंजा ले हम अपना २ रास्ता लेवें । तुम जैसा कि तुम्हारा कार्य्य और इच्छा उद्दिष्ट करें क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का (अपना अपना) कार्य्य और इच्छा होती है जैसे कि वह हो, और जहा तक मेरे अपने तुच्छ कार्य्य-भाग का सम्बन्ध है, आप देखें मैं प्रार्थना करने के लिए जा रहा हूं ।

होरेशो—कुमार, ये तो अयुक्ति-युक्त और चक्कर-दार ' वाक्य हैं ।

हेमलेट—मुझे हृदय से खेद है कि यह (शब्द) आपको अप्रिय मालूम होते हैं, हा धर्म से, हृदय से (खेद है) ।

होरेशो—नहीं, कुमार, अप्रियता की कोई बात नही ।

हेमलेट—हा, सन्त पेटरिक की सौगंध † है होरेशो, और बहुत अप्रिय (अर्थात अनिष्ट) है । यहा इस छाया के सम्बन्ध मे यह मुझे तुमको

चुप हो जाता है और गुप्ति का प्रकाश न कर इसे उपहास का रूप दे देता है । इस वाक्य मे हेमलेट का संकेत अपने चचा की ओर है ।

सम्भवतः मार्सिलस की ओर ध्यान जाने से हेमलेट ने भेद प्रकाशन युक्त न समझा हो ।

' निरर्थक ।

† By Saint Patrick —In connection with 'the offence' there is special propriety in the oath It was given out that a serpent stung Hamlet's father, the serpent now wears his crown St Patrick was the proper saint to take cognisance of such an offence, having banished serpents from Ireland In *Richard II* II I 157, Shakespeare alludes to the freedom of Ireland from venomous creatures—Dowden Some think that St Patrick is referred to simply as a

वता देना चाहिए कि यह एक नेकनीयत भूत है। (और) जो आपकी यह जानने की इच्छा है कि हमारे दरमयान (गुप्त भेद) क्या है, सो (मैं आप से निवेदन करूंगा कि) आप इसको जिस प्रकार हो सके दमन करने का यत्न करें। अन्त मे भले मित्रो, चूंकि तुम मित्र, विद्वान् और योद्धा हो, मेरी एक तुच्छ याचना स्वीकार करो।

होरेशो--क्या है, वह कुमार। हम अवश्य करेंगे।

हेमलेट--कभी न करो प्रकट जो तुमने आज देखा है।

होरेशो, मार्सिलस--कुमार, हम (कदाचित्) नही करेंगे।

हेमलेट--नही केवल यह नही, किन्तु शपथ उठाओ।

होरेशो--धर्म से, कुमार, मैं नही (करूंगा)।

मार्सिलस--नही, कुमार, मैं धर्म से कहता हूं।

हेमलेट--मेरी तलवार उठा कर (शपथ खाओ) †

मार्सिलस--कुमार हम आगे ही शपथ खा चुके है।

हेमलेट--वास्तविक रूप मे, मेरी तलवार उठा कर, वास्तविक रूप मे (शपथ खाओ)।

भूत--(नीचे से) सौगंध उठाओ।

हेमलेट--आह, हा, दोस्त ऐसे तुम कह रहे हो! तुम हो वहां भले आदमी ‡?--आओ, तुम इसको पृथिवी तल के नीचे (बोलते) सुन रहे हो, शपथ उठाना मान जाओ।

,'Keeper of Purgatory" (the "Prison-house" of the Ghost in his presen state) सन्त पेटरिक की सौगन्ध खाने मे विशेष युक्तता है। सन्त पेटरिक ने सापों को आयरलैंड से निकाल दिया था अथवा सन्त पेटरिक को शुद्धिस्थान का जिस का जिकर पहले आचुका है रखवाला कहा गया है।

* not I, *i e* I will not divulge it

† Upon my sword—it was customary to swear upon a sword, the hilt of which with the blade formed a cross

तलवार के दस्ते की शकल क्रास (cross) जैसी होने के कारण उसको उठा कर सौगध खाने का रिवाज था।

‡ *true-penny*——Hearty old fellow Collier says he has learnt, from Sheffield authorities, that it is a mining term, signifying an indication in the soil of the direction in which ore is to be found

होरेशो—कुमार, शपथ का प्रस्ताव कीजिए ।

हेमलेट—जो कुछ तुमने देखा है इसे कभी प्रगट मत करो। मेरी तलवार पर शपथ खाओ।

भूत—(नीचे से) सौगंध उठाओ।

हेमलेट—यहां और सब जगह ? तो हम अपना स्थान बदल लेते हैं। सज्जनो इधर आ जाओ और मेरी तलवार पर पुनः हाथ रखो। जो कुछ तुम ने सुना है इसे कभी प्रकट मत करो। मेरी तलवार पर शपथ खाओ।

भूत—(नीचे से) सौगन्ध उठाओ।

हेमलेट—खूब कहा, बूढे चूहे ! भूमि मे इतनी जल्दी काम कर सकते हो क्या ? तुम अच्छे खनिक हो—एक बार और, भले मित्रो, स्थान बदलो।

होरेशो— हे दिवस और रात्रि (तुम ही कहो क्या) यह आश्चर्य पूर्ण अचम्भा (नहीं) है !

हेमलेट—और इसलिए अभ्यागत † की सदृश इसका स्वागत करो। होरेशो इस ब्रह्माण्ड ‡ मे बहुत सी ऐसी बातें है जो तुम्हारे तर्क शास्त्र के स्वप्न मे भी नहीं आ सकती। पर आओ, परमात्मा की कृपा सदा तुम पर हो, चाहे मेरा व्यवहार कितना ही विचित्र या असाधारण क्यों न हो, क्योंकि इसके पश्चात शायद मैं यह युक्त समझूं कि मैं विलक्षण रूप धारण किए रखूं और ऐसे समय पर मुझे देख कर बाहुओं को एक दूसरी मे लटका कर या इस

---

* *Hic et ubique*—here and every where, हेमलेट भूत को कहता है कि क्या तुम यहां वहा और सब जगह हो ?

† And therefore as a stranger give it welcome——give it welcome——'do not refuse to *entertain* it would be some equivlaent for the quibble on *strange* and *stranger* (Verity) चूंकि तुम इस घटना को अजीब (strange आश्चर्यजनक) समझते हो इस लिए इस का अजनबी (stranger, अभ्यागत) के रूप मे स्वागत करो अर्थात इस पर निश्चय करो।

‡ in heaven and earth—पृथिवी और द्युलोक मे।

तरह से सिर हिला कर या कुछ अस्पष्ट वाक्य कह कर जैसे "हा, हां, हम जानते हैं," अथवा "यदि हम चाहें तो हम (बतला) सकते हैं" अथवा "यदि हम कहना पसन्द करें" अथवा "ऐसे है यदि वह चाहे तो" अथवा इसी प्रकार के चक्रदार वचनों से यह कभी प्रकट मत करो कि तुम मेरे सम्बन्ध मे कुछ भी जानते हो। ऐसा कभी मत करो। परमात्मा का कल्याण और कृपा तुम्हारे बडे कडे समय मे तुम्हारी सहायता करें, सौगन्ध उठाओ।

भूत—[नीचे से] सौगन्ध उठाओ!

हेमलेट—ठहरो, ठहरो, उद्विग्न चेतना!

[*वह शपथ खाते है*

तो फिर सज्जनो, अपने पूर्ण प्रेम के साथ मे आप से अपनी सिफारिश करता हू और एक असमर्थ मनुष्य जैसा कि हेमलेट है अपने प्रेम और उपकार भाव को प्रकट करने के लिए जो कुछ कर सकता है, ईश्वर ने चाहा तो उससे पीछे न रहेगा। आओ हम इकट्ठे चलें। मै प्रार्थना करता हूं कि सदैव अपने होंठों पर अंगुलिया धरे रखना [*]। बडे विप्लव का समय है—हे नीच असूया, इसको ठीक करने के लिए मैं क्यों पैदा हुआ? † —नही ‡ आओ हम इकट्ठे चलेंगे।

[चले जाते है।

(पहला अंक समाप्त हुआ)

---

[*] अर्थात जो कुछ तुमने देखा है उसके विषय मे मौन रहना। "अंगुली का होंठों पर रखना इस बात का चिन्ह है कि मौन धारण रखा जाए" अथवा जब कोई होंठों पर अंगुली रखता है तो यह प्रकट करता है कि विस्मय के कारण वह मौन है इसलिए होंठों पर अंगुली रखना मौन धारण की निशानी हुई।

† हेमलेट को इस बात का दुःख नही कि उसे बिगडे हुए समय को ठीक करना होगा बल्कि वह जिसका आवश्यक रूप से कर्तव्य इसको ठीक करना ठहरा पैदा क्यों हुआ। (Seymour)

‡ हारेशो और मार्सिलस इस विचार से कि वह एकेला रहना चाहता है, जाने वाले थे।

ਪਾਠਕ ਜਨ ਇਹ ਸੁਨ ਕੇ ਖ਼ੁਸ਼ ਹੋਵਨਗੇ ਕਿ ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਪਕਾਸ਼ ਪੁਸਤਕ ਰਚਿਤ ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ ਜਿਸ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਭਾਈ ਸਾਹਿਬ ਸਿੰਘ ਜੀ ਬੀ. ਏ. ਨੇ ਕੁਝ ਚਿਰ ਹੋਇਆ ਕੀਤਾ ਅਰ ਜੋ ਗਿਆਨੀ ਇਮਤਿਹਾਨ ਵਿਖੇ ਪੰਜਾਬ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਵੱਲੋਂ ਨੀਯਤ ਹੋਈ ਇਕ ਪੁਸਤਕ ਹੈ, ਉਸ ਦੀਆਂ ਹੁਣ ਕੁਲ ਕਠਨਾਈਆਂ ਦੂਰ ਹੋ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਕਿਓਂ ਜੋ ਸਾਡੇ ਪਾਸ ਇਸ ਵੇਲੇ (੧) ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦਾ ਜੀਵਨ (੨) ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਦਾ ਗਦਯ ਵਿਖੇ ਸਾਰ ਅਰ (੩) ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਵਿੱਚੋਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਉਚਾਰੇ ਸ਼ਬਦਾਂ ਦਾ ਟੀਕਾ ਪੁਜ ਗਿਆ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਉਸ ਵਿੱਚੋਂ ਥੋੜਾ ਥੋੜਾ ਹਿੱਸਾ ਪਾਠਕਾਂ ਦੀ ਦ੍ਰਿਸਟਿ-ਗੋਚਰ ਕਰਾਂਗੇ। ਪੈਹਲੀ ਕਿਸ਼ਤ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਪ੍ਰਥਮ ਭਾਗ ਇਸ ਵਾਰੀ ਛਾਪੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ॥

(ਐਡੀਟਰ)

ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦਾ ਜੀਵਨ।

ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ ਬੂੜੀਆ (ਜ਼ਿਲਾ ਅੰਬਾਲਾ) ਨਿਵਾਸੀ ਸਤ-ਸੰਗੀ ਪੁਰਖ ਸਨ ਇਹ ਸੰਤ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਨਿਰਮਲੇ ਦੀ ਸੰਗਤਿ ਕਰਕੇ ਵੇਦਾਂਤ ਅਤੇ ਗੁਰਬਾਣੀ ਦੇ ਗਜਾਤਾ ਹੋਏ। ਵਿਦ੍ਯਾ ਦੀ ਰੁਚੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰੇਰ ਕੇ ਸ੍ਰੀ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ ਜੀ ਲੈ ਆਈ। ਉਸੇ ਥਾਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਘਰ ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦਾ ਜਨਮ ਸੰਮਤ ੧੮੪੫ ਵਿੱਚ ਹੋਇਆ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਅੰਮ੍ਰਤਸਰ ਜੀ ਦੇ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਗਜਾਨੀ ਸੰਤ ਸਿੰਘ ਜੀ ਤੋਂ ਕਾਵ੍ਯ ਵਿਦ੍ਯਾ ਪੜ੍ਹੀ। ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ ਕਾਵ੍ਯ ਦੇ ਪੂਰਨ ਪੰਡਿਤ ਅਤੇ ਕਵਿਤਾ ਰਚਣ ਦੀ ਅਲੌਕਿਕ ਸ਼ਕਤਿ ਰਖਦੇ ਸਨ। ਆਪ ਨੇ ਬੂੜੀਏ ਵਿੱਚ ਰਹਿ ਕੇ ਅਮਰ-ਕੋਸ਼ ਦਾ ਉਲਥਾ ਕੀਤਾ ਅਤੇ ਸੰਮਤ ੧੮੮੦ ਵਿੱਚ 'ਗੁਰ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼' ਪੁਸਤਕ ਰਚਿਆ। ਇਸਤੋਂ ਪਿੱਛੋਂ ਇਹ ਮਹਾਰਾਜ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਜੀ ਪਾਸ

ਪਟਿਆਲੇ ਜਾ ਨੌਕਰ ਹੋਏ । ਸੰਮਤ ੧੮੮੨ ਵਿੱਚ ਕੈਥਲਪਤਿ ਭਾਈ ਉਦਯ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮਹਾਰਾਜਾ ਪਟਿਆਲਾ ਤੋਂ ਮੰਗ ਕੇ ਲੈ ਲਿਆ ਅਤੇ ਬੜੇ ਸਨਮਾਨ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਪਾਸ ਰਖਿਆ ।

ਕੈਥਲ ਵਿੱਚ ਰਹਿ ਕੇ ਭਾਈ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਸੰਮਤ ੧੮੯੬ ਵਿੱਚ ਜਪੁਜੀ ਦਾ ਟੀਕਾ ਗਰਬ ਗੰਜਨੀ ਰਚਿਆ ਅਤੇ ਭਾਈ ਉਦਯ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਨੌਕਰ ਪੰਡਿਤਾਂ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਨਾਲ ਕਵੀ ਜੀ ਨੇ ਬਹੁਤ ਪੁਸਤਕ ਹਿੰਦੀ ਮਿਲੀ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿੱਚ ਬਣਾਏ ਅਤੇ ਨੌ ਸਤਗੁਰਾਂ ਦੀ ਪਵਿਤ੍ਰ ਜੀਵਨ ਕਥਾ 'ਗੁਰਪ੍ਰਤਾਪਸੂਰਯ' ਗ੍ਰੰਥ ਵਿੱਚ ਲਿਖੀ, ਜੋ ਸੰਮਤ ੧੯੦੦ ਦੇ ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਸਮਾਪਤ ਹੋਇਆ । ਇਸੇ ਸਾਲ ਭਾਈ ਸੰਤੋਖ ਸਿੰਘ ਜੀ ਕੈਥਲ ਵਿੱਚ ਗੁਰਪੁਰਿ ਪਧਾਰੇ । ਕਵਿਰਾਜ ਜੀ ਦੇ ਬਣਾਏ ਹੋਏ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਪੁਸਤਕ ਇਹ ਹਨ :—
(੧) ਅਮਰਕੋਸ਼ । (੨) ਗੁਰਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸੰਮਤ ੧੮੮੦ (੩) ਜਪੁਜੀ ਸਾਹਿਬ ਦਾ "ਗਰਬਗੰਜਣੀ ਟੀਕਾ" ਜੋ ਸੰਮਤ ੧੮੯੬ ਵਿੱਚ ਸਮਾਪਤ ਕੀਤਾ । (੪) ਆਤਮ ਪੁਰਾਣ ਦਾ ਉਲਥਾ ੧੮੯੧ (੫) ਗੁਰੁਪ੍ਰਤਾਪ ਸੂਰਯ (ਸੂਰਜ ਪ੍ਰਕਾਸ਼) ਸੰਮਤ ੧੯੦੦ । (ਗ. ਸ਼. ਰ. ਭਾਈ ਕਾਹਨ ਸਿੰਘ ਜੀ)

ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਦਾ ਸਾਰ ।

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਕਰਤਾਰ ਪੁਰ ਵਿਖੇ ਗੁਰ ਗੱਦੀ ਦਾ ਤਿਲਕ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਬਖਸ਼ਿਆ ਅਰ ਆਪ ਸਚਖੰਡ ਵਿਖੇ ਸਿਧਾਰ ਗਏ । ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮਾਨੋਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ ਵਿਖੇ ਦੂਜਾ ਰੂਪ ਧਾਰਨ ਕਰ ਲਿਆ । ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਆਪਨਾ ਨਿਵਾਸ-ਅਸਥਾਨ ਹੁਨ ਖਡੂਰ ਸਾਹਿਬ ਬਨਾ ਲਿਆ, ਇੱਥੇ ਰਹਿੰਦਿਆਂ ਆਪ ਜੀ ਨੂੰ ਇੱਕ ਦਿਨ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਜਨਮ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਅੰਤ ਤੀਕ ਕਥਾ ਸੁਨਣ ਦੀ ਚਾਹ ਹੋਈ । ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਬਾਲੇ ਨੂੰ

ਵੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਦੀ ਖਿੱਚ ਹੋਈ। ਇੱਕ ਸਿੱਖ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਰਾਹ ਦੱਸਿਆ, ਬਾਲੇ ਨੇ ਖਡੂਰਸਾਹਿਬ ਵਿਖੇ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਜਾ ਦਰਸ਼ਨ ਕੀਤੇ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਪੁੱਛਨ ਤੇ ਆਪਨੀ ਸੰਧੂ ਗੋਤ, ਤਲਵੰਡੀ ਪਿੰਡ ਅਰ ਬਾਲਾ ਨਾਉਂ ਦਾ ਪਤਾ ਦਿੱਤਾ ਅਰ ਨਾਲ ਹੀ ਇਹ ਵੀ ਦੱਸਿਆ ਜੋ ਮੇਰੇ ਗੁਰੂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਸਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਉਮਰ ਮੈਥੋਂ ਤਿੰਨ ਸਾਲ ਵੱਡੀ ਸੀ। ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਬਾਲੇ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਜਨਮ ਤੋਂ ਲੈਕੇ ਸਾਰੀ ਕਥਾ ਮੈਨੂੰ ਸੁਨਾਓ। ਬਾਲੇ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੈਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਜਨਮ ਕਥਾ ਤੋਂ ਅਨਜਾਨ ਹਾਂ ਪਰੰਤੂ ਲੋਕਾਂ ਤੋਂ ਸੁਨਿਆਂ ਹੈ ਜੋ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦਾ ਜਨਮ ਕਤਕ ਦੀ ਪੂਰਨਮਾਸੀ ਅਰ ੨੭ ਵੇਂ ਨਿਛਤ੍ਰ ਦੀ ਚੰਗੀ ਰਾਸ ਸਮੇਂ ਹੋਇਆ ਸੀ, ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਜਨਮ ਪਤ੍ਰੀ ਜੋ ਬ੍ਰਹਮਨ ਨੇ ਲਿਖੀ ਸੀ ਉਹ ਇਸ ਵੇਲੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਪਿਤਾ ਕਾਲੂ ਜੀ ਦੇ ਵੱਡੇ ਭਰਾ ਲਾਲੂ ਜੀ ਦੇ ਘਰ ਤਲਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਪਈ ਹੋਈ ਹੈ। ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਦੀ ਨੇ ਬਾਲੇ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਓਹ ਜਨਮ ਪਤ੍ਰੀ ਆਪ ਜਾ ਕੇ ਲੱਭ ਲਿਆਓ ਅਰ 'ਲਾਲਾ ਪੰਨੂ' ਨਾਮੀ ਸਿਖ ਨਾਲ ਭੇਜਿਆ। ਇਹ ਦੋਵੇਂ ਤਲਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਲਾਲੂ ਜੀ ਦੇ ਘਰ ਪਹੁੰਚੇ ਅਰ ਭਾਲ ਕਰ-ਦਿਆਂ ਕਰਦਿਆਂ ਜਨਮ ਪਤ੍ਰੀ ਪੰਜਵੇਂ ਦਿਨ ਲੱਭੀ ਅਰ ਉਸ ਨੂੰ ਸਿਰ ਮੱਥੇ ਤੇ ਰਖ ਕੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ ਵੱਲ ਖਡੂਰ ਸਾਹਿਬ ਨੂੰ ਤੁਰ ਪਏ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਜਨਮ ਪਤ੍ਰੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਿ ਅਖਰਾਂ ਵਿਖੇ ਲਿਖੀ ਡਿੱਠੀ ਤਾਂ 'ਮਹਿਮਾ ਖਹਿਰਾ' ਜੱਟ ਨੂੰ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਵਿਖੇ ਭੇਜ ਕੇ ਪੈੜਾਮੋਖਾ ਨਾਮੇ ਖਤ੍ਰੀ ਨੂੰ ਬੁਲਾ ਭੇਜਿਆ ਜੋ ਓਹ ਆਕੇ ਜਨਮ ਪਤ੍ਰੀ ਦਾ ਉਤਾਰਾ ਗੁਰਮੁਖੀ ਅਖਰਾਂ ਵਿਖੇ ਕਰ ਦੇਵੇ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਅੰਗਦਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਜਨਮ ਪਤ੍ਰੀ ਪੈੜੇ ਮੋਖੇ ਤੋਂ ਲਿਖਵਾਈ।

ਜਨਮ ਕਾਰਨ ।

ਰਾਜੇ ਅਨਜਾਈ ਹੋ ਗਏ, ਗਰੀਬਾਂ ਨੂੰ ਦੁੱਖ ਮਿਲਨ ਲੱਗਾ। ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇ ਕਾਮਨਾ ਵਧ ਗਈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਧਰਮ ਵਿਖੇ ਹੁੰਦੀਆਂ ਕੁਰੀਤੀਆਂ ਨੂੰ ਦੇਖ ਪਰਮਾਤਮਾ ਨੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਕਈਆਂ ਅਵ-ਤਾਰਾਂ ਨੂੰ ਭੇਜਿਆ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸੰਸਾਰ ਵਿਖੇ ਆਕੇ ਆਪਨੇ ਆਪਨੇ ਪੰਥ ਚਲਾਏ ਅਰ ਸੱਚਾ ਮਾਰਗ ਕਿਸੇ ਨੇ ਵੀ ਨਾ ਦੱਸਿਆ। ਤਾਂ ਤੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਦਯਾ ਆਈ ਕਿ ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਉਧਾਰ ਹੋਵੇ ਅਰ ਉਹ ਕੁਪੰਥ ਨੂੰ ਤਿਆਗ ਸਿੱਧੇ ਰਾਹ ਤੁਰਨ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਹੀ ਕਾਰਨਾ ਕਰਕੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦਾ ਇਸ ਸੰਸਾਰ ਵਿਖੇ ਆਗਮਨ ਹੋਇਆ।

ਜਨਮ ਸਥਾਨ ।

ਬਾਰ ਦੇਸ ਵਿਖੇ ਤਲਵੰਡੀ ਨਾਮ ਇਕ ਨਗਰ ਸੀ ਜਿੱਥੇ ਬੇਦੀਆਂ ਦੀ ਬੰਸ ਰਹਿੰਦੀ ਸੀ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਬੇਦੀਆਂ ਦੀ ਕੁਲ ਵਿੱਚੋਂ ਸ਼ਿਵਰਾਮ ਨੇ ਜਨਮ ਲਿਆ ਜਿਸਦੀ ਇਸਤ੍ਰੀ ਦਾ ਨਾਉਂ ਬਨਾਰਸੀ (ਬਨਾਰਸੀ ਦੇਵੀ) ਸੀ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਦੋ ਪੁਤ੍ਰ ਹੋਏ, ਵੱਡੇ ਦਾ ਨਾਉਂ ਕਾਲੂ ਰੱਖਿਆ ਅਰ ਛੋਟੇ ਦਾ ਲਾਲੂ।

ਕਾਲੂ ਜੀ ਦੇ ਘਰ ਕੁਝ ਚਿਰ ਮਗਰੋਂ ਲੜਕੀ (ਬੀਬੀ ਨਾਨਕੀ ਜੀ) ਨੇ ਜਨਮ ਲਿਆ। ਇਸ ਦੇ ਪਿੱਛੋਂ ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਪਾ ਕੇ ਕਤਕ ਦੀ ਪੂਰਨ-ਮਾਸੀ ਸੰਮਤ ੧੫੨੬ ਬਿਕ੍ਰਮੀ ਨੂੰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਜਨਮੇ, ਅਰ ਮਹਿਤਾ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਹੀ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਹੋਈ।

ਬਾਲਕ ਲੀਲਾ ।

ਅਗਲੇ ਦਿਨ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਪੰਡਤ ਹਰਿਦਯਾਲ ਨੂੰ ਬੁਲਵਾ ਕੇ ਬਾਲਕ ਦੀ ਜਨਮ ਪਤ੍ਰੀ ਬਨਵਾਈ। ਹਰਿਦਯਾਲ ਪੰਡਤ ਨੇ ਆ ਕੇ ਦੌਲਤਾਂ ਦਾਈ ਪਾਸੋਂ ਬਾਲਕ ਦੇ ਜਨਮ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸੱਭ ਸਗਨ ਅਪਸਗਨ

ਪੁੱਛੇ ਤਾਂ ਉਸ ਨੇ ਦੱਸਿਆ ਜੋ ਇਹ ਬਾਲਕ ਜਮਦਿਆਂ ਹੀ ਰੋਣ ਦੀ ਥਾਂ ਹੱਸਨ ਲੱਗਾ ਜੋ ਮਾਨੋਂ ਕੋਈ ਪਰਤਾਪਵਾਨ ਪੁਰਸ਼ ਹੋਵੇਗਾ। ਪੰਡਤ ਨੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਕਹਿਆ ਕਿ ਏਸ ਬਾਲਕ ਦੇ ਸਿਰ ਉਪਰ ਦੀਨ ਦੁਨੀ ਦਾ ਛਤ੍ਰ ਝੁੱਲੇਗਾ ਅਰ ਇਹ ਕੋਈ ਅਵਤਾਰੀ ਪੁਰਸ਼ ਹੈ। ਪੰਡਤ ਨੇ ਇਸ ਬਾਲਕ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕੀਤੇ ਅਰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਅੱਜ ਤੋਂ ਤੇਰਵੇਂ ਦਿਨ ਨੂੰ ਆ ਕੇ ਮੈਂ ਹੀ ਬਾਲਕ ਦਾ ਨਾਉਂ ਧਰਾਂਗਾ। ਸੋ ਪੰਡਿਤ ਨੇ ਆ ਕੇ ਬਾਲਕ ਦਾ ਨਾਉਂ 'ਨਾਨਕ' ਰਖਿਆ।

ਬਾਲਕ ਲੀਲਾ।

ਬਾਲ ਲੀਲਾ ਕਰਦਿਆਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਬੀਤਿਆ। ਘਰੋਂ ਕਪੜੇ, ਬਸਤ੍ਰ, ਗਹਿਣੇ ਆਦਿ ਲੈਕੇ ਬਾਹਰ ਗਰੀਬਾਂ ਨੂੰ ਵੰਡ ਆਉਂਦੇ। ਬਾਲਕਾਂ ਨੂੰ ਭਗਤੀ ਅਰ ਵਿਰਾਗ ਰਸ ਦੀਆਂ ਭਰੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਸੁਨਾਉਂ-ਦੇ ਹੁੰਦੇ ਸਨ। ਬਾਲਕ ਵੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਮਗਰ ੨ ਜਿੱਥੇ ਓਹ ਜਾਂਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ।

ਗੋਪਾਲ ਪਾਂਧੇ ਪ੍ਰਤਿ ਉਪਦੇਸ਼।

ਕਾਲੂ ਜੀ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਪਾਂਧੇ ਪਾਸ ਵਿਦਜਾ ਪ੍ਰਾਪਤਿ ਦੀ ਇੱਛਾ ਨਾਲ ਲੈ ਗਏ। ਜਦ ਪਾਂਧੇ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਫੱਟੀ ਉਤੇ ਲੇਖਾ ਹਿਸਾਬ ਦਸਿਆ ਅਰ ਕਹਿਆ ਕਿ ਇਸ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰੋ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਸ਼ਬਦ ਦ੍ਵਾਰਾ ਸੱਚਾ ਲੇਖਾ ਪੜ੍ਹਾ-ਇਆ ਸ਼ਬਦ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਗੋਪਾਲ ਪਾਂਧੇ ਪ੍ਰਤਿ ਉਚਾਰਨ ਕੀਤਾ ਸੋ ਇਕਰ ਹੈ:---'ਜਾਲਿ ਮੋਹੁ ਘਸਿ ਮਸੁ ਕਰਿ --ਨਾਨਕ ਉਠੀ ਚਲਿਆ ਸਭਿ ਕੂੜੈ ਤੁਟੈ ਨੇਹ'। (ਦੇਖੋ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫ਼ਾ ਨੰਬਰ ੧੭, ੧੮) ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਗੋਪਾਲ ਪਾਂਧੇ ਨੂੰ ਸੱਚਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦੇ ਕੇ ਘਰ ਆਏ। ਅਗਲੇ ਦਿਨ ਕਾਲੂ ਜੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਉਂਗਲੀ ਨਾਲ

ਲਾ ਕੇ ਫਿਰ ਉਸੇ ਹੀ ਪਾਂਧੇ ਪਾਸ ਲੈ ਤੁਰੇ ਜੋ ਉਹ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਪਿਆਰ ਨਾਲ ਪੜ੍ਹਾਵੇ। ਅੱਗੋਂ ਪਾਂਧੇ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਬਹੁਤ ਉਪਮਾ ਕੀਤੀ ਤੇ ਦੱਸਿਆ ਕਿ ਇਹ ਤਾਂ ਸਾਨੂੰ ਸਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਾਂਵਣ ਹਾਰ ਹਨ, ਜੋ ਕੋਈ ਇਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਵਧ ਕੇ ਜਾਣਦਾ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਾਵੇ। ਇੱਤਯਾਦਿਕ ਗੱਲਾਂ ਸੁਨ ਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਕੇ ਘਰ ਆਏ। ਹੁਣ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਜਿੱਥੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਜੀ ਚਾਹੁੰਦਾ ਵਿਚਰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ।

ਮੁੱਲਾਂ ਪਾਸ ਪੜ੍ਹਨਾ।

ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਖਿਆਲ ਆਇਆ ਕਿ ਬਾਲਕ ਦਾ ਅਵਾਰਾ ਫਿਰਨਾ ਚੰਗਾ ਨਹੀਂ, ਸੋ ਉਸ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਕੇ ਮੌਲਵੀ ਪਾਸ ਪਹੁੰਚੇ ਤਾਂ ਜੋ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਉੱਥੇ ਕੁਝ ਫ਼ਾਰਸੀ ਦੇ ਹੀ ਅੱਖਰ ਸਿਖ ਲੈਨ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉੱਥੇ ਵੀ ਉਹ ਹੀ ਕਲਾ ਦਿਖਾਈ ਜੇਹੜੀ ਅੱਗੇ ਪਾਂਧੇ ਪਾਸ ਦਿਖਾ ਚੁਕੇ ਸਨ। ਮੁੱਲਾਂ ਤੋਂ ਭੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨਾ ਪੜ੍ਹਾਏ ਜਾ ਸਕੇ, ਅੰਤ ਉੱਥੋਂ ਵੀ ਵਾਪਸ ਮੁੜੇ। ਹੁਣ ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਜੰਗਲ ਉਜਾੜ ਬੀਆਬਾਨ ਵਿਖੇ ਮਸਤ ਹੋਕੇ ਵਿਚਰਦੇ ਰਹਿੰਦੇ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਇਕਰ ਦੀ ਹਾਲਤ ਦੇਖ ਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਫਿਕਰ ਹੋਇਆ ਅਰ ਉਸੇ ਹੀ ਮੌਲਵੀ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈਕੇ ਉਸ ਥਾਂ ਤੇ ਪੁੱਜੇ ਜਿੱਥੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਚਾਦਰ ਤਾਨ ਕੇ ਪਏ ਸਨ ਅਰ ਮੁਖੋਂ ਕੁਝ ਵੀ ਨਹੀਂ ਸਨ ਬੋਲਦੇ। ਮੁੱਲਾਂ ਦੇ ਬਹੁਤ ਕਹਿਨ ਤੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਮੁੱਖੋਂ ਬੋਲੇ ਅਰ ਬਚਨਾ ਰੂਪੀ ਸ਼ਸਤ੍ਰਾਂ ਨਾਲ ਮਾਨੋਂ ਮੁੱਲਾਂ ਨੂੰ ਘਾਇਲ ਕਰ ਦਿੱਤਾ। ਅੰਤ ਮੁੱਲਾਂ ਨੇ ਹਾਰ ਮੰਨੀ ਅਰ ਭੁਲ ਬਖ਼ਸ਼ਾਈ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਧਾਰਣ ਕਰਕੇ ਇਹ ਮੁਕਤਿ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰੀ ਹੋਇਆ।

ਬ੍ਰਹਮ ਸੂਤ੍ਰ ਵਰਣਨ।

ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਨਾਨਕ ਜੀ ਨੂੰ ਜਨੇਊ ਪਵਾਉਨ ਦੀ ਇੱਛਾ ਨਾਲ ਪ੍ਰੋਹਿਤ ਹਰਿ ਦਯਾਲ ਨੂੰ ਬੁਲਾ ਭੇਜਿਆ। ਜਦ ਉਹ ਆਇਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ

ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਪੁੱਛਿਆ ਕਿ ਜਨੇਊ ਕਿਸ ਕਾਰਨ ਪਾਉਂਦੇ ਹੋ, ਜੇਕਰ ਇਸ ਨੂੰ ਨਾ ਵੀ ਪਾਓ ਤਾਂ ਕੀਹ ਹਰਜ ਹੈ। ਇਸ ਪਰ ਪੰਡਿਤ ਹਰਿਦਜ਼ਾਲ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸੋਂ ਉਪਦੇਸ਼ ਲੈਨ ਦੀ ਇੱਛਾ ਨਾਲ ਕਿਹਾ ਕਿ ਖਤ੍ਰੀਆਂ ਅਤੇ ਬ੍ਰਹਮਣਾਂ ਦਾ ਇਹ ਧਰਮ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਜਨੇਊ ਪਾਉਣ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਇਸ ਦੇ ਉੱਤਰ ਵਿੱਚ ਇਹ ਕਿਹਾ ਜੋ ਅਜਿਹੇ ਜਨੇਊ ਪਾਉਣ ਦਾ ਕੀਹ ਲਾਭ ਜੋ ਸਾਡੇ ਅੰਦਰੋਂ ਹੌਮੈਂ ਦੀ ਮੈਲ ਨੂੰ ਨਾ ਕੱਟੇ ਅਰ ਜੀਵ ਪਿਆ ਕੁ-ਕਰਮ ਕਰੇ। ਆਤਮਾਂ ਨੂੰ ਤਾਂ ਅਜਿਹਾ ਜਨੇਊ ਪਾਉਣ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ ਜਿਸ ਨਾਲ ਉਸਦੇ ਦੁਖ ਕੱਟੇ ਜਾਨ ਅਰ ਮੁਕਤੀ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰੀ ਬਨੇ। ਪੰਡਿਤ ਨੇ ਪੁਛਿਆ ਜੋ ਇਕਰ ਦਾ ਜਨੇਊ ਕੇਹੜਾ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਸ਼ਬਦ ਦ੍ਵਾਰਾ ਉੱਤਰ ਦਿੱਤਾ :— "ਦਇਆ ਕਪਾਹ ਸੰਤੋਖੁ ਸੂਤੁ—ਤਗੁ ਨ ਤੂਟਸਿ ਪੂਤ" ॥ (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ੨੬) ਪੰਡਿਤ ਹਰਿਦਜ਼ਾਲ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸੋਂ ਅਜਿਹਾ ਸੱਚਾ ਅਰ ਸੁੱਚਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਸੁਨ ਕੇ ਨਿਹਾਲ ਹੋ ਗਿਆ, । ਨਾਮ ਵਿਖੇ ਉਸ ਦੀ ਲਿਵ ਲੱਗੀ ਅਰ ਅੰਤ ਮੁਕਤਿ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰੀ ਬਨਿਆ।

ਸੁਰਭੀ ਚਾਰਨ ਵਰਣਨ।

ਹੁਣ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਉਦਾਸ ਜਹੇ ਰਹਿਣ ਲੱਗੇ ਅਰ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਕੋਈ ਵਾਧੀ ਘਾਟੀ ਗਲ ਵੀ ਨਾ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਪੁਤਰ ਦੀ ਅਜਹੀ ਹਾਲਤ ਦੇਖ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਸੋਚਿਆ ਕਿ ਇਸ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਕੰਮ ਲਾਉਣਾ ਹੀ ਯੋਗ ਹੈ। ਸੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਗਾਵਾਂ ਅਰ ਮਝੀਆਂ ਦਾ ਛੇੜੂ ਬਨਾ ਦਿੱਤਾ। ਇਕ ਦਿਨ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਮਾਲ ਨੂੰ ਹਰੀ ਖੇਤੀ ਵੇਖ ਉਸ ਵਿੱਚ ਛੱਡ ਦਿੱਤਾ ਅਰ ਆਪ ਅਰਾਮ ਦੀ ਇਛਾ ਨਾਲ ਸੌਂ ਗਏ। ਜਦੋਂ ਗਾਈਆਂ ਮੱਝਾਂ ਸਾਰੀ ਖੇਤੀ ਚਰ ਗਈਆਂ ਤਾਂ ਖੇਤੀ ਦਾ ਮਾਲਕ ਜੱਟ ਆਨ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦੁਆਲੇ ਹੋਇਆ। ਇਹ ਝਗੜਾ ਅੰਤ ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਪਾਸ ਪੁੱਜਾ

ਜਿਸਨੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਾ ਭੇਜਿਆ। ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਜਦ ਡਾਂਟਨ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਖੇਤੀ ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਨੇ ਉਜਾੜੀ ਨਹੀਂ ਇਸ ਜੱਟ ਨੇ ਝੂਠ ਹੀ ਤੁਹਾਡੇ ਪਾਸ ਆ ਫਰਿਆਦ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਝੂਠ ਵਾਲੀ ਗਲ ਸੁਨ ਕੇ ਜਟ ਹੋਰ ਵੀ ਗੱਜਨ ਲੱਗਾ। ਅੰਤ ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਨੇ ਸੱਚ ਝੂਠ ਦਾ ਨਤਾਰ ਕਰਨ ਲਈ ਆਪਨਾ ਨੌਕਰ ਦੇਖਨ ਲਈ ਭੇਜਿਆ। ਜਾਂ ਉਹ ਜੱਟ ਸਮੇਤ ਉੱਥੇ ਪੁੱਜਾ ਤਾਂ ਕੀਹ ਦੇਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਖੇਤੀ ਦਾ ਤਾਂ ਇੱਕ ਪੱਤਾ ਵੀ ਨਹੀਂ ਹਲਿਆ ਹੈ। ਇਹ ਦੇਖ ਜੱਟ ਬਹੁਤ ਸ਼ਰਮਿੰਦਾ ਹੋਇਆ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਆਪਨੇ ਪਿਤਾ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਕੇ ਵਾਪਸ ਘਰ ਮੁੜੇ।

ਰਾਇ ਬੁਲਰ ਸਰਧਾ ਦੇਨ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਗਾਵਾਂ ਮੱਝਾਂ ਚਰਾਇਆ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਇਕ ਦਿਨ ਗੁਰੂ ਜੀ ਕੁਝ ਥਕ ਕੇ ਅਲਸਾਏ ਨੇਤ੍ਰਾਂ ਨਾਲ ਲੱਮੇਂ ਪੈ ਗਏ ਅਰ ਨੀਂਦ ਆ ਗਈ। ਵੇਲਾ ਚੜ੍ਹਦੀਆਂ ਦੁਪੈਹਰਾਂ ਦਾ ਸੀ ਅਰ ਸੂਰਜ ਦੀਆਂ ਕਿਰਨਾਂ ਆ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਮੁਖਾਰਬਿੰਦ ਤੇ ਬਿਰਾਜੀਆਂ। ਇਹ ਦੇਖ ਇੱਕ ਚਿੱਟੇ ਰੰਗ ਦੇ ਸੱਪ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਪਰਦੱਖਨਾ ਕਰ, ਮੁੱਖ ਤੇ ਛਾਇਆ ਆ ਕੀਤੀ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਘਰ ਵਾਪਸ ਮੁੜ ਰਿਹਾ ਸੀ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਉਸ ਨੇ ਇਹ ਸਾਰੀ ਘਟਨਾ ਦੇਖੀ, ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਸਿਆਣ ਕੇ ਗਲ ਨਾਲ ਲਾਇਆ ਅਰ ਬਹੁਤ ਉਪਮਾ ਕੀਤੀ। ਫਿਰ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਾ ਕੇ ਸਾਰਾ ਹਾਲ ਕਿਹਾ। ਇਸ ਦੇ ਮਗਰੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਮਾਤਾ ਦੇ ਕਹਿਨ ਤੇ ਪਿਤਾ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜੀ ਤੋਂ ਗਾਈਆਂ ਮੱਝਾਂ ਚਰਾ ਲਿਉਨ ਦਾ ਕੰਮ ਛੁਡਵਾ ਲਿਆ।

ਖੇਤੀ ਬ੍ਰਿਖ ਛਾਯਾ ਪ੍ਰਸੰਗ।

ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਸਵਾ ਮਨ ਬੀਜ, ਹੱਲ ਅਰ ਦੋ ਸੋਹਨੇ ਬਲਦ ਦੇ ਕੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਹੁਣ ਤੁਸੀਂ ਖੇਤੀ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਿਆ ਕਰੋ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਇੱਕ ਕਾਮੇਂ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਕੇ ਖੇਤੀ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਨ ਲੱਗੇ। ਥੋੜ੍ਹਿਆਂ ਹੀ

ਦਿਨਾਂ ਵਿੱਚ ਖੇਤੀ ਹਰੀ ਭਰੀ ਹੋ ਗਈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਦਾ ਮਨ ਬਹੁਤ ਲਲਚਾਇਆ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜੀ ਨੇ ਪਿਤਾ ਨੂੰ ਲੋਭ-ਗ੍ਰਸਤ ਦੇਖ ਸਾਰੀ ਖੇਤੀ ਪਸ਼ੂਆਂ ਨੂੰ ਖੁਆ ਦਿੱਤੀ ਅਰ ਕਿਸੇ ਦੇ ਵੀ ਮਾਲ ਨੂੰ ਖੇਤੀ ਖਾਨੋਂ ਵਰਜਿਆ ਨਾ ਕਰਨ। ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਇਹ ਦੇਖ ਬਹੁਤ ਗੁੱਸਾ ਆਇਆ ਅਰ ਪੰਡਿਤ ਹਰਿਦਯਾਲ ਦੇ ਘਰ ਜਾ ਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਉਲਾਂਭੇ ਦੇ ਬਚਨ ਕਹੇ ਕਿ ਤੂੰ ਠੀਕ ਹੀ ਕਿਹਾ ਸੀ ਜੋ ਇਸ (ਨਾਨਕ) ਦੇ ਸਿਰ ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਦਾ ਛਤ੍ਰ ਝੂੱਲੇਗਾ, ਇਹ ਤਾਂ ਵੱਡਾ ਮੂਰਖ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਹਾਨ ਲਾਭ ਦਾ ਪਤਾ ਹੀਂ ਨਹੀਂ।

ਇਸ ਦੇ ਪਿੱਛੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਗਲ ਬਾਤ ਨਹੀਂ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਨਗਰ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਉਜਾੜ ਵਿੱਚ ਜਾ ਕੇ ਬ੍ਰਿਛਾਂ ਹੇਠ ਲੰਮੇ ਪਏ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ। ਇਕ ਦਿਨ ਦੁਪੈਹਰ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਇਕ ਬ੍ਰਿਛ ਹੇਠ ਸੁੱਤੇ ਪਏ ਸਨ ਜੋ ਰਾਏ ਬੁਲਾਰ ਉਧਰ ਆ ਨਿਕਲਿਆ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਬਹੁਤ ਅਸਚਰਜ ਹੋਇਆ ਜਾਂ ਉਸ ਡਿੱਠਾ ਕਿ ਸਾਰਿਆਂ ਬ੍ਰਿਛਾਂ ਦਾ ਪਰਛਾਵਾਂ ਢੱਲ ਗਿਆ ਹੈ ਪ੍ਰੰਤੂ ਉਹ ਦ੍ਰਖਤ ਜਿਸ ਹੇਠ ਗੁਰੂ ਜੀ ਬਿਰਾਜਮਾਨ ਹਨ ਉਸਦਾ ਪਰਛਾਵਾਂ ਨਹੀਂ ਢਲਿਆ। ਇਹ ਨਿਸਚੇ ਹੀ ਕੋਈ ਕਲਾਵਾਨ ਅਵਤਾਰ ਹਨ। ਇਹ ਦੇਖ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੰਦਨਾ ਕਰ ਵਾਪਸ ਮੁੜਿਆ ਅਰ ਘਰ ਜਾ ਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਾ ਭੇਜਿਆ ਤੇ ਬਹੁਤ ਬਹੁਤ ਸਮਝਾਇਆ। ਕਾਲੂ ਜੀ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਮਤ ਧਨ ਦੀ ਤ੍ਰਿਸ਼ਨਾ ਵਿਖੇ ਲਪਟੀ ਹੋਈ ਸੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਵਡਿਆਈ ਨੂੰ ਨਾ ਜਾਨ ਸਕਿਆ, ਸਗੋਂ ਰਾਏ-ਬੁਲਾਰ ਨੂੰ ਕੈਹਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਜਿਸ ਦਿਨ ਦਾ ਇਸਨੇ ਜਨਮ ਲਿਆ ਹੈ ਘਰੋਂ ਮਾਲ ਪਦਾਰਥ ਗੁਆ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਿ ਸੁਨ ਘਰ ਨੂੰ ਵਾਪਸ ਮੁੜਿਆ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਮਹਿਮਾ ਨਾ ਜਾਨੀ।

ਬੇਦ ਪ੍ਰਸੰਗ ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਮਾਤਾ ਨੇ ਦੇਖਿਆ ਕਿ ਨਾਨਕ ਜੀ ਦਿਨੋ ਦਿਨ ਘਟ ਦੇ ਹੀ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ । ਨਾ ਕੁਝ ਖਾਂਦੇ ਪੀਂਦੇ ਹਨ ਅਰ ਨਾ ਹੀ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਗਲ ਬਾਤ ਹੀ ਕਰਦੇ ਹਨ । ਮਾਤਾ ਨੂੰ ਇਹ ਦੇਖ ਬਹੁਤ ਚਿੰਤਾ ਹੋਈ ਅਰ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨਾਲ ਸਲਾਹ ਕਰਕੇ ਲਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੈਦ ਸਦਾਓਣ ਲਈ ਭੇਜਿਆ । ਜਦ ਵੈਦ ਨੇ ਆ ਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਬਾਂਹ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਫੜੀ ਤਾਂ ਰੋਗ ਦਾ ਕੁਝ ਪਤਾ ਨਾ ਲੱਗਾ । ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਸਿਖਿਆ ਦੇਨ ਲਈ ਅਰ ਆਪਨੀ ਦਸ਼ਾ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਨ ਲਈ ਸ਼ਬਦ ਉਚਾਰਿਆ :— "ਵੈਦੁ ਬੁਲਾਇਆ ਵੈਦਗੀ—ਰੋਗੁ ਗਵਾਇਹਿ ਆਪਣਾ ਤ ਨਾਨਕ ਵੈਦੁ ਸਦਾਇ ॥" (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰ: ੩੯)ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਸੁਨ ਕੇ ਵੈਦ ਅਸਚਰਜ ਰਹਿ ਗਿਆ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨੀ ਲੱਗਾ ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਨਾਮ ਦਾ ਸੱਚਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਲਿਆ ।

ਤਪਸੀਅਨ ਪ੍ਰਸੰਗ ।

ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਵੀਹ ਰੁਪਯੇ ਰੋਕ ਦਿੱਤੇ ਅਰ ਬਾਲੇ ਨੂੰ ਨਾਲ ਤੋਰਿਆ ਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਜਾ ਕੇ ਕੋਈ ਲਾਭਵੰਤ ਸੌਦਾ ਲੈ ਆਵੇ ਅਰ ਵਨਜ ਬਿਉਹਾਰ ਕਰੇ । ਗੁਰੂ ਜੀ ਰੁਪੈ ਲੈਕੇ ਘਰੋਂ ਤੁਰ ਪਏ । ਰਾਹ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਇੱਕ ਤੱਪਸ੍ਵੀਆਂ ਦਾ ਆਸ਼ਰਮ ਦੇਖਿਆ ਜਿੱਥੇ ਤੱਪਸ੍ਵੀ ਲੋਕ ਤੱਪਸਿਆ ਕਰ ਰਹੇ ਸਨ । ਇਹ ਦੇਖ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਬਾਲੇ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਜੋ ਰੁਪੈ ਪਿਤਾ ਨੇ ਘਰੋਂ ਲਾਭਵੰਤ ਸੌਦਾ ਲਿਆਉਨ ਲਈ ਦਿੱਤੇ ਹਨ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਭੋਜਨ ਬਸਤ੍ਰ ਲਿਆ ਕੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸੰਤਾਂ ਨੂੰ ਖੁਆ ਦੇਵੇ । ਬਾਲਾ ਡਰਿਆ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਜਿਕਰ ਤੁਹਾਡੀ ਆਪਨੀ ਮਰਜੀ ਹੋਵੇ ਕਰੋ । ਰਿਖੀ ਕੇਸ਼, ਸੰਤ ਰੇਨ ਆਦਿਕ ਤਪਸ੍ਵੀਆਂ ਨਾਲ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਬਚਨ ਬਿਲਾਸ ਹੋਏ । ਅੰਤ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ

ਨਗਰ ਤੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਹੀ ਰੁਪੈਆਂ ਦੀ ਸਾਮਿਗ੍ਰੀ ਅੰਨ ਦਾਨਾ ਆਦਿਕ ਲਿਆ ਕੇ ਸੰਤਾਂ ਦੀ ਭੇਟਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ।

ਕਾਲੂ ਰਾਇ ਬੁਲਰ ਪ੍ਰਸੰਗ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਿਤਾ ਦੇ ਦਿੱਤੇ ਰੁਪੈ ਸਫਲ ਕਰ ਕੇ ਘਰ ਨੂੰ ਮੁੜੇ ਤਾਂ ਕਾਲੂ ਜੀ ਦੇ ਗੁੱਸੇ ਤੋਂ ਡਰ ਕੇ ਆਪ ਇੱਕ ਸੁੱਕੇ ਤਲਾ ਵਿਖੇ ਲੁਕੇ ਰਹੇ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਤਾਂ ਇਕਰ ਬਾਹਰ ਹੀ ਰਹੇ ਪ੍ਰੰਤੂ ਬਾਲਾ ਘਰ ਗਿਆ ਜਿਸ ਤੋਂ ਪਿਤਾ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਸਾਰਾ ਸਮਾਚਾਰ ਪਤਾ ਕੀਤਾ। ਗੁੱਸੇ ਵਿੱਚ ਆ ਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਬਾਲੇ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈਕੇ ਉੱਥੇ ਪੁੱਜੇ ਜਿੱਥੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਪਿਤਾ ਦੇ ਭੈ ਤੋਂ ਲੁਕੇ ਬੈਠੇ ਸਨ। ਜਾਂਦਿਆਂ ਹੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀਆਂ ਕੋਮਲ ਗੱਲਾਂ ਪਰ ਕਠੋਰ ਹੱਥਾਂ ਨਾਲ ਤਮਾਂਚੇ ਲਗਾਏ। ਜਦ ਰਾਇ ਬੁਲਰ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਨੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਦੀ ਕਠੋਰਤਾ ਦਾ ਸਾਰਾ ਬ੍ਰਿਤਾਂਤ ਜਾ ਕਿਹਾ ਤਾਂ ਉਸ ਨੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਵਾ ਕੇ ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਸਮਝਾਇਆ ਬੁਝਾਇਆ। ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਨੇ ੨੦) ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਸੰਤਾਂ ਨੂੰ ਖੁਆ ਦਿੱਤੇ ਸਨ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਭਰ ਦਿੱਤੇ। ਜਦ ਰੁਪੈ ਲੈਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਘਰ ਮੁੜੇ ਤਾਂ ਲੋਕੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਹੁਤ ਨਿੰਦਜਾ ਕਰਨ ਲੱਗੇ। ਪੈਹਲੀ ਵੱਡੀ ਭੁੱਲ ਤਾਂ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਇਹ ਕੀਤੀ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਮਹਿਮਾ ਨਾ ਲਖ ਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਤਮਾਚੇ ਮਾਰੇ ਅਰ ਮੁੜ ਹੁਣ ਰਾਏ ਬੁਲਾਰ ਤੋਂ ਰੁਪੈ ਲੈ ਆਇਆ। ਗਲ ਕੀਹ, ਕਾਲੂ ਜੀ ਸ਼ਰਮਿੰਦੇ ਹੋ ਕੇ ਰਾਏ ਬੁਲਾਰ ਪਾਸ ਰੁਪੈ ਮੋੜਨ ਗਏ, ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਉਸਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਸ੍ਰਿਸਟੀ ਦਾ ਕਰਤਾ ਰੂਪ ਦੱਸ ਕੇ ਸਮਝਾਇਆ ਕਿ ਇਹ ਮਾਇਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਹੁਕਮ ਅਨੁਸਾਰ ਹੀ ਵਰਤ ਰਹੀ ਹੈ।

ਸੁਲਤਾਨ ਪੁਰ ਜਾਵਨ ਵਰਨਨੰ।

ਸੁਲਤਾਨ ਪੁਰ ਵਿਖੇ ਜੈਰਾਮ ਜੀ ਦੇ ਨਾਲ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਵੱਡੀ ਭੈਣ

ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਦਾ ਵਿਆਹ ਹੋ ਚੁਕਿਆ ਸੀ। ਇੱਕ ਦਿਨ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਭੈਣ ਨੂੰ ਸੌਹਰੇ ਘਰੋਂ ਜਾ ਕੇ ਕੁਝ ਦਿਨ ਲਈ ਇੱਥੇ ਲੈ ਆ, ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਅੱਗੋਂ ਨਾ ਕਰ ਦਿੱਤੀ। ਫਿਰ ਜਾਂ ਰਾਇ ਬੁਲਰ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਤਾਂ ਉਹ ਭੈਣ ਨੂੰ ਲੈਨ ਤੁਰ ਪਏ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਕੁਝ ਦਿਨਾਂ ਮਗਰੋਂ ਭੈਣ ਸਮੇਤ ਪਰਮਾਨੰਦ ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਪੁਤ੍ਰ ਜੈ ਰਾਮ ਜੀ ਤੋਂ ਆਗਿਆ ਲੈ ਕੇ ਤਲਵੰਡੀ ਮੁੜੇ ਅਰ ਰਾਏ ਬੁਲਾਰ ਨੂੰ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇ ਕੇ ਨਿਹਾਲ ਕੀਤਾ।

ਕੁਝ ਦਿਨ ਮਗਰੋਂ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਲੈਨ ਲਈ ਜੈ ਰਾਮ ਤਲਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਆਇਆ ਤਾਂ ਰਾਏ ਬੁਲਾਰ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਚੰਗਾ ਹੋਵੇ ਜੇ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਸੁਲਤਾਨ ਪੁਰ ਚਲੇ ਜਾਵਨ ਅਰ ਉੱਥੇ ਹੀ ਕਿਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਵਿਆਹ ਭੀ ਕਰਵਾ ਦੇਵੋ। ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਇੱਥੋਂ ਚਲੇ ਜਾਵਨ ਕਰਕੇ ਕਾਲੂ ਦੀ ਕਲਾ ਵੀ ਮਿਟ ਜਾਵੇਗੀ। ਇਸੇ ਸਮੇਂ ਤਲਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਇੱਕ ਸੰਤ ਫਕੀਰ ਆਇਆ ਜਿਸ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਆਪਨੀ ਇੱਛਾ ਅਨੁਸਾਰ ਹੱਥੋਂ ਮੁੰਦਰੀ ਲਾਹ ਕੇ ਅਰ ਲੋਟਾ ਜੋ ਨਾਲ ਸੀ ਦੇ ਦਿੱਤਾ। ਸੰਤ ਜੀ ਨੇ ਇਹ ਚੀਜ਼ਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਵਾਪਸ ਵੀ ਕਰਨੀਆਂ ਚਾਹੀਆਂ ਪਰੰਤੂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਨਾ ਕੀਤੀ। ਇਹ ਦੇਖ ਕਾਲੂ ਜੀ ਦੇ ਗੁੱਸੇ ਦੀ ਅੱਗ ਹੋਰ ਵੀ ਭੜਕੀ। ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਨੇ ਕਾਲੂ ਨੂੰ ਆਪਨੇ ਕੋਲ ਬੁਲਵਾ ਕੇ ਸਾਰੀ ਗੱਲ ਸਮਝਾਈ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਜੈ ਰਾਮ ਜੀ ਤਾਂ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈਕੇ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਚਲੇ ਹੀ ਗਏ ਸਨ। ਹੁਣ ਰਾਏ ਬੁਲਾਰ ਦੇ ਕਹਿਨ ਤੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਭੇਜ ਦਿੱਤਾ। ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਅਰ ਜੈ ਰਾਮ ਜੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਬਹੁਤ ਪ੍ਰਸੰਨ ਹੋਏ।

ਮੋਦੀਖਾਨਾ ਲੈਨ ਬਰਨਨੰ ।

ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਭੈਣ ਦੇ ਘਰ ਰਹਿੰਦਿਆਂ ਬੀਤਿਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਜੈ ਰਾਮ ਜੀ ਨੂੰ ਆਖ ਕੇ ਨਵਾਬ ਪਾਸੋਂ ਮੋਦੀ ਦਾ ਕੰਮ ਲੈ ਲਿਆ । ਜਦ ਇਸ ਗੱਲ ਦਾ ਪਤਾ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਰਾਇ ਬੁਲਰ ਤੋਂ ਆਗਜ਼ਾ ਲੈ ਕੇ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਗਿਆ । ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਜਾਂਦਿਆਂ ਹੀ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਤੋਂ ਪੁੱਛਿਆ ਕਿ ਦੱਸ ਹੁਣ ਤੀਕ ਕਿਤਣੀ ਖੱਟੀ ਕਮਾਈ ਕੀਤੀ ਹਈ । ਇਹ ਸੁਣ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉੱਤਰ ਦਿੱਤਾ ਜੋ ਆਂਮਦਨ ਤਾਂ ਬਹੁਤ ਸੀ ਪਰ ਜੋੜਿਆ ਜੁੜਾਇਆ ਕੁਝ ਨਹੀਂ । ਕਾਲੂ ਜੀ ਦਾ ਸਾਰਾ ਮੋਹ ਇਹ ਗੱਲ ਸੁਣ ਕੇ ਉੱਡ ਗਿਆ ਅਰ ਜਾਤਾ ਕਿ ਨਾਨਕ ਤਾਂ ਨਿਰਾ ਘਰ-ਉਜਾੜੂ ਹੀ ਹੈ । ਬਾਲੇ ਨੂੰ ਵੀ ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਕਿਹਾ ਜੋ ਤੂੰਹੀ ਕੋਲ ਸੈਂ, ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਧਨ ਜੋੜਨ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ ਦੇਂਦੋਂ । ਇਕਰ ਦੀਆਂ ਹੋਰ ਗੱਲਾਂ ਕਰ ਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਜੈਰਾਮ ਅਰ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਪਾਸ ਘਰ ਵਿਖੇ ਗਏ ।

ਮੋਦੀਖਾਨਾ ਲੇਖਾ ਕਰਨ ਵਰਨਨੰ ।

ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਘਰ ਜਾਕੇ ਜੈਰਾਮ ਅਰ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਉਲਾਂਭੇ ਦੇ ਬਚਨ ਕਹੇ ਜੋ ਤੁਸਾਂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਸੁਮੱਤੇ ਨਹੀਂ ਲਾਇਆ ਉਹ ਧਨ ਉਜਾੜਦਾ ਰਿਹਾ, ਤੁਸਾਂ ਵਰਜਿਆ ਨਾ, ਇਸਤੋਂ ਉਪਰੰਤ ਉਸ ਦੇ ਵਿਆਹ ਦਾ ਭੀ ਕਿਤੇ ਸੰਬੰਧ ਨਹੀਂ ਜੋੜਿਆ । ਫਿਰ ਬਾਲੇ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਤੋਂ ਵਖਰਾ ਘਰ ਬੁਲਾ ਕੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਜੈਰਾਮ ਦੇ ਸਾਹਮਨੇ ਹੋਰ ਸਮਝਾਇਆ ਬੁਝਾਇਆ । ਇਸ ਦੇ ਪਿੱਛੋਂ ਕਾਲੂ ਜੀ ਤਾਂ ਮੁੜ ਘਰ (ਤਲ-ਵੰਡੀ ਵਿਖੇ) ਚਲੇ ਗਏ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਮੋਦੀਖਾਨੇ ਦਾ ਕੰਮ ਚਲਾਉਨ ਲੱਗੇ ।

ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਇਕਰ ਬੀਤ ਗਿਆ ਤਾਂ ਜੈਰਾਮ ਪਾਸ ਕਿਸੇ ਚੁਗਲਖੋਰ ਨੇ ਆ ਕੇ ਚਗਲੀ ਕੀਤੀ ਜੋ ਨਾਨਕ ਨੇ ਨਵਾਬ ਦੇ ਖਜਾਨੇ ਦਾ ਉਜਾੜਾ

ਫੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਅਜਿਹਾ ਨਾ ਹੋਵੇ ਕਿ ਨਵਾਬ ਲੇਖਾ ਮੰਗੇ ਤਾਂ ਭਰਨਾ ਪਵੇ। ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਵਡਿਆਈ ਜਾਨਦੀ ਹੀ ਸੀ ਕਹਿਨ ਲਗੀ ਜੋ ਸਾਰੀ ਮਾਇਆ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਹੁਕਮ ਅਨੁਸਾਰ ਵਰਤ ਰਹੀ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਘਾਟਾ ਕੋਈ ਨਹੀਂ। ਪਰ ਤਾਂ ਭੀ ਜੈਰਾਮ ਨੇ ਚਿੰਤਾਤੁਰ ਹੋ ਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਾਉਨ ਲਈ ਤੁਲਸਾਂ ਨਾਮੇ ਦਾਸੀ ਭੇਜੀ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਬਾਲੇ ਸਮੇਤ ਘਰ ਆਏ ਅਰ ਉੱਥੋਂ ਜੈਰਾਮ ਸਮੇਤ ਦੌਲਤ ਖਾਂ ਨਵਾਬ ਪਾਸ ਪੁੱਜੇ। ਮੋਦੀਖਾਨੇ ਦਾ ਸਾਰਾ ਲੇਖਾ ਹੋਇਆ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ੧੩੫ ਰੁਪੈ ਨਵਾਬ ਵੱਲ ਵਧੇ। ਹੁਣ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਮਨ ਮੋਦੀਖਾਨੇ ਤੋਂ ਚੜ੍ਹ ਗਿਆ ਸੀ ਸੋ ਭੈਣ ਪਾਸੋਂ ਜਾਵਨ ਦੀ ਆਗਿਜਾ ਮੰਗਨ ਲੱਗੇ। ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਅਰ ਜੈਰਾਮ ਜੀ ਇਹ ਸੁਨ ਕੇ ਬਹੁਤ ਦੁਖੀ ਹੋਏ। ਅੰਤ ਬਾਲੇ ਨੇ ਭੀ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਕੁਝ ਦਿਨ ਹੋਰ ਉੱਥੇ ਠਹਿਰ ਪਏ ਅਰ ਮੋਦੀ ਦਾ ਕੰਮ ਚਲਾਉਨ ਲੱਗੇ।

ਸਗਾਈ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਰਨਨੰ।

ਪੱਖੋ ਕੇ ਰੰਧਾਵੇ ਪਿੰਡ ਤੋਂ ਮੂਲੇ ਦੇ ਘਰੋਂ ਲਾਗੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਲਈ ਸਗਨ ਪੁੜੀ ਲੈ ਕੇ ਸੁਲਤਾਨ ਪੁਰ ਵਿਖੇ ਆਇਆ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਤਿਲਕ ਲਗਾਇਆ ਗਿਆ ਅਰ ਇਕ ਪੁਰਸ਼ ਨੂੰ ਤਲਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਖਬਰ ਕਰਨ ਲਈ ਘੱਲਿਆ। ਤਲਵੰਡੀ ਤੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਨਾਨਾ (ਰਾਮਾ ਜੀ) ਮਾਮਾ (ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਾ ਜੀ) ਅਰ ਹੋਰ ਸਾਰਾ ਪਰਿਵਾਰ ਮਿਲ ਕੇ ਸੁਲਤਾਨ ਪੁਰ ਆਏ। ਮਰਦਾਨਾ ਵੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਨੂੰ ਨਾਲ ਹੀ ਆਇਆ। ਇਕ ਦਿਨ ਇਹ ਸਾਰਾ ਪਰਿਵਾਰ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਹੀ ਰਿਹਾ ਅਰ ਅਗਲੇ ਦਿਨ ਉੱਥੋਂ ਤੁਰਨ ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਕਰ ਦਿੱਤੀ। ਅੰਤ ਮੂਲੇ ਦੇ ਨਗਰ ਕੋਲ ਜਾ ਪਹੁੰਚੇ ਅਰ ਅੱਗੋਂ ਖਬਰ ਪਹੁੰਚਾਵਨ ਲਈ ਨਿਧੇ ਨਾਮੀ ਬ੍ਰਹਮਣ ਨੂੰ ਮੂਲੇ ਦੇ ਘਰ ਭੇਜਿਆ ਜੋ ਉਸ ਨੂੰ ਕਹੇ ਕਿ ਬੇਦੀ ਆਗਏ ਹਨ।

ਮੂਲੇ ਨੇ ਬ੍ਰਹਮਣ (ਨਿਧਾ) ਦਾ ਚੰਗੀ ਤਰਾਂ ਆਦਰ ਸਨਮਾਨ ਕੀਤਾ। ਅੰਤ ਸਾਰੇ ਮੂਲੇ ਦੇ ਘਰ ਆ ਢੁੱਕੇ ਤੇ ਚੌਕੜ ਆਦਿ ਖਰਚਨ ਦੀ ਬਿਧਿ ਹੋਵਨ ਲੱਗੀ। ਪਰਮਾਨੰਦ (ਜੈਰਾਮ ਦਾ ਪਿਤਾ) ਨੂੰ ਕਾਲੂ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੂਲੇ ਤੋਂ ਸਾਹਾ ਮੰਗੋ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਮੂਲੇ ਨੇ ਉੱਤਰ ਦਿੱਤਾ ਜੋ ਇਕ ਵਰਹੇ ਪਿੱਛੋਂ ਮੈਂ ਸਾਹਾ ਆਪੇ ਹੀ ਲਿਖ ਭੇਜਾਂਗਾ। ਇਕ ਦਿਨ ਸਾਰੇ ਏਦੀ ਮੂਲੇ ਪਾਸ ਰਹੇ ਅਰ ਅਗਲੇ ਦਿਨ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਨੂੰ ਕੂਚ ਕਰ ਦਿੱਤਾ। ਕੁਝ ਦਿਨ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਰਹੇ ਅਰ ਫੇਰ ਤਲਵੰਡੀ ਜਾਨ ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਕੀਤੀ। ਮਰਦਾਨਾ ਘਰ ਦਾ ਮਰਾਸੀ ਹੋਵਨ ਕਰ ਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸ ਜਾਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਖਰੈਤ ਮੰਗਨ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਤੰਤ ਵਿਦਯਾ (ਗਾਉਣ ਬਜਾਉਣ ਦਾ ਗੁਣ) ਬਖਸ਼ੀ। ਇਸ ਤੋਂ ਉਪਰੰਤ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਆਪਨੇ ਗਲੋਂ ਲਾਹ ਕੇ ਇਕ ਬਸਤਰ ਅਰ ਕੁਝ ਕੁ ਧਨ ਵੀ ਬਖਸ਼ਿਆ। ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤੂੰ ਬੇਦੀ ਕੁਲ ਦਾ ਮਰਾਸੀ ਹੈਂ ਇਸ ਲਈ ਬੇਦਿਆਂ ਨੂੰ ਛੱਡ ਕਿਤੇ ਦੂਜੀ ਥਾਂ ਜਾ ਕੇ ਯਾਚਨਾ ਨਾ ਕਰੀਂ। ਕਾਲੂ ਜੀ ਸਨੇ ਹੋਰਨਾਂ ਦੇ ਤਲਵੰਡੀ ਪੁੱਜੇ। ਰਾਇ ਬੁਲਰ ਨੇ ਕਾਲੂ ਜੀ ਤੋਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਸੁਖ ਸਾਂਦ ਪੁੱਛੀ ਅਰ ਵੱਡਾ ਪ੍ਰਸੰਨ ਹੋਇਆ।

ਬਰਾਤ ਚਢਨ ਵਰਨਣ।

ਹੁਣ ਫਿਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਮੋਦੀਖਾਨੇ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਨ ਲਗੇ। ਮੂਲੇ ਨੇ ਪੰਡਿਤ ਨੂੰ ਬੁਲਵਾ ਕੇ ਸਾਹਾ ਮੁਕੱਰਰ ਕੀਤਾ (ਸੋਧਵਾਇਆ) ਅਰ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਵਿਖੇ ਖਬਰ ਭੇਜੀ ਜੋ ਵਿਆਹ ਲੈ ਲਵੋ। ਜਦ ਜੈਰਾਮ ਅਰ ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਇਸ ਸ਼ੁਭ ਕਾਰਜ ਦੀ ਖਬਰ ਮਿਲੀ ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਨਿੱਧੇ ਪੰਡਿਤ ਨੂੰ ਤਲਵੰਡੀ ਵਲ ਸਾਰਾ ਸਮਾਚਾਰ ਦੇ ਕੇ ਭੇਜ ਦਿੱਤਾ। ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਪੁਤਰ ਦੇ ਵਿਆਹ ਦੀ ਖਬਰ ਸੁਨ ਕੇ ਬੜੀ ਖੁਸ਼ੀ ਹੋਈ ਅਰ ਆਪਨੇ ਨਾਲ ਰਾਮਾ, ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਾ ਅਰ ਲਾਲੂ ਜੀ ਆਦਿਕ ਸਾਰੇ ਸੰਬੰਧੀ

ਲੈ ਕੇ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਵਿਖੇ ਪਹੁੰਚੇ। ਸਾਰੀ ਬਰਾਤ ਖੂਬ ਸਜ ਧੱਜ ਕੇ ਤੁਰੀ ਅਰ ਦੋ ਰਾਤਾਂ ਰਾਹ ਵਿੱਚ ਬਤੀਤ ਕਰਕੇ ਨਗਰ ਦੇ ਨੇੜੇ ਪਹੁੰਚੇ ਜਿੱਥੇ ਢੁਕਾਊ ਹੋਣਾ ਸੀ।

ਬਜਾਹ ਪ੍ਰਸੰਗ।

ਮੂਲੇ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਅੱਗੋਂ ਲੈਨ ਲਈ ਇਕ ਮਨੁਖ ਭੇਜਿਆ, ਜਿਸ ਪੁਰ ਕਈ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਡੰਕੇ ਅਰ ਵਾਜੇ ਵੱਜੇ। ਪੰਡਿਤ ਹਰਿਦਜਾਲ ਅਰ ਦੂਜੇ ਮੂਲੇ ਦੇ ਪੰਡਿਤ ਨੇ ਮਿਲ ਕੇ ਸਾਖੋਚਾਰ (ਲਾਵਾਂ) ਗੋਤ੍ਰ ਐਦ੍ਰਿਕ ਆਦਿ ਪੜ੍ਹੀਆਂ। ਵਿਆਹ ਦੀ ਸਾਰੀ ਰੀਤ ਭਲੀ ਭਾਂਤਿ ਪੂਰੀ ਕਰਕੇ ਸਾਰੇ ਬੇਦੀ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਮੁੜੇ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੇ ਆ ਕੇ ਕੁਲ ਦਿਆਂ ਹੋਰ ਰੀਤਾਂ ਪੂਰੀਆਂ ਕੀਤੀਆਂ, ਦੋ ਦਿਨ ਇੱਥੇ ਬੀਤੇ ਤਾਂ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਕਹਿਆ ਕਿ ਨਾਨਕ ਦੀ ਮਾਤਾ ਦੇ ਹਿਰਦੇ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਅਨੁਰਾਗ ਹੋਵੇਗਾ ਸੋ ਸਾਰੀ ਬਰਾਤ ਇਕਰ ਹੀ ਸੱਜ ਕੇ ਤਲਵੰਡੀ ਪਹੁੰਚੇ। ਰਾਏ ਬੁਲਾਰ ਨੂੰ ਵੀ ਨਾਨਕ ਜੀ ਦੇ ਵੇਖਨ ਦੀ ਵੱਡੀ ਚਾਹ ਹੋਵੇਗੀ। ਇਕਰ ਗਿਨ ਮਿਥ ਕੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਅਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਘਰੋਂ ਤਲਵੰਡੀ ਪਹੁੰਚੇ। ਬਾਲਾ ਮੋਦੀ ਖਾਨੇ ਦਾ ਕੰਮ ਸੰਭਾਲਨ ਲਈ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਹੀ ਰਿਹਾ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਮਾਤਾ ਆਪਨੇ ਪੁਤ ਅਰ ਨੂਹੁੰ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਵੱਡੀ ਪ੍ਰਸੰਨ ਹੋਈ । ਕੁਝ ਚਿਰ ਘਰ ਠਹਿਰ ਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਨੂੰ ਮਿਲਨ ਗਏ। ਦੋਵਾਂ ਪਾਸਿਆਂ ਤੋਂ ਅਜਿਹਾ ਆਨੰਦ ਛਾਇਆ ਜੋ ਇਕ ਘੜੀ ਦੋਵੇਂ ਧਿਰਾਂ ਚੁੱਪ ਹੀ ਰਹੇ। ਪ੍ਰੇਮ ਦੀ ਬਹੁਲਤਾ ਦੇ ਕਾਰਨ ਕੋਈ ਅੱਖਰ ਨਾ ਅਹੁੜਿਆ। ਇਕਰ ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਤਲਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਲੀਲਾ ਕਰਦੇ ਰਹੇ।

ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਆਵਨ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਇਕ ਮਹੀਨਾ ਭਰ ਤਲਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਨਿਵਾਸ ਕੀਤਾ ਅਰ ਮੁੜ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਜਾਵਨ ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਕੀਤੀ। ਤੁਰਨ ਸਮੇਂ ਨਾਨਕ

ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਰਾਇ ਬੁਲਾਰ ਨੂੰ ਸਤਿ ਨਾਮ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ ਅਰ ਧੀਰਜ ਬੰਧਾਇਆ। ਫਿਰ ਘਰ ਆਕੇ ਸੁੱਲਖਣੀ ਜੀ ਸਹਿਤ ਮਾਤਾ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਮੱਥਾ ਟੇਕਿਆ। ਇਕਰ ਸਭ ਦੀ ਆਗਜ਼ਾ ਪਾ ਕੇ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਪਹੁੰਚੇ। ਬਾਲੇ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨਾ ਪੁਰ ਬੰਦਨਾ ਕੀਤੀ ਅਰ ਮੋਦੀ ਦਾ ਕੰਮ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸੌਂਪ ਦਿੱਤਾ। ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਇੱਥੇ ਬੀਤਿਆ ਤਾਂ ਮੂਲਾ ਅਪਨੀ ਧੀ (ਸੁੱਲਖਣੀ ਜੀ) ਨੂੰ ਲੈਨ ਆਇਆ। ਮੂਲਾ ਦੋ ਦਿਨ ਰਹਿ ਕੇ ਸੁਲਖਣੀ ਜੀ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਗਿਆ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਹਿਲੇ ਵਾਂਗੂੰ ਵੱਡੀ ਉਧਾਰਤਾ ਨਾਲ ਮੋਦੀਖਾਨੇ ਦਾ ਕੰਮ ਚਲਾਉਂਦੇ ਰਹੇ।

ਸਿਰੀ ਚੰਦ ਜਨਮ ਬਰਨਨੰ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਹੁਣ ਬੱਤੀ ਸਾਲ ਦੀ ਉਮਰਾ ਸੀ ਜੋ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਘਰ ਸਿਰੀ ਚੰਦ ਜੀ ਨੇ ਜਨਮ ਲਿਆ। ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੇ ਜਦ ਬਾਲਕ ਦਾ ਜਨਮ ਸੁਨਿਆ ਤਾਂ ਵੱਡੀ ਪ੍ਰਸੰਨ ਹੋਈ ਅਰ ਕਾਲੂ ਜੀ ਪਾਸ ਤਲਵੰਡੀ ਖਬਰ ਭੇਜੀ। ਕਾਲੂ ਜੀ ਵੀ ਘਰ ਵਿਖੇ ਪੋਤਰੇ ਦਾ ਜਨਮ ਸੁਨ ਕੇ ਆਨੰਦ ਵਿਖੇ ਫੂਲੇ ਨਹੀਂ ਸਮਾਉਂਦੇ ਸਨ।

ਭਗੀਰਥ ਮਨਸੁਖ ਪ੍ਰਸੰਗ।

ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਨਗਰ ਦੇ ਨੇੜੇ ਮੈਲਸੀਹਾਂ ਪਿੰਡ ਵਿਖੇ ਕਾਲਿਕਾ ਦੇਵੀ ਦਾ ਉਪਾਸਕ ਇਕ ਸਿੱਖ ਭਗੀਰਥ ਨਾਮੀ ਰਹਿੰਦਾ ਸੀ। ਇਕ ਦਿਨ ਸਵੇਰੇ ਹੀ ਇਸ ਨੇ ਕਾਲਿਕਾ ਮਾਈ ਦਾ ਧਿਆਨ ਲਾਇਆ ਅਰ ਸੰਧਿਆ ਸਮੇਂ ਤੀਕ ਉੱਥੇ ਹੀ ਸੇਵਾ ਕਰਦਾ ਰਿਹਾ। ਰਾਤ ਨੂੰ ਆਪਨੇ ਘਰ ਵੀ ਨਾ ਗਿਆ ਅਰ ਚੰਡਿਕਾ ਮਾਈ ਦੇ ਧਿਆਨ ਵਿੱਚ ਸਾਰੀ ਰਾਤ ਬੈਠਾ ਰਿਹਾ ਤਾਂ ਦੇਵੀ ਨੇ ਇਸ ਪਾਸ ਸੁਪਨੇ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਗਟ ਹੋਕੇ ਦਰਸ਼ਨ ਦਿਤਾ ਅਰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤੇਰੇ ਮਨ ਦੇ ਮਨੋਰਥ ਪੂਰੇ ਹੋਵਨਗੇ, ਤੂੰ ਸੁਲਤਾਨ ਪੁਰ ਵਿਖੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਤਨੋ ਮਨੋ ਹੋ ਕੇ ਸੇਵਾ ਕਰਿਆ

ਕਰ। ਇਤਨੇ ਵਿੱਚ ਜੋ ਉਸਦੀ ਅੱਖ ਖੁੱਲੀ ਤਾਂ ਦਿਲ ਵਿਖੇ ਵੱਡੀ ਅਸਚ-ਰਜਤਾ ਹੋਈ। ਜਦ ਦਿਨ ਚੜ੍ਹਿਆ ਤਾਂ ਘਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਧੰਦੇ ਛੱਡ ਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਣਾਂ ਤੇ ਜਾ ਢੱਠਾ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਬਾਹੋਂ ਫੜ ਕੇ ਉਠਾਇਆ ਅਰ ਮਨੋਰਥ ਪੁਛਿਆ। ਭਗੀਰਥ ਸੇਵਾ ਦਾ ਚਾਹਵਾਨ ਸੀ ਸੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਿਆਂ ਚਰਨਾਂ ਦਾ ਭੌਰਾ ਹੋ ਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪਾਸ ਹੀ ਰਹਿ ਕੇ ਸਮਾਂ ਖੁਸ਼ੀ ਨਾਲ ਬਿਤਾਉਣ ਲੱਗਾ।

ਮਰਦਾਨਾ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸ ਤਲਵੰਡੀ ਤੋਂ ਚਲ ਕੇ ਆਇਆ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਲੜਕੀ ਦੇ ਵਿਆਹ ਦਾ ਖਰਚ ਮੈਥੋਂ ਝਲਿਆ ਨਹੀਂ ਜਾਂਦਾ ਸੋ ਤੁਸੀਂ ਕਿਰਪਾਲਤਾ ਕਰਕੇ ਕੁਝ ਦਾਨ ਬਖ਼ਸੋ ਜੋ ਇਹ ਕਾਰਜ ਸਿਰੇ ਚੜ੍ਹੇ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉਸ ਸਮੇਂ ਭਗੀਰਥ ਨੂੰ ਬਚਨ ਕੀਤਾ ਕਿ ਤੂੰ ਇਸ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰ ਦੇਹ, ਬਿਆਹ ਦੀ ਸਾਰੀ ਸਮਿਗ੍ਰੀ ਲਿਖ ਕੇ ਲਵਪੁਰ (ਲਾਹੌਰ) ਤੋਂ ਲੈ ਆਵੇ, ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਵਿਖੇ ਸਾਰੀ ਚੀਜ਼ ਵਸਤ ਮਿਲਨ ਨਹੀਂ ਲੱਗੀ। ਨਾਲ ਹੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਭਗੀਰਥ ਨੂੰ ਲਵਪੁਰ ਵਿਖੇ ਇਕ ਰਾਤ ਤੋਂ ਵੱਧ ਠਹਿਰਨ ਦੀ ਆਗਿਆ ਨਾ ਬਖਸ਼ੀ ਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸਾਰੀ ਸਮਿਗਰੀ ਲੈ ਕੇ ਵਾਪਸ ਮੁੜਨਾ। ਭਗੀਰਥ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਆਗਿਆ ਪਾ ਕੇ ਮਨਸੁਖ (ਇਕ ਧਨੀ ਸ਼ਾਹ) ਪਾਸ ਲਾਹੌਰ ਪੁੱਜਾ ਤੇ ਸਾਰੀ ਗਲ ਬਾਤ ਕਹਿ ਸੁਨਾਈ ਅਰ ਦੱਸਿਆ ਕਿ ਗੁਰਾਂ ਦੀ ਆਗਜ਼ਾ ਹੈ ਕਿ ਇੱਥੇ ਇਕ ਰਾਤ ਤੋਂ ਵੱਧ ਨਹੀਂ ਰੈਹਨਾ। ਮਨਸੁਖ ਭਗੀਰਥ ਦੀ ਇਹ ਗਲ ਸੁਨ ਕੇ ਸੰਸੇ ਵਿੱਚ ਪੈ ਗਿਆ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਹੋਰ ਸਾਰੀ ਵਸਤੂ ਤਾਂ ਇਕ ਦਿਨ ਵਿੱਚ ਹੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋ ਸਕੇਗੀ ਪ੍ਰੰਤੂ ਚੂੜਾ ਜੇਕਰ ਸੁੰਦਰ ਬਨਵਾਨਾ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਇੱਕ ਰਾਤ ਹੋਰ ਲੱਗੇਗੀ। ਇਸ ਪੁਰ ਭਗੀਰਥ ਫਿਰ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਗੁਰਾਂ ਜੀ ਦੀ ਆਗਜ਼ਾ ਭੰਗ ਕਰਨੀ ਕਦੇ ਵੀ ਯੋਗ ਨਹੀਂ। ਸੋ ਮੈਂ ਦੂਜੀ ਰਾਤ ਇੱਥੇ ਰਹਿ ਨਹੀਂ ਸਕਦਾ। ਮਨਸੁਖ ਨੇ ਕਹਿਆ ਕਿ ਕਲਜੁਗ ਵਿੱਚ ਅਜਿਹਾ ਪੂਰਾ ਸੰਤ ਕੋਈ ਨਹੀਂ ਜਿਕਰ ਦਾ ਤੂੰ ਦਸਦਾ

ਹੈਂ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਭਗੀਰਥ ਨੇ ਉੱਤਰ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਹਿਰਦੇ ਵਿਖੇ ਸਰਧਾ ਧਾਰ ਕੇ ਜਦ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰੇਂਗਾ ਤਾਂ ਸਾਰੇ ਸੰਸੇ ਦੂਰ ਹੋ ਜਾਵਨਗੇ। ਮਨਸੁਖ ਨੇ ਇਹ ਗਲ ਦਿਲ ਵਿੱਚ ਧਾਰੀ ਕਿ ਜੇਕਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਮੈਨੂੰ ਮੇਰਾ ਨਾਉਂ ਲੈਕੇ ਬੁਲਾਉਣਗੇ ਤਾਂ ਮੈਂ ਠੀਕ ਸਮਝ ਜਾਵਾਂਗਾ ਕਿ ਇਹ ਕੋਈ ਪੂਰੇ ਸੰਤ ਹਨ।

ਇਕ ਚੂੜਾ ਸੁੰਦਰ ਰੰਗ ਦਾ ਜੋ ਮਨਸੁਖ ਦੇ ਪਾਸ ਸੀ ਅਰ ਜਿਸ ਨੂੰ ਉਹ ਕਦੇ ਵੀ ਵੇਚਨਾ ਨਹੀਂ ਸੀ ਚਹੁੰਦਾ, ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਭੇਟਾ ਲਈ ਨਾਲ ਲੈ ਲਿਆ। ਇਕਰ ਭਗੀਰਥ ਵਿਆਹ ਦੀ ਸਮਿਗਰੀ ਲੈ ਕੇ ਮਨਸੁਖ ਸਨੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਪਾਸ ਵਾਪਸ ਮੁੜਿਆ। ਅੱਗੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਭਗੀਰਥ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਹੁਣ ਤੀਕ ਇਹ ਮਨਸੁਖ ਕੱਚਾ ਹੀ ਸੀ, ਅਜ ਇਹ ਤੇਰੇ ਨਾਲ ਆਇਆ ਹੈ ਜੋ ਸੱਚੀਂ ਹੀ 'ਮਨਸੁਖ' ਹੋ ਜਾਵੇ। ਇਹ ਸੁਨਦਿਆਂ ਹੀ ਮਨਸੁਖ ਡਡਿਆ ਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਨਾਲ ਲਿਪਟ ਗਿਆ। ਭਗੀਰਥ ਨੇ ਵਿਆਹ ਦੀ ਸਾਰੀ ਸਮਿਗਰੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਅੱਗੇ ਧਰੀ ਜੋ ਮਹਾਰਾਜ ਨੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਦੇਕੇ ਖੁਸ਼ੀ ਖੁਸ਼ੀ ਘਰ ਤੋਰਿਆ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮਨਸੁਖ ਨੂੰ ਹੋਂਮੇ ਤਿਆਗ ਕੇ ਮਨ–ਸੁਖ ਲੈਨ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ। ਇਕਰ ਮਨਸੁਖ ਕੁਝ ਦਿਨ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਦਾ ਲਾਭ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਕੇ ਲਾਹੌਰ ਮੁੜਿਆ।

ਮੋਦੀਖਾਨਾ ਤਜਨ ਬਰਨਨੰ।

ਹੁਨ ਸ੍ਰੀ ਚੰਦ ਜੀ ਦੀ ਉਮਰ ਤਿੰਨ ਸਾਲ ਛੇ ਮਹੀਨੇ ਹੋ ਚੁੱਕੀ ਸੀ ਅਰ ਲਖਮੀ ਦਾਸ ਜੀ ਮਾਤਾ ਜੀ ਦੇ ਗਰਭ ਵਿਖੇ ਪਰਵਰਿਸ਼ ਪਾ ਰਹੇ ਸਨ।

ਇਕ ਦਿਨ ਵਰਨ ਦੇਵਤੇ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਲਈ ਵੇਈਂ ਨਦੀ ਵਿਖੇ ਆ ਪਰਵੇਸ਼ ਕੀਤਾ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਵੀ ਅਸ਼ਨਾਨ ਕਰਨ ਲਈ ਉੱਥੇ ਗਏ। ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਨੇ ਜਲ ਵਿਖੇ ਜਦ ਟੁੱਬੀ ਲਗਾਈ

ਤਾਂ ਵਰਨ ਦੇਵਤਾ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸ੍ਰੀ ਸੱਚ ਖੰਡ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਦਰਬਾਰ ਵਿਖੇ ਲੈ ਗਿਆ। ਇੱਕ ਦਾਸ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਬਸਤਰ ਲਈ ਕੰਢੇ ਤੇ ਖੜਾ ਸੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਦੇਰ ਉਡੀਕਦਾ ਰਿਹਾ ਪ੍ਰੰਤੂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਜਲ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਨਾ ਨਿਕਲੇ ਸੋ ਉਹ ਅਧੀਰਜਵਾਨ ਹੋ ਕੇ ਨਵਾਬ ਦੋਲਤ ਖਾਂ ਦੀ ਸਭਾ ਵਿੱਚ ਖਬਰ ਕਰਨ ਲਈ ਗਿਆ। ਜਦ ਉਸ ਨੂੰ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਜਾਲ ਨਦੀ ਵਿੱਚ ਪਵਾਏ, ਕਈਆਂ ਨੇ ਟੁਬੀਆਂ ਲਗਾਇਆਂ ਪਰੰਤੂ ਕਝ ਪਤਾ ਨਾ ਮਿਲਿਆ। ਜਦ ਜੈ ਰਾਮ ਜੀ ਨੂੰ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਬਹੁਤ ਘਬਰਾਏ ਅਰ ਦਿਲ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਪੀੜਾ ਪਹੁੰਚੀ। ਕੇਵਲ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਹੀ ਜੋ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਮਹਿਮਾ ਜਾਨਦੇ ਸਨ ਅਡੋਲ ਰਹੇ। ਸੁਲੱਖਣੀ ਜੀ ਨੇ ਆਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਵਿਦਵਾ ਜਾਣ ਸੁੰਦਰ ਕਪੜੇ ਅਰ ਗਹਿਣੇ ਲਾਹ ਸੁੱਟੇ। ਸਾਰਿਆਂ ਦੀ ਇਹ ਦਿਸ਼ਾ ਦੇਖ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਪਾਸ ਅਰਦਾਸ ਕਰਣੀ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤੀ। ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਸੱਚ ਖੰਡ ਵਿਖੇ ਗਏ ਅਰ ਉੱਥੋਂ ਪਰਮਾਤਮਾ ਵੱਲੋਂ ਨਾਮ ਦੇ ਪਰਚਾਰ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਲਿਆ ਅਰ ਉਸ ਅੱਗਮ ਸ਼ਕਤਿ ਵੱਲੋਂ ਆਵਾਜ਼ ਆਈ ਕਿ:--- 'ਹੇ ਨਾਨਕ! ਲੋਕਾਂ ਭਟਕਦਿਆਂ ਨੂੰ ਨਾਮ ਦੀ ਰੋਸ਼ਨੀ ਵਿਖਾ ਕੇ ਸੱਚ ਦਾ ਮਾਰਗ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰੋ ਅਰ ਪਖੰਡਾਂ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰੋ।' ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਦਰਗਾਹ ਵਿਖੇ ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਉਚਾਰਿਆ 'ਕੋਟਿ ਕੋਟੀ ਮੇਰੀ ਆਰਜਾ –ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤਿ ਨਾ ਪਵੈ ਹਉ ਕੇਵਡੁ ਆਖਾ ਨਾਉ, (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰਃ ੯੧)। ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਵੱਲੋਂ ਜੋ ਮੂਲ ਮੰਤ੍ਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਮਿਲਿਆ ਸੋ ਇਕਰ ਹੈ---"੧ਓ ਸਤਿਨਾਮ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖੁ ਨਿਰਭਉ ਨਿਰਵੈਰੁ ਅਕਾਲ ਮੂਰਤਿ ਅਜੂਨੀ ਸੈਭੰ ਗੁਰਪ੍ਰਸ਼ਾਦਿ ॥" ਫੇਰ ਆਵਾਜ਼ ਆਈ ਕਿ ਦੁਨੀਆਂ ਦੀ ਕਿਰਤ ਨੂੰ ਹੁਣ ਤਿਆਗ ਦੇਹ ਅਰ ਨਾਮ ਦਾ ਰਾਹ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਦੱਸ। ਇਕਰ ਤਿੰਨ ਦਿੰਨ ਸੱਚ ਖੰਡ ਵਿਖੇ ਰਹਿ ਕੇ ਗੁਰੂ

ਜੀ ਵਾਪਸ ਵੇਈਂ ਨਦੀ ਦੇ ਕੰਢੇ ਤੇ ਪੁੱਜੇ ਅਰ ਦਾਸ ਨੂੰ ਨਿਹਾਲ ਕੀਤਾ। ਬੀਬੀ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਜਾਂ ਭਰਾ ਦੇ ਆਉਣ ਦਾ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਵੱਡੀ ਪ੍ਰਸੰਨ ਹੋਈ। ਇਸ ਦੇ ਮਗਰੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਮੋਦੀ ਖਾਨੇ ਦਾ ਕੰਮ ਤਿਆਗ ਦਿੱਤਾ ਅਰ ਮਸਾਨਾਂ ਵਿਖੇ ਜਾ ਕੇ ਜਾਪ ਕਰਨ ਲੱਗੇ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਇਹ ਦਸ਼ਾ ਦੇਖ ਕਿਸੇ ਨੇ ਨਵਾਬ ਪਾਸ ਜਾ ਚੁਗਲੀ ਥੱਪੀ ਤਾਂ ਉਸਨੇ ਜੈਰਾਮ ਨੂੰ ਬੁਲਵਾ ਕੇ ਮੋਦੀ ਖਾਨੇ ਦਾ ਹਿਸਾਬ ਮੰਗਿਆ। ਜੈਰਾਮ ਨਵਾਬ ਨੂੰ ਇਹ ਕਹਿ ਕੇ ਕਿ ਮੈਂ ਇਕ ਵਾਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਮਿਲ ਕੇ ਫਿਰ ਹਿਸਾਬ ਦੇਵਾਂਗਾ, ਆਪ ਸਤਿਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਪਾਸ ਪਹੁੰਚਿਆ। ਜਦ ਮੋਦੀ ਖਾਨੇ ਦਾ ਲੇਖਾ ਹੋਇਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਸਤ ਸੌ ਸਠ ਰੁਪੈ ਨਵਾਬ ਵੱਲ ਵਧੇ ਅਰ ਨਿੰਦਕ ਜਨ ਬਹੁਤ ਲੱਜਿਤ ਹੋਏ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਇਹ ਵਾਧੇ ਰੂਪੈ ਨਵਾਬ ਪਾਸ ਅਮਾਨਤ ਵਜੋਂ ਰੱਖ ਕੇ ਆਪ ਫੇਰ ਮਸਾਨਾਂ ਵਿਖੇ ਭਗਤੀ ਕਰਨ ਲਈ ਜਾ ਨਿਵਾਸ ਕੀਤਾ। ਇਹ ਦੇਖ ਸੁੱਲਖਣੀ ਜੀ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਦੁਖ ਹੋਇਆ ਪਰੰਤੂ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਦਾ ਮਨ ਪਹਾੜ ਸਮਾਨ ਅਡੋਲ ਹੀ ਰਿਹਾ।

ਲੱਖਮੀ ਦਾਸ ਜਨਮ, ਮਨਸੁਖ ਭਗੀਰਥ ਗਵਨ ਬਰਨਨੰ।

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਮੜ੍ਹੀਆਂ ਮਸਾਨਾਂ ਵਿੱਚ ਹੀ ਬੈਠੇ ਰਹਿੰਦੇ ਅਰ ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਕੋਈ ਵੱਧ ਘਟ ਗਲ ਵੀ ਨਹੀਂ ਸਨ ਕਰਦੇ। ਕਦੇ ਕਦੇ ਇਹ ਕਹਿਆ ਕਰਦੇ ਸਨ ਕਿ ਅਸੀਂ ਨਾ ਹਿੰਦੂ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਮੁਸਲ-ਮਾਨ ਹਾਂ। ਇਹ ਸੁਣ ਕੇ ਇੱਕ ਕਾਜ਼ੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਸਾਨੂੰ ਤੇਰੀ ਗਲ ਪੁਰ ਨਿਸਚਾ ਨਹੀਂ ਬਝਦਾ ਅਰ ਸੰਦੇਹ ਹੀ ਬਣਿਆ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਹੇਠ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਉਚਾਰਨ ਕੀਤਾ —'ਮੁਸਲਮਾਨ ਕਹਾਵਣੁ ਮੁਸਕਲੁ-- -ਤਉ ਨਾਨਕ ਸਰਬ ਜੀਆ ਮਿਹਰੰ-ਮਤਿ ਹੋਇ ਤ ਮੁਸਲਮਾਣੁ ਕਹਾਵੈ ॥' ਤੇ ਫੇਰ ਹੋਰ ਸ਼ਬਦ ਉਚਾਰਿਆ--- 'ਮਿਹਰ ਮਸੀਤਿ ਸਿਦਕ ਮੁਸਲਾ---ਤਸਬਹੀ ਸਾ ਤਿਸੁ ਭਾਵਸੀ ਨਾਨਕ ਰਖੈ

ਲਾਜ ॥ ੨ ॥' ਫੇਰ ਕਿਹਾ 'ਹਿੰਦੂ ਭੂਲੇ ਅਖੁਟੇ ਜਾਹੀਂ—ਓਇ ਜਿ ਆਪ ਡੁਬੈ ਤੁਮ ਕਹਾ ਤਰਾਵਣ ਹਾਰ ॥ ੩ ॥' (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰः ੯੯) ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਉਚਾਰਨ ਕੀਤੇ ਉਪਰਲੇ ਸ਼ਬਦ ਸੁਨ ਕੇ ਕਾਜੀ ਬਹੁਤ ਲੱਜਿਤ ਹੋਇਆ। ਅਰ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦਾ ਸਿੱਖ ਬਨਿਆ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਮਸਾਨ ਅਸਥਾਨ ਵਿਖੇ ਹੀ ਰਿਹਾ ਕਰਦੇ ਸਨ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਭਗੀਰਥ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਪਾਸ ਹੀ ਰਹਿੰਦਾ ਸੀ। ਮਨਸੁਖ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨਾ ਨੂੰ ਆਇਆ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਮੈਂ ਸੰਗਲਾਦੀਪ ਵਿਖੇ ਵਨਜ ਬਿਉਹਾਰ ਲਈ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹਾਂ, ਆਪ ਪਾਸ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਅਰ ਉਪਦੇਸ਼ ਲਈ ਆਇਆ ਹਾਂ। ਸ਼ੁਭ ਸਿਖਿਆ ਅਰ ਉਪਦੇਸ਼ ਦੇਵੋ ਜੋ ਮੈਂ ਲਿਖ ਲਵਾਂ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮਨਸੁਖ ਨੂੰ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦਾ ਨਾਮ ਸ੍ਵਾਸ ੨ ਜਪਨ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਜੇ ਕੋਈ ਮੁਸ਼ਕਲ ਆ ਬਨੇ ਤਾਂ ਯਾਦ ਕਰਨਾ ਮੈਂ ਅੰਗ ਸੰਗ ਹਾਂ। ਕਈ ਉਪਦੇਸ਼ ਗੁਰੂ ਜੀ ਤੋਂ ਲਿਖ ਕੇ ਮਨਸੁਖ ਸੰਗਲਾਦੀਪ ਨੂੰ ਚਲਿਆ ਗਿਆ। ਇਸ ਤੋਂ ਪਿੱਛੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਭਗੀਰਥ ਨੂੰ ਵੀ ਆਗਜਾ ਬਖਸ਼ੀ ਕਿ ਘਰ ਜਾਵੋ ਅਰ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦਾ ਧਿਆਨ ਹਰ ਵੇਲੇ ਹਿਰਦੇ ਵਿਖੇ ਰਖਿਆ ਕਰੋ।

ਨਬਾਬ ਪ੍ਰਸੰਗ ਬਰਨਨੰ।

ਸਤਸੌ ਸਠ ਰੁਪੈ ਜੋ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਨਵਾਬ ਦੌਲਤ ਖਾਂ ਵੱਲ ਵਧਦੇ ਸਨ ਉਹ ਰਕਮ ਮੂਲਚੰਦ ਨਵਾਬ ਤੋਂ ਮੰਗਨ ਲਈ ਗਿਆ। ਨਵਾਬ ਨੇ ਉੱਤਰ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਉਹ ਰਕਮ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਮੇਰੇ ਪਾਸ ਅਮਾਨਤ ਵੱਜੋਂ ਰਖ ਗਏ ਹਨ। ਓਹ ਰੁਪੈ ਆਪ ਹੀ ਆ ਕੇ ਮੈਥੋਂ ਲੈ ਸਕਦੇ ਹਨ, ਜਾਂ ਜਿਕਰ ਉਹ ਕਹਿ ਗਏ ਸਨ ਕਿ ਫ਼ਕੀਰਾਂ ਨੂੰ ਖਵਾ ਦੇਨਾ ਸੋ ਹੇ ਮੂਲਚੰਦ! ਤੇਰੀ ਮਰਜ਼ੀ ਉਹ ਰੁਪੈ ਫ਼ਕੀਰਾਂ ਨੂੰ ਖੁਵਾਵਨ ਦੀ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਨਸ਼ੰਗ ਲੈ ਲੈ। ਜੇਕਰ ਤੂੰ ਉਹ ਰਕਮ ਰੋਕ ਲੈਨੀ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈਂ ਤਾਂ

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਪਾਸੋਂ ਪਤਾ ਕਰ ਲੈਨ ਦੇਹ। ਇਹ ਸੁਣ ਮੂਲਾ ਜੋ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਪਾਗਲ ਹੋਇਆ ਜਾਨਦਾ ਸੀ ਇੱਕ ਮੁਲਾਨੇ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੇ ਜੰਤ੍ਰ ਮੰਤ੍ਰ ਝਾੜਨ ਲਈ ਨਾਲ ਲੈ ਕੇ ਉੱਥੇ ਪਹੁੰਚਿਆ ਜਿੱਥੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਮਸਾਨਾਂ ਵਿੱਚ ਬਿਰਾਜਮਾਨ ਸਨ। ਇਸ ਮੁਲਾਨੇ ਨੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਦੀ ਦੀ ਸਮਾਧੀ ਖੋਲਨ ਲਈ ਧੂਆਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਨਾਸਕਾ ਵਿੱਚ ਵਾੜਿਆ ਜਿਸ ਦੇ ਕਾਰਨ ਮਹਾਰਾਜ ਸਾਰਾ ਭੇਦ ਜਾਨ ਕਹਿਨ ਲੱਗੇ---"ਖੇਤੀ ਜਿਨ ਕੀ ਉਜੜੀ ਖਲਵਾੜੈ ਨਾਹੀ ਥਾਂਉ। ਨਾਨਕ ਧ੍ਰਿਗ ਤਿਨਾ ਦਾ ਜੀਵਿਆ ਜਿ ਲਿਖਿ ਲਿਖਿ ਵੇਚਹਿ ਨਾਉ॥" ਹੁਣ ਮਹਾਰਾਜ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਸਮਾਧੀ ਖੁਲ ਤਾਂ ਗਈ ਸੀ ਪਰੰਤੂ ਨੇਤ੍ਰ ਮੂੰਦੇ ਹੀ ਸਨ। ਮੋਲਾਨਾ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਇਸ ਵਿਖੇ ਠੀਕ ਹੀ ਕੋਈ ਜਿੱਨ ਭੂਤ ਹੈ। ਪੁੱਛਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਤੇਰਾ ਨਾਉਂ ਕੀਹ ਹੈ, ਦੱਸ, ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਫੜ ਕੇ ਸਾੜ ਦੇਵਾਂਗਾ। ਇਹ ਸੁਨ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਬੋਲੇ 'ਕੋਈ ਆਖੈ ਭੂਤਨਾ----ਮੰਦਾ ਜਾਣੈ ਆਪ ਕਉ ਅਵਰੁ ਭਲਾ ਸੰਸਾਰੁ।' (ਦੇਖੋ ਸਫਾ ਨੰਬਰ ੧੦੪) ਗੁਰੂ ਜੀ ਦਾ ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਸੁਨ ਕੇ ਮੁਲਾਨਾ ਮਹਾਰਾਜ ਜੀ ਦੀ ਚਰਨੀ ਲੱਗਾ ਤੇ ਨਵਾਬ ਪਾਸ ਜਾ ਕੇ ਦੱਸਿਆ ਕਿ ਨਾਨਕ ਪੀਰਨ-ਪੀਰ ਵੱਡੀ ਮਤ ਵਾਲਾ ਹੈ। ਉਹ ਤਾਂ ਹਰ ਤਰਾਂ ਬੰਦਨਾ ਯੋਗ ਹੈ। ਇਹ ਸੁਨ ਨਵਾਬ ਸੋਚਾਂ ਵਿਖੇ ਪੈ ਗਿਆ ਕਿ ੭੬੦ ਰੁਪੈ ਦਾ ਕੀਹ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇ, ਇਸ ਵੇਲੇ ਇੱਕ ਮਨੁਖ ਨੇ ਕੋਲੋਂ ਕਿਹਾ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਵਾ ਕੇ ਪੁੱਛ ਲਵੇ। ਜਿਸ ਵੇਲੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਾਵਨ ਲਈ ਮੱਨੁਖ ਗਿਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਆਉਣੋਂ ਨਾ ਕਰ ਦਿੱਤੀ। ਦੂਜੀ ਵਾਰੀ ਜਾਂ ਨਵਾਬ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਬੁਲਾਉਨ ਲਈ ਉਸੇ ਹੀ ਮਨੁਖ ਨੂੰ ਭੇਜਿਆ ਤਾਂ ਮਹਾਰਾਜ ਮੁਸਕਰਾਉਂਦੇ ਹੋਏ ਨਵਾਬ ਪਾਸ ਆਏ ਤੇ ਸਲਾਮ ਤੀਕ ਵੀ ਨਾ ਕੀਤੀ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਨਵਾਬ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਗੁੱਸਾ ਆਇਆ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੂੰ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ

ਕਿ ਜੇਕਰ ਤੂੰ ਹਿੰਦੂ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਵਿੱਚ ਕੋਈ ਭੇਦ ਨਹੀਂ ਜਾਨਦਾ ਤਾਂ ਚਲ ਸਾਡੇ ਨਾਲ ਜਾ ਕੇ ਮਸੀਤ ਵਿੱਚ ਨਮਾਜ਼ ਪੜ੍ਹ । ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਾਜੀ ਅਰ ਨਵਾਬ ਸਨੇ ਮਸੀਤ ਵੱਲ ਨਵਾਜ਼ ਪੜ੍ਹਨ ਲਈ ਤੁਰ ਪਏ । ਇਹ ਸਾਰੀ ਵਾਰਤਾ ਜਾਂ ਜੈਰਾਮ ਨੇ ਸੁਨੀ ਤਾਂ ਬਹੁਤ ਦੁਖੀ ਹੋਇਆ । ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਸਮਝਾਇਆ ਜੋ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਚਿੰਤਾ ਨਾ ਕਰੋ ਉਹ ਤਾਂ ਅਕਾਲ ਰੂਪ ਹਨ, ਪਰ ਤਾਂ ਭੀ ਜੇਰਾਮ ਜੀ ਦੇ ਮਨ ਧੀਰਜ ਨਾ ਆਈ । ਅੰਤ ਨਿੱਧੇ ਪੰਡਿਤ ਨੂੰ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੇ ਮਸੀਤ ਵਿਖੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਸੋ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਭੇਜਿਆ ।

ਮਸੀਤ ਪ੍ਰਸੰਗ ਬਰਨਨੰ ।

ਜਦ ਕਾਜੀ ਅਰ ਨਵਾਬ ਸਰੀਰ ਕਰਕੇ ਨਮਾਜ਼ ਪੜ੍ਹ ਰਹੇ ਸਨ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਅਡੋਲ ਖਲੋਤੇ ਰਹੇ, ਨਮਾਜ ਨਾ ਪੜ੍ਹੀ । ਨਵਾਬ ਨੇ ਇਸ ਦਾ ਕਾਰਨ ਪੁੱਛਿਆ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਕਹਿਨ ਲੱਗੇ ਮੈਂ ਨਮਾਜ ਕਿਸ ਨਾਲ ਪੜ੍ਹਦਾ, ਤੇਰਾ ਚਿੱਤ ਤਾਂ ਕੰਧਾਰ ਦੇਸ ਵਿਖੇ ਘੋੜੇ ਖਰੀਦਨ ਲਈ ਗਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ ਅਰ ਕਾਜ਼ੀ ਸਾਹਿਬ ਮਨ ਵਿਖੇ ਤੌਖਲਾ ਕਰ ਰਹੇ ਸਨ ਕਿ ਮਤਾਂ ਘੋੜੀ ਦਾ ਵਛੇਰਾ ਟੋਏ ਵਿਖੇ ਨਾ ਡਿੱਗ ਪਵੇ । ਸੋ ਤੁਹਾਡੇ ਦੁਆਂ ਦੇ ਮਨ ਇੱਥੇ ਟਿਕੇ ਹੋਏ ਨਹੀਂ ਸਨ । ਇਹ ਅੰਤਰਜਾਮਤਾ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀ ਦੇਖ ਨਵਾਬ ਅਰ ਕਾਜ਼ੀ ਬਹੁਤ ਲੱਜਿਤ ਹੋਏ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਹੱਥ ਜੋੜ ਬੰਦਨਾ ਕੀਤੀ । ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮਨ ਦੀ ਸਥਿਰਤਾ ਪੁਰ ਨਵਾਬ ਨੂੰ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਦਸਿਆ ਕਿ ਇਹ ਮਨ ਸੱਚੇ ਗੁਰੂ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਬਿਨਾ ਟਿਕ ਨਹੀਂ ਸਕਦਾ, ਸੋ ਗੁਰੂ ਦੀ ਖੋਜ ਲਈ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਭਗਤੀ ਬਹੁਤ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ । ਇਸ ਦੇ ਮਗਰੋਂ ਨਵਾਬ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸ ਬੇਨਤੀ ਕੀਤੀ ਕਿ ਮੂਲੇ ਨੇ ਮੈਂਥੋਂ ਤੁਹਾਡੀ ਅਮਾਨਤ ੭੬੦ ਰੁਪੈ ਮੰਗੇ ਹਨ ਤੁਸੀਂ ਦੱਸੋ ਕੀਕਰ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇ ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਉੱਤਰ ਦਿੱਤਾ ਕਿ ਮੈਂ ਇੱਕ ਵਾਰੀ ਜੋ ਕਹਿ ਚੁੱਕਾ ਹਾਂ, ਅੱਗੋ ਜੋ ਤੁਹਾਡਾ ਜੀ ਚਾਹੇ ਸੋ ਕਰੋ। ਇਹ ਸਰੀ ਘਟਨਾ ਦੇਖ ਨਿੱਧਾ ਪੰਡਿਤ ਘਰ ਸੁੱਧ ਦੇਨ ਨੂੰ ਦੌੜਿਆ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਵੀ ਮਸੀਤੋਂ ਬਾਹਰ ਆ ਗਏ। ਜਦ ਜੈਰਾਮ ਅਰ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਪਤਾ ਲੱਗਾ ਤਾਂ ਬੜੇ ਖ਼ੁਸ਼ ਹੋਏ। ਇਤਨੇ ਨੂੰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਭੀ ਭੈਣ ਨੂੰ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇਨ ਲਈ ਆ ਪਹੁੰਚੇ ਅਰ ਤੁਲਸਾਂ ਦਾਈ ਨੇ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਜਾ ਕਿਹਾ। ਜੈਰਾਮ ਅਰ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਡਿੱਗ ਪਏ ਅਰ ਖੁਸ਼ੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤੀ।

ਮਰਦਾਨੇ ਆਵਨ ਰਬਾਬ ਲਿਆਵਨ ਕੋ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਸਾਰਾ ਦਿਨ ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਦੇ ਘਰ ਰਹੇ, ਅਗਲਾ ਦਿਨ ਹੋਇਆ ਤਾਂ ਆਪ ਵੇਈਂ ਨਦੀ ਵਿੱਚ ਅਸ਼ਨਾਨ ਲਈ ਗਏ ਅਰ ਮੁੜ ਬਾਹਰ ਹੀ ਰਾਤ ਦਿਨ ਨਿਵਾਸ ਰੱਖਿਆ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮੋਦੀ ਖਾਨਾ ਤਾਂ ਛੱਡ ਹੀ ਦਿੱਤਾ ਸੀ, ਸੋ ਹੁਣ ਫਕੀਰੀ ਬਾਨਾ ਪਹਿਨ ਲਿਆ। ਜਾਂ ਇਹ ਖਬਰ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੂੰ ਹੋਈ ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸ ਸੁੱਧ ਲੈਨ ਲਈ ਭੇਜਿਆ। ਮਰਦਾਨੇ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਉਦਿਆਨ ਵਿਖੇ ਜਾ ਕੇ ਦੇਖਿਆ ਕਿ ਭਗਵੇ ਬਸਤਰ ਪਹਿਨੇ ਹੋਏ ਉਦਾ-ਸੀਨ ਬੈਠੇ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤੂੰ ਸਾਥੋਂ ਜੋ ਪਹਿਲੇ ਗਾਇਨ ਦਾ ਗੁਣ ਲਿਆ ਸੀ ਅਰ ਅਸਾਂ ਤੈਨੂੰ ਖੁਸ਼ੀ ਨਾਲ ਬਖ਼ਸ਼-ਸਿਆ ਸੀ, ਸੋ ਹੁਣ ਉਸ ਨੂੰ ਬਾਹਰ ਕੱਢ ਅਰ ਸਾਡੇ ਨਾਲ ਰਾਤ ਦਿਨ ਰਹਿ ਕੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਗੀਤ ਗਾਉ। ਇਹ ਸੁਣ ਮਰਦਾਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਮੈਂ ਹਾਜ਼ਰ ਹਾਂ ਪਰੰਤੂ ਮੈਨੂੰ ਕਾਲੂ ਜੀ ਨੇ ਤੁਹਾਡੀ ਸੁਧ ਲੈਣ ਲਈ ਭੇਜਿ-ਆ ਸੀ ਸੋ ਇੱਕ ਵਾਰੀ ਮੈਨੂੰ ਘਰੋਂ ਮਿਲ ਆਉਣ ਦੀ ਆਗਜਾ ਬਖ਼ਸ਼ੋ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਤੇਰਾ ਮੋਹ ਅਜੇ ਘਰ ਨਾਲੋਂ ਤੁਟਿਆ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਸੋ ਤੂੰ ਜਾਹ ਘਰ ਹੀ ਵਿਖੇ ਆਨੰਦ ਮਾਨ। ਮਰਦਾਨੇ ਨੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਜਦ

ਇਹ ਬਚਨ ਸੁਨੇ ਤਾਂ ਉਸ ਦੇ ਮਨ ਦੀ ਸਾਰੀ ਤ੍ਰਿਸ਼ਨਾ ਦੂਰ ਹੋ ਗਈ ਤੇ ਕਹਿਨ ਲੱਗਾ ਕਿ ਮੈਂਨੂੰ ਹੁਣ ਅਪਨੇ ਪਾਸ ਹੀ ਰੱਖੋ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਰਬਾਬ ਲੈਨ ਲਈ ਭੇਜਿਆ। ਨਗਰ ਵਿਖੇ ਕਿਸੇ ਨੇ ਵੀ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਆਦਰ ਨਾ ਦਿੱਤਾ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਰਾਹਕ ਦੇ ਪਿੰਡ ਜਾ ਕੇ ਫਿਰੰਦੇ ਰਬਾਬੀ ਦਾ ਘਰ ਪੁੱਛ ਕੇ ਉਸ ਤੋਂ ਰਬਾਬ ਲੈ ਆ। ਸਤ ਰੁਪੈ ਰੋਕ ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਤੋਂ ਰਬਾਬ ਖਰੀਦਨ ਲਈ ਲੈ ਆਉਣ ਦੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਆਗਜ਼ਾ ਬਖਸ਼ੀ। ਨੌਵੇਂ ਦਿਨ ਮਰਦਾਨਾ ਸੁੰਦਰ ਰਬਾਬ ਲੈ ਆਇਆ ਅਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਹੁਕਮ ਅਨੁਸਾਰ 'ਤੁਹੀ ਨਿਰੰਕਾਰ ਨਿਰੰਕਾਰ' ਦੀ ਸੁਰ ਛੋੜੀ ਜਿਸ ਨੂੰ ਸੁਨ ਕੇ ਪਸ਼ੂ ਪੰਛੀ ਸੱਭ ਮੁੱਗਧ ਹੋ ਗਏ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਵੀ ਸਮਾਧ ਲਗ ਗਈ ਅਰ ਦੋ ਦਿਨ ਤੀਕ ਨੇਤਰ ਨਾ ਖੁੱਲੇ।

ਵਿਦਾ ਹੋਵਨ ਪ੍ਰਸੰਗ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਸਮਾਧੀ ਦੋ ਦਿਨ ਤੀਕ ਨਾ ਖੁਲੀ ਅਰ ਨਾ ਹੀ ਮਰ-ਦਾਨੇ ਨੂੰ ਖਾਨ ਪੀਨ ਲਈ ਹੱਥ ਆਇਆ। ਮਰਦਾਨਾ ਲੱਗਾ ਭੁਖ ਅਰ ਤੇਹ ਨਾਲ ਵਿਆਕੁਲ ਹੋਵਨ। ਜਾਂ ਅਗਲੇ ਭਲਕ ਸਵੇਰੇ ਹੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਨੇਤਰ ਖੋਲੇ ਤਾਂ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਅਸੰਤੁਸ਼ਟ ਵੇਖ ਕੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸਾਡੇ ਪਾਸ ਰਹਿਨ ਨਾਲ ਤਾਂ ਭੁਖ ਤੇਹ ਦਾ ਦੁਖ ਸਹਾਰਨਾ ਪਵੇਗਾ, ਜੇਕਰ ਤੇਰੀ ਮਰਜ਼ੀ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਨੱਸ਼ੰਗ ਰਬਾਬ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਦੇ ਘਰ ਧਰ ਕੇ ਆਪ ਤਲ-ਵੰਡੀ ਵਿਖੇ ਟੱਬਰ ਨਾਲ ਮੌਜਾਂ ਮਾਨ। ਇਹ ਸੁਨ ਮਰਦਾਨਾ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਪਾਸ ਗਿਆ ਤੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਤਿੱਨ ਦਿਨ ਸਮਾਧ ਲੱਗੀ ਰਹਿਨ ਦੇ ਕਾਰਨ ਆਪਨਾ ਭੁਖ ਤੇਹ ਦਾ ਕਲੇਸ਼ ਕਹਿ ਸੁਨਾਇਆ। ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਦੇ ਬਹੁਤ ਬਹੁਤ ਕਹਿਨ ਤੇ ਮਰਦਾਨਾ ਘਰ ਜਾਨੋ ਰੁਕ ਗਿਆ ਅਰ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਤੋਂ ਵੀਹ ਰੁਪੈ ਨਕਦ ਲੈ ਕੇ ਜੈਰਾਮ ਜੀ ਦਾ ਬਖ਼ਸ਼ਿਆ ਜਾਮਾਂ

ਪਹਿਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਪਾਸ ਜਾਵਨ ਨੂੰ ਮੁੜ ਤਿਆਰ ਹੋ ਪਿਆ। ਜਾਂ ਮਰਦਾਨਾ ਕੰਧੇ ਤੇ ਰਬਾਬ ਰਖ ਕੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਪਾਸ ਪਹੁੰਚਿਆ ਤੇ ਕਹਿਆ ਕਿ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੇ ਮੇਰੇ ਤਲਵੰਡੀ ਜਾਨ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਅਸੰਤੁਸ਼ਟਤਾ ਦਿਖਾ-ਈ ਹੈ ਤੇ ਮੋੜ ਕੇ ਮੈਨੂੰ ਫਿਰ ਆਪ ਜੀ ਪਾਸ ਭੇਜਿਆ ਹੈ ਅਰ ਆਉਂਦੀ ਵੇਰ ੨੦) ਰੋਕ ਦਿੱਤੇ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੂੰ ਮਰਦਾਨੇ ਨੇ ਇਹ ਵੀ ਕਿਹਾ ਕਿ ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਨੂੰ ਤੁਹਾਡੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਦੀ ਬਹੁਤ ਲਾਲਸਾ ਹੈ ਸੋ ਚੱਲ ਕੇ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇਵੋ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਭੈਣ ਜੀ ਪਾਸ ਪਹੁੰਚੇ ਅਰ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇ ਕੇ ਕ੍ਰਿਤਾਰਥ ਕੀਤਾ। ਗੁਰੂ ਜੀ ਕੁਝ ਦਿਨ ਇੱਥੇ ਹੀ ਰਹੇ। ਮਰਦਾਨਾ ਜੋ ਰੁਪੈ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਤੋਂ ਲੈ ਆਇਆ ਸੀ ਉਹ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਭੈਣ ਨੂੰ ਮੋੜ ਦਿੱਤੇ। ਭੈਣ ਨੂੰ ਕਈ ਪ੍ਰਕਾਰ ਧੀਰਜ ਬੰਧਾ ਕੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਬਾਲੇ ਅਰ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਕੇ ਦੇਸ ਯਾਤ੍ਰਾ ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਕੀਤੀ ਅਰ ਭੈਣ ਨਾਨਕੀ ਜੀ ਪਾਸੋਂ ਵਿਦਾ ਹੋਏ।

"ਸ੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਵਾਸ਼" ਵਿੱਚੋਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਂਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਉਚਾਰੇ ਸ਼ਬਦਾਂ ਦਾ ਟੀਕਾ।

ਹੇਠ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਗੋਪਾਲ ਪਾਂਧੇ ਪ੍ਰਤਿ ਉਚਾਰਿਆ:—

ਸ੍ਰੀ ਰਾਗ ਮਹਲਾ ੧

ਜਾਲਿ ਮੋਹੁ ਘਸਿ ਮਸੁ ਕਰਿ ਮਤਿ ਕਾਗਦੁ ਕਰਿ ਸਾਰੁ ॥ ਭਾਉ ਕਲਮ ਕਰਿ ਚਿਤੁ ਲਿਖਾਰੀ ਗੁਰ ਪੁਛਿ ਲਿਖੁ ਬੀਚਾਰੁ ॥ ਲਿਖੁ ਨਾਮ ਸਾਲਾਹ ਲਿਖ ਲਿਖ ਅੰਤੁ ਨ ਪਾਰਾਵਾਰੁ ॥ ਬਾਬਾ ਇਹੁ ਲੇਖਾ ਲਿਖਿ ਜਾਣੁ ॥ ਜਿਥੈ ਲੇਖਾ ਮੰਗੀਐ ਤਿਥੈ ਹੋਇ ਸਚਾ ਨੀਸਾਣੁ ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥ ਜਿਥੈ ਮਿਲੈ ਵਡਿਆਈਆ ਸਦ ਖੁਸੀਆ ਸਦ ਚਾਉ ॥ ਤਿਨ ਮਖਿ ਟਿਕੇ ਨਿਕਲਹਿ ਜਿਨ ਮਨਿ ਸਚਾ ਨਾਉ । ਕਰਮ ਮਿਲੈ ਤਾ ਪਾਈਐ ਨਾਹੀ ਗਲੀ ਵਾਉ

ਦੁਆਉ ॥ ੨ ॥ ਇਕ ਆਵਹਿ ਇਕ ਜਾਹਿ ਉਠਿ, ਰਖੀਅਹਿ ਨਾਵ ਸਲਾਰ ॥ ਇਕਿ ਉਪਾਏ ਮੰਗਤੇ ਇਕਨਾ ਵਡੇ ਦਰਵਾਰ ॥ ਅਗੈ ਗਇਆ ਜਾਣੀਐ ਵਿਣੁ ਨਾਵੈ ਵੇਕਾਰ ॥ ੩ ॥ ਭੈ ਤੇਰੇ ਡਰੁ ਅਗਲਾ ਖਪਿ ਖਪਿ ਛਿਜੈ ਦੇਹ ॥ ਨਾਵ ਜਿਨਾ ਸੁਲਤਾਨ ਖਾਨ ਹੋਂਦੇ ਡਿਠੇ ਖੇਹ ॥ ਨਾਨਕ ਉਠੀ ਚਲਿਆ ਸਭਿ ਕੂੜੇ ਤੁਟੈ ਨੇਹ ॥ (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰ: ੧੭ ਤੇ ੧੮)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ।

ਮਸੁ = (ਸੰ: ਮਸਿ) ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਖੇ ਮਸੀ, ਮਸ ਜਾਂ ਮਸੂ ਵੀ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਸਿਆਹੀ ਜਿਸ ਨਾਲ ਕਾਗਜ਼ ਤੇ ਅੱਖਰ ਲਿਖੇ ਜਾਣ। ਦੇਖੋ ਜਿਕਰ 'ਮਸੁ ਕੇ ਕਰਮ ਕਪਾਟ'। ਹੋਰ 'ਮਸੂ ਤੋਟਿ ਨ ਆਵਈ' ॥ਮਹਲਾ੧॥

ਸਾਰੁ = (ਸੰ: ਸਾਰ) ਠੀਕ, ਚੰਗੀ, ਅਸਲੀ, ਸੱਚੀ।

ਪਾਰਾਵਾਰੁ = ਅੰਤ, ਹਦ, ਦੇਖੋ "ਨਾਨਕ ਅਤ ਨ ਜਾਪਨੀ ਹਰਿ ਤਾਕੇ ਪਾਰਾਵਾਰ।"

ਸਾਲਾਹ = (ਅਰਬੀ ਸਲਾਹ) ਨੇਕੀ, ਉਸਤਤੀ, ਜਸ।

ਨੀਸਾਣੁ = (ਫਾਰਸੀ ਨਿਸ਼ਾਨ) ਚਿੰਨ੍ਹ, ਨਿਸ਼ਾਨੀ, ਪਰਵਾਨਾ। ਦੇਖੋ—'ਗਾਵੈ ਕੋ ਦਾਤਿ ਜਾਣੈ ਨੀਸਾਣੁ'। (ਜਪੁਜੀ)

ਸਦ = (ਸੰ: ਸਦਾ) ਹਮੇਸ਼ਾ, ਚਿਰ ਤੀਕ, ਨਿੱਤ।
(ਫਾਰਸੀ ਸਦ) ਸੌ, ਪੰਜ ਵੀਹਾਂ।

ਟਿਕੇ = ਟਿੱਕਾ ਦਾ ਬਹੁ ਵਚਨ। ਤਿਲਕ ਜੋ ਕੇਸਰ ਆਦਿਕ ਨਾਲ ਲਾਂਦੇ ਹਨ (ਸੰ: ਤਿਲਕ:) ਭਾਵ ਜਸ ਰੂਪੀ ਟਿੱਕੇ।

ਕਰਮ = (ਸੰ०कर्मन् ਹਿੰਦੀ करम, कर्म्म) ਜੋ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇ। ਕੰਮ, ਕਾਰਜ (੨) ਕਿਸਮਤ, ਭਾਗ (੩) (ਅਰਬੀ) ਸਖਾਵਤ, ਬਖਸ਼ਸ਼, ਮੇਹਰਬਾਨੀ।

ਵਾਉ ਦੁਆਉ = ਵਾਉ—ਹਵਾ, ਪਵਣ ਜਾਂ ਪਵਣ ਵਿਖੇ। ਦੁਆਉ =

(ਅਰਬੀ, ਦੁਆ) ਮੰਗਣਾ, ਇੱਛਾ ਕਰਨਾ। ਪੰਜਾਬੀ ਵਿੱਚ ਵਾਉ ਦੁਆਉ ਫ਼ਜ਼ੂਲ ਬੋਲਣ ਨੂੰ ਭੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ।

ਸਲਾਰ= (ਫ਼ਾਰਸੀ ਸਾਲਾਰ) ਸਰਦਾਰ।

ਵੇਕਾਰ= (ਸੰ० विकारः) ਦੁੱਖ, ਰੋਗ, ਬਿਮਾਰੀ।

ਅਗਲਾ= ਬਾਹਲਾ, ਬਹੁਤਾ। ਦੇਖੋ 'ਇਕਨਾ ਆਟਾ ਅਗਲਾ ਇਕਨਾ ਨਾਹੀ ਲੋਣ।' (ਫਰੀਦ ਜੀ)

ਛਿੱਜੈ= ਬਿਨਸਨਾ, ਨਾਸ ਹੋਣਾ, ਖੀਨ ਹੋਣਾ, ਤੁਟਨਾ। ਦੇਖੋ – 'ਇਕ ਛਿਜਹਿ ਬਿਆ ਲਤਾੜੀਅਹਿ' (ਫਰੀਦ ਜੀ)

ਅਰਥ।

ਮੋਹ ਨੂੰ ਸਾੜ ਕੇ ਘਸਾ ਕੇ ਸਿਆਹੀ ਬਨਾ, ਚੰਗੀ ਮਤ ਦਾ ਕਾਗਜ਼ ਬਨਾ, ਪਰੇਮ ਦੀ ਲੇਖਨੀ ਬਨਾ ਅਰ ਚਿੱਤ ਨੂੰ ਲਿਖਨ ਵਾਲਾ ਕਰ, ਗੁਰਾਂ ਤੋਂ ਪੁੱਛ ਕੇ ਵਿਚਾਰ (ਨਾਮ ਦੀ ਵਿਚਾਰ) ਲਿੱਖ। ਨਾਮ ਦਾ ਜਸ ਲਿੱਖ ਅਰ ਲਿੱਖ ਲਿੱਖ ਕੇ (ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ) ਅੰਤ ਦਾ ਅੰਤ ਨਹੀਂ ਆਉਂਦਾ ॥ ੧ ॥

ਹੇ ਭਾਈ, ਇਕਰ ਦਾ ਲੇਖਾ ਲਿਖਨਾ ਸਿੱਖ। ਜਿੱਥੇ ਲੇਖਾ ਮੰਗੱਨਗੇ (ਪਰਲੋਕ ਵਿਖੇ) ਉੱਥੇ ਸੱਚ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨੀ ਜਾਂ ਪਰਵਾਨਾ ਤੇਰੇ ਕੋਲ ਹੋਵੇਗਾ ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥ ਜਿੱਥੇ ਤੈਨੂੰ ਵਡਿਆਈਆਂ, ਨਿਤ ਦੀਆਂ ਖ਼ੁਸ਼ੀਆਂ ਅਰ ਚਾਉ ਪ੍ਰਾਪਤਿ ਹੋਵਨਗੇ ॥ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮੱਥੇ ਤੇ ਜੱਸ ਰੂਪੀ ਟਿੱਕੇ ਲੱਗਨਗੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਨ ਵਿਖੇ ਸੱਚਾ ਨਾਉ (ਰਾਮ ਨਾਮ) ਹੋਵੇਗਾ। ਓਹ (ਰਾਮਨਾਮ) ਈਸ਼੍ਵਰ ਦੀ ਕ੍ਰਿਪਾ ਦ੍ਵਾਰਾ ਲੱਭਦਾ ਹੈ, ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਹੋਰ ਗੱਲਾਂ ਨਿਸ਼ਫਲ ਹਨ ॥ ੨ ॥

ਕਈ (ਸੰਸਾਰ ਵਿਖੇ) ਆਉਂਦੇ ਤੇ ਕਈ ਜਾਂਦੇ ਹਨ, ਤਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿਖੇ (ਨਾਮ ਜਪਨ ਵਾਲਿਆਂ ਦਾ) ਨਾਉਂ ਸਰਦਾਰ ਅਥਵਾ ਉੱਚੇ ਰਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। (ਪਰਮਾਤਮਾ ਨੇ) ਕਈ ਮੰਗਤੇ ਅਰ ਕਈ ਵਡੀਆਂ ਕਚੈਹਿ-

ਰੀਆਂ ਵਾਲੇ ਪੈਦਾ ਕੀਤੇ । ਅੱਗੇ ਜਾ ਕੇ ਨਿਤਾਰਾ ਹੋਵੇਗਾ, ਨਾਮ ਜਪਨ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਹੋਰ ਗੱਲਾਂ ਦੁੱਖ ਰੂਪ ਹਨ ॥ ੩ ॥

ਤੇਰੇ ਭੈ ਦਾ ਬਹੁਤ ਡਰ ਹੈ ਜਿਸ ਦੇ ਕਾਰਨ ਦੇਹ ਖੀਨ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਨਾਉਂ ਸੁਲਤਾਨ ਅਰ ਖਾਨ ਆਦਿਕ ਸੀ ਸੋ ਭੀ ਅੰਤ ਨੂੰ ਰਾਖ ਹੁੰਦੇ ਡਿੱਠੇ । ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ (ਜੀਵ ਸੰਸਾਰ ਨਾਲੋਂ) ਝੂਠਾ ਪਿਆਰ ਤੋੜ ਕੇ ਉੱਠ ਤੁਰਿਆ ॥

ਹੇਠ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਪ੍ਰੋਹਿਤ ਹਰਿ ਦਜਾਲ ਪ੍ਰਤਿ ਉਚਾਰਿਆ—

ਸ੍ਰੀ ਮੁਖ ਵਾਕ ।

ਦਇਆ ਕਪਾਹ ਸੰਤੋਖੁ ਸੂਤੁ ਜਤੁ ਗੰਢੀ ਸਤੁ ਵਟੁ ॥ ਏਹੁ ਜਨੇਊ ਜੀਅ ਕਾ ਹਈ ਤਾ ਪਾਂਡੇ ਘਤੁ ॥ ਨਾ ਏਹੁ ਤੁਟੈ ਨਾ ਮਲੁ ਲਗੈ ਨਾ ਇਹੁ ਜਲੈ ਨ ਜਾਇ ॥ ਧੰਨੁ ਸੁ ਮਾਣਸ ਨਾਨਕਾ ਜੋ ਗਲਿ ਚਲੇ ਪਾਇ ॥ ਚਉ-ਕੜਿ ਮੁਲਿ ਅਣਾਇਆ ਬਹਿ ਚਉਕੈ ਪਾਇਆ ॥ ਸਿਖਾ ਕੰਨਿ ਚੜਾਈਆ ਗੁਰ ਬ੍ਰਾਹਮਣੁ ਥਿਆ ॥ ਓਹ ਮੁਆ ਓਹੁ ਝੜਿ ਪਇਆ ਵੇਤਗਾ ਗਇਆ ॥ ੧ ॥ ਮਃ ੧ ॥ ਲਖ ਚੋਰੀਆ ਲਖ ਜਾਰੀਆ ਲਖ ਕੂੜੀਆ ਲਖ ਗਾਲਿ ਬਖ ਠਗੀਆ ਪਹਿਨਾਮੀਆ ਰਾਤਿ ਦਿਨਸੁ ਜੀਅ ਨਾਲਿ ॥ ਤਗੁ ਕਪਾਹਹੁ ਕਤੀਐ ਬਾਮ੍ਹਣੁ ਵਟੇ ਆਇ ॥ ਕੁਹਿ ਬਕਰਾ ਰਿੰਨ ਖਾਇਆ ਸਭੁ ਕੋ ਆਖੈ ਪਾਇ ॥ ਹੋਇ ਪੁਰਾਣਾ ਸੁਟੀਐ ਭੀ ਫਿਰਿ ਪਾਈਐ ਹੋਰੁ ॥ ਨਾਨਕ ਤਗੁ ਨ ਤੁਟਈ ਜੇ ਤਗਿ ਹੋਵੈ ਜੋਰੁ ॥ ੨ ॥ ਮ: ੧ ॥ ਨਾਇ ਮੰਨਿਐ ਪਤਿ ਊਤਜੈ ਸਾਲਾਹੀ ਸਚੁ ਸੂਤੁ ॥ ਦਰਗਹਿ ਅੰਦਰਿ ਪਾਈਐ ਤਗੁ ਨ ਤੂਟਸਿ ਪੂੜ ॥ (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰਃ ੨੬)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਚਉਕੜਿ=੧. (ਚੌਕ + ੜ) ਜਿੱਥੇ ਦੋ ਬਜਾਰ ਮਿਲ ਕੇ ਚਾਰ ਰਸਤੇ

ਚਲਦੇ ਹੋਣ। ਚੌਂਕ 'ਤੋਂ' ੨. (ਚਉ--ਚਾਰ। ਕੜ—ਕੌੜੀਆਂ) ਚਾਰ ਕੌਡੀਆਂ ਦਾ (ਜਨੇਊ)

ਸਿਖਾ= (ਸੰ੦ ਸ਼ਿਕ਼ਾ) ਸਿਖ਼ਜਾ, ਉਪਦੇਸ਼, ਮੰਤ੍ਰ, ਨਸੀਹਤ।

ਪਹਨਾਮੀਆ=ਉਹ ਕੰਮ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਲਈ ਲੁਕਾਉ ਕਰਨਾ ਪਵੇ ਅਥਵਾ ਮੰਦੇ ਕੰਮ, ਪਾਪ।

ਅਰਥ।

ਜੀਵਾਂ ਤੇ ਦਯਾ ਕਰਨੀ ਕਪਾਹ ਹੋਵੇ, ਸੰਤੋਖੀ ਹੋਏ ਰਹਿਨਾ ਸੂਤਰ ਅਥਵਾ ਧਾਗਾਹੋਵੇ, ਜਤੀ ਰੈਹਣਾ ਗੰਡਾ ਹੋਵਣ, ਸੱਚ ਬੋਲਨਾ ਵਟ ਦਿੱਤੇ ਹੋਵਨ। ਇਕਰ ਦਾ ਆਤਮਾ ਦੇ ਪਹਿਣਨ ਯੋਗ ਜਨੇਊ, ਹੇ ਪੰਡਿਤ ! ਜੇ ਤੇਰੇ ਪਾਸ ਹੈ ਤਾਂ ਮੈਂਨੂੰ ਪਾ ਦੇਹ। ਇਕਰ ਦਾ ਜਨੇਊ ਨਾ ਤੁਟਦਾ ਹੈ, ਨਾ ਉਸ ਨੂੰ ਮੈਲ ਲਗਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਸੜਦਾ ਅਰ ਗੁਆਚਦਾ ਹੈ। ਓਹ ਪੁਰਸ਼ ਧੰਨ ਹਨ ਜੋ ਇਕਰ ਦਾ ਜਨੇਊ ਗਲ ਪਾ ਚਲਦੇ ਹਨ। (ਆਮ ਲੋਕੀ) ਚਾਰ ਕੌੜਾਂ ਦਾ ਜਨੇਊ ਮੂਲ ਲੈ ਆਉਂਦੇ ਹਨ ਅਰ ਉਸ ਨੂੰ ਚੌਕੇ ਵਿੱਚ ਬੈਠ ਕੇ ਗਲ ਪਾ ਲੈਂਦੇ ਹਨ। ਫਿਰ ਕੰਨ ਵਿੱਚ ਮੰਤ੍ਰ ਫੂਕਦੇ ਹਨ ਜੋ ਅਜ ਤੋਂ ਤੇਰਾ ਗੁਰੂ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਹੋਇਆ (ਭਾਵ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਨੂੰ ਉਸ ਦਿਨ ਤੋਂ ਪੁਰਸ਼ ਆਪਨਾ ਗੁਰੂ ਮੰਨ ਲੈਂਦਾ ਹੈ)। ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦਸਦੇ ਹਨ ਕਿ ਜਦ ਜੀਵ ਮਰ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜਨੇਊ ਭੀ ਨਾਲ ਹੀ ਝੜ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਰ ਜੀਵ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਦਰਗਾਹ ਵਿਖੇ (ਵੇਤਗਾ) ਜਨੇਊ ਰਹਿਤ ਜਾਂਦਾਂ ਹੈ ॥ ੧ ॥

ਜੀਵ ਲਖਾਂ ਤਰਾਂ ਦੀਆਂ ਚੋਰੀਆਂ, ਜਾਰੀਆਂ, ਝੂਠ, ਗਾਲ ਮੰਦੇ, ਠਗੀਆ, ਪਾਪ, ਹਰ ਸਮੇਂ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਅਜਹੇ ਪੁਰਖਾਂ ਦੀ ਗਤੀ ਲਈ ਕਪਾਹ ਦਾ ਧਾਗਾ ਕੱਤੀਦਾ ਹੈ, ਤੇ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਇਸ ਧਾਗੇ ਨੂੰ ਵਟਦਾ ਹੈ। ਰਸਮ ਦੇ ਪੂਰਾ ਕਰਨ ਲਈ ਬਕਰਾ ਮਾਰ ਕੇ ਰਿੰਨ੍ਹਦੇ ਤੇ

ਖਾਂਦੇ ਹਨ ਤੇ ਸਭ ਕੋਈ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ 'ਇਸਨੇ ਜਨੇਊ ਪਾ ਲਿਆ ਹੈ' ਜਦ ਜਨੇਊ ਪੁਰਾਨਾ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਸੁਟ ਦਿੰਦੇ ਹਨ, ਤੇ ਫਿਰ ਹੋਰ ਮੁਲ ਲੈ ਕੇ ਪਾ ਲੈਂਦੇ ਹਨ। ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਜਨੇਊ ਤੁੱਟੇ ਨਾ ਜੇਕਰ ਇਹ ਸਤਿਯਾ ਵਾਲਾ ਹੋਵੇ ॥ (ਹੁਣ ਅੱਗੇ ਸਤਿਆ ਵਾਲਾ ਅਥਵਾ ਜੋਰ ਵਾਲਾ ਜਨੇਊ ਦੱਸਦੇ ਹਨ ਕਿ ਇਕਰਦਾ ਹੋਣਾ ਲੋੜੀਦਾ ਹੈ)॥

ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਨਾਮ ਨੂੰ ਮੰਨਣ ਨਾਲ ਦਰਗਾਹ ਵਿਖੇ ਪਤ ਉਪਜਦੀ ਹੈ। ਤੇ ਉਸ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਜਸ ਕਰਨ ਨਾਲ ਸੱਚੇ ਸੂਤਰ (ਜਨੇਊ) ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ॥ ਸਤਿ ਸੰਗਤ ਰੂਪੀ ਦਰਗਾਹ ਵਿਖੇ ਬੈਠ ਕੇ ਜੇ ਅਜੇਹਾ ਜਨੇਊ ਪਾਈਏ ਤਾਂ ਇਹ ਪਵਿਤ੍ਰ ਜਨੇਊ ਤੁਟਦਾ ਨਹੀਂ ॥

ਹੇਠ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਬੈਦ (ਵੈਦ) ਪ੍ਰਤਿ ਉਚਾਰਨ ਕੀਤਾ, ਜਾਂ ਓਹ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਾਂਹ ਹੱਥ ਵਿੱਚ ਲੈ ਕੇ ਨਾੜੀ ਦੇਖਨ ਲੱਗਾ ਅਰ ਉਸ ਨੂੰ ਰੋਗ ਦਾ ਕੁਝ ਪਤਾ ਨਾ ਮਿਲਿਆ ॥

ਸਲੋਕ ਮਹਲਾ ੧ ।

ਵੈਦੁ ਬੁਲਾਇਆ ਵੈਦਗੀ ਪਕੜਿ ਢੰਢੋਲੇ ਬਾਂਹ ॥ ਭੋਲਾ ਵੈਦੁ ਨ ਜਾਣਈ ਕਰਕ ਕਲੇਜੇ ਮਾਹਿ ॥ ੧ ॥ ੩ ॥ ਮਃ ੨ ॥ ਵੈਦਾ ਵੈਦੁ ਸੁਵੈਦੁ ਤੂੰ ਪਹਿਲਾ ਰੋਗ ਪਛਾਣੁ ॥ ਐਸਾ ਦਾਰੂ ਲੋੜਿ ਲਹੁ ਜਿਤੁ ਵੰਞੈ ਰੋਗਾ ਘਾਣਿ ॥ ਜਿਤੁ ਦਾਰੂ ਰੋਗ ਉਠਿਅਹਿ ਤਨਿ ਸੁਖ ਵਸੈ ਆਇ ॥ ਰੋਗੁ ਗਵਾਇਹਿ ਆਪਣਾ ਤ ਨਾਨਕ ਵੈਦੁ ਸਦਾਇ ॥ ੨ ॥

(ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫ਼ਾ ਨੰਃ ੩੯ ਤੇ ੪੦)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਕਰਕ= ਦੁਖ, ਪੀੜਾ, ਬਿਰਹਾ ਦਾ ਦੁਖ ।
ਵੰਞੈ= ਦੂਰ ਹੋਵੇ ।
ਘਾਣਿ= (ਉਤਨੀ ਵਸਤੂ ਜੋ ਇੱਕ ਵੇਰ ਤਜਾਰੀ ਲਖੀ ਪਾਈ ਜਾਏ,

ਜੇਹਾ ਕੁ ਕਚੋਰੀਆਂ ਦਾ ਘਾਣ ਕੜਾਹੇ ਵਿੱਚ । ਤਿਲਾਂ ਦਾ ਘਾਣ ਕੋਹਲੂ ਵਿੱਚ । ਸਮੂਹ, ਸਾਰੇ, ਪੂਰ ।

ਅਰਥ ।

ਵੈਦ ਨੂੰ ਦਵਾ ਦਾਰੂ ਕਰਨ ਲਈ ਸੱਦਿਆ ਅਰ ਓਹ ਬਾਂਹ ਫੜ ਕੇ (ਨਾੜੀ ਨੂੰ) ਲਭਦਾ ਹੈ । ਇਹ ਭੋਲਾ ਵੈਦ ਨਹੀਂ ਜਾਨਦਾ ਕਿ ਇਹ ਜਿਗਰੀ ਪੀੜਾ ਹੈ ॥

ਹੇ ਭਾਈ ਵੈਦ ! ਤੂੰ ਸਿਆਨਾ ਵੈਦ ਤਦੇ ਹੀ ਹੈਂ ਜੇਕਰ ਪਹਿਲੋਂ ਰੋਗ ਦੀ ਪਛਾਣ ਕਰੇਂ । ਅਜਿਹਾ ਦਾਰੂ ਲੱਭ ਜੋ ਸਮੂਹ ਰੋਗਾਂ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰ ਦੇਵੇ । ਜਿਸ ਦਾਰੂ ਦੇ ਖਾਦਿਆਂ ਰੋਗ (ਉਠਅਹਿ) ਦੂਰ ਹੋ ਜਾਵਨ ਅਰ ਤਨ ਵਿਖੇ ਸੁਖ ਆ ਨਿਵਾਸ ਕਰਨ । ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਤੂੰ ਆਪਨਾ (ਅੰਦਰਲਾ ਜਾ ਹੌਂਮੇਂ ਦਾ) ਰੋਗ ਦੂਰ ਕਰ ਫਿਰ ਸਿਆਣਾ ਵੈਦ ਆਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਸਦਾਵੀਂ ।

ਹੇਠ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਵੇਈਂ ਨਦੀ ਵਿਖੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਉਪਮਾਂ ਕਰਦਿਆਂ ਉਚਾਰਿਆ —

ਸ੍ਰੀ ਰਾਗ ਮਹਲਾ ੧ ।

ਕੋਟਿ ਕੋਟਿ ਮੇਰੀ ਆਰਜਾ ਪਵਣੁ ਪੀਅਣੁ ਅਪਿਆਉ ॥ ਚੰਦੁ ਸੂਰਜੁ ਦੁਇ ਗੁਫੈ ਨ ਦੇਖਾ ਸੁਪਨੈ ਸਉਣ ਨ ਥਾਉ ॥ ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤਿ ਨ ਪਵੈ ਹਉ ਕੇਵਡ ਆਖਾ ਨਾਉ ॥ ੧ ॥

ਸਾਚਾ ਨਿਰੰਕਾਰੁ ਨਿਜ ਥਾਇ ॥ ਸੁਣਿ ਸੁਣਿ ਆਖਣੁ ਆਖਣਾ ਜੇ ਭਾਵੈ ਕਰੈ ਤਮਾਇ ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥

ਕੁਸਾ ਕਟੀਆ ਵਾਰ ਵਾਰ ਪੀਸਣਿ ਪੀਸਾ ਪਾਇ ॥ ਅਗੀ ਸੇਤੀ ਜਾਲੀਆ ਭਸਮ ਸੇਤੀ ਰਲਿ ਜਾਉ ॥ ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤਿ ਨਾ ਪਵੈ ਹਉ ਕੇਵਡੁ ਆਖਾ ਨਾਉ ॥ ੨ ॥

ਪੰਖੀ ਹੋਇ ਕੈ ਜੇ ਭਵਾ ਸੈ ਅਸਮਾਨ ਜਾਉ ॥ ਨਦਰੀ ਕਿਸੈ ਨ

ਆਵਊ ਨ ਕਿਛੁ ਪੀਆ ਨ ਖਾਉ ॥ ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤਿ ਨ ਪਵੈ ਹਉ ਕੇਵਡੁ ਆਖਾ ਨਾਉ ॥ ੩ ॥

ਨਾਨਕ ਕਾਗਦ ਲਖ ਮਣਾ ਪੜਿ ਪੜਿ ਕੀਚੈ ਭਾਉ ॥ ਮਸੂ ਤੋਟਿ ਨਾ ਆਵਈ ਲੇਖਣਿ ਪਉਣ ਚਲਾਉ ॥ ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤਿ ਨਾ ਪਵੈ ਹਉ ਕੇਵਡੁ ਆਖਾ ਨਾਉ ॥ ੪ ॥ (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰ: ੯੧)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਅਪਿਆਉ = ਭੋਜਨ, ਖਾਧੇ ਜਾਨ ਵਾਲੇ ਪਦਾਰਥ । ਦੇਖੋ—" ਮੁਖ ਅਪਿਆਉ ਬੈਠ ਕਉ ਦੈਨ ।" (ਸੁਖਮਨੀ ਸਾਹਿਬ)

ਗੁਫੈ = ਗੁਫਾ (ਸੰ॰ ਗੁਹਾ) ਛਿਪਨ ਦੀ ਜਗ੍ਹਾ, ਕੰਦਰਾ, ਗ਼ਾਰ । ਕਿਸੇ ਪਹਾੜ ਵਿਚ ਡੂੰਘਾ ਤੇ ਹਨੇਰਾ ਥਾਉਂ ਜੋ ਉਸ ਵਿਖੇ ਦੂਰ ਤਕ ਅੰਦਰ ਚਲਾ ਗਿਆ ਹੋਵੇ, ਜਾਂ ਜਿਮੀਂ ਹੇਠ ਪੁਟਿਯਾ ਹੋਯਾ, ਜੋ ਕੁਵੀਆ ਦੀ ਸ਼ਕਲ ਦਾ ਹੋਵੇ । ਗੁਫਾ ਅਕਸਰ ਸਾਧੂ ਲੋਕ ਏਕਾਂਤ ਵਾਸਤੇ ਬਨਾਯਾ ਤੇ ਲਭਿਆ ਕਰਦੇ ਹਨ ।

ਨਿਰੰਕਾਰੁ = [ਸੰ॰ ਨਿਰਾਕਾਰ] ਆਕਾਰ ਤੋਂ ਰਹਿਤ, ਜਿਸਦਾ ਵਜੂਦ ਹੋਵੇ ਪਰ ਆਕਾਰ ਨਾ ਹੋਵੇ, ਈਸ਼੍ਵਰ, ਪਰਮਾਤਮਾ ।

ਆਖਣ = ਜੋ ਆਖਿਆ ਜਾਵੇ, ਗਲਾਂ, ਪ੍ਰਸੰਗ, ਵਾਰਤਾ ।

ਤਮਾਇ = (ਅਰਬੀ ਵਿਖੇ ਤਮਅ਼, ਪੰਜਾਬੀ ਤਮਾ) ਇਛਾ, ਲੋਭ, ਲਾਲਚ । ਦੇਖੋ—' ਜਿਸ ਨੂੰ ਤਿਲੁ ਨ ਤਮਾਇ ' ਹੋਰ ' ਜਾ ਸੁਖੁ ਤਾਮਿ ਨ ਹੋਈ ' (ਰਹਿਰਾਸ)

ਪੀਸਣਿ = (ਜੋ ਪੀਸੇ ਸੋ ਪੀਸਣ) ਚੱਕੀ ।

ਲੇਖਣਿ = (ਜੋ ਲਿਖੇ ਸੋ ਲੇਖਣਿ ਅਥਵਾ ਲੇਖਨੀ) ਕਲਮ ।

ਸ਼ਬਦਾਰਥ ।

ਕਰੋੜਾਂ ਹੀ ਕਰੋੜਾਂ (ਵਰਹੇ) ਮੇਰੀ ਉਮਰਾ ਹੋ ਜਾਵੇ ਅਰ ਪਵਣ ਹੀ ਮੇਰਾ ਪੀਨ ਅਰ ਖਾਨ ਹੋਵੇ (ਪਵਣਾਹਾਰੀ ਬਨ ਜਾਵਾਂ) (ਅਜਿਹੀ ਗੁਫਾ

ਵਿਖੇ ਨਿਵਾਸ ਰੱਖਾਂ ਜਿਸ) ਗੁਫਾ ਵਿਖੇ ਚੰਦ੍ਰਮਾ ਅਰ ਸੂਰਜ ਕਦੇ ਦਿਖਾਈ ਭੀ ਨਾ ਦੇਵਨ ਅਰ ਸੌਣ ਲਈ ਕਦੀ ਸੁਪਨੇ ਵਿੱਚ ਭੀ ਥਾਂ ਨਾ ਲੱਭੇ (ਅਥਵਾ ਦਿਨ ਰਾਤ ਜਾਗਦਾ ਹੀ ਰਹਾਂ) ॥ ਹੇ ਪਰਮਾਤਮਾ! ਤਾਂ ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤ ਨਹੀਂ ਪਾਈ ਜਾ ਸਕਦੀ, ਭਲਾ ਮੈਂ ਤੇਰਾ ਨਾਉਂ ਕਿੱਡਾ ਕੁ ਕਹਾਂ ॥ ੧ ॥

ਹੇ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਆਪਨੀ ਥਾਂ ਤੂੰ ਆਪ ਹੀ ਹੈਂ (ਅਥਵਾ ਤੇਰੇ ਜਿਹਾ ਹੋਰ ਦੂਜਾ ਕੋਈ ਨਹੀਂ) ॥ (ਲੋਕਾਂ ਤੋਂ) ਸੁਣ ਸੁਣ ਕੇ ਉਸ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰੀਦੀਆਂ ਹਨ ਪਰੰਤੂ (ਨਾਮ ਦੇ ਜਪਨ ਦੀ) ਇੱਛਾ ਤਾਂ ਹੀ ਮਨ ਵਿਖੇ ਉਪਜਦੀ ਹੈ ਜੇਕਰ ਉਸ (ਵਾਹਿਗੁਰੂ) ਨੂੰ ਭਾਵੇ (ਅਥਵਾ ਉਸ ਦੀ ਕਿਰਪਾ ਕਰਕੇ ਹੀ ਜੀਵ ਨਾਮ ਜਪ ਸਕਦਾ ਹੈ) ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥

ਘੜੀ ਘੜੀ ਚਾਹੇ ਮੈਂ ਕੋਹਿਆ ਜਾਵਾਂ ਤੇ ਕਟਿਆ ਜਾਵਾਂ ਅਰ ਚੱਕੀ ਵਿਖੇ ਪੈ ਕੇ ਪੀਸਿਆ ਭੀ ਜਾਵਾਂ (ਪਰ ਤਾਂ ਭੀ ਕੁਝ ਦੁੱਖ ਨਾ ਪੋਹੇ) ॥ ਅੱਗ ਵਿਖੇ ਚਾਹੇ ਸੜ ਕੇ ਭਸਮ ਵੀ ਹੋ ਜਾਵਾਂ (ਬਿਨਾ ਪੀੜਾ ਸਹੇ), ਹੇ ਪਰਮਾਤਾਮਾ ਤੇਰਾ ਅੰਤ ਤਾਂ ਭੀ ਨਹੀਂ ਲਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਭਲਾ ਮੈਂ ਤੇਰਾ ਨਾਉਂ ਕੇਡਾ ਕੁ ਆਖਾਂ ॥ ੨ ॥

ਚਾਹੇ ਮੈਂ ਪੰਖੀ ਹੋ ਕੇ ਸੌ ਅਸਮਾਨ ਫਿਰ ਆਵਾਂ ॥ (ਅਜਿਹਾ ਉੱਚਾ ਉੱਡਾਂ ਕਿ) ਕੋਈ ਮੈਂਨੂੰ ਦੇਖ ਭੀ ਨਾ ਸਕੇ ਅਰ ਨਾ ਹੀ ਕੁਝ ਖਾਵਾਂ ਤੇ ਪੀਵਾਂ। ਹੇ ਈਸ਼੍ਵਰ! ਤਾਂ ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤ ਨਹੀਂ ਪਾਈ ਜਾ ਸਕਦੀ ਭਲਾ ਤੇਰਾ ਨਾਉਂ ਮੈਂ ਕਿੱਡਾ ਕੁ ਕਹਾਂ ॥ ੩ ॥

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਥਨ ਕਰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਚਾਹੇ ਲੱਖਾਂ ਹੀ ਮਣ ਕਾਗਜ (ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦਾ ਜਸ ਲਿਖਣ ਲਈ) ਹੋਵੇ ਅਰ (ਉਸ ਦੇ ਨਾਮ ਨੂੰ) ਸਿਮਰ ਸਿਮਰ ਕੇ ਉਸ ਨਾਲ ਪਰੇਮ ਭੀ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇ ॥ ਸਿਆਹੀ ਦਾ ਤੋਟਾ ਨਾ ਆਵੇ ਅਰ ਲਿਖਣ ਲਈ ਸਾਰੀ ਪਵਣ ਹੀ ਚਲ ਪਵੇ ॥ ਹੇ ਪਰਮਾਤਮਾ, ਤਾਂ ਭੀ ਤੇਰੀ ਕੀਮਤ ਨਹੀਂ ਪਾਈ ਜਾ ਸਕਦੀ,

ਭਲਾ ਮੈਂ ਤੇਰਾ ਨਾਮ ਕਿੱਡਾ ਕੁ ਦੱਸਾਂ ॥ ੪ ॥

ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਸ਼ਬਦ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਕਾਜ਼ੀ ਪ੍ਰਤਿ ਉਚਾ-ਰਨ ਕੀਤੇ---

ਸਲੋਕ ਮਃ ੧ ।

ਮੁਸਲਮਾਣੁ ਕਹਾਵਣੁ ਮੁਸਕਲੁ ਹੋਇ ਤ ਮੁਸਲਮਾਣੁ ਕਹਾਵੈ ॥ ਅਵਲਿ ਅਉਲਿ ਦੀਨ ਕਰਿ ਮਿਠਾ ਮਸਕਲ ਮਾਨਾ ਮਾਲੁ ਮੁਸਾਵੈ ॥ ਹੋਇ ਮੁਸਲਿਮੁ ਦੀਨ ਮੁਹਾਣੈ ਮਰਣ ਜੀਵਣ ਕਾ ਭਰਮ ਚੁਕਾਵੈ ॥ ਰਬ ਕੀ ਰਜਾਇ ਮੰਨੇ ਸਿਰ ਉਪਰਿ ਕਰਤਾ ਮੰਨੇ ਆਪੁ ਗਵਾਵੈ ॥ ਤਉ ਨਾਨਕ ਸਰਬ ਜੀਆ ਮਿਹਰੰਮਤਿ ਹੋਇ ਤ ਮੁਸਲਮਾਣੁ ਕਹਾਵੈ ॥ ੧ ॥

ਮਿਹਰ ਮਸੀਤਿ ਸਿਦਕ ਮੁਸਲਾ ਹਕੁ ਹਲਾਲ ਕੁਰਾਣੁ ॥ ਸਰਮ ਸੁੰਨਤਿ ਸੀਲੁ ਰੋਜਾ ਹੋਹੁ ਮੁਸਲਮਾਣੁ ॥ ਕਰਣੀ ਕਾਬਾ ਸਚੁ ਪੀਰੁ ਕਲਮਾ ਕਰਮ ਨਿਵਾਜ ॥ ਤਸਬੀ ਸਾ ਤਿਸੁ ਭਾਵਸੀ ਨਾਨਕ ਰਖੈ ਲਾਜ ॥ ੨ ॥

ਹਿੰਦੂ ਭੂਲੇ ਅਖੁਟੇ ਜਾਹੀਂ ॥ ਨਾਰਦ ਕਹਿਆ ਸਿ ਪੂਜ ਕਰਾਹੀਂ ॥ ਅੰਧੇ ਗੁੰਗੇ ਅੰਧ ਅੰਧਾਰ ॥ ਪਾਥਰ ਲੇ ਪੂਜਹਿ ਮੁਗਧ ਗਵਾਰ ॥ ਓਇ ਜਿ ਆਪ ਡੁਬੈ ਤੁਮ ਕਹਾ ਤਰਾਵਣ ਹਾਰ ॥ ੩ ॥ (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰ: ੯੯)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਅਉਲਿ = (ਫਾਰਸੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿੱਚ ਵਲੀ, ਭਗਤ, ਅਉਲਯਾ ਬਹੁ ਵਚਨ ਹੈ ਵਲੀ ਦਾ) ਭਗਤ ਜਨ, ਰਬ ਦੇ ਨਜ਼ਦੀਕੀ ।

ਮੁਸਾਵੈ = ਠਗਾਵੇ, ਗਵਾ ਦੇਵੇ ।

ਮਸਕਲ = (ਫਾਰਸੀ ਮੁਸ਼ਕਿਲ) ਔਖਾ, ਕਠਿਨ ।

ਮੁਸਲਿਮ = (ਅਰਥੀ, ਮੁਸੱਲੇਮ, ਮੰਨ ਲੈਨ ਵਾਲਾ, ਕਬੂਲ ਕਰ ਲੈਨ ਵਾਲਾ) ਪੱਕਾ ।

ਮੁਹਾਣੈ = ਮਲਾਹ, ਬੇੜੀ ਚਲਾਨ ਵਾਲਾ । ਦੇਖੋ ' ਜੰਗਲ ਜਟ ਨਾ ਛੇੜੀਏ ਹੱਟੀ ਤੇ ਕਿਰਾੜ । ਬੇੜੀ ਵਿੱਚ ਮੁਹਾਣਿਆ ਭਨ ਘਤਸਨ

ਬੁਥਾੜ ।' (ਪੰਜਾਬੀ ਅਖਾਣ)।

ਰਜਾਇ= 'ਅਰਬੀ ਰਿਜ਼ਾ' ਰਬ ਦੀ ਮਰਜ਼ੀ ਤੇ ਰਾਜ਼ੀ ਰਹਿਣਾ, ਈਸ੍ਵਰਿਛਾ, ਭਾਣਾ, ਮਰਜੀ, ਦੇਖੋ ਜਿਕਰ:-- "ਜਿਧਰਿ ਰਬ ਰਜਾਇ ਵਹਣੁ ਤਿਦਾਊ ਗੰਉ ਕਰੇ" (ਸਲੋਕ ਫਰੀਦ ਜੀ)

ਆਪੁ= ਹੌਮੈ, ਹੰਕਾਰ ।

ਮਿਹਰੰਮਤਿ=(ਅਰਬੀ ਮਰਹ਼ਮਤ) ਤਰਸ, ਮਿਹਰ, ਦਯਾ, ਰਹਮ । ਦੇਖੋ "ਤਰਸੁ ਪਇਆ ਮਿਹਰਾਮਤਿ ਹੋਈ" (ਰਹਿਰਾਸ) ਹੋਰ "ਕਰਿ ਮਿਹਰੰਮਤ ਸਾਂਈ"

ਮੁਸਲਾ= (ਅਰਬੀ ਮੁਸੱਲਾ) ਨਮਾਜ ਪੜ੍ਹਣ ਦੀ ਥਾਂ । ਆਸਣ ਯਾ ਫੂੜੀ ਜਿਸ ਪੁਰ ਖਲੋ ਕੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਨਮਾਜ਼ ਪੜ੍ਹਦੇ ਹਨ ।

ਤਸਬੀ= (ਅਰਬੀ ਤਸਬੀਹ, ਸੁਬਹਾਨਅੱਲਾ ਕਹਿਨਾਂ । ਖ਼ੁਦਾ ਦੀ ਯਾਦ ਕਰਨਾ) ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਦੀ ਮਾਲਾ ਜੋ ਉਲਟੀ ਫੇਰਦੇ ਤੇ ਜਪਦੇ ਹਨ ॥

ਅਖੁਟੇ= (ਪੰਜਾਬੀ ਖ਼ੁਟਣਾ, ਮੁਕਣਾ) ਨਾ ਮੁਕਣ ਵਾਲੇ ਅਥਵਾ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ, ਅਨਗਨਿਤ ।

ਸ਼ਬਦਾਰਥ ।

ਮੁਸਲਮਾਣ ਕਹਾਉਣਾ ਔਖਾ ਹੈ, ਜੇ ਕੋਈ (ਇਕਰ ਦਾ ਜਿਵੇਂ ਹੇਠਾਂ ਦੱਸਦੇ ਹਨ) ਮੁਸਲਮਾਨ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਆਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਅਜਿਹਾ ਕਹੇ ॥ ਪਹਿਲਾਂ ਸੰਤਾਂ ਦੇ ਦੀਨ ਧਰਮ ਨੂੰ (ਮਿੱਠਾ) ਭਲਾ ਜਾਨੇ ਅਰ ਕਠਿਨ ਜੋ ਮਾਨ ਰੂਪੀ (ਮਾਲ) ਪੂੰਜੀ ਹੈ ਉਸ ਨੂੰ (ਮੁਸਾਵੇ) ਲੁਟਾ ਦੇਵੇ । (ਗੁਰੂ ਜੋ) ਮਲਾਹ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਦੀਨ (ਧਰਮ) ਪੁਰ ਪੱਕਾ ਹੋਵੇ । ਅਰ ਮਰਨ ਜੀਵਨ ਦਾ ਡਰ ਦੂਰ ਕਰ ਦੇਵੇ । ਰਬ ਦਾ ਭਾਣਾ ਸਿਰ ਮੱਥੇ ਤੇ ਮੰਨੇ, ਉਸ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਸਮਝੇ ਅਰ (ਆਪਣਾ) ਹੰਕਾਰ ਦੂਰ ਕਰੇ । ਫਿਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਸਾਰਿਆਂ ਜੀਆਂ ਪੁਰ ਦਯਾ ਕਰੇ ਤਾਂ ਓਹ ਅਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਮੁਸਲਮਾਨ ਕਹਾਵੇ ॥ ੧ ॥

ਲੋਕਾਂ ਤੇ ਦਜਾ ਕਰਨੀ ਮਸੀਤ, ਸਿਦਕੀ ਜੀਵਨ ਬਤੀਤ ਕਰਨਾ ਮੁੱਸਲਾ, ਹੱਕ ਹਲਾਲ ਦੀ ਕਮਾਈ ਕਰਨੀ ਕੁਰਾਣੁ ਦਾ ਪਾਠ ਕਰਨਾ ਜਾਨੇ। ਮੰਦੇ ਕੰਮਾਂ ਤੋਂ ਸ਼ਰਮਾਉਣਾ ਇਹ ਸੁੰਨਤ ਜਾਨੇ, ਅਰ ਸੀਲ ਸੁਭਾਵ ਹੋਨਾ ਇਹ ਹੀ ਰੋਜਾ ਰੱਖਨਾ ਸਮਝੇ, ਇਕਰ ਦਾ ਮੁਸਲਮਾਨ ਬਣੇ । ਚੰਗੀ ਕਰਣੀ ਰੂਪੀ ਕਾਬਾ, ਸੱਚ ਨੂੰ ਪੀਰ (ਗੁਰੂ), ਕਰਮਾਂ ਨੂੰ ਕਲਮਾਂ ਅਰ ਨਿਮਾਜ ਜਾਨੇ ॥ ਈਸ਼੍ਵਰ ਦਾ ਭਾਣਾ ਮਿੱਠਾ ਮੰਨਣਾ ਮਾਲਾ ਫੇਰੇ, ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਅਜਿਹੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਦੀ ਫਿਰ ਆਪ ਲਾਜ ਰਖਦਾ ਹੈ ॥ ੨ ॥

ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਹਿੰਦੂ ਭੁਲੇਵੇ ਵਿੱਚ ਹੀ ਹਨ ॥ ਮਨ ਰੂਪੀ ਨਾਰਦ ਦੇ ਮਗਰ ਲਗ ਉਸ ਦੀ ਪੂਜਾ ਕਰਦੇ ਹਨ ॥ ਉਹ ਅਗਜਾਨਤਾ ਵਿਖੇ (ਮਨ ਕਰਕੇ) ਅੰਨ੍ਹੇ ਤੇ ਗੂੰਗੇ ਹਨ ॥ ਮੂਰਖ ਪੱਥਰਾਂ ਦੀ ਪੂਜਾ ਕਰਦੇ ਹਨ । ਉਹ ਤਾਂ ਆਪ ਹੀ (ਭਰਮਾਂ ਵਿੱਚ) ਡੁੱਬੇ ਪਏ ਹਨ, ਤੁਹਾਨੂੰ ਕੀਕਰ ਬੰਨੇ ਲਾਵਨ ਗੇ ॥ ੩ ॥

ਹੇਠ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮੁੱਲਾਂ ਪ੍ਰਤਿ ਉਸਦੇ ਜੰਤ੍ਰ ਮੰਤ੍ਰ ਅਰ ਝਾੜੇ ਕਰਨ ਸਮੇਂ ਉਚਾਰਿਆ :—

ਮਾਰੂ ਮਹਲਾ ੧ ।

ਕੋਈ ਆਖੈ ਭੂਤਨਾ ਕੋ ਕਹੇ ਬੇਤਾਲਾ । ਕੋਈ ਆਖੈ ਆਦਮੀ ਨਾਨਕੁ ਬੇਚਾਰਾ ॥ ੧ ॥ ਭਇਆ ਦਿਵਾਨਾ ਸਾਹ ਕਾ ਨਾਨਕੁ ਬਉਰਾਨਾ ॥ ਹਉ ਹਰਿ ਬਿਨ ਅਵਰੁ ਨ ਜਾਨਾ ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥ ਤਉ ਦੇਵਾਨਾ ਜਾਣੀਐ ਜਾ ਭੈ ਦਿਵਾਨਾ ਹੋਇ ॥ ਏਕੀ ਸਾਹਿਬ ਬਾਹਰਾ ਦੂਜਾ ਅਵਰੁ ਨ ਜਾਣੈ ਕੋਇ ॥ ੨ ॥ ਤਉ ਦੇਵਾਨਾ ਜਾਣੀਐ ਜਾ ਏਕਾ ਕਾਰ ਕਮਾਇ ॥ ਹੁਕਮ ਪਛਾਣੈ ਖਸਮ ਕਾ ਦੂਜੀ ਅਵਰ ਸਿਆਣਪ ਕਾਇ ॥ ੩ ॥ ਤਉ ਦੇਵਾਨਾ ਜਾਣੀਐ ਜਾ ਸਾਹਿਬ ਧਰੇ ਪਿਆਰੁ ॥ ਮੰਦਾ ਜਾਣੈ

ਆਪ ਕਉ ਅਵਰੁ ਭਲਾ ਸੰਸਾਰੁ ॥ ੪ ॥ ੭ ॥

(ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਭਾ ਨੰਃ ੧੦੪)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਬੇਤਾਲਾ= (ਸੰ० ਵੇਤਾਲ:) ਭੂਤਨਾ, ਜਿੰਨ, ਉਹ ਭੂਤਨਾ ਜੋ ਮਸਾਨਾ ਆਦਿ ਵਿੱਚ ਰਹੇ ਅਰ ਮੁਰਦਿਆਂ ਦਾ ਸੰਗ ਕਰੇ ॥

ਬਉਰਾਨਾ=ਬਉਲਿਆ ਹੋਇਆ, ਸੁਦਾਈ, ਪਾਗਲ, ਬਾਵਲਾ, ਕਮਲਾ । ਦੇਖੋ–"ਲੋਗੁ ਕਹੈ ਕਬੀਰੁ ਬਉਰਾਨਾ ।"

ਸ਼ਬਦ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ–

ਕੋਈ (ਮੈਂਨੂੰ) ਭੂਤਨਾ ਅਰ ਕੋਈ ਮਸਾਨੀਆ ਜਿੰਨ ਆਖਦਾ ਹੈ ॥ ਨਾਨਕ ਵਿਚਾਰੇ ਨੂੰ ਕੋਈ ਆਦਮੀ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ॥ ੧ ॥ ਨਾਨਕਾ (ਬਉਰਾਨਾ) ਪਾਗਲ ਤਾਂ (ਸਾਹ) ਮਾਲਕ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਲਈ ਸੁਦਾਈ ਹੋਇਆ ਹੈ ॥ ਮੈਂ ਉਸ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਹੋਰ ਕਿਸ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਜਾਨਦਾ (ਕਿਸੇ ਦੀ ਕੁਝ ਪਰਵਾਹ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ) ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥ ਕਮਲਾ ਤਾਂ ਤਦੇ ਹੀ ਜਾਣਿਆਂ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੇਕਰ ਓਹ (ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ) ਡਰ ਵਿਖੇ ਦਿਵਾਨਾ ਹੋ ਜਾਵੇ ॥ ਮਾਲਕ (ਵਾਹਿਗੁਰੂ) ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਦੂਜੇ ਕਿਸੇ ਨੂੰ ਜਾਣੈ ਹੀ ਨਾ ॥ ੨ ॥ ਦਿਵਾਨਾ ਤਦੇ ਹੀ ਹੈ ਜੇਕਰ ਕੇਵਲ (ਏਕਾ) ਇਕ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੀ ਹੀ ਕਾਰ ਕਰੇ ॥ ਮਾਲਕ ਦਾ ਹੁਕਮ ਬੁੱਝੇ ਅਰ ਦੂਜੀ ਵਿਚਾਰ ਨਾ ਰੱਖੇ ॥ ੩ ॥ ਦਿਵਾਨਾ ਤਦੇ ਹੀ ਜਾਂਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੇਕਰ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਉਸ ਨਾਲ ਪਿਆਰ ਕਰੇ ॥ ਆਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਮੰਦਾ ਸਮਝੇ ਅਰ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਲੋਕਾ ਨੂੰ ਉੱਤਮ ਜਾਨੇ ॥ ੪ ॥

(ਬਲਦੇਵ ਸਿੰਘ)

----o----

ਭਲਾ ਮੈਂ ਤੇਰਾ ਨਾਮ ਕਿੱਡਾ ਕੁ ਦੱਸਾਂ ॥ ੪ ॥

ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਸ਼ਬਦ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਕਾਜੀ ਪ੍ਰਤਿ ਉਚਾ-ਰਨ ਕੀਤੇ---

ਸਲੋਕ ਮਃ ੧ ।

ਮੁਸਲਮਾਣੁ ਕਹਾਵਣੁ ਮੁਸਕਲੁ ਹੋਇ ਤ ਮੁਸਲਮਾਣੁ ਕਹਾਵੈ ॥ ਅਵਲਿ ਅਉਲਿ ਦੀਨ ਕਰਿ ਮਿਠਾ ਮਸਕਲ ਮਾਨਾ ਮਾਲੁ ਮੁਸਾਵੈ ॥ ਹੋਇ ਮੁਸਲਿਮੁ ਦੀਨ ਮੁਹਾਣੈ ਮਰਣ ਜੀਵਣ ਕਾ ਭਰਮ ਚੁਕਾਵੈ ॥ ਰਬ ਕੀ ਰਜਾਇ ਮੰਨੇ ਸਿਰ ਉਪਰਿ ਕਰਤਾ ਮੰਨੇ ਆਪੁ ਗਵਾਵੈ ॥ ਤਉ ਨਾਨਕ ਸਰਬ ਜੀਆ ਮਿਹਰੰਮਤਿ ਹੋਇ ਤ ਮੁਸਲਮਾਣੁ ਕਹਾਵੈ ॥ ੧ ॥

ਮਿਹਰ ਮਸੀਤਿ ਸਿਦਕ ਮੁਸਲਾ ਹਕੁ ਹਲਾਲ ਕੁਰਾਣੁ ॥ ਸਰਮ ਸੁੰਨਤਿ ਸੀਲੁ ਰੋਜਾ ਹੋਹੁ ਮੁਸਲਮਾਣੁ ॥ ਕਰਣੀ ਕਾਬਾ ਸਚੁ ਪੀਰੁ ਕਲਮਾ ਕਰਮ ਨਿਵਾਜ ॥ ਤਸਬੀ ਸਾ ਤਿਸੁ ਭਾਵਸੀ ਨਾਨਕ ਰਖੈ ਲਾਜ ॥ ੨ ॥

ਹਿੰਦੂ ਭੂਲੇ ਅਖੁਟੇ ਜਾਹੀਂ ॥ ਨਾਰਦ ਕਹਿਆ ਸਿ ਪੂਜ ਕਰਾਹੀਂ ॥ ਅੰਧੇ ਗੁੰਗੇ ਅੰਧ ਅੰਧਾਰ ॥ ਪਾਥਰ ਲੇ ਪੂਜਹਿ ਮੁਗਧ ਗਵਾਰ ॥ ਓਇ ਜਿ ਆਪ ਡੁਬੈ ਤੁਮ ਕਹਾ ਤਰਾਵਣ ਹਾਰ ॥ ੩ ॥ (ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰ: ੯੯)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਅਉਲਿ = (ਫਾਰਸੀ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿੱਚ ਵਲੀ, ਭਗਤ, ਅਉਲਯਾ ਬਹੁ ਵਚਨ ਹੈ ਵਲੀ ਦਾ) ਭਗਤ ਜਨ, ਰਬ ਦੇ ਨਜਦੀਕੀ ।

ਮੁਸਾਵੈ = ਠਗਾਵੇ, ਗਵਾ ਦੇਵੇ ।

ਮਸਕਲ = (ਫਾਰਸੀ ਮੁਸ਼ਕਿਲ) ਔਖਾ, ਕਠਿਨ ।

ਮੁਸਲਿਮ = (ਅਰਬੀ, ਮੁਸੱਲਿਮ, ਮੰਨ ਲੈਨ ਵਾਲਾ, ਕਬੂਲ ਕਰ ਲੈਨ ਵਾਲਾ) ਪੱਕਾ ।

ਮੁਹਾਣੈ = ਮਲਾਹ, ਬੇੜੀ ਚਲਾਨ ਵਾਲਾ । ਦੇਖੋ ' ਜੰਗਲ ਜਟ ਨਾ ਛੇੜੀਏ ਹੱਟੀ ਤੇ ਕਿਰਾੜ । ਬੇੜੀ ਵਿੱਚ ਮੁਹਾਣਿਆ ਭਨ ਘਤਸਨ

ਬੁਖਾੜ ।' (ਪੰਜਾਬੀ ਅਖਾਣ)।

ਰਜਾਇ= 'ਅਰਬੀ ਰਿਜ਼ਾ' ਰਬ ਦੀ ਮਰਜ਼ੀ ਤੇ ਰਾਜ਼ੀ ਰਹਿਣਾ, ਈਸ਼੍ਵਰਿਛਾ, ਭਾਣਾ, ਮਰਜੀ, ਦੇਖੋ ਜਿਕਰ:-- "ਜਿਧਰਿ ਰਬ ਰਜਾਇ ਵਹਣੁ ਤਿਦਾਊ ਗੰਉ ਕਰੇ" (ਸਲੋਕ ਫਰੀਦ ਜੀ)

ਆਪੁ= ਹੌਮੈ, ਹੰਕਾਰ।

ਮਿਹਰੰਮਤਿ=(ਅਰਬੀ ਮਰਹ਼ਮਤ) ਤਰਸ, ਮਿਹਰ, ਦਯਾ, ਰਹਮ। ਦੇਖੋ "ਤਰਸੁ ਪਇਆ ਮਿਹਰਾਮਤਿ ਹੋਈ" (ਰਹਿਰਾਸ) ਹੋਰ "ਕਰਿ ਮਿਹਰੰਮਤ ਸਾਂਈ"

ਮੁਸਲਾ= (ਅਰਬੀ ਮੁਸੱਲਾ) ਨਮਾਜ ਪੜ੍ਹਣ ਦੀ ਥਾਂ। ਆਸਣ ਯਾ ਫੂੜੀ ਜਿਸ ਪੁਰ ਖਲੋ ਕੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਨਮਾਜ਼ ਪੜ੍ਹਦੇ ਹਨ।

ਤਸਬੀ= (ਅਰਬੀ ਤਸਬੀਹ, ਸੁਬਹਾਨਅੱਲਾ ਕਹਿਨਾਂ। ਖ਼ੁਦਾ ਦੀ ਯਾਦ ਕਰਨਾ) ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਦੀ ਮਾਲਾ ਜੋ ਉਲਟੀ ਫੇਰਦੇ ਤੇ ਜਪਦੇ ਹਨ॥

ਅਖੁਟੇ= (ਪੰਜਾਬੀ ਖ਼ੁਟਣਾ, ਮੁਕਣਾ) ਨਾ ਮੁਕਣ ਵਾਲੇ ਅਥਵਾ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ, ਅਨਗਨਿਤ।

ਸ਼ਬਦਾਰਥ।

ਮੁਸਲਮਾਣ ਕਹਾਉਣਾ ਔਖਾ ਹੈ, ਜੇ ਕੋਈ (ਇਕਰ ਦਾ ਜਿਵੇਂ ਹੇਠਾਂ ਦੱਸਦੇ ਹਨ) ਮੁਸਲਮਾਨ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਆਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਅਜਿਹਾ ਕਹੇ॥ ਪਹਿਲਾਂ ਸੰਤਾਂ ਦੇ ਦੀਨ ਧਰਮ ਨੂੰ (ਮਿੱਠਾ) ਭਲਾ ਜਾਨੇ ਅਰ ਕਠਿਨ ਜੋ ਮਾਨ ਰੂਪੀ (ਮਾਲ) ਪੂੰਜੀ ਹੈ ਉਸ ਨੂੰ (ਮੁਸਾਵੇ) ਲੁਟਾ ਦੇਵੇ। (ਗੁਰੂ ਜੋ) ਮਲਾਹ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਦੀਨ (ਧਰਮ) ਪੁਰ ਪੱਕਾ ਹੋਵੇ। ਅਰ ਮਰਨ ਜੀਵਨ ਦਾ ਡਰ ਦੂਰ ਕਰ ਦੇਵੇ। ਰਬ ਦਾ ਭਾਣਾ ਸਿਰ ਮੱਥੇ ਤੇ ਮੰਨੇ, ਉਸ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਸਮਝੇ ਅਰ (ਆਪਣਾ) ਹੰਕਾਰ ਦੂਰ ਕਰੇ। ਫਿਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਸਾਰਿਆਂ ਜੀਆਂ ਪੁਰ ਦਯਾ ਕਰੇ ਤਾਂ ਓਹ ਅਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਮੁਸਲਮਾਨ ਕਹਾਵੇ॥ ੧॥

ਲੋਕਾਂ ਤੇ ਦਜਾ ਕਰਨੀ ਮਸੀਤ, ਸਿਦਕੀ ਜੀਵਨ ਬਤੀਤ ਕਰਨਾ ਮੁੱਸਲਾ, ਹੱਕ ਹਲਾਲ ਦੀ ਕਮਾਈ ਕਰਨੀ ਕੁਰਾਣੁ ਦਾ ਪਾਠ ਕਰਨਾ ਜਾਨੇ। ਮੰਦੇ ਕੰਮਾਂ ਤੋਂ ਸ਼ਰਮਾਉਣਾ ਇਹ ਸੁੰਨਤ ਜਾਨੇ, ਅਰ ਸੀਲ ਸੁਭਾਵ ਹੋਨਾ ਇਹ ਹੀ ਰੋਜਾ ਰੱਖਨਾ ਸਮਝੇ, ਇਕਰ ਦਾ ਮੁਸਲਮਾਨ ਬਣੇ। ਚੰਗੀ ਕਰਣੀ ਰੂਪੀ ਕਾਬਾ, ਸੱਚ ਨੂੰ ਪੀਰ (ਗੁਰੂ), ਕਰਮਾਂ ਨੂੰ ਕਲਮਾਂ ਅਰ ਨਿਮਾਜ ਜਾਨੇ ॥ ਈਸ਼੍ਵਰ ਦਾ ਭਾਣਾ ਮਿੱਠਾ ਮੰਨਣਾ ਮਾਲਾ ਫੇਰੇ, ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਅਜਿਹੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਦੀ ਫਿਰ ਆਪ ਲਾਜ ਰਖਦਾ ਹੈ ॥ ੨ ॥

ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਹਿੰਦੂ ਭੁਲੇਵੇ ਵਿੱਚ ਹੀ ਹਨ ॥ ਮਨ ਰੂਪੀ ਨਾਰਦ ਦੇ ਮਗਰ ਲਗ ਉਸ ਦੀ ਪੂਜਾ ਕਰਦੇ ਹਨ ॥ ਉਹ ਅਗਜਾਨਤਾ ਵਿਖੇ (ਮਨ ਕਰਕੇ) ਅੰਨ੍ਹੇ ਤੇ ਗੂੰਗੇ ਹਨ ॥ ਮੂਰਖ ਪੱਥਰਾਂ ਦੀ ਪੂਜਾ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਤਾਂ ਆਪ ਹੀ (ਭਰਮਾਂ ਵਿੱਚ) ਡੁੱਬੇ ਪਏ ਹਨ, ਤੁਹਾਨੂੰ ਕੀਕਰ ਬੰਨੇ ਲਾਵਨ ਗੇ ॥ ੩ ॥

ਹੇਠ ਲਿਖਿਆ ਸ਼ਬਦ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮੁੱਲਾਂ ਪ੍ਰਤਿ ਉਸਦੇ ਜੰਤ੍ਰ ਮੰਤ੍ਰ ਅਰ ਝਾੜੇ ਕਰਨ ਸਮੇਂ ਉਚਾਰਿਆ :—

ਮਾਰੂ ਮਹਲਾ ੧ ।

ਕੋਈ ਆਖੈ ਭੂਤਨਾ ਕੋ ਕਹੈ ਬੇਤਾਲਾ। ਕੋਈ ਆਖੈ ਆਦਮੀ ਨਾਨਕੁ ਬੇਚਾਰਾ ॥ ੧ ॥ ਭਇਆ ਦਿਵਾਨਾ ਸਾਹ ਕਾ ਨਾਨਕੁ ਬਉਰਾਨਾ ॥ ਹਉ ਹਰਿ ਬਿਨ ਅਵਰੁ ਨ ਜਾਨਾ ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥ ਤਉ ਦੇਵਾਨਾ ਜਾਣੀਐ ਜਾ ਭੈ ਦਿਵਾਨਾ ਹੋਇ ॥ ਏਕੀ ਸਾਹਿਬ ਬਾਹਰਾ ਦੂਜਾ ਅਵਰੁ ਨ ਜਾਣੈ ਕੋਇ ॥ ੨ ॥ ਤਉ ਦੇਵਾਨਾ ਜਾਣੀਐ ਜਾ ਏਕਾ ਕਾਰ ਕਮਾਇ ॥ ਹੁਕਮ ਪਛਾਣੈ ਖਸਮ ਕਾ ਦੂਜੀ ਅਵਰ ਸਿਆਣਪ ਕਾਇ ॥ ੩ ॥ ਤਉ ਦੇਵਾਨਾ ਜਾਣੀਐ ਜਾ ਸਾਹਿਬ ਧਰੇ ਪਿਆਰੁ ॥ ਮੰਦਾ ਜਾਣੈ

ਆਪ ਕਉ ਅਵਰੁ ਭਲਾ ਸੰਸਾਰੁ ॥ ੪ ॥ ੭ ॥

(ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਫਾ ਨੰ: ੧੦੪)

ਔਖੇ ਪਦਾਂ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਬੇਤਾਲਾ= (ਸੰ੦ ਵੇਤਾਲ:) ਭੂਤਨਾ, ਜਿੱਨ, ਉਹ ਭੂਤਨਾ ਜੋ ਮਸਾਨਾ ਆਦਿ ਵਿੱਚ ਰਹੇ ਅਰ ਮੁਰਦਿਆਂ ਦਾ ਸੰਗ ਕਰੇ ॥

ਬਉਰਾਨਾ=ਬਉਲਿਆ ਹੋਇਆ, ਸੁਦਾਈ, ਪਾਗਲ, ਬਾਵਲਾ, ਕਮਲਾ । ਦੇਖੋ–"ਲੋਗੁ ਕਹੈ ਕਬੀਰੁ ਬਉਰਾਨਾ ।"

ਸ਼ਬਦ ਦੇ ਅਰਥ ।

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ–

ਕੋਈ (ਮੈਨੂੰ) ਭੂਤਨਾ ਅਰ ਕੋਈ ਮਸਾਨੀਆ ਜਿੱਨ ਆਖਦਾ ਹੈ ॥ ਨਾਨਕ ਵਿਚਾਰੇ ਨੂੰ ਕੋਈ ਆਦਮੀ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ॥ ੧ ॥ ਨਾਨਕਾ (ਬਉਰਾਨਾ) ਪਾਗਲ ਤਾਂ (ਸਾਹ) ਮਾਲਕ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ ਲਈ ਸੁਦਾਈ ਹੋਇਆ ਹੈ ॥ ਮੈਂ ਉਸ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਹੋਰ ਕਿਸ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਜਾਨਦਾ (ਕਿਸੇ ਦੀ ਕੁਝ ਪਰਵਾਹ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ) ॥ ੧ ॥ ਰਹਾਉ ॥ ਕਮਲਾ ਤਾਂ ਤਦੇ ਹੀ ਜਾਣਿਆਂ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੇਕਰ ਓਹ (ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੇ) ਡਰ ਵਿਖੇ ਦਿਵਾਨਾ ਹੋ ਜਾਵੇ ॥ ਮਾਲਕ (ਵਾਹਿਗੁਰੂ) ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਦੂਜੇ ਕਿਸੇ ਨੂੰ ਜਾਣੈ ਹੀ ਨਾ ॥ ੨ ॥ ਦਿਵਾਨਾ ਤਦੇ ਹੀ ਹੈ ਜੇਕਰ ਕੇਵਲ (ਏਕਾ) ਇਕ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਦੀ ਹੀ ਕਾਰ ਕਰੇ ॥ ਮਾਲਕ ਦਾ ਹੁਕਮ ਬੁੱਝੇ ਅਰ ਦੂਜੀ ਵਿਚਾਰ ਨਾ ਰੱਖੇ ॥ ੩ ॥ ਦਿਵਾਨਾ ਤਦੇ ਹੀ ਜਾਂਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੇਕਰ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਉਸ ਨਾਲ ਪਿਆਰ ਕਰੇ ॥ ਆਪਨੇ ਆਪ ਨੂੰ ਮੰਦਾ ਸਮਝੇ ਅਰ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਲੋਕਾ ਨੂੰ ਉੱਤਮ ਜਾਨੇ ॥ ੪ ॥

(ਬਲਦੇਵ ਸਿੰਘ)

----o----